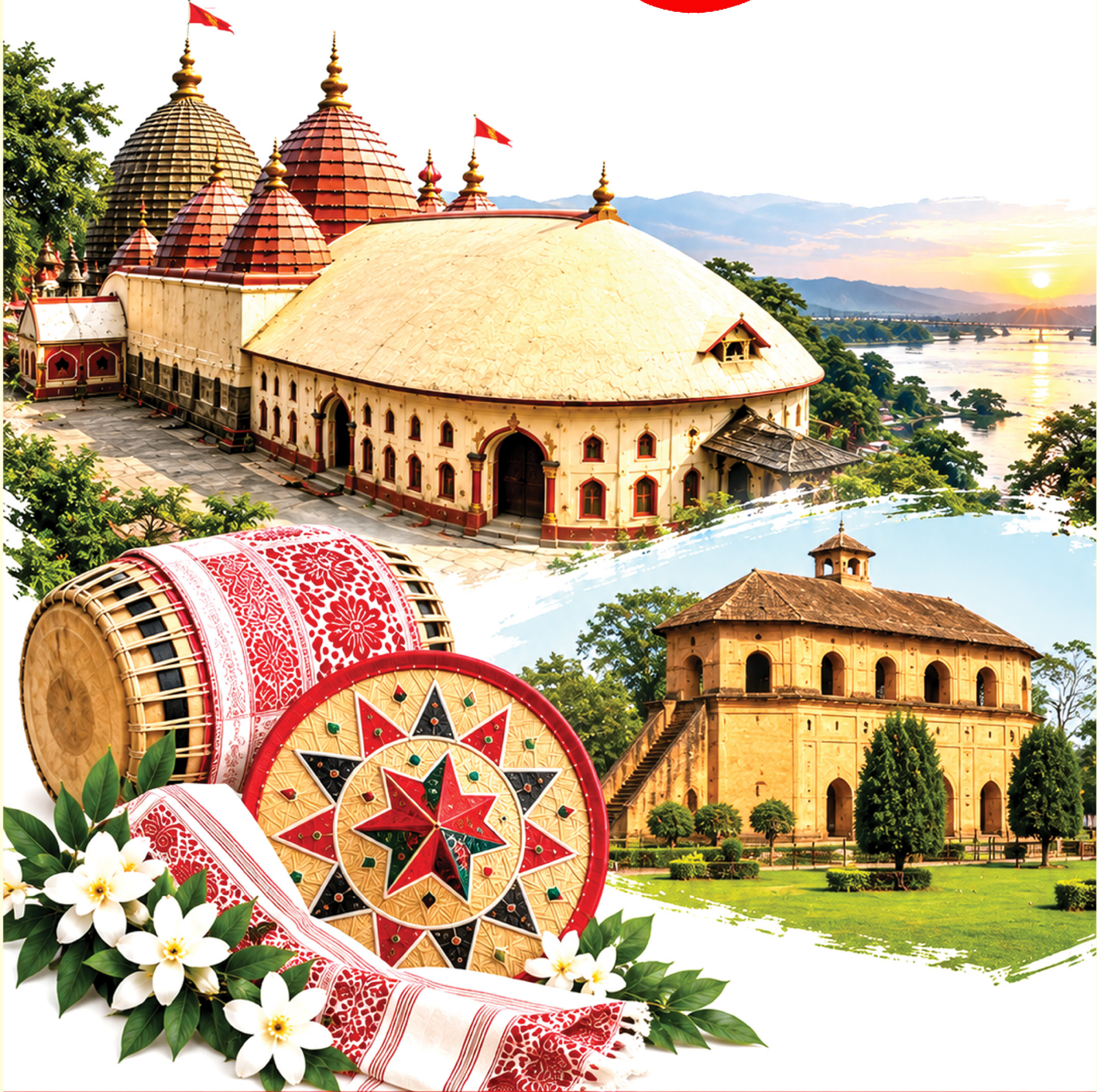


RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 76 अंक : 1-2
अप्रैल-मई, 2026



एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 76

अंक : 1, 2

अप्रैल, मई, 2026

परामर्श मंडल

- भारतभूषण महंत (असम) • प्रो. आर. एस. सर्राजु (तेलंगाना) • प्रो. किरण हाजरिका (पंजाब)
• प. प्रदीप के शर्मा (सिक्किम) • प्रो. एच. एन. वाघेला (गुजरात) • डॉ. रीतामणि वैश्य (असम)

संपादक मंडल

- प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन (गुवाहाटी) • प्रो. दिलीप कुमार मेधी (गुवाहाटी)
• डॉ. अनुशब्द (तेजपुर) • डॉ. कुसुम कुंज मालाकार (गुवाहाटी) • डॉ. जुरी दत्त (तेजपुर)
• डॉ. अंबेश्वर गोगोई (गुवाहाटी) • डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ (गुवाहाटी) • डॉ. स्वप्नाली दास (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद



असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकान्त कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
हिंदी विभाग			
	संपादकीय		5
1.	भारतीय ऐतिहासिक ज्ञान परंपरा में मानवीय जीवन मूल्य : भगवद गीता के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन	✍ डॉ. कृष्ण गोपाल त्यागी	7
2.	मुकेश कुमार कृत 'बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति' संस्मरण में कर्म सिद्धांत व मानवीय संवेदना	✍ प्रो. प्रदीप के शर्मा	11
3.	शंकरदेव विरचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक में चित्रित असमीया लोक-जीवन और परंपराएँ	✍ डॉ. जयश्री काकति	14
4.	'प्रेमचंद घर में' : स्मृति और संवेदना के आलोक में प्रेमचंद का पुनर्सृजन	✍ डॉ. चुकी भूटिया	20
5.	महात्मा गांधी का सत्याग्रह दर्शन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	✍ डॉ. लाला बाबू	25
6.	समकालीन हिंदी साहित्य में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श	✍ डॉ. नुरजहाँ रहमतुल्लाह	32
7.	भारतीय ज्ञान परंपरा की पृष्ठभूमि और हिंदी साहित्य से उसका संबंध	✍ डॉ. अर्चना त्रिपाठी	36
8.	उत्तराखण्ड की लोक स्मृति में भारतीय स्वाधीनता संग्राम	✍ डॉ. भावना मासीवाल	44
9.	अमृतलाल नागर के साहित्य में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद	✍ डॉ. संतोष कुमार भारद्वाज	49
10.	द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण	✍ डॉ. प्रदीप कुमार सिंह	54
11.	वर्तमान में खाप पंचायतों की प्रासंगिकता (पश्चिम उत्तर प्रदेश व हरियाणा के विशेष संदर्भ में)	✍ डॉ. लोमेश कुमार	61
12.	नागामिज और हिंदी का अंतर्संबंध	✍ डॉ. बृजेश कुमार	65
13.	कुबेरनाथ राय के निबंधों में पूर्वोत्तर भारत का सांस्कृतिक सौंदर्य	✍ अनुपम भट्ट	70
14.	ग्लोबल विलेज में बचपन : बाल साहित्य का बदलता स्वरूप और चुनौतियाँ	✍ अन्नू शर्मा	75
15.	प्रयाग रंगमंच : रंगकर्म से जनकर्म तक	✍ राम कुंवर ✍ प्रो. दर्शन पांडेय	80
16.	स्त्री जीवन के आत्म संघर्ष का सशक्त दस्तावेज 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास	✍ भारती	86
17.	हिंदी काव्य की गीति परंपरा	✍ राजू सिंह	90
18.	नई सदी की हिंदी कहानियों में धार्मिक सौहार्द के विविध रूप	✍ पूजा शर्मा	97
19.	असम में हिंदी पत्रकारिता : एक अवलोकन	✍ सौमित्रम्	100

অসমীয়া বিভাগ

20.	অসমীয়া ধ্ৰুপদী ভাষাৰ ইতিহাস : প্ৰেক্ষিত মাধৱ কন্দলি	ড° মঞ্জু দাস	105
21.	সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' চুটিগল্পত কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগ	ড° মনালিছা বৰা	110
22.	আৱাহন যুগ, নাৰী জাগৰণ আৰু ৰমা দাশৰ গল্প	ড° অজিৎ কলিতা	117
23.	অৰুণোদই আলোচনীত বিজ্ঞান চৰ্চা : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	ড° ভাস্কৰজিৎ বৰা	125
24.	আকাশবাণীৰ সংগীত শিল্পীৰূপে ভূপেন হাজৰিকা : এটি বিশ্লেষণ	চয়নিকা সভাপণ্ডিত ড° কুসুম্বৰ বৰুৱা	129
25.	'শৱ কটা মানুহ' উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মনপা জনজাতিৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ ছবি : এক অধ্যয়ন	অমূল্য ৰাভা	137
26.	অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত বিভিন্ন ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভংগীৰ তুলনামূলক বিচাৰ	ৰশ্মিতা বৰা	143
27.	সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হথ্ৰা নাচ : পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন	যুগল চন্দ্ৰ সোণোৱাল ড° জ্যোতিৰেখা হাজৰিকা	155
28.	অপূৰ্ব শৰ্মাৰ গল্পত শৈলী প্ৰসংগ : এক অধ্যয়ন (বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ' গল্পপুথিৰ আধাৰত)	কৃত্তিকা হালৈ ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা	165
29.	অমূল্য বৰুৱাৰ লুইতকেন্দ্ৰিক উপন্যাস 'এই পদুমনি' স্থান আৰু মানুহৰ অবিচ্ছেদ্য সম্পৰ্কৰ এক ভূ-সমালোচনাত্মক অধ্যয়ন	দিপাংকৰ বৰুৱা ড° লুট্‌ফা হানুম ছেলিমা বেগম	172
30.	সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ আলোকত ৰাম আতাৰ সুভদ্ৰা হৰণ নাটত প্ৰকাশিত শৃঙ্গাৰ ৰস : এক বিশ্লেষণ	বিদ্যুৎ দত্ত ড° বিভূতি লোচন শৰ্মা	179
31.	আৱাহন আলোচনীত প্ৰকাশিত চুটিগল্পত বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ	শিখা মণি দাস ড° বিপুল মালাকাৰ	185
32.	অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ জছনাৰ ঝিটাছ উপন্যাসত ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ : এক নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন	কৃপাৰেখা গগৈ ড° অৰবিন্দ ৰাজখোৱা	194
33.	পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্য (শিশু-গল্পৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)	পূৰ্বী শইকীয়া	203
34.	শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ দৃষ্টিভংগী	আয়েশা বেগম ড° নুৰ ইছলাম শইকীয়া	212
35.	মিচিং সকলৰ পৰম্পৰাগত লোক-ঔষধ	জীমণি দিহিঙীয়া	216
36.	অসমৰ মিচিং জনজাতিৰ সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক জীৱনৰ এক নৃতাত্ত্বিক পৰিচয়	ৰাৰ্ণা কাৰ্ডং ড° উপেন্দ্ৰজিৎ শৰ্মা	223
37.	অসমৰ পাহাৰ আৰু ভৈয়ামৰ বিভিন্ন ভাষাৰ গ্ৰন্থ মুদ্ৰণত শিল্পৰ ভূমিকা : এক ঐতিহাসিক বিশ্লেষণ	অভিজিৎ বৰা ড° লুট্‌ফা হানুম ছেলিমা বেগম	232

भारतीय ज्ञान परंपरा : नए भारत की नींव

भारत की सभ्यता को यदि विश्व के प्राचीनतम एवं सर्वाधिक समृद्ध ज्ञान-स्रोतों में गिना जाता है, तो इसका मूल कारण यह है कि यहाँ ज्ञान को केवल सूचना संग्रह नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक संपूर्ण पद्धति माना गया। वेद, उपनिषद, दर्शन-शास्त्र, आयुर्वेद, गणित, खगोल-विज्ञान, राजनीति-शास्त्र तथा योग जैसी विधाओं ने सदियों तक मनुष्य के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को दिशा दी। यह परंपरा किसी एक धर्म, संप्रदाय या कालखंड तक सीमित नहीं है, इसमें वैदिक चिंतन के साथ-साथ बौद्ध, जैन, चार्वाक तथा अनेक लोक-परंपराओं का समावेश है, और यही बहुलता इसकी सबसे बड़ी शक्ति है। न्याय और वैशेषिक दर्शन ने तर्कशास्त्र को विकसित किया, सांख्य और योग ने मन तथा शरीर के संबंध को समझने का प्रयास किया, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य ने गणित तथा खगोल-विज्ञान में युगांतरकारी योगदान दिया, चरक और सुश्रुत ने चिकित्सा-विज्ञान की नींव रखी, तो अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों ने शासन-व्यवस्था और अर्थनीति पर गहन विमर्श प्रस्तुत किया। यह परंपरा वास्तव में किसी एक विचारधारा का अंधानुसरण नहीं, बल्कि निरंतर तर्क, वाद-विवाद और संशोधन की जीवंत संस्कृति रही है, और इसी कारण यह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी सदियों पहले थी।

इस परंपरा का महत्व केवल ऐतिहासिक गौरव तक सीमित नहीं है। यह आज के युवा के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक बन सकती है, क्योंकि इसके मूल में जो प्रश्न उठाए गए – जीवन का उद्देश्य क्या है? सुख और संतुलन कैसे प्राप्त हो? व्यक्ति और समाज का संबंध कैसा हो? प्रकृति के साथ सामंजस्य कैसे बना रहे? – ये प्रश्न आज भी उतने ही सार्थक हैं। जिस गति और प्रतिस्पर्धा में आज का युवा जी रहा है, उसमें मानसिक तनाव, दिशाहीनता और उद्देश्यहीनता की समस्या तेजी से बढ़ रही है। योग और ध्यान जैसी पद्धतियाँ, जो भारतीय ज्ञान-परंपरा की देन हैं वे आज वैश्विक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य के समाधान के रूप में स्वीकार की जा रही हैं। इसी प्रकार, भारतीय दर्शन में निहित संतुलन, संयम और आत्म-अनुशासन के सिद्धांत युवाओं को उपभोक्तावादी होड़ से हटाकर एक अधिक स्थिर, उद्देश्यपूर्ण जीवन-दृष्टि दे सकते हैं। यह परंपरा युवाओं को यह सिखाती है कि सफलता केवल भौतिक उपलब्धि नहीं, बल्कि आंतरिक स्पष्टता और नैतिक दृढ़ता से भी परिभाषित होती है, और यही समझ उन्हें कठिन समय में स्थिर रखने वाली सबसे बड़ी शक्ति बन सकती है।

इसके साथ ही, भारतीय ज्ञान-परंपरा युवाओं को अपने निर्णयों में एक गहरी नैतिक कसौटी भी प्रदान करती है। कैरियर चुनने से लेकर सामाजिक और पारिवारिक संबंधों तक, हर क्षेत्र में यह परंपरा कर्तव्य, धर्म और सामूहिक कल्याण के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण सुझाती है, जो केवल व्यक्तिगत लाभ पर केंद्रित आधुनिक सोच से भिन्न है। ऐसे समय में जब स्वार्थ और तात्कालिक लाभ अक्सर निर्णयों को संचालित करते हैं, भारतीय चिंतन की यह शिक्षा, कि व्यक्ति का हित समाज के हित से अलग नहीं है, युवाओं को एक जिम्मेदार, संवेदनशील नागरिक बनने की दिशा दिखा सकती है। यह दृष्टिकोण उन्हें केवल कैरियर-उन्मुख व्यक्ति नहीं, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायी नेतृत्वकर्ता के रूप में विकसित होने में सहायक हो सकता है।

यदि युवा इस ज्ञान-परंपरा से सच्चे अर्थों में जुड़ते हैं, तो वे नए भारत के निर्माण में एक निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। आज विश्व के अनेक विश्वविद्यालय योग, आयुर्वेद, संस्कृत भाषाविज्ञान और भारतीय दर्शन पर गंभीर शोध कर रहे हैं, और यह भारतीय युवाओं के लिए एक अभूतपूर्व अवसर है, वे न केवल इस विरासत के उत्तराधिकारी हैं, बल्कि इसे समकालीन वैज्ञानिक भाषा में पुनर्व्याख्यायित करने की क्षमता भी रखते हैं। स्टार्टअप संस्कृति में आयुर्वेद-आधारित उत्पादों का विकास, संस्कृत कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान में शोध तथा भारतीय दर्शन पर

आधारित मानसिक स्वास्थ्य के नवाचार यह दर्शाते हैं कि परंपरा और आधुनिकता परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक हो सकती हैं। जो युवा इस परंपरा को गहराई से समझते हैं, वे वैश्विक मंच पर भारत को केवल एक बड़े बाजार के रूप में नहीं, बल्कि एक मौलिक विचारक और अभिनव सभ्यता के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परंपरा से जुड़ाव, आर्थिक विकास और सांस्कृतिक आत्मविश्वास दोनों को एक साथ आगे बढ़ाने का माध्यम बन सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण सावधानी भी आवश्यक है। भारतीय ज्ञान-परंपरा से जुड़ाव का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि हर प्राचीन कथन को बिना परीक्षण के स्वीकार कर लिया जाए। स्वयं इस परंपरा में ही तर्क, प्रमाण और खंडन-मंडन की समृद्ध पद्धति विद्यमान रही है। अतः इसका वास्तविक सम्मान करने का सही तरीका यही है कि युवा इसे उसी आलोचनात्मक, जिज्ञासु भावना से पढ़ें और समझें, जिस भावना से इसके मूल रचनाकारों ने इसे गढ़ा था, प्रश्न पूछते हुए, स्रोतों की प्रामाणिकता जाँचते हुए, और परंपरा के भीतर के अंतर्विरोधों को भी स्वीकार करने का साहस रखते हुए। यही दृष्टिकोण युवाओं को अंधश्रद्धा से बचाते हुए एक जागरूक, आत्मविश्वासी और वैश्विक स्तर पर सम्मानित बौद्धिक नागरिक बनाएगा, जो अपनी जड़ों से जुड़ा होते हुए भी तर्कशील और आधुनिक दृष्टिकोण रखता है।

डिजिटल तकनीक ने इस जुड़ाव को और सहज बना दिया है। पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, ऑनलाइन संस्कृत पाठ्यक्रम, पॉडकास्ट, वृत्तचित्र और सुलभ अनुवाद आज उस दूरी को पाट सकते हैं जो कभी दुर्गम भाषा और सीमित पहुँच के कारण बनी थी। यदि युवा इन माध्यमों का उपयोग गंभीरता और विवेक के साथ करें, तो वे भारतीय ज्ञान-परंपरा को सतही जानकारी के बजाय गहरी समझ के रूप में आत्मसात कर सकते हैं, और फिर इसे अपने कार्यक्षेत्र, चाहे वह विज्ञान हो, प्रौद्योगिकी, कला, प्रबंधन या सामाजिक सेवा, में रचनात्मक ढंग से लागू कर सकते हैं। यही प्रक्रिया एक ऐसे नए भारत की नींव रख सकती है, जो अपनी जड़ों पर गर्व करते हुए भी भविष्योन्मुखी हो, जो परंपरा और नवाचार को प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि परस्पर पोषक मानता हो।

अंततः, भारतीय ज्ञान-परंपरा और युवा पीढ़ी के बीच का संबंध कोई एकतरफा प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए, जिसमें केवल अतीत का गौरव-गान किया जाए। यह एक सजीव, द्विपक्षीय संवाद होना चाहिए, जिसमें परंपरा युवाओं को गहराई, संदर्भ और मूल्यबोध प्रदान करे और युवा उस परंपरा को समकालीन प्रश्नों, वैज्ञानिक पद्धति तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य से समृद्ध करें। यदि भारत का युवा अपनी ज्ञान-परंपरा को केवल संग्रहालय की वस्तु न मानकर एक जीवंत, विकासशील बौद्धिक शक्ति के रूप में अपनाए, तो वह न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में स्पष्टता और संतुलन पा सकेगा, बल्कि सामूहिक रूप से एक ऐसे नए भारत का निर्माण भी कर सकेगा जो आत्मविश्वासी, नैतिक रूप से दृढ़ और वैश्विक स्तर पर सम्मानित हो। यह दायित्व और यह अवसर, दोनों ही आज के भारतीय युवा के हाथ में हैं।

पत्रिका के बारे में सुधी पाठकों के सुझावों की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है।

- मोहन

□□□

भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवीय जीवन मूल्य : भगवद गीता के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन



डॉ कृष्ण गोपाल त्यागी

शोध संक्षेप :

भगवद गीता वैष्णव संप्रदाय का मौलिक ग्रंथ है, यह संप्रदाय पहले भागवत संप्रदाय और उससे भी पहले वासुदेव संप्रदाय के नाम से जाना जाता है, जिसका वर्णन बेसनगर (मध्य प्रदेश) के अभिलेख में मिलता है। इसका निर्माण कृष्ण के परम भक्त यूनान के हेलिओडोरस ने कराया था। मूल रूप से भगवत गीता में 12 अध्याय थे, 13वें अध्याय के पाँचवें श्लोक में ब्रह्म सूत्रशब्द आया है। उससे पहले ब्रह्मपुत्र सूत्रकाल (700 ई.पू. से लेकर 200 ई.पू. 8 के मध्य बादरायण द्वारा रचित माना जाता है। ब्रह्मपुत्र 700 ई.पू. से प्राचीन नहीं हो सकता, इस प्रकार वर्तमान भगवत गीता की रचना 100 ई.पू. की ही मानी जा सकती है।¹ कृष्ण का वर्णन सर्वप्रथम छान्दोग्य उपनिषद में आया है, जहाँ उन्हें घोर अंगिरस का शिष्य माना गया है। भारतीय इतिहास में उपनिषद काल 1100 ई.पू. से 700 ई.पू. माना गया है।

भारतीय इतिहास में ज्ञान परंपरा का केंद्र बिंदु ब्रह्म साक्षात्कार, नैतिकता और मानवता रहा है। भारतीय आदर्श नायकों ने नैतिकता और मानवीय जीवन मूल्य के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो प्रत्येक काल और समय में प्रासंगिक रहते हैं। भारतीय समाज उन्हीं आदर्शों की गहरी और पक्की नींव पर निर्मित है और उन्हें आदर्शों से संचालित होता है। संपूर्ण विश्व के लिए ये नैतिक और मानवीय मूल्य जीवन दर्शन हैं। हमारा राष्ट्र उन्हीं मूल्यों का समुच्चय है। सिंधु-सारस्वत सभ्यता से आज तक वे आदर्श ऐतिहासिक प्रतिमान हमारे समाज को संचालित करते आए हैं और करते रहेंगे। भारतीय ज्ञान परंपरा में नैतिकता और मानवता का आधार धर्म है। हमारे यहाँ धर्म का अर्थ केवल धार्मिक आचरण नहीं, अपितु कर्तव्य, सत्य, न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व से है। भगवत गीता के अनुसार तो समस्त नैतिकता और मानवता का मूल्य स्वयं परमात्मा को बताया गया है, जिसका वर्णन कृष्ण सभी धर्म से ऊपर उठकर बताते हैं-*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥* (गीता.18.66)² इस श्लोक में कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं- तू संपूर्ण अनात्म धर्मों का त्याग करके एकमात्र मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। इसी गूढ़ विषय को कबीर दास जो एक निर्गुण चिंतक हैं, इस प्रकार कहते हैं- चलती चक्की देख कर दिया कबीरा रोए। जो किल्ली से बँध गया बाल न बांका होय। भारतीय समाज का मूल ही ब्रह्म चिंतन है। हमारी सनातन ज्ञान परंपरा की नैतिकता और मानवता का आधार ही परम तत्त्व है। इस शोध पत्र में अनुसंधान की ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक पद्धति

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
रामलाल आनंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110021
☎ 9899637083
✉ krishangopaltyagi.hist@rla.du.ac.in

का प्रयोग किया गया है, साथ-साथ विभिन्न विद्वानों से तर्कों और वितर्कों का भी प्रयोग किया गया है।

बीज शब्द : सिंधु-सारस्वत सभ्यता, वैदिक ज्ञान, जीवन मूल्य, हिंदू धर्म, नैतिकता, मानवता, नीति शास्त्र, निष्काम कर्म।

विश्लेषण :

भारतीय ज्ञान परंपरा में भगवत गीता का स्थान अति महत्वपूर्ण है। यह केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक आयाम नैतिकता, कर्तव्य, मानवता, आत्मज्ञान और आध्यात्मिकता का विचित्र पथ प्रदर्शक है। कृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में प्रस्तुत भगवत गीता मानव जीवन के नैतिक संकटों का समाधान प्रदान करती है। गीता का मूल उद्देश्य मनुष्य को उसके कर्तव्य, धर्म, नैतिकता और मानवता के मार्ग पर अडिग रहने को प्रेरित करना है। यह ग्रंथ मनुष्य को जीवन की हर परिस्थिति में नैतिक निर्णय लेने की कला सिखाता है।

कठिन समय में धैर्य बनाए रखना हमारे जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जीवन में कई बार ऐसी परिस्थितियों आती हैं, जब सब कुछ हमें विपरीत लगता है, ऐसे समय में सकारात्मक सोच बनाए रखना बड़ा मुश्किल कार्य है, श्रीमद्भगवत गीता हमें ऐसे मानवीय मूल्यों को सिखाती है कि उन विषम परिस्थितियों में हम अपने व्यवहार को सही बनाए रखें और अपने कर्तव्य पर डटे रहे। गीता एक ऐसा शाश्वत जीवन दर्शन है, जिसमें मानव जीवन के उत्थान के लिए आवश्यक मूल्यों की व्याख्या की गई है। गीता के अनुसार जीवन का अंतिम लक्ष्य आत्मज्ञान, परम शांति और मोक्ष प्राप्त करना है, जो वर्तमान समय की भौतिकवादी संस्कृति से ऊपर उठकर उन शिक्षाओं को प्रतिष्ठित करने का साधन है। किसी भी मनुष्य के अच्छे बुरे या सही गलत की पहचान उसके जीवन मूल्यों के आधार पर ही होती है। मानवता के विकास में जीवन मूल्यों का अद्भुत योगदान है, क्योंकि जिस समाज के लोगों में जीवन मूल्य उच्च होंगे, वही पूरी मानवता के लिए आदर्श स्थापित करेगा। भगवत गीता की पृष्ठभूमि महाभारत का युद्ध है, जिस युद्ध का उद्देश्य धर्म का पालन और सत्य की विजय है। आज भी हम जब विषम परिस्थितियों में उलझ जाते हैं तो गीता का ज्ञान हमें सही

मार्ग दर्शाता है।

मानवीय जीवन मूल्य वे आदर्शात्मक दिशा बोधक तत्व हैं, जो सामाजिक व्यवहार और जीवन निर्माण के लिए अति आवश्यक हैं। स्वामी विवेकानंद के अनुसार—*“हमें स्वयं को व्यक्ति के रूप में जीवन मूल्यों को समझना और जीना चाहिए और आगे उनका पहला प्रयोग अपने परिवार में करना चाहिए। समाज मूल्यों-मुखी स्वतः ही होने लगता है।”*³ भगवत गीता आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित प्रस्थानत्रयी का अंग है। यह कर्म और पुरुषार्थ के साथ विवेक सम्मत निर्णय आत्मिकता बुद्धि की पक्षधर रही है। आज हमारे समाज को ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व को समन्वय की सर्वाधिक आवश्यकता है। ऐसे में गीता के मूल्य और भी प्रासंगिक हो जाते हैं। आजादी, समानता, बंधुत्व, प्रजातंत्र, पंथनिरपेक्षता, सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति सम्मान, सामाजिक भेदभाव की समाप्ति, लैंगिक समानता, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और पर्यावरण संरक्षण की चेतना अति महत्वपूर्ण जीवन मूल्य है। इनका संवर्धन और शाश्वत विकास अति आवश्यक है, जिससे मानव जीवन का संपूर्ण विकास हो वही मानवीय जीवन मूल्य कहा गया है। गीता में इन मूल्यों का भलीभाँति निर्वाह करते हुए दर्शाया गया है।

कृष्ण अर्जुन को अपने व्यक्तिगत मोह को छोड़कर धर्म के प्रति युद्ध करने को प्रेरित करते हैं। गीता में बताया गया है कि *“वही व्यक्ति उच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है, जो सुख-दुख के प्रहारों को समभाव से सह सके।”*⁴ भगवत गीता में भौतिक सुखों को निम्न कोटि का बताया है, क्योंकि इनकी लालसा मनुष्य में दुर्गुणों को जन्म देती है। गीता के अनुसार बुद्धिमान मनुष्यों की दो श्रेणी है एक ऐसी श्रेणी के मनुष्य जो इंद्रिय तृप्ति के लिए भौतिक कार्य करने में निपुण है और दूसरी श्रेणी के मनुष्य आत्मनिरीक्षक हैं, जो आत्म साक्षात्कार के अनुशीलन के लिए जागते हैं। आत्मज्ञानियों के कार्य भौतिकता में लीन पुरुषों के लिए रात्रि के समान है। भौतिक कार्यों में लगा व्यक्ति आत्म साक्षात्कार के प्रति सोया रहता है और भौतिक सुख-दुखों में ही डूबा रहता है, कभी परमानंद का अनुभव नहीं कर पाता, ऐसे मनुष्य उच्च मानवीय

मूल्यों को जीवन में कभी अनुभव नहीं करते।

मानवीय मूल्य ने तो किसी वैज्ञानिक तकनीक द्वारा उत्पादित किए जा सकते और न ही किसी सरकार द्वारा कानून के रूप में निर्मित किए जा सकते। “जीवन मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण, एक अंतर्दृष्टि, एक अवधारणा, एक दृष्टिकोण है।”⁵ आधुनिक युग ने प्राचीन मान्यताओं के प्रति गहरे प्रश्न चिह्न लगा दिए। मनुष्य जिन धर्म ग्रंथों को अंतरात्मा की आधारभूमि मानता था, वह निरर्थक सिद्ध होने लगे। एक नई तार्किक दृष्टि ने यह स्पष्ट किया की अंतरात्मा मानवीय अंतर में कोई देवी शक्ति न होकर वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति हमारी संवेदनशीलता का ही दूसरा नाम है। “मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा इसी में है कि मनुष्य को हम स्वतंत्र, सचेत, दायित्व युक्त, विवेक और संकल्प युक्त माने तभी वह इतिहास निर्माता और नियति का अधिनायक हो सकता है।”⁶ अधर्म, अन्याय, ईर्ष्या, द्वेष पक्षपात आदि नकारात्मक शक्तियाँ निरंतर रूप से मानवीय विकास में बाधक बनी रहती हैं। किंतु संघर्ष, धर्म, बल, विवेक, समभाव आदि सकारात्मक शक्तियाँ समाज का कल्याण करके मानव को विकास की ओर ले जाती हैं। भगवत गीता में कृष्ण अर्जुन के संवाद के माध्यम से इन्हीं मानवीय जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करके मानवीय उत्थान की कामना की गई है। स्वामी विवेकानंद जी ने “गीता के दो श्लोकों की शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा है कि इन दो श्लोकों में इतनी शक्ति है, जिसे लेकर मिट्टी में से महानायक बनाए जा सकते हैं।”⁷ वे श्लोक हैं—श्रीमद्भगवत गीता के दूसरे अध्याय का दूसरा और तीसरा श्लोक—

“कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 2.2 ॥

क्लैब्यं मा गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तवोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 2.3 ॥”⁸

इन श्लोकों में कृष्ण अर्जुन को उपदेश करते हैं कि दुर्बलता को त्याग कर अपने मूल स्वरूप को पहचाना ही श्रेष्ठ मार्ग है।

आत्म नियंत्रण ही मनुष्य की सच्ची स्वतंत्रता का साधन है। स्वतंत्रता केवल बाहरी स्थिति नहीं है यह एक आंतरिक जीवन मूल्य है, व्यावहारिक रूप से व्यक्ति

स्वतंत्र रहना चाहता है। गीता के अंतिम अध्याय में कृष्ण अर्जुन को वेदों का गोपनीय ज्ञान देने के पश्चात उसको कहते हैं कि जैसा तुझे चाहता है, वैसा कर। अर्थात् पूर्ण स्वतंत्रता, जिससे परम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

कई सहस्राब्दियों से गीता ने विद्वानों विचारकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, युग प्रवर्तकों और जीवन के हर क्षेत्र के लोगों को प्रेरित किया है। यह ग्रंथ हर उसे व्यक्ति से बात करता है, जिसने कभी किसी असंभव-सी समस्या का सामना किया हो। गीता में हर प्रकार की अस्तित्वगत दुविधा का समाधान है। यह व्यक्तिगत और पारलौकिक मार्गों का पथ प्रदर्शक है। “गीता केवल एक दर्शनशास्त्र की प्रणाली ही नहीं है, बल्कि इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह ईश्वर के प्रति एक रहस्यवादी दृष्टिकोण, आत्मसमर्पण, भक्ति, मित्रता और विनम्रता के प्रकाश में सही आचरण और चीजों के प्रति परिप्रेक्ष्य का एक मार्गदर्शक है।”⁹

महात्मा गांधी ने लंबे समय तक गीता का अध्ययन करने और उसका आचरण करने के बाद कहा कि “गीता एक महान धर्म काव्य है। उसमें आप जितने गहरे उतरेंगे उतने ही नए और सुंदर अर्थ आपको मिलेंगे। गीता सर्वसाधारण की चीज है और इसलिए उसमें एक ही बात अनेक तरह से कही गई है। अतः गीता में प्रयुक्त महा शब्दों के अर्थ हर एक युग में बदलेंगे और विस्तृत होते जाएँगे, पर गीता का मूल मंत्र कभी नहीं बदलेगा। जिस रीति से यह मंत्र सिद्ध किया जा सकता है, उस रीति से जिज्ञासु इसका जो चाहे अर्थ करें।”¹⁰

लोकमान्य तिलक ने 45 वर्षों तक गीता का मनन किया और गीता रहस्य ग्रंथ लिखा। उसमें वे कहते हैं कि गीता के अनुसार आचरण करने में प्रतिदिन निष्फलता होती है, इस निष्फलता में हम सफलता की उगती किरणों की झाँकी देखते हैं। अखंड तपस्या करने वालों के यह शब्द निःसंदेह गीता के उपदेश की गंभीरता के सूचक हैं, परंतु जो लोग आचरण नहीं करते और उसका मनन भी नहीं करते, उनके लिए गीता का कोई विशेष मूल्य नहीं है। मनन के बिना गीता ग्रंथ को देखा जाए तो वह निरर्थक है और फिर भी ऐसे लोग गीता के विषय में अनर्गल बातें करते हैं। गीता विशेष मनोभूमि की अवस्था

में लिखा हुआ ग्रंथ है। इसका दृष्टिकोण भिन्न है, जब तक वह दृष्टिकोण समझ में नहीं आता, तब तक इस उपदेश को समझना कठिन है।

आदि शंकराचार्य का गीत पर भाष्य अनुपम ग्रंथ है। यह भारतीय दर्शन की प्रभावशाली व्याख्या है। आदिशंकर ने गीता को केवल कर्म का ग्रंथ नहीं माना, बल्कि ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म के समन्वय का उपदेश माना। उनके अनुसार गीता का अंतिम उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध करना है। उन्होंने गीता के श्लोक को ब्रह्म ज्ञान की दिशा में देखा- न जायते प्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोहन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 2. 20 ॥ की व्याख्या में शंकराचार्य कहते हैं कि आत्मा ना जन्म लेती है न मरती है, वह शाश्वत और अविनाशी है। उन्होंने ज्ञान योग को गीता का सर्वोच्च मार्ग माना है। शंकराचार्य के अनुसार गीता हमें आंतरिक संन्यास का मार्ग बताती है। उनके अनुसार बाहरी कर्मत्याग संन्यास नहीं है, बल्कि अहंकार का त्याग, फल की इच्छा का त्याग और आसक्ति का त्याग ही वास्तविक संन्यास है। आदि शंकर गीता को

अद्वैत वेदांत का सार मानते हैं।

गीता हमारे मतभेदों और मनभेदों को समाप्त करके मतों का संगतिकरण करने की शिक्षा देती है, विविधताओं को दूर करके आनंद का मार्ग बताती है। मौलिक रूप से गीता का उपदेश एकता और समता के प्रचार-प्रसार पर बल देता है। विभिन्न तत्वों में व्याप्त रहने वाला अभिन्न तत्व बताने के लिए ही गीता की उत्पत्ति हुई। अर्थात् यह ग्रंथ संघर्ष और विवाद को समाप्त करके आनंद और शांति का मार्ग प्रसस्त करता है।

निष्कर्ष :

पाँच हजार वर्ष पहले कृष्ण ने अर्जुन को जो अमर शिक्षा दी, उसकी प्रासंगिकता आज के समय में सर्वाधिक है। जब आध्यात्मिक जीवन मूल्यों का हनन और अवहेलना हो रही है, तब भौतिक लालसा, लोभ, पूर्वाग्रह, भय और घृणा धरती पर व्याप्त है, धर्म का पतन और अराजकता व्याप्त है, ऐसे परिदृश्य को परिवर्तित करने का एकमात्र सर्वोत्तम साधन है गीता में निहित मानवीय मूल्य। जब कृष्ण के विचार हमारे चिंतन में प्रतिबिंबित होंगे, तभी प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रकाश, प्रेम और शांति का उदय होगा। □

संदर्भ :

1. डॉ. पीएल भार्गव, भगवत गीता एज इट वाज, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2014, पृष्ठ 2
2. स्वर्ण लाल तुली, श्रीमद्भागवत गीता, श्री कैलाश विद्या प्रकाशन, कैलाश आश्रम, ऋषिकेश, 2002, पृष्ठ 440
3. स्वामी योगानंद, विवेकानंद साहित्य संचयन, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1993, पृष्ठ 207
4. डॉ रवि दत्त पांडे, गीतालोक, प्रकाशक विमल पांडे, गाजियाबाद, 2009, पृष्ठ 9
5. मोहिनी शर्मा, हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 1
6. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 15।
7. स्वामी रंगनाथन आनंद, भगवत गीता का सार्वजनिक संदेश, भाग-1, आर के आश्रम, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 76
8. स्वामी रामसुखदास, श्रीमद्भागवत गीता साधक संजीवनी, गीता प्रे, गोरखपुर, पृष्ठ 46-47
9. प्रोफेसर एस दत्ता गुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2011, पृष्ठ 423
10. महात्मा गांधी, गीता बोध, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1925, पृष्ठ 2

मुकेश कुमार कृत 'बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति' संस्मरण में कर्म सिद्धांत व मानवीय संवेदना



प्रो. प्रदीप के शर्मा

शोध-सार :

मुकेश कुमार कृत संस्मरण 'बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति' आधुनिक मानव संवेदना और प्राचीन भारतीय दर्शन के मध्य एक सशक्त सेतु का निर्माण करता है। प्रातःकालीन भ्रमण के दौरान घटित एक असहाय प्राणी की दुर्घटना के माध्यम से यह रचना कर्म-सिद्धांत, अद्वैत दर्शन तथा जीवन-मूल्यों की सूक्ष्म व्याख्या करती है। संस्मरण में स्पष्ट किया गया है कि पशु योनि पूर्व संचित पापों को भोगने की भोग योनि है, जबकि मानव जन्म कर्म योनि है, जहाँ विवेक और करुणा के माध्यम से आत्म-कल्याण संभव है। प्रकृति के निष्पक्ष न्याय और सर्वव्यापी ईश्वरीय चेतना का स्मरण कराते हुए यह आलेख अहंकार एवं भौतिक तृष्णा के त्याग पर बल देता है। यह संस्मरण आधुनिक समाज में विलुप्त होती मानवीय संवेदनशीलता को पुनः जगाने तथा प्राणीमात्र के प्रति दया व सत्कर्म की भावना को स्थापित करने वाली एक अनमोल आध्यात्मिक-नैतिक मार्गदर्शिका है। जिसका विस्तार से विवरण इस शोध पत्र में किया जाएगा।

बीज शब्द :

कर्म-सिद्धांत, मानवीय संवेदना, भोग योनि एवं कर्म योनि, अध्यात्मिक चेतना, अद्वैत दर्शन, जीव, करुणा, बेजुबान की पीड़ा। संस्मरण को विद्वानों की परिभाषा में इस प्रकार समझा जाता है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार : संस्मरण लेखक अपने संपर्क में आए व्यक्तियों, घटनाओं तथा दृश्यों का अपनी स्मृति के आधार पर जो वर्णन करता है, वही संस्मरण कहलाता है। इसमें लेखक का अपना व्यक्तित्व भी अनजाने ही व्यंजित हो जाता है।¹

बाबू गुलाब राय के अनुसार : संस्मरण में लेखक अपने जीवन में आए किसी व्यक्ति, दृश्य या घटना का अपनी स्मृति के आधार पर इस प्रकार सजीव और कलात्मक वर्णन करता है कि पाठक के सामने उसका चित्र उपस्थित हो जाता है और साथ ही लेखक का अपना व्यक्तित्व भी उसमें प्रतिबिंबित होता है।²

महादेवी वर्मा के अनुसार : संस्मरण अतीत के चित्रों को वर्तमान की संवेदना से सजीव करने की कला है। इसमें जिसके संबंध में लिखा जाता है उसका तो महत्व होता ही है, साथ ही लिखने वाले की अपनी आत्मीयता और दृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।³

मुकेश कुमार जी द्वारा रचित संस्मरण बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति, जो 10 अगस्त 2026 के समाचार पत्र दैनिक भारत देश हमारा में प्रकाशित हुआ। लेकिन मैंने इस संस्मरण को जब पढ़ा तो मैं गदगद हो गया और मेरे मन में भाव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
भाषा एवं साहित्य संकाय
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
गंगटोक (सिक्किम) - 737102
© 8056067674

जगा कि इस संस्मरण पर एक शोध पत्र तैयार किया जाए , तब मैंने लेखक से संपर्क किया तो उन्होंने इस संस्मरण को 5 अगस्त, 2026 को एक यथार्थ घटना पर लिखा था। यह आधुनिक मानव संवेदना और प्राचीन भारतीय दर्शन के बीच एक सुदृढ़ सेतु का निर्माण करता है। यह संस्मरण केवल प्रातःकालीन भ्रमण के दौरान घटी एक साधारण दुर्घटना का विवरण मात्र नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के वास्तविक उद्देश्य, कर्म की अकाट्य गति, और चौरासी लाख योनियों के गहन दार्शनिक ताने-बाने पर किया गया एक सूक्ष्म चिंतन है। लेखक ने जीवन की आपाधापी में विलुप्त होती जा रही मानवीय करुणा को जगाने का एक अत्यंत निष्ठापूर्वक प्रयास किया है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य संस्मरण में अंतर्निहित आध्यात्मिक चेतना, कर्मफल के नियम तथा जीव-सेवा के सार्वभौमिक महत्त्व का विश्लेषण करना है।

संस्मरण की शुरुआत एक अत्यंत हृदयविदारक किंतु वास्तविक दृश्य से होती है। लेखक जब प्रातःकाल स्वास्थ्य लाभ के लिए निकलते हैं, तब उनका सामना प्रकृति और जीवन के एक कठोर यथार्थ से होता है। सड़क पर एक असहाय प्राणी की पीड़ा को चित्रित करते हुए लेखक लिखते हैं, किसी भारी वाहन की बेरहम रफ्तार ने उस बेजुबान कुत्ते के पिछले हिस्से को पूरी तरह कुचल दिया था।⁴

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

यह पंक्ति न केवल हमारी आधुनिक यातायात व्यवस्था और मानवीय लापरवाही पर करारा प्रहार करती है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि कैसे इंसान की क्षणिक तेज रफ्तार किसी बेजुबान प्राणी के पूरे अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर देती है। उस प्राणी की तड़प और उसकी याचना का वर्णन करते हुए लेखक आगे उल्लेख करते हैं, उसकी वह कातर दृष्टि और इंकार में हिलती गर्दन किसी लफ्ज के बिना भी यह साफ कह रही थी कि अब उसकी सहनशक्ति जवाब दे चुकी है और वह इस असहनीय पीड़ा से मुक्ति यानी अपनी मृत्यु की याचना कर रहा है।⁵

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

यहाँ लेखक ने मूक भाषा की उस भयावहता को रेखांकित किया है, जहाँ शब्द समाप्त हो जाते हैं और केवल आँखें तथा शरीर की बेबसी ही संवाद का माध्यम बनती है। यह दृश्य पाठक के हृदय में गहरी वेदना उत्पन्न करता है और उसे आत्म-निरीक्षण के लिए विवश करता है।

इसके पश्चात्, संस्मरण केवल एक दुर्घटना के वर्णन तक सीमित न रहकर आध्यात्मिक चिंतन की ओर मुड़ जाता है। लेखक भारतीय वैदिक और पौराणिक दर्शन के आधार पर इस घटना की व्याख्या करते हैं। भारतीय परंपरा में कर्म-सिद्धांत को जीवन और मृत्यु का मुख्य चालक माना गया है। पशु योनि को शास्त्रों में 'भोग योनि' कहा गया है, जहाँ प्राणी केवल अपने पूर्व संचित पापों या कर्मों का फल भुगतता है। लेखक इस गूढ़ विचार को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, पशु योनि केवल एक 'भोग योनि' है, जहाँ जीव को अपनी सहनशक्ति की अंतिम सीमा तक जाकर अपने पुराने हिसाब-किताब चुकता करने पड़ते हैं।⁶

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

यह विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पाठक को यह समझने में मदद करता है कि सृष्टि का कोई भी घटनाक्रम अकारण नहीं होता। हर दुख और हर सुख के पीछे कर्मों का अदृश्य चक्र कार्यरत रहता है। लेखक की यह सकारात्मक सोच कि इस भीषण पीड़ा के माध्यम से उस प्राणी के पाप नष्ट हो रहे हैं, ईश्वर की परम कृपा और न्याय-व्यवस्था पर अटूट विश्वास को दर्शाती है।

आगे चलकर, यह रचना पशु योनि और मनुष्य योनि के मध्य के अंतर को बहुत ही स्पष्ट और तार्किक ढंग से रेखांकित करती है। चौरासी लाख योनियों के लंबे चक्र के बाद मानव देह का मिलना कोई साधारण बात नहीं है। सनातन दर्शन में मनुष्य जीवन को 'कर्म योनि' माना गया है, अर्थात् केवल मनुष्य ही नवीन कर्मों का सृजन करने और अपने भाग्य का निर्माण करने में समर्थ है। लेखक इस विचार को प्रतिपादित करते हुए संस्मरण में लिखते हैं, अन्य सभी योनियां जहाँ केवल कर्मफल भोगने के लिए बनी हैं, वहीं मनुष्य योनि को कर्म योनि का दर्जा प्राप्त है।⁷

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

यह पंक्ति मानव जीवन की विलक्षणता और उसकी गंभीर जिम्मेदारी का अहसास कराती है। लेखक आगे कहते हैं, केवल मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसके पास विवेक, बुद्धि, और सही-गलत के अंतर को समझने की चेतना होती है।⁸ (बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

किंतु, विडंबना यह है कि मनुष्य इस अनमोल अवसर को पाकर भी सांसारिक मोह-माया, धन-संपत्ति और तृष्णा के जाल में भटक जाता है। वह यह भूल जाता है कि यह जीवन उसे आत्म-कल्याण और मोक्ष की प्राप्ति के लिए

मिला है, न कि केवल क्षणिक सुखों के उपभोग के लिए।

संस्मरण का एक अन्य अत्यंत प्रभावशाली पहलू अहंकार और दूसरों के अधिकारों के हनन पर किया गया प्रहार है। आधुनिक समाज में मनुष्य अपने पद, प्रतिष्ठा और भौतिक साधनों के घमंड में इतना अंधा हो जाता है कि वह कमजोरों और बेजुबान प्राणियों पर अत्याचार करने से भी नहीं हिचकता। इस मानवीय गिरावट पर चिंता व्यक्त करते हुए लेखक चेतावनी देते हैं, प्रकृति का बही-खाता बहुत सटीक होता है।⁹

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

कोई भी व्यक्ति कानून की नजर से बच सकता है या दुनिया से अपने कर्मों को छिपा सकता है, लेकिन प्रकृति के निष्पक्ष न्याय से बचना असंभव है। किसी का हक छीनकर या किसी जीव को पीड़ा देकर अर्जित किया गया सुख अत्यंत अल्पकालिक होता है और उसका दुष्परिणाम अंततः भुगतना ही पड़ता है। लेखक अहंकार की नश्वरता को उजागर करते हुए कहते हैं, जिस प्रकार वह कुत्ता एक झटके में लाचार होकर सड़क पर आ गया, उसी प्रकार इंसान का अहंकार भी नियति के एक छोटे से थपेड़े से धूल में मिल सकता है।¹⁰ (बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति) यह कथन मानव मन के झूठे अभिमान पर एक तीखा और सत्य आघात है।

आध्यात्मिक चेतना के शिखर पर पहुँचकर लेखक अद्वैत दर्शन की उस भावना को प्रस्तुत करते हैं, जहाँ हर जीव में एक ही ईश्वर का वास माना गया है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि सभी प्राणियों में वही एक चेतना

प्रवाहित हो रही है, तब उसके मन से हिंसा और नफ़रत का भाव पूरी तरह मिट जाता है। इस सार्वभौमिक सत्य को प्रकट करते हुए संस्मरण में लिखा गया है, चाहे वह सड़क पर तड़पता हुआ एक छोटा सा कुत्ता हो, कोई वृक्ष हो, या कोई अन्य मनुष्य—सबके भीतर वही एक चेतना, वही एक परमात्मा विराजमान है।¹¹

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

अतः किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाना वास्तव में परमात्मा का अनादर करना है। सर्वव्यापी ईश्वर हमारे हर कर्म और नीयत का साक्षी है।

अंततः, मुकेश कुमार जी का यह संस्मरण मानव जाति को करुणा, सत्कर्म और ईश्वरीय स्मरण का अमूल्य संदेश देता है। जीवन का अंतिम सत्य भौतिक संपत्तियों के संचय में नहीं, बल्कि मन की शुद्धता और परोपकार में निहित है। संस्मरण के अंतिम निष्कर्ष को समेटते हुए लेखक बहुत ही सुंदर ढंग से लिखते हैं, जीवन का असली मूल्य इसमें नहीं है कि हमने कितना जोड़ा या कितना भोगा, बल्कि इसमें है कि हमने अपने मन को कितना शुद्ध किया और परमात्मा के बनाए इस संसार में कितनी करुणा बांटी।¹²

(बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति)

यह वाक्य पूरे संस्मरण का सार प्रस्तुत करता है। यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति' केवल एक संस्मरण नहीं, बल्कि आधुनिक समाज के लिए एक नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शिका है, जो हमें संवेदनशीलता, सत्कर्म और प्राणीमात्र के प्रति दया भाव रखने की प्रेरणा देती है। □

संदर्भ :

1. डॉ. रामकिशोर शर्मा, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 290
2. वही, पृ. 291
3. वही, पृ. 291
4. मुकेश कुमार कृत, बेजुबान का दर्द और कर्मों की गति संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
5. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
6. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
7. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
8. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
9. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
10. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
11. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026
12. वही, संस्मरण, दैनिक भारत देश हमारा, करनाल (हरियाणा) समाचार पत्र में प्रकाशित, 10 अगस्त, 2026

शंकरदेव विरचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक में चित्रित असमीया लोक-जीवन और परंपराएँ



डॉ. जयश्री काकति

सार-संक्षेप :

श्रीमंत शंकरदेव (सन 1449-1568) असमीया भाषा, साहित्य और समाज-संस्कृति के सच्चे निर्माता और प्राणपुरुष हैं। शंकरदेव एक साथ एक धर्म प्रवर्तक, समाज सुधारक, कवि, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतज्ञ तथा परम भक्त थे। समाज में हो रही बुराइयों का विरोध कर एक शांतिपूर्ण समाज का जन्म देना ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने 'नामघर' और 'सत्र' जैसी लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की, जो आज भी असमीया समाज संस्कृति की प्राण हैं। शंकरदेव का साहित्य केवल आध्यात्मिक वैराग्य का संदेश नहीं देता, बल्कि वह लोक-कल्याण और व्यावहारिक जीवन दर्शन से ओत-प्रोत है।

शंकरदेव ने जन-सामान्य तक अपनी बात पहुँचाने के लिए दृश्य काव्य (रंगमंच) को सबसे सशक्त माध्यम बनाया और 'अंकिया नाट' (भाओना) नामक एक सर्वथा नवीन नाट्य विधा को जन्म दिया। उनके द्वारा रचित छह प्रमुख नाटकों में 'रुक्मिणी हरण' नाटक एक अत्यंत विशिष्ट और कालजयी कृति है। भागवत पुराण और हरिवंश पुराण की पौराणिक कथा पर आधारित होने के बावजूद यह नाटक केवल ईश्वरीय लीला का गान नहीं है, बल्कि यह असमीया लोक-जीवन, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं का जीवंत दस्तावेज है। यद्यपि शंकरदेव ने कई नाटक लिखे हैं, पर यह शोध पत्र शंकरदेव द्वारा रचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक तक ही सीमित है। 'रुक्मिणीहरण' नाटक में पूरी तरह असमीया खान-पान, व्यवहार, भाषा-धर्म-वर्ण, समाज-संस्कृति, लोकविश्वास, परंपरा आदि का चित्रण हुआ है। फिर भी उन्होंने भारतीयपन को भुला नहीं दिया।

उनके द्वारा रचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक में किस तरह असमीया समाज-संस्कृति का प्रतिफलन हुआ है, उसी को इस शोध पत्र में दिखाया जाएगा।

बीज शब्द :

शंकरदेव, 'रुक्मिणी हरण' नाट, असमीया समाज और असमीया संस्कृति।

1. प्रस्तावना :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव को असमीया नाट्य जगत और रंगमंच का जनक माना जाता है। तत्कालीन भारत में विभिन्न प्रकार के लोक नाट्य प्रचलित थे। उत्तर भारत में नौटंकी, रामलीला, गीत-गोविंद, लीलागान, मिथिला में यात्रा, कीर्तनियाँ, ब्रज में धमार, कर्नाटक में यक्षगान की प्रधानता रही हैं। असम में

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
बी.बरुवा कॉलेज (स्वायत्त)
गुवाहाटी, असम-781007
☎ 8638625877
✉ jayashreekakati02700@gmail.com

पुतला नाच (असम का एक पारंपरिक कठपुतली नृत्य), ओजापालि नृत्य (एक कथात्मक गीत-नृत्य परंपरा है) आदि काफी प्रसिद्ध रहे हैं। शंकरदेव ने निश्चित रूप से अपने यात्राकाल के दौरान इन नाटकों को देखा होगा, भोगा होगा और इनकी प्रेरणा से पुतला नाच और ओजापालि को ध्यान में रखते हुए अंकिया नाटकों की रचना की है। पुतला नाच का प्रभाव ओजापालि में और ओजापालि का प्रभाव अंकिया नाट (नाटक) में देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक और साहित्यिक धरातल पर, 'रुक्मिणी हरण' नाटक असमीया रंगमंच की रीढ़ है। इसमें प्रयुक्त 'ब्रजबुलि' भाषा की काव्यात्मकता, 'बरगीत' (शंकरदेव तथा माधवदेव द्वारा रचित शास्त्रीय गीत) का माधुर्य और 'सत्रिया शैली' का नृत्य-अभिनय मिलकर एक ऐसा अद्भुत दृश्य-काव्य रचते हैं, जिसने सदियों से असम की अशिक्षित और शोषित जनता को न केवल धर्म से जोड़ा, बल्कि उनमें एक उच्च सांस्कृतिक चेतना का संचार भी किया। 'रुक्मिणी हरण' नाटक केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि वह असमीया समाज-संस्कृति को परिष्कृत और संस्कारित करने वाला एक कालजयी सामाजिक-सांस्कृतिक दस्तावेज है।

2. अध्ययन का महत्व तथा उद्देश्य :

असमीया भाषा-साहित्य, धर्म-संस्कृति के जनक, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के भक्त शिरोमणि श्रीमंत शंकरदेव का 'एक शरण नाम धर्म' प्रचार करने का एक उत्तम माध्यम नाटक रहा है। अपने नव वैष्णव धर्म के प्रसार हेतु उन्होंने अन्य साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ 'रुक्मिणी हरण', 'पत्नी प्रसाद', 'कालिया दमन', 'केलि गोपाल', 'पारिजातहरण', 'रामविजय' नामक छह नाटकों की रचना की है, जिन्हें 'अंकीया नाट' या 'भाओना' के नाम से जाना जाता है। 'रुक्मिणी हरण' उनके द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ अंकिया नाटक है।

उनके द्वारा रचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक में किस तरह असमीया समाज-संस्कृति का प्रतिफलन हुआ है उसी को दिखाना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

3. विषय का सीमांकन :

श्रीमंत शंकरदेव ब्रजबुलि भाषा के निर्माता, असमीया

नाटक, बरगीत और अभिनय कला के प्रवर्तक थे। साहित्य में विविध रसों का प्रयोग, वर्णन कुशलता, स्पष्ट काव्यिक सौंदर्य के मिलन करने के कारण और नीति-आदर्श के प्रति जनता का ध्यान आकर्षण करने वाले शंकरदेव असमीया जाति के पथ प्रदर्शक हैं। उनके द्वारा रचित साहित्य को भक्ति तत्व विषयक ग्रंथ, अनुवादमूलक ग्रंथ, अंकीया नाट, गीत और नाम-कीर्तन आदि भागों में विभक्त किया जा सकता है। नाम कीर्तन के अंतर्गत कीर्तन घोषा आता है। आदरशात्मक होते हुए भी उनके साहित्य में मानवताबोध पग-पग पर मिलते हैं।

यद्यपि शंकरदेव ने कई नाटक लिखे हैं, पर यह शोध पत्र शंकरदेव द्वारा रचित 'रुक्मिणी हरण' नाटक तक ही सीमित है।

4. अध्ययन पद्धति एवं उपाय :

अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। यह शोध पत्र MLA (MODERN LANGUAGE ASSOCIATION) शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन में शंकरदेव से संबंधित ग्रंथ, इतिहास ग्रंथ, कोश, इंटरनेट आदि का सहारा लिया गया है। असमीया भाषा में 'स' उच्चारण वाले दो वर्ण हैं- 'च' और 'छ'। असमीया में 'स' के लिए कोमल ह का उच्चारण होता है। असमीया के 'स', 'च', 'छ' इन तीनों वर्णों के लिए हिंदी लिप्यंतरण में क्रमशः 'स', 'च', 'छ' रखे गए हैं। हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमीया भाषा में दो वर्ण चलते हैं- एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमीया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है, पर असमीया के 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य' रखा गया है।

5. अध्ययन के विषय विश्लेषण :

'रुक्मिणीहरण' नाटक में पूरी तरह असमीया खान-पान, व्यवहार, भाषा-धर्म-वर्ण, समाज-संस्कृति, लोक विश्वास, परंपरा आदि का चित्रण हुआ है। फिर भी उन्होंने भारतीयपन को भुला नहीं दिया। उनके द्वारा किए गए दो बार के तीर्थाटनों ने असमीया संस्कृति को अधिक व्यापकता प्रदान किया और वृहत भारतीय संस्कृति का परिपूरक बनाया।

निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत हम 'रुक्मिणी हरण'

नाटक में असमीया समाज-संस्कृति का प्रतिफलन देख सकते हैं।

5.1. विवाह संस्कार :

नाटक में वर्णित कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग में यद्यपि भारतीयपन विद्यमान है, पर वहाँ पर मूलतः असमीया विवाह संस्कार प्रतिफलित हुआ है।

विवाह तय करने के लिए बुजुर्गों, रिश्तेदारों को बुलाया जाता है। घर के लोगों से भी सलाह-मशविरा लिया जाता है। सबके आपसी मत से विवाह तय किया जाता है। कन्यादान करना बाप का फर्ज होता है। एक अच्छी जगह पर (अच्छे वर के साथ) हर बाप अपनी बेटी का हाथ थमाना चाहता है।

आहे पात्र मंत्री ज्ञाति सब, हामार दूहिता रुक्मिनि बिबाहक योग्य भेल : कन्याक सदृश बर कोण थाके थिक। सबहि बिमरिस कये बोल। हामु जानु एक दैवकीनंदन बने : कन्याक समान बर नाहि : यव सबहि भल्ल देखह : तबे स्वहस्ते कृष्णक कन्या दान करु।।

(भावार्थ : हे पात्र मंत्री, ज्ञातियो! हमारी दुहिता रुक्मिणी अब विवाह के योग्य हो गई है। कन्या के लिए योग्य वर कहाँ मिलेगा, सब लोग विमर्श करके बताइए। हम जानते हैं कि एक देवकीनंदन के बिना कन्या के लिए और कोई योग्य वर नहीं है। यदि सबका यही विचार है तो मैं अपने हाथों से कृष्ण को कन्यादान करूंगा।)

(वैश्य 2022 : 35)

विवाह के पूर्व का दिन 'अधिवास' होता है। अधिवास के दिन पुण्य कर्म किया जाता है। व्रतादि रखे जाते हैं, पूजा-पाठ, होम-यज्ञ आदि भी किए जाते हैं। अगर भगवान के नाम पर कोई अर्घ्य चढ़ाना या पूजा-पाठ, कीर्तन, श्राद्ध आदि करना बाकी रह जाता है तो विवाह के पूर्व अर्थात् अधिवास के दिन उसे पूरा किया जाता है। इससे विवाह में कोई भी बिघ्नता नहीं आती-ऐसा विश्वास किया जाता है। 'रुक्मिणी हरण' नाटक में अधिवास के दिन रुक्मिणी सहेली के साथ भवानी के मंदिर जाती है। अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए माता से आशीर्वाद माँगती है।

असमीया समाज में विवाह के दौरान मेहमानों को खिलाया-पिलाया जाता है। विवाह के पश्चात 'आयति'

(नाम-कीर्तन करने वाली महिलाएँ) के द्वारा नाम-कीर्तन किया जाता है और वर-बधू को आशीर्वाद दिया जाता है। 'रुक्मिणी हरण' नाटक में भी आयति लोगों का इसी उद्देश्य से आगमन हम देखते हैं।

दूल्हा के घर में एक आनंदोत्सव का माहौल बन जाता है। 'रुक्मिणी हरण' नाटक में भी जब कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारकापुर में प्रवेश करते हैं, तब वही आनंदोत्सव का माहौल देखने को मिलता है-

देवि देवकी

आसिए कौतुकि

धरल बर-बधु हातया।

जय जय रव

मिलल उत्सव

कहत संकर बातया

(भावार्थ : उत्सुकता से आकर देवकी ने बहू का हाथ पकड़ लिया। जय-जय का घोष होने लगा। वहाँ उत्सव का परिवेश छा गया।)

(वैश्य 2022 : 83)

विवाह के पश्चात वर-वधू को रहने के लिए साधारणतः असमीया समाज में एक नए घर की व्यवस्था की जाती है। परिस्थिति अनुकूल कभी-कभी पुराने घर को भी रंग आदि देकर मरम्मत कर नया बनाया जाता है। 'रुक्मिणी हरण' नाटक में विवाहोपरांत कृष्ण-रुक्मिणी का रत्न-जड़ित महल में सुखपूर्वक रहने का वर्णन मिलता है

5.2. आतिथ्य संस्कार :

असमीया लोग स्वभावतः सहज-सरल, मृदुभाषी, अतिथि-परायण होते हैं। वे मेहमानों का आदर-सम्मान या अतिथि सेवा करना पसंद करते हैं। ब्राह्मण-पुरोहित आदि के प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। मेहमान को साक्षात् दामोदर समझते हैं। आगंतुक को आने का कारण पूछना एक साधारण धर्म है। जो सवाल कृष्ण ने द्वारका आने पर सुरभि से पूछा था और हरिदास का कुंडिल आने पर रुक्मिणी ने पूछा था-

अये भिक्षुक : तुहुके : कथाहन्ते एथावलि थिक।।

(भावार्थ- हे भिक्षुक, तुम कौन हो, कहाँ से आए हो?)

(वैश्य 2022 : 31)

वेदनिधि जब रुक्मिणी का संदेश लेकर द्वारका आता

है, तब कृष्ण द्वारा वेदनिधि का जिस प्रकार से सेवा-सत्कार करते हुए दिखाया जाता है, उस रूप में असमीया समाज का ही अतिथि-सत्कार का प्रतिफलन देखने को मिलता है। आलिङ्गन होकर अभिवादन करने के पश्चात कुशल समाचार लेते हुए वेदनिधि को महल के अंदर ले जाना, अपने हाथों से पैर धुलाना, सुवर्ण विस्तर पर सुलाना, पाव मर्दन कर थकान को दूर कराना आदि कृष्ण द्वारा की गई सेवाओं से असमीया प्राचीन परंपरा की ओर ध्यानाकर्षित होता है। प्राचीन काल में ब्राह्मण, पुरोहित, गुरु आदि की इसी तरह से सेवा की गई थी।

5.3. प्रसाद चढ़ाना :

नामघर, मंदिर अथवा हर एक शुभ कार्य में भगवान के नाम पर प्रसाद (नैवेद्य) चढ़ाया जाता है। पूजा-पाठ, कीर्तन आदि करने के पश्चात नैवेद्य ग्रहण किया जाता है। चना (असमीया में बुट) और मूंग को भिगोकर तथा केला, पका हुआ पपिता, गन्ना, नारियल आदि फल साथ में दिए जाते हैं, जिसे असमीया में 'उपकरण' कहा जाता है। इस प्रकार का प्रसाद असम में ही देखा जाता है। प्रस्तुत नाटक में रुक्मिणी द्वारा विविध प्रकार के प्रसाद चढ़ाने का जिक्र किया गया है।

5.4. तांबूल-पान :

असमीया संस्कृति में तांबूल-पान का बहुत महत्व है। असमीया संस्कृति में मेहमानों का स्वागत इसी से किया जाता है। सम्मान प्रदर्शन, श्रद्धा निवेदन इसी से ही किया जाता है। खाने के पश्चात मुँह शुद्धि के रूप में इसी का व्यवहार किया जाता है। किसी भी असमीया घर में और कुछ मिले न मिले, तांबूल-पान अवश्य मिलता है। कोई भी शुभ-काम तांबूल-पान के बिना संभव नहीं है। विवाह के भी कोई भी नियम तांबूल-पान के बिना होते ही नहीं हैं। प्रस्तुत नाटक के भीतर तीन बार तांबूल-पान से आप्पायित करने की बात आती है-

(क) भवानी मंदिर से लौटने के पश्चात राजनंदिनी सखी सहित तांबूल खाते हुए राजसभा पहुँचती है।

(ख) रुक्मिणी जब राजसभा में शिशुपालादि राजा को देखकर भयभीत रह जाती है, तब कृष्ण उसे प्रबोध देते हुए सस्नेह तांबूल देते हैं।

(ग) विवाहोपरांत विवाह में उपस्थित ब्रह्म, बासुकी,

राजा-महाराजा आदि को आदरपूर्वक कृष्ण ने चंदन-पुष्प वस्त्र अलंकार आदि प्रदान किया और तांबूल से संतुष्ट किया।

ऐचन परकारे : कृष्णक बिबह भेल। तदन्तर : ब्रह्मारुद्र : इन्द्र आदि जत देवता : पातालक बासुकि प्रभृति जत नाग : पृथिविक जत राजा : सबको सादरे : श्रीकृष्ण गन्ध चंदने : पुष्प तांबूल : वस्त्र अलंकारे : परम संतुष्ट करावल ।

(भावार्थ : इस तरह से श्रीकृष्ण का विवाह हो गया। उसके बाद ब्रह्म, रुद्र, इंद्र आदि जितने भी देवता हैं, पाताल के बासुकी आदि जितने नाग हैं, पृथ्वी के जितने भी राजा हैं, कृष्ण ने सबको सादर से सुगंधित चंदन, फूल, तांबूल, वस्त्र, अलंकार आदि से परम संतुष्ट किया।)

(वैश्य 2022 : 87)

5.5. लोक विश्वास :

असमीया समाज में लोक विश्वास है कि बाईं भुजा या आँख काँपने से कोई अच्छी खबर मिलती है। वेदनिधि के लौटने में काफी देर होने के कारण रुक्मिणी बेहोश हो जाती है। सखियाँ उसे जगाने की कोशिश करती हैं। वह थोड़ा संभल जाती है। इतने में अचानक रुक्मिणी की बाईं जाँघ और आँख फड़कने लगती हैं। यह महसूस कर रुक्मिणी खुश हो जाती है, क्योंकि उसे विश्वास हो जाता है कि अब उसे कोई न कोई खुश खबरी जरूर मिलेगी-

आहे सखि सब : हमार बाम अंग फान्दे : कुन सुभ बात कहे : इहा नाहि जानु ॥

(भावार्थ : हे सखिया! मेरे बाएँ अंग फड़कने लगे हैं। क्या शुभ बात होगी, यह नहीं जानती।

(वैश्य 2022 : 59)

5.6. प्राथमिक चिकित्सा ज्ञान :

परंपरा से ज्ञात होता है कि असमीया लोगों को साधारण चिकित्सा का ज्ञान अवश्य था। झाड़ू-फूँक, जड़ी-बूटी या सहज उपलब्ध साधनों से तुरंत घर में ही प्राथमिक चिकित्सा की जाती थी। आज भी बहुत कुछ प्राथमिक चिकित्सा घर में ही की जाती है। किसी व्यक्ति के मूर्छित होने पर पहले की तरह आज भी शीतल पानी सिर पर डालते हैं। 'रुक्मिणी हरण' नाटक में भी रुक्मिणी

की मूर्च्छितावस्था में दो बार सिर पर शीतल पानी डाला जाता है।

(क) रुक्मिणी जब सुनती है कि शिशुपाल आ गया है, तब वह मूर्च्छित हो जाती है और सखी लीलावती तुरंत शीतल जल सिर पर डालती है।

(ख) वेदनिधि जब द्वारका से वापस आने में देर करता है, तब भी रुक्मिणी चिंताग्रस्त होकर मूर्च्छित हो जाती है और उसकी सखियाँ शीतल जल से उपचार करती हैं।

(ग) तीव्र गति से रथ चलने के कारण वेदनिधि मूर्च्छित-सा हो जाता है, तब तुरंत ही कृष्ण शीतल जल सिर पर डालकर उसे पूर्वावस्था में ले आते हैं।

5.7. मेहमान का स्वागत एवं विदाई :

भारतीय परंपरा में अतिथियों को भगवान माना जाता है। उसी तरह असमीया समाज में भी अतिथि को साक्षात दामोदर का रूप मानकर आदर-सत्कार किया जाता है। पूरे नाटक में इस परंपरा का निर्वाह बखूबी से हुआ है। विशेषतः नाटक के नायक कृष्ण और नायिका रुक्मिणी के द्वारा इसका सुंदर पालन हुआ है।

5.8. दान-दक्षिणा :

व्रत-त्योहार, शुभ काम आदि के समय दान-दक्षिणा, भेंट, उपहार आदि देना हमारे समाज की पुरानी प्रथा है। राजा-महाराजाओं के दिन से ही यह प्रथा प्रचलित है। यहाँ तक कि दान-दक्षिणा से निर्मित बहुत से मठ-मंदिर, शिक्षानुष्ठान असम में पाए जाते हैं। विवाह के अवसर पर दूल्हा जब बरात लेकर जाता है, रास्ते में स्थित धार्मिक एवं शैक्षिक, गैर-शैक्षिक अनुष्ठानों में वह दान देता है और उसी तरीके से आशीर्वाद लेता है। यह परंपरा असमीया समाज में आज भी विद्यमान है।

प्रस्तुत नाटक में भी इस तरह के दान-भेंट आदि का उल्लेख है। रुक्मिणी का समाचार सुनकर कृष्ण खुशी के मारे उद्धव के द्वारा सुरभि को अनेक भेंट देते हैं।

कृष्ण का समाचार सुनाने के कारण रुक्मिणी अपनी सखी मदनमंजरी के द्वारा बहुत सारा उपहार देती है।

कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह में उपस्थित ब्रह्मा, इंद्र आदि सभी देवों को वस्त्र, अलंकार आदि दान देने का उल्लेख मिलता है।

5.9. परिवार का चित्रण :

‘रुक्मिणी हरण’ नाटक में असमीया समाज के परिवार का मनोरम चित्रण उपलब्ध है। पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, पिता-पुत्र आदि का यथार्थ चित्रण यहाँ देखने को मिलता है। कृष्ण-रुक्मिणी के माध्यम से आदर्श पति-पत्नी का रूप सामने आता है। पत्नी की हर तरह की चिंताओं को दूर कर सुरक्षित रखना पति-धर्म होता है। कृष्ण पति-धर्म को निभाते हुए हर स्थिति में पत्नी रुक्मिणी को सुरक्षा प्रदान करते हैं। दूसरी ओर असमीया नारी की तरह रुक्मिणी भी पूरी तरह अपने पति पर समर्पित है, पति कृष्ण ही उसके लिए परमेश्वर हैं।

इस नाटक में दो माताओं का चित्रण हुआ है- रुक्मिणी की माँ शशिप्रभा और कृष्ण की माँ देवकी। अन्य माताओं की तरह शशिप्रभा भी अपनी लाड़ली बेटी को खुश देखना चाहती है। देवकी के मन में कृष्ण अभी भी छोटा है। हर माँ को अपना बेटा छोटा, भोला-भाला और नादान नजर आता है। इसी कारण देवकी बलभद्र को आदेश देती है कि वह जाकर कृष्ण की मदद करें। भीष्मक एक जिम्मेदार पिता है, जो अपने दायित्व को निभाना चाहता है। सठिक समय पर सही वर के साथ विवाह संपन्न कर निश्चित होना चाहता है।

रुक्मवीर और रुक्मिणी के माध्यम से भाई-बहन के रिश्ते को ही दिखाने का प्रयत्न किया गया है। भाई कितना ही बुरा क्यों न हो, आखिर बहन के लिए भाई भाई ही होता है। इसी कारण रुक्मिणी कृष्ण से अपने भाई का वध न करने का अनुरोध करते हुए कहती है कि भाई के वध से पूर्व कृष्ण को रुक्मिणी की लाश से गुजरना होगा-

हे स्वामी : तोहाक चरने लागु : भैयाइक प्रान दान देहु।

(वैश्य 2022:79/80)

भाई-भाई में जो पारिवारिक बंधन या प्यार होता है, उसको कृष्ण और बलभद्र के माध्यम से चित्रित किया गया है। बड़े भाई कृष्ण के अपार शक्ति से परिचित होने के बावजूद उन्हें मदद करने के लिए सैन्य-सामंत सहित कुंडिलनगर पहुँचते हैं।

5.10. असमीया समाज में नारी का स्थान :

असमीया समाज में नारी को बहुत ही ऊँचा स्थान दिया जाता है। लड़की को 'माँ' कहकर प्यार से बुलाते हैं। हर हालत में नारी-मर्यादा की रक्षा के लिए लोग मर मिटने को तैयार रहते हैं। नाटक में वेदनिधि द्वारा रुक्मिणी के प्रति दो बार 'माता' शब्द का और एक बार किया गया 'माइ' संबोधन विशेष मायने रखते हैं। नाटक का सूत्रधार भी रुक्मिणी के लिए 'देवी' शब्द का प्रयोग करता है। आरंभ से अंत तक नारी के प्रति सम्मान प्रदर्शन किया गया है।

हे माता : हमार आसिर्बादे श्रीकृष्ण सहित : तोहाक सुबसति होक : तब हमार सकल प्रसाद भेल ॥

(भावार्थ-हे माता, मेरे आशीर्वाद से श्रीकृष्ण के साथ तुम अच्छी तरह से बसो। वही मेरा प्रसाद है।)

(वैश्य 2022:61)

5.11. मर्यादा पालन :

असमीया लोग स्वभावतः सुशील, नम्र, विनयी तथा मर्यादावादी होते हैं। उसी के अनुरूप नाटक में कहीं भी चाहे कृष्ण-रुक्मिणी-सखी संवाद में हो या श्रृंगार वर्णन

में या पत्राचार में मर्यादा का उल्लंघन नहीं हुआ है। हर दिशा में मर्यादा की रक्षा की चेष्टा की गई है।

6. उपसंहार :

'रुक्मिणी हरण' नाटक एक अनुपम रचना है। एक पौराणिक रोचक आख्यान के माध्यम से लोगों को भक्ति रस पान कराने में श्रीमंत शंकरदेव को सफलता मिली है। उस सफलता में ब्रजबुलि भाषा की देन भी कम नहीं है। उन्होंने पौराणिक आख्यान को अपनी स्वानुभूति और कल्पना के माध्यम से अधिक उपभोग्य बनाया है। नाटक के रसास्वादन करते समय ऐसा लगता है कि यह हमारे समाज में संघटित कोई घटना है। कृष्ण और रुक्मिणी आध्यात्मिक पात्र होते हुए भी नाटक में हमारे बीच के ही कोई पहचान के व्यक्ति जैसा महसूस होते हैं। इस नाटक में असमीया समाज का, संस्कृति का, धर्म का, परिवार का, रुचि-अभिरुचि, विवाह के नियम आदि की इतनी सुंदर तस्वीर उपलब्ध होती है कि दर्शक तथा पाठक कहानी में डूबते ही चले जाते हैं। इस प्रकार हमें 'रुक्मिणी हरण' नाटक में असमीया समाज-संस्कृति की हबहू प्रतिच्छवि देखने को मिलती है। □

सहायक ग्रंथ सूची :

आधार ग्रंथ :

1. वैश्य, रीतामणि, सम्पा, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव कृत रुक्मिणी-हरण नाट, प्रथम संस्करण : गुवाहाटी : वाणी प्रकाशन, 2022

सहायक ग्रंथ :

1. गोस्वामी, दिनेश चंद्र, संपा, शराईघाट अभिधान, तीसरा संस्करण, गुवाहाटी : शराईघाट प्रकाशन, 2012
2. महंत, चित्र, असमिया साहित्य का इतिहास. प्रथम गुवाहाटी : असम हिंदी प्रकाशन, 2009
3. रायचौधुरी, भूपेंद्र (संपा), असमिया साहित्य निकष, प्रथम, गुवाहाटी विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2006
4. शर्मा, नवीन चंद्र, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव, प्रथम गुवाहाटी : बनलता प्रकाशन, 2014
5. श्रीवास्तव, मुकुंडीलाल, कालिका प्रसाद और राजवल्लव साहाय, संपा, वृहत हिंदी कोश, परिवर्धित संस्करण, बनारसी : ज्ञानमंडल प्रकाशन, 2011
6. शर्मा, नवीन चंद्र, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव, प्रथम गुवाहाटी : बनलता प्रकाशन, 2014

‘प्रेमचंद घर में’ : स्मृति और संवेदना के आलोक में प्रेमचंद का पुनर्सृजन



डॉ चुकी भूटिया

भूमिका :

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का व्यक्तित्व जितना उनके साहित्य के माध्यम से प्रतिष्ठित हुआ है, उतना ही उनके निजी जीवन को समझने के लिए उनके समकालीन संस्मरणों और जीवनीपरक कृतियों का अध्ययन भी आवश्यक है। किसी साहित्यकार की रचनाएँ उसके वैचारिक और सृजनात्मक व्यक्तित्व का परिचय देती हैं, किंतु उसके जीवन-संघर्ष, पारिवारिक संबंधों, व्यवहार, मानवीय संवेदनाओं तथा जीवन-दृष्टि को निकटता से समझने का अवसर जीवनी-साहित्य प्रदान करता है। इस दृष्टि से शिवरानी देवी द्वारा रचित ‘प्रेमचंद घर में’ हिंदी की अत्यंत महत्वपूर्ण जीवनीपरक कृति है। एक पत्नी और सहयात्री के रूप में शिवरानी देवी ने प्रेमचंद के व्यक्तित्व के उन आत्मीय पक्षों को उद्घाटित किया है, जो उनके साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देते। यह कृति प्रेमचंद को केवल एक युगप्रवर्तक साहित्यकार के रूप में नहीं, बल्कि एक संवेदनशील पति, उत्तरदायी पिता, प्रगतिशील चिंतक, स्वाभिमानी मनुष्य और मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत आलेख में ‘प्रेमचंद घर में’ के आधार पर प्रेमचंद के व्यक्तित्व, उनके दांपत्य जीवन, सामाजिक दृष्टि, स्त्री-विमर्श, मानवीय सरोकारों तथा साहित्यिक प्रतिबद्धता का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि उनके जीवन और साहित्य के बीच गहरा सामंजस्य किस प्रकार विद्यमान है।

बीज शब्द : पारिवारिक समरसता, प्रतिबद्धता, स्वाभिमान, स्नेहशील मन, संवेदनशील व्यक्तित्व, मानवीय प्रेम, साहित्यिक उर्जा आदि हैं।

मूल आलेख :

प्रेमचंद को हम एक ऐसे कथाकार के रूप में जानते हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को यथार्थवादी दृष्टि, सामाजिक प्रतिबद्धता और मानवीय संवेदना से समृद्ध किया है। उनके साहित्य के अध्ययन से उनके वैचारिक व्यक्तित्व, उनका आदर्शवाद और यथार्थवाद का परिचय प्राप्त होता है, किंतु किसी लेखक के अंतरंग व्यक्तित्व और पारिवारिक जीवन को समझने के लिए उसकी जीवनी अथवा आत्मकथात्मक कृतियाँ बहुत अधिक विश्वसनीय माध्यम सिद्ध होती हैं। शिवरानी देवी द्वारा लिखित ‘प्रेमचंद घर में’ अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। यह केवल प्रेमचंद की जीवनी नहीं, बल्कि उनके घरेलू जीवन, उनका पारिवारिक संबंधों, जीवन-दृष्टि, मानवीय मूल्यों तथा लेखक और मनुष्य के रूप में उनके

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
गंगटोक (सिक्किम)-737102
☎ 9609875813
✉ cbhutia01@cus.ac.in

व्यक्तित्व का आत्मीय दस्तावेज है। शिवरानी देवी स्वयं स्वीकार करती हैं कि उन्होंने इस पुस्तक में किसी प्रकार की कल्पना या अतिशयोक्ति का सहारा नहीं लिया, बल्कि जो कुछ देखा और अनुभव किया, जो प्रेमचंद के साथ जिया-उसे यथावत प्रस्तुत किया है।

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष प्रेमचंद और शिवरानी देवी के दांपत्य संबंधों का आत्मीय चित्रण है। दोनों के संबंध केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं हैं, वरन वे जीवन-संघर्ष के सहयात्री हैं। सुख-दुःख, अभाव और संघर्ष के प्रत्येक क्षण में दोनों जिस तरह एक-दूसरे का साथ निभाते हैं यह आज के प्रसंग में बहुत अविश्वसनीय प्रतीत होता है। प्रेमचंद का पारिवारिक जीवन उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के समान ही सरल, विनम्र और अनुशासित था। वे घरेलू कार्यों को केवल स्त्रियों का दायित्व नहीं मानते थे। जब शिवरानी देवी अस्वस्थ होती थीं, तब वे बिना किसी संकोच के घर के सभी कार्य स्वयं संभाल लेते थे। अपने कमरे की सफाई करना, जूते साफ करना अथवा अन्य व्यक्तिगत कार्य तो वे स्वयं करना पसंद करते थे। ऐसे प्रसंग में वे कहते थे- “आदमी चाहे गरीब हो या अमीर, उसे अपनी आदतों को खराब नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस आदमी की निठल्ले बैठने की आदत प गयी, तो समझ लो कि वह आदमी बेकार है।”¹ बच्चों के पालन-पोषण में वे सक्रिय रहते थे। उनका विश्वास था कि बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना अनिवार्य जिम्मेदारी है, इसलिए वे नौकर रखने से बचते थे। यह उनके जीवन में समानता और श्रम की प्रतिष्ठा में आस्था है। शिवरानी देवी के जीवन में प्रेमचंद का स्थान जितना खास था, उतना ही प्रेमचंद के जीवन में शिवरानी देवी का रहा है। प्रेमचंद के जीवन में शिवरानी देवी का क्या महत्व था इस उद्घरण से समझ सकते हैं- “मेरी बातों को वे बहुत महत्व देते थे। अपने जीवन में कोई भी काम उन्होंने मेरी सलाह के बिना नहीं किया।”² या कई बार शिवरानी देवी के किसी आग्रह पर प्रेमचंद कहते, “सरकारी हुक्म तो टाला भी जा सकता है, पर तुम्हारा तो टाला भी नहीं जा सकता।”³ प्रेमचंद शिवरानी की सलाह लेते थे और उनकी कार्यकुशलता पर उनकी पूर्ण आस्था थी। वे अनेक प्रसंगों में स्वीकार करते थे कि

शिवरानी किसी भी कठिन परिस्थिति का समाधान खोज लेती हैं, जबकि वे स्वयं ऐसा नहीं कर पाते थे। वे उनकी कार्यक्षमता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यदि वे ऐसी न होतीं तो उनका जीवन अत्यंत कठिन हो जाता। यह स्वीकारोक्ति उस समय के सामाजिक परिवेश में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जब स्त्री की क्षमताओं और निर्णय-शक्ति के प्रति लोगों में संशय था। प्रेमचंद और शिवरानी देवी के बीच होने वाली नोक-झोंक भी उनके संबंधों की मधुरता का प्रमाण है। इन संवादों में अहंकार का स्थान दिखाई नहीं देता, जिस निश्चल भाव से वे अपने घरेलू एवं लेखन संबंधी मामलों में चर्चा करते हैं, वहाँ केवल अपनापन, विश्वास और परस्पर सम्मान है।

प्रेमचंद का स्वभाव अत्यंत स्वाभिमान था। वे साहित्य को जीविका का साधन नहीं, बल्कि समाज-सेवा का माध्यम मानते थे। अलवर रियासत के राजा ने उनके साहित्य से प्रभावित होकर उन्हें अपने यहाँ प्रतिष्ठित पद देने तथा महल में रहने का निमंत्रण दिया था, किंतु प्रेमचंद ने विनम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार किया था। यह प्रसंग उनके स्वाभिमान और साहित्यिक प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है। गोरखपुर की नौकरी से त्यागपत्र देने का निर्णय भी उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष उद्घाटित करता है। वे जानते थे कि नौकरी छोड़ने के बाद आर्थिक कठिनाइयाँ आएँगी, लेकिन उन्होंने आत्मसम्मान और स्वतंत्र लेखन को प्राथमिकता दी। इस निर्णय से पहले वे अपनी पत्नी की संभावित कठिनाइयों के बारे में भी सोचते रहे। जब शिवरानी देवी ने हर परिस्थिति में साथ देने का विश्वास दिलाया, तब उन्होंने निश्चित होकर नौकरी छोड़ी। आर्थिक अभावों के बावजूद प्रेमचंद का हृदय अत्यंत उदार था। आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी सीमित आय में से भी दूसरों की सहायता करने से पीछे नहीं हटते थे। शिवरानी देवी यद्यपि उन्हें व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयों का स्मरण कराती थीं, फिर भी वे उनके इस उदार स्वभाव में सदैव सहभागी रहीं। यद्यपि कुछ प्रसंगों में प्रेमचंद शिवरानी देवी के लेखन को लेकर चिंतित दिखाई देते हैं, वे कहते हैं, “तुम कहानी क्या लिखने लगीं, मेरी जान की आफत कर दी। तुम्हें क्या सूझी। आराम से रहती थी, नहीं मुफ्त की बला अपने

गले में पाल ली, अब से बेहतर है मत लिखा करो।”⁴ इस प्रसंग में प्रेमचंद उनके लिखने का विरोधी नहीं, बल्कि उचित यही प्रतीत होता है कि वे उनकी शारीरिक और मानसिक थकान को लेकर चिंतित थे। इससे स्पष्ट होता है कि वे उनकी प्रतिभा का सम्मान करते थे, किंतु उन्हें अनावश्यक तनाव से बचाए रखना चाहते थे।

प्रेमचंद का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण अपने समय की अपेक्षा कहीं अधिक प्रगतिशील था। उनका विश्वास था कि स्त्रियाँ जन्म से मूर्ख नहीं होतीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था उन्हें ऐसा बना देती है। जिस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज को मानसिक रूप से निर्भर बनाया, उसी प्रकार पुरुष-प्रधान व्यवस्था ने स्त्रियों को अधिकारहीन बनाए रखा। वे स्त्रियों के विषय में मानते थे, “जब तक स्त्री का हाथ किसी काम में न लगेगा, तब तक कोई भी काम पूरा नहीं पड़ सकता, जब घर-घर की स्त्रियाँ और पुरुष हिन्दुस्तान की तरक्की में लगेंगे तभी कल्याण होगा।”⁵ इसलिए वे स्त्री को आत्मनिर्भर, स्वावलंबी और अपनी शक्ति के बल पर जीवन जीने की प्रेरणा देते थे। इस पुस्तक में एक प्रसंग आता है, जहाँ शिवरानी देवी कुछ पढ़कर प्रेमचंद को सुनाती हैं, “मैं गाती थी वे रोते थे। उसके बाद मैं तो देखती नहीं थी, पढ़ने में लगी थी, आप मुझसे बोले, बंद कर दो, बड़ा दर्दनाक गाना है।”⁶ अनपढ़ स्त्रियों के लिखे गीतों के भावविह्वलता पर प्रेमचंद का हृदय संवेदनशील हो पड़ता और उनके जीवन संघर्ष को देखकर उनका मन आहत।

प्रेमचंद के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनके विचार और उनका जीवन एक-दूसरे से पृथक् नहीं थे। उन्होंने अपने साहित्य में जिन आदर्शों, मानवीय मूल्यों और सामाजिक सरोकारों की स्थापना की, उन्हें अपने व्यवहार में भी समान निष्ठा के साथ निभाया। इसी कारण उनका साहित्य केवल कल्पना का संसार नहीं, बल्कि जीवन-सत्य का विश्वसनीय दस्तावेज है।

‘प्रेमचंद घर में’ पढ़ते हुए बार-बार यह अनुभव होता है कि लेखक और मनुष्य के रूप में प्रेमचंद के बीच किसी प्रकार का फाँक नहीं था। वे जैसा लिखते थे, वैसा ही जीवन जीने जीते थे। साहित्य उनके लिए केवल सृजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का

साधन था। उनका स्पष्ट कथन था कि जिस दिन वे कुछ लिख या पढ़ नहीं पाते, उस दिन को अपने जीवन में व्यर्थ दिन समझते थे, बीमारी की गंभीर अवस्था में भी लेखन उनके जीवन का अभिन्न अंग बना रहा। लेकिन पत्नी की तबीयत बिगड़ने पर प्रेमचंद का लेखन बंद हो जाता, शिवरानी उन्हें लिखने को कहती तो प्रेमचंद का जवाब रहता, “तुम्हारी तबीयत अच्छी हुई तो फिर लिखूँगा। नहीं तो भाड़ में जाए।” साहित्य के प्रति उनका समर्पण व्यक्तिगत जीवन से कहीं अधिक व्यापक था। इसके बावजूद पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारी से बढ़कर लेखन हो नहीं पाता था।

प्रेमचंद की दृष्टि केवल साहित्य तक सीमित नहीं थी। वे साहित्य, समाज और राजनीति को परस्पर संबद्ध मानते थे। उनका विचार था कि जिस समाज का साहित्य स्वस्थ और समृद्ध होगा, उसका सामाजिक जीवन भी स्वस्थ होगा तथा अंततः उसकी राजनीति भी नैतिक दिशा ग्रहण करेगी। प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि अत्यंत व्यापक थी। वे केवल भारतीय समाज की समस्याओं तक सीमित नहीं रहे, बल्कि विश्व की परिस्थितियों पर गंभीर दृष्टि रखते थे। वे देश की गुलामी को केवल विदेशी शासन का परिणाम नहीं मानते थे, बल्कि भारतीय समाज की आंतरिक दुर्बलताओं, आलस्य और भोग-विलास की प्रवृत्ति को इसके लिए उत्तरदायी मानते थे।

महात्मा गांधी के प्रति उनके मन में गहरा सम्मान था। वे स्वयं को गांधी का अनुयायी मानते थे और यह विश्वास करते थे कि गांधी का व्यक्तित्व पतित से पतित मनुष्य के भीतर भी नैतिक परिवर्तन ला सकता है। महात्मा गाँधी से भेंट करने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी से कहा था, “जितना मैं महात्माजी को समझता था, उससे कहीं ज्यादा वह मुझे मिले।”⁸ उनके व्यक्तित्व की महानता से वे बड़े प्रभावित थे। धर्म के संबंध में प्रेमचंद का दृष्टिकोण अत्यंत उदार और समन्वयवादी था। वे आत्मा के शुद्ध स्वरूप में यकीन करते थे, इसलिए भरोसा करते थे कि, “मनुष्य सब दिन नहीं पतित रह सकता। सरकारी मायाजाल यह नहीं है, आत्मा की पुकार को आदमी कहाँ तक ठुकरा सकता है? बड़े-बड़े चोर डाकू भी अपने अपराध को समझ लेते हैं।”⁹ उनका स्पष्ट मत था कि

अंधविश्वास मनुष्य की विवेक-शक्ति को क्षीण करता है तथा उसे निर्भर और दुर्बल बनाता है। उनके लिए राम, रहीम, बुद्ध और ईसा सभी समान श्रद्धा के पात्र थे। यही कारण है कि उनके साहित्य और व्यवहार दोनों में धार्मिक सहिष्णुता तथा मानवीय दृष्टि का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

पारिवारिक जीवन में भी प्रेमचंद का व्यवहार अत्यंत संवेदनशील था। वे अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति गहरे स्नेह से जुड़े हुए थे। शिवरानी देवी जब स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेकर जेल गईं, तब प्रेमचंद ने न केवल भरपेट भोजन करना छोड़ दिया, बल्कि उनका स्वास्थ्य भी गंभीर रूप से प्रभावित हुआ। शिवरानी देवी के लौटने पर उन्होंने स्वीकार किया कि जब वे जेल में थीं, तब वे स्वयं भी मानसिक रूप से उसी पीड़ा से गुजर रहे थे। यह प्रसंग उनके दांपत्य संबंध की गहराई और भावनात्मक एकात्मता को अत्यंत मार्मिक रूप में सामने लाता है। परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति भी उनका व्यवहार समान रूप से आत्मीय था। बहन, दामाद, बच्चों और संबंधियों के प्रति उनके मन में कोई भेदभाव नहीं था। अपनी पुत्री के विवाह के समय उन्होंने कन्यादान की परंपरा का विरोध करते हुए स्पष्ट कहा कि दान केवल वस्तुओं का होता है, जीवित मनुष्य का नहीं। यह विचार उस समय की सामाजिक मान्यताओं के संदर्भ में अत्यंत प्रगतिशील था। वे अपने दामाद को पुत्र समान मानते थे। उनके पत्रों में भाषा संबंधी त्रुटियों को सुधारकर लौटाना उनके स्नेह, उत्तरदायित्व और शिक्षकीय स्वभाव का परिचायक है।

प्रेमचंद का व्यक्तित्व बच्चों के प्रति अत्यंत स्नेहमय था। वे चाहते थे कि बच्चों में उत्साह, श्रमशीलता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि विकसित हो। उन्हें यह देखकर दुःख होता था कि नई पीढ़ी त्योहारों और सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति पहले जैसी उत्सुकता नहीं दिखाती। उनके अनुसार उत्साह जीवन का लक्षण है और जो व्यक्ति जीवन के छोटे-छोटे आनंदों में प्रसन्न होना भूल जाता है, वह भीतर से धीरे-धीरे नीरस हो जाता है। होली जैसे पर्वों के प्रति उनका विशेष उत्साह इसी जीवन-दृष्टि का प्रमाण है।

उनकी मानवीय संवेदना समाज के वंचित और अभावग्रस्त वर्गों के प्रति विशेष रूप से समर्पित थी। शिवरानी देवी जैसे – जैसे प्रेमचंद के व्यक्तित्व से परिचित होती जाती हैं, उन्हें महसूस होता है – “वे बहुत ऊँचे हृदय के आदमी थे। यहाँ तक की मजदूरों को भी वे अपने समान समझते थे, सबकी तकलीफों का ध्यान रखते थे।”¹⁰ मुंबई पहुँचकर प्रेमचंद अपनी पत्नी को पत्र लिखते हुए बताते हैं, “यहाँ सहाबी ठाट-बाट है, और साहब बनने से मेरी तबीयत घबराती है।”¹¹ वे सरल सहज व्यक्ति थे और जीवन को उसी रूप में जीते थे। वे किसी भी प्रकार के अपव्यय को गरीबों के दुःख के संदर्भ में देखते थे। लखनऊ में आतिशबाजी पर होने वाले अत्यधिक व्यय को देखकर उनकी प्रतिक्रिया इसी मानवीय दृष्टि को व्यक्त करती है। वे मानते थे कि जिस समाज में लाखों लोग अभाव में जीवन व्यतीत कर रहे हों, वहाँ वैभव का प्रदर्शन नैतिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि उनके साहित्य में किसान, मजदूर, दलित, स्त्री और सामान्य मनुष्य के जीवन-संघर्ष को केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ है।

‘प्रेमचंद घर में’ का सबसे बड़ा महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह प्रेमचंद के बाह्य व्यक्तित्व से अधिक उनके अंतर्मन को उद्घाटित करती है। इस कृति में वे एक महान लेखक से पहले एक संवेदनशील पति, उत्तरदायी पिता, आत्मसम्मानी मनुष्य, उदार मित्र और गहरे मानवीय मूल्यों से संपन्न व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। शिवरानी देवी ने उन्हें किसी महापुरुष की तरह नहीं, बल्कि एक संघर्षशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसकी महानता उसके व्यवहार, संवेदना और जीवन-मूल्यों में निहित है।

निःसंदेह, किसी पत्नी द्वारा लिखी गई जीवनी को पूर्णतः निष्पक्ष नहीं माना सकता, जैसे प्रेमचंद की महानता को याद करते हुए उनकी पत्नी को लगता है, “मेरे दिल में बार-बार आता है कि वे किसी संत से कम नहीं थे। मेरे लिए यह गर्व की बात है कि वे मेरे थे और मैं उनकी हूँ।”¹² कई मामलों में प्रेमचंद का व्यक्तित्व बहुत बड़ा प्रतीत होता है। अपने व्यक्तित्व की उन ऊँचाइयों में बैठकर कई दफे तो यह महसूस होता है जैसे प्रेमचंद

अपने उस उज्ज्वलता को लेखन में सही ढंग से उकेर नहीं पाए, वैसे पात्र सृजित नहीं कर सके। उसके पीछे शायद अपने समकाल की रूढ़ियों में बहुत अधिक हस्तक्षेप करने का साहस वे नहीं जुटा सके। फिर भी 'प्रेमचंद घर में' का महत्व इस कारण कम नहीं हो जाता। यह कृति प्रेमचंद के व्यक्तित्व के उन आत्मीय पक्षों का उद्घाटन करती है, जिनके बिना उनके साहित्य और जीवन-दृष्टि को समग्रता में समझना संभव नहीं है। शिवरानी देवी ने जिस सहजता और ईमानदारी के साथ उनके जीवन के उजले तथा धुँधलके दोनों पक्षों को प्रस्तुत किया है, वह इस पुस्तक को विशिष्ट बनाता है। परिणामतः यह केवल

एक लेखक की जीवनी नहीं रह जाती, बल्कि प्रेम, विश्वास, संघर्ष, समानता, मानवीय संवेदना और साहित्यिक प्रतिबद्धता का ऐसा जीवंत दस्तावेज है, जो प्रेमचंद के व्यक्तित्व को उनके साहित्य के समान ही विश्वसनीय और प्रेरणास्पद रूप में हमारे सामने उपस्थित करता है। 'प्रेमचंद घर में' कृति केवल प्रेमचंद के जीवन के अनचीन्हे पक्षों को ही उद्घाटित नहीं करता, बल्कि इस जीवनी के माध्यम से शिवरानी देवी के जीवन के विविध अनचीन्हे पक्ष उद्घाटित होते हैं, जो प्रेमचंद जैसे बड़े सर्जक की समृद्ध लेखन की ओट में संभवतः कहीं छिप जाते हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

आधार ग्रंथ :

देवी. शिवरानी, (2020). प्रेमचंद घर में. नयी किताब प्रकाशन, हर्ष प्रिंटर्स, नई दिल्ली

1. रानी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ.सं.198
2. रानी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ.सं.56
3. रानी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ.सं.169
4. देवी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.86
5. देवी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.129
6. देवी. शिवरानी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.194
7. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.90
8. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.102
9. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.98
10. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.158
11. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.176
12. देवी. शिवरानी देवी. प्रेमचंद घर में. पृ. सं.100

सहायक ग्रंथ :

1. अग्रवाल, रोहिणी. (2018).शिवरानी देवी : प्रेमचंद का विलोम. समालोचन
2. पाण्डेय, क्षमा शंकर. (2021).विस्मृत रचनाकार : शिवरानी देवी. नई किताब प्रकाशन : नई दिल्ली

महात्मा गांधी का सत्याग्रह दर्शन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन



डॉ. लाला बाबू

शोध-सार :

महात्मा गांधी इतिहास में एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक एवं नैतिक सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से लिखा और उसे अपने जीवन कृत्यों से सार्थक भी बनाया। सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह, नैतिकता और आध्यात्मिकता आदि सिद्धांतों को जिस प्रभावशाली ढंग से गांधीजी ने आपस में मिलाया, उतना कि अन्य विचारक, दार्शनिक, धार्मिक या राजनीतिक नेता ने नहीं किया। गांधीजी के नीतिशास्त्र की अंतर्निहित विशेषता यह है कि इसमें संपूर्ण समाज के व्यापक हित सुनिश्चित करने हेतु व्यक्ति में बलिदान की भावना पर बल दिया गया है। उनका मानना था कि पवित्र साध्य की प्राप्ति पवित्र साधनों से ही हो सकती है। गांधीजी के सत्याग्रह संबंधी तौर-तरीके भी नैतिकता व आध्यात्मिकता से पूरी तरह ओत-प्रोत थे। अपने शत्रु (विरोधी) की उसके संकट के समय सहायता करने हेतु उच्च नैतिक व आध्यात्मिक विश्वास की आवश्यकता होती है। दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध के समय गांधीजी ने घायल सैनिकों की सेवा-सुश्रुषा करने के लिए सरकार की सहायता की और मानवतावादी सेवाएँ दीं।

बीज शब्द :

सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, आध्यात्मिकता, नैतिकता, नव्यवेदांती, शुद्धसाधन-साध्य, मुक्तिदाता, निष्क्रिय प्रतिरोध, हृदय परिवर्तन, आत्म-पीड़ा, हिजरत, अनशन आदि।

प्रस्तावना :

महात्मा गांधी (मोहनदास करमचंद गांधी) इतिहास में एक संघर्षशील, समाज सुधारक, विचारक एवं मुक्तिदाता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वे मानवतावादी, व्यावहारिक आदर्शवादी, अराजकतावादी तथा नव्य वेदांती परंपरा के विचारक थे।¹ नव्य वेदांती परंपरा जगत को मिथ्या, भ्रम या असार मानने के स्थान पर ईश्वर की अभिव्यक्ति मानती है। इनके अनुसार प्रकृति के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है और इस रूप में प्रत्येक मानव में भी ईश्वर है। इसीलिए नव्यवेदांत के अधिकांश विचारक मानवसेवा को ही परमात्मा की सेवा मानते हैं।²

महात्मा गांधी के विचार अनेक विचारधाराओं से मिलकर निर्मित हुए। उन्होंने सभी विचारधाराओं को परखा और उनका सार ग्रहण किया, परंतु किसी भी विचारधारा का अंधानुकरण नहीं किया। उन पर सबसे अधिक प्रभाव

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
कृषक (पी.जी.) कॉलेज
मवाना, मेरठ (उ.प्र.) - 250401
☎ 9520353953
✉ lbgaaur999@gmail.com

रामचरितमानस, उपनिषद् दर्शन तथा श्रीमद्भागवत गीता का है। उपनिषदों से उन्होंने 'ईशावास्यमिदं सर्वं' का मंत्र ग्रहण किया और गीता से 'स्वधर्म' की अवधारणा ली है। जैन धर्म के पंचमहाव्रतों के अतिरिक्त बौद्ध धर्म एवं योग दर्शन का भी गहरा प्रभाव है। अतः वे न तो रूढ़िवादी थे, न ही प्रगतिवादी एवं नितान्त सिद्धांतवादी ही थे, बल्कि उन्होंने अपने निष्कर्ष स्वयं ही प्राप्त किए।³

गांधी जी ने पश्चिमी धर्मों एवं विचारों से भी बहुत कुछ सीखा। उन्होंने ईसा मसीह से 'करुणा' का विचार लिया। एक गाल पर तमाचा मारने पर दूसरा गाल आगे कर देने की शिक्षा भी ईसा की है।⁴ जॉन रॉस्कन की पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' (Onto this last) का प्रभाव उनके हिंदू स्वराज पर देखा जा सकता है। गांधीजी के 'अराजकतावादी' विचारों पर हैनरी डेविड थोरो तथा टॉलस्टाय का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त टॉलस्टाय की 'किंगडम फ गॉड इज विद इन यू' (Kingdom of God is with in you), कार्लाइल की 'हर वरसिप' (Her Worship) थोरो की ड्यूटी ऑफ सिविल डिसे-ऑबेडियेन्स (Duty of civil Disobedience) का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। रोम्यां रोलां के शब्दों में, वे अमेरिका तथा यूरोप के दर्शन की अच्छाइयों से परिचित थे। उनकी कुरान तथा बाइबिल में उतनी ही निष्ठा थी, जितनी की मुस्लिम तथा ईसाई समुदाय के लोगों की थी। उन्होंने सभी धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण किया।⁵

उद्देश्य : प्रस्तुत शोधपत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. गांधीजी के सत्याग्रह दर्शन के विकास पर संक्षेप में चर्चा करना।
2. गांधीजी के सत्याग्रह दर्शन की विस्तृत व्याख्या करना।
3. गांधीजी के सत्याग्रह दर्शन की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता।

शोध सामग्री :

इस शोधपत्र की विषय-वस्तु के गहन अध्ययन एवं लेखन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोत के रूप में गांधी जी के द्वारा लिखित पत्र-पत्रिकाओं जैसे-नवजीवन, यंग इण्डिया, हरिजन, उनकी आत्मकथा (सत्य के मेरे प्रयोग), इत्यादि का उपयोग किया जाएगा, जबकि द्वितीयक स्रोत के तौर पर विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-

समय पर लिखित संदर्भ ग्रंथों एवं प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग किया जाएगा।

शोध पद्धति :

इस शोधपत्र के लेखन के लिए व्याख्यात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक शोध विधि का उपयोग किया जाएगा।

सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह गांधी जी के दर्शन के केंद्र थे। सत्याग्रह गांधी दर्शन का सार है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है, सत्य के लिए आग्रह। यह आशय अहिंसक तथा दृढ़ता के साथ होना चाहिए, जो व्यक्ति असत्य के सामने झुकने को तैयार न हो औ सत्य की प्राप्ति हेतु अपनी जान भी न्योछावर करने के लिए तैयार रहता है, वही वास्तव में सत्याग्रह ही है।⁶

यहाँ उल्लेखनीय है कि सत्याग्रह शब्द की उत्पत्ति गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों और अश्वेतों के अधिकारों के लिए किए गए संघर्ष से जुड़ी हुई है, ऐसा गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है।⁷

श्रीमन्नारायण ने लिखा है कि "सत्याग्रह का आधार था-साधन की पवित्रता। गांधी जी का अटल विश्वास था कि पवित्र साधन की प्राप्ति कभी भी अपवित्र साधनों से नहीं हो सकती। उन्होंने बार-बार हमें यही समझाया कि जैसे साधन होंगे वैसे ही साध्य होंगे। जैसे बीज वैसे ही वृक्ष।" उन्होंने लिखा है कि "हिंसापूर्ण उपायों से प्राप्त किया गया स्वराज्य भी हिंसापूर्ण होगा, और वह दुनिया के लिए व स्वयं भारत के लिए भी भय का कारण सिद्ध होगा। इसीलिए गांधी जी ने उस समय के क्रांतिकारियों की वीरता की तो सराहना की, किंतु उनसे आग्रह किया कि वे हिंसा का मार्ग त्यागकर उनके सत्याग्रह आंदोलन में शामिल हो जाएँ, क्योंकि गांधी जी जानते थे कि आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित अंग्रेजों की हिंसात्मक शक्ति का सामना करना हमारे लिए असंभव है। हिंसा का अहिंसा के माध्यम से ही सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। सत्याग्रह उस काम में सफल हुआ है।"⁸

गांधी जी ने सत्याग्रह का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में काफी सफलतापूर्वक किया। भारत में इसका आरंभिक प्रयोग चंपारण, खेड़ा, अहमदाबाद एवं बारदोली में हुआ।

भारत में इस सत्याग्रह के अनेक रूप बदले। जैसे-1920 में इसे असहयोग आंदोलन का नाम दिया गया तो 1930-31 ई. में इसे नमक सत्याग्रह और डांडी मार्च का नाम दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1940 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह और अगस्त 1942 ई. में तो भारत छोड़ो के नारे के साथ 'खुला बलवा' कहलाया। व्यक्तिगत जीवन में भी गांधीजी सत्याग्रह के प्रयोग करते थे। उन्होंने कस्तूरबा गांधी हेतु नमक और दाल का परित्याग किस प्रकार किया। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। गांधीजी लिखते हैं- “इसे मैं सत्याग्रह का नाम देना चाहता हूँ और उसे अपने जीवन में मधुर स्मरणों में से एक मानता हूँ।”⁹

गांधी जी के अनुसार सत्याग्रह का सिद्धांत मात्र देश में अन्याय के प्रति संघर्ष का प्रतीक नहीं था। बल्कि यह सार्वभौमिक था। गांधी जी निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से सत्याग्रह के व्यापक अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।¹⁰

“सभी धर्मों, संप्रदायों, चर्च और मंदिरों की उपयोगिता तभी तक है, जब तक वे हमें सत्याग्रह की सार्वदेशिकता और सार्वभौमिकता को पहचानने और उस ओर बढ़ाने में हमारी सहायता करते हैं। भारत में आदिकाल से हमें इसका प्रशिक्षण दिया गया है कि हमें संपूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब मानकर चलने की शिक्षा दी गई है। महात्मा गांधी के अनुसार जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध संघर्ष करते हैं, वह एक सीमा तक जीवन के महान कानून का तिरस्कार करने के दोषी हैं। मैं इस विश्वास का त्याग कभी न करूँगा कि भारत में समस्त विश्व को यह सत्य देने की क्षमता है, और मैं चाहता हूँ कि समस्त भारतीय स्त्री-पुरुष चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, ईसाई हों या यहूदी या मुसलमान, इस अतृप्त विश्वास में मेरा साथ देंगे।”

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि सत्याग्रह गांधीजी के लिए कोई पूर्व-निर्धारित योजना नहीं थी। उनके जीवन की एक घटना, जिसकी परिणति उनके 'ब्रह्मचर्य व्रत' में हुई, उन्हें इसके लिए मानसिक रूप से तैयार किया। इसलिए उन्होंने रेखांकित किया कि जोहांसबर्ग में घटनाएँ इस तरह से आकार ले रही थीं कि मेरी यह आत्म-शुद्धि

मानो सत्याग्रह की एक प्रारंभिक अवस्था बन गई। अब मैं देख सकता हूँ कि मेरे जीवन की सभी प्रमुख घटनाएँ, जिनकी परिणति ब्रह्मचर्य व्रत में हुई, मुझे गुप्त रूप से इसके लिए तैयार कर रही थीं।¹¹

इस प्रकार सत्याग्रह का अर्थ है, सत्यबल, आत्मिक बल जैसा कि मार्टिन लूथर जूनियर इसे 'कार्यरूप में प्रेम' कहते थे। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि गांधीजी के लिए लक्ष्य था सत्य तक पहुँचना और जिसका साधन एकमात्र अहिंसा (प्रेम) था। इसलिए सत्याग्रह का अर्थ है- अहिंसा का उपयोग करके सत्य की खोज करना। माइकल नागलर के अनुसार सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है- सत्य के साथ दृढ़ता से जुड़े रहना और गांधीजी ने इसे ठीक इसी रूप में समझाया। नववेदांती परंपरा के गांधीजी का इस सत्य से जुड़े रहना कि हम सब अंदर से एक हैं, हार-जीत जैसी टकराव वाली कोई चीज नहीं है, क्योंकि हमारे सभी महत्वपूर्ण हित वास्तव में एक ही हैं कि जागृत रूप से या अनजाने में प्रत्येक व्यक्ति परस्पर एकता और शांति चाहता है।¹²

गांधीजी एक प्रश्न करते हुए कहते हैं कि हम जरा विचार करें कि सत्याग्रह की वास्तविक शक्ति किस बात में है? फिर आगे कहते हैं कि जैसा कि इसके नाम से विदित होता है कि इसकी शक्ति उस सत्य पर बल देने में है, जिसकी गतिशील अभिव्यक्ति का अर्थ प्रेम है। इस प्रेम के विधान की माँग है कि हम हिंसा के बदले हिंसा और घृणा के बदले घृणा न करें, बल्कि बुराई के बदले भलाई करें।¹³

गांधीजी सत्याग्रह के विषय में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि एक सत्याग्रही को सत्याग्रह शुरू करने से पूर्व सभी संभावित विकल्पों को आजमा लेना चाहिए और अंतिम उपाय के रूप में सत्याग्रह का आश्रय लेना चाहिए। 'उपवास' सत्याग्रही का सबसे अंतिम अस्त्र होना चाहिए तथा सत्याग्रह के पीछे क्रोध एवं द्वेष नाममात्र का भी नहीं होना चाहिए। श्रीमन्नारायण लिखते हैं कि सत्याग्रह और पश्चिम के देशों की 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (Passive Resistance) में एक बुनियादी अंतर यह है कि निष्क्रिय प्रतिरोध कमजोरों का शस्त्र है और उसमें शारीरिक शक्ति या हिंसा का निषेध नहीं है, जबकि सत्याग्रह तो वीरों का

आभूषण है, उसमें किसी प्रकार की हिंसा का कोई स्थान नहीं हो सकता। सत्याग्रह का उद्देश्य रचनात्मक है, उसमें कायरता की बिल्कुल गुँजाइश नहीं होती।¹⁴

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह नए समाज की संकल्पना का आधार है। उसके बिना सर्वोदय असंगत है। यह निष्काम कर्म का उपदेश है, जिसकी व्याख्या गीता में भली प्रकार से की गई है। गांधीजी कहते हैं कि¹⁵ सत्याग्रह में फल प्राप्त होता है या नहीं—इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए, क्योंकि फल न मिलने पर भी इसमें हाथ मलने जैसी कोई बात नहीं रहती। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सत्याग्रह सच्ची शिक्षा है। मान लीजिए हम किसी विशेष उद्देश्य जैसे जीविकोपार्जन हेतु शिक्षा प्राप्त करते हैं, फिर भी संभव है कि जीविका न मिले। शिक्षा तब भी व्यर्थ नहीं जाती। इसी प्रकार सत्य का पालन किया हो, उसके लिए पीड़ा सही हो, और इससे हमारे मनोबल में वृद्धि हुई हो तो यह अमूल्य शिक्षा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

इस प्रकार गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है। गांधीजी ने दोनों के मध्य महत्वपूर्ण अंतर बताए हैं। जैसे—सत्याग्रह में बुराई के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध शामिल रहता है। निष्क्रिय प्रतिरोध एक मिथ्या नाम का प्रयोग है। सत्याग्रह अहिंसक होता है, जबकि निष्क्रिय प्रतिरोध में शस्त्रों के प्रयोग की संभावना होती है। सत्याग्रह का लक्ष्य किसी व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना होता है, जबकि निष्क्रिय प्रतिरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना नहीं होता है। सत्याग्रह का उद्देश्य बुराई का अंत करना होता है, न कि बुरे व्यक्ति का, जबकि निष्क्रिय प्रतिरोध में ऐसा कोई अंतर नहीं होता है।¹⁶

सत्याग्रह के मूल सिद्धांत :

गांधीजी सत्याग्रह को सिर्फ एक राजनीतिक रणनीति के रूप में नहीं, बल्कि अन्याय के खिलाफ एक सार्वभौमिक समाधान के रूप में देखते थे। उन्होंने सत्याग्रह की शिक्षा देने हेतु साबरमती आश्रम की स्थापना की, जिसमें योग सूत्र से प्रेरित सिद्धांतों पर जोर दिया गया। सत्याग्रह के लिए तीन मूल सिद्धांत हैं – सत्य, अहिंसा और तपस्या या आत्म पीड़ा। इसके अतिरिक्त असहयोग,

सविनय अवज्ञा, अहिंसक प्रतिरोध, नैतिक अधिकार, निर्भयता, आत्म-बलिदान सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान की भावना, स्वदेशी, इच्छा नियंत्रण, शरीर या रोटी का श्रम इत्यादि।

सत्य : सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है—सत्य बल या सत्य को पकड़े रहना। गांधीजी के अनुसार सत्य ही एकमात्र ऐसी चीज है, जो वास्तव में मौजूद है या विद्यमान है।¹⁷ (एम के गांधी, 30 जुलाई, 1931)। गांधीजी के अनुसार सत्य सापेक्ष है। मनुष्य पूर्ण सत्य को जानने में सक्षम नहीं है। सत्याग्रह का अर्थ है पूर्ण सत्य की खोज हेतु निरंतर प्रयास करना और कार्य की प्रक्रिया में विरोधियों का हृदय परिवर्तन करना।

गांधीजी ने सत्य का प्रयोग दो अर्थों में किया है—सीमित तथा व्यापक। सीमित रूप में सत्य से आशय है कि मन, वचन, कर्म से छल करने से दूर रहना। जो तथ्य जिस रूप में देखा, समझा या जाना गया है, उसे उसी रूप में बिना कोई संशोधन किए व्यक्त करना सत्य है।

व्यापक अर्थ में सत्य और ईश्वर समानार्थक है। ईश्वर में निष्ठा रखते हुए नैतिक जीवन जीना सत्यपूर्ण जीवन है। गांधीजी ने अपने जीवन में सत्य के साथ अनेक प्रयोग किए और अपनी आत्मकथा को ‘सत्य के साथ मेरे प्रयोग’ कहा है।

गांधीजी का मानना था कि संसार सत्य की आधारशिला पर टिका है, असत्य का अर्थ है ‘अस्तित्वहीन’ भी है, अर्थात् जो असत्य है, उसका अस्तित्व ही नहीं है। उसकी विजय असंभव है। जबकि जो सत्य है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकता। वह सदैव विद्यमान रहता है। यही सत्याग्रह का सिद्धांत है।¹⁸ गांधीजी कहते हैं कि अल्प व्यक्तियों का सत्य भी शाश्वत रहेगा, किंतु करोड़ों व्यक्तियों का असत्य भी तूफान में तिनके की भाँति नष्ट हो जाएगा। 19

अहिंसा : अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है—चोट न पहुँचाना या हिंसा न करना। गांधीजी ने अहिंसा को नकारात्मक और सकारात्मक दोनों अर्थों में लिया है। नकारात्मक अर्थ में अहिंसा—मन, वचन और कर्म से किसी को हानि न पहुँचाना है, जबकि सकारात्मक अर्थ में सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, उदारता, आत्मबलिदान, वीरता, सहानुभूति और सेवाभाव रखना शामिल है। गांधी के

शब्दों में “अहिंसा का प्रारंभ और अंत आत्मनिरीक्षण में होता है।”²⁰

अहिंसा शब्द हिंदू शिक्षाओं में छांदोग्य उपनिषद से ही मिलता है। जैन धर्म अहिंसा को प्रथम व्रत मानता है। बौद्ध धर्म में यह एक प्रमुख गुण है। इन धर्मों में निहित सामाजिक और राजनीति सर्वोच्च सत्य की खोज में एक सकारात्मक शक्ति के रूप में उपयोग हेतु अहिंसक कार्यवाही के औजारों को डालकर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अहिंसा की अवधारणा को सार्थक बनाना। गांधीजी ने अहिंसा को एक सक्रिय सामाजिक तकनीति के रूप में स्थापित किया, जिसका उद्देश्य राजनीतिक सत्ता और धार्मिक रूढ़िवादिता को चुनौती देना था।²¹

गांधीजी के अनुसार अहिंसा वीरों का आभूषण है, कायरों का नहीं। गांधी जी का कहना था कि यदि किसी परिस्थिति में मुझे कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनना पड़े तो मैं हिंसा का चुनाव करूँगा। गांधी के मतानुसार अहिंसा से तात्पर्य असहाय अवस्था तथा कायरता से नहीं है, बल्कि अहिंसा से तात्पर्य प्रतिकार लेने की क्षमता से है। अहिंसा को परिभाषित करते हुए गांधीजी कहते हैं।²²

अहिंसा के अपवाद : गांधीजी के अनुसार सभी परिस्थितियों में अहिंसा का प्रयोग करना संभव नहीं है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है किन परिस्थितियों में अहिंसा के नियम का उल्लंघन किया जाना उचित है। जैसे—हिंसक पशुओं, रोग के कीटाणुओं, फसल नष्ट करने वाले कीड़ों की हत्या करना उचित है। इसी प्रकार असहनीय पीड़ा झेल रहा हो, जैसे यदि मेरा बच्चा पानी के डरने के रोग से पीड़ित हो तथा उसकी पीड़ा को दूर करने हेतु कोई उपचार उपलब्ध नहीं हो पाए तो उसको पीड़ा से मुक्त करने हेतु उसकी जान लेना मेरा कर्तव्य है। परंतु ऐसा सिर्फ उस बच्चे के हित में किया जाए, किसी अन्य के हित में नहीं। मेरा इस विचार में दया मृत्यु (यूथनेशिया) के प्रति समर्थन दिखाता है। इसी प्रकार शल्य चिकित्सक द्वारा शल्य चिकित्सा किया जाना या माता-पिता द्वारा बच्चे में नैतिक मूल्य विकसित करने हेतु श्रम करने का आदेश देना।

गांधीजी ने आश्रम में गाय के बच्चे को, जो उपचार न किए जाने योग्य पीड़ा एवं कष्ट से ग्रस्त था, जहर दे दिया। गांधीजी के अनुसार पूर्ण अहिंसा का स्थापित करना अत्यंत कठिन है।²³

गांधीजी का मानना है कि अहिंसा और सत्य एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। दोनों ही परस्पर अनिवार्य हैं। अहिंसा का संपूर्ण फल सत्य में बीज रूप में निहित है। गांधीजी का कहना था कि “सत्य विधेयात्मक और अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है तो अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निर्णय करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिए। यह परम धर्म है। सत्य स्वयं सिद्ध है। अहिंसा उसका संपूर्णकालीन फल है। अहिंसा सत्य में अव्यक्त है, वह सत्य की भाँति व्यक्त नहीं है, इसलिए इसको मान्यता दिए बिना मनुष्य भले ही शास्त्र का शोध करे, उसका सत्य उसे अहिंसा ही सिखाएगा।”²⁴

तपस्या (आत्म-पीड़ा) : सत्याग्रह में आत्म-पीड़ा सहन करना प्रेम की परीक्षा है। गांधीजी ने आत्म-पीड़ा को कायरता से अलग किया। गांधीजी द्वारा आत्म-पीड़ा सहने का चुनाव करने का अर्थ यह नहीं है कि वे जीवन को कम महत्व देते थे, बल्कि यह स्वैच्छिक सहायता का संकेत है और यह महान एवं नैतिक रूप से समृद्धकारी है। गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह तब सर्वोत्तम होता है, जब इसका प्रचार और अभ्यास उन लोगों द्वारा किया जाता है जो हथियार तो इस्तेमाल करना चाहते हैं, लेकिन इसके बावजूद स्वयं पर कष्टों को आंमंत्रित करने का निर्णय लेते हैं।

किसी भी सत्याग्रह की सफलता सत्य, अहिंसा और आत्म-पीड़ा, इन तीन तत्वों के एक साथ चलने पर निर्भर करती है। अर्थात् सत्य नैतिक मानवतावाद की ओर ले जाता है। अहिंसा-जिसका आशय प्रेम है, समाज सेवा की ओर ले जाती है। जबकि आत्म-पीड़ा या तपस्या स्वयं के लिए ही नहीं, बल्कि विरोधी को आघात पहुँचाने से इनकार करने और साथ ही सत्य पर अडिग रहने से उत्पन्न ईमानदारी के प्रदर्शन हेतु त्याग और मृत्यु तक बलिदान की तैयारी का प्रतीक है।

सत्याग्रही का लक्ष्य : सत्याग्रही के लक्ष्य के संबंध

में गांधी कहते हैं कि “सत्याग्रही का लक्ष्य किसी खास चीज पर केंद्रित रहना चाहिए। अर्थात् उसका लक्ष्य केंद्रित, स्पष्ट तथा निश्चित होना चाहिए। गांधीजी का मानना है कि हम भी सत्ता की प्राप्ति हेतु सत्याग्रह कर रहे हैं, जबकि सत्याग्रह तो सत्ता की समाप्ति हेतु हो सकता है। सत्ता का अर्थ ही हिंसा है। सत्ता को बनाए रखने हेतु सेना चाहिए। सत्याग्रह के मूल में सत्ता का त्याग है।”²⁵

सत्याग्रह हेतु सत्याग्रही द्वारा अपनाई गई पद्धति बल प्रयोग पर आधारित नहीं होनी चाहिए। सत्याग्रही को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने कार्य करने के तरीके में सुधार करना चाहिए। सत्याग्रही को अपने विरोधियों पर प्रभाव स्थापित करने हेतु बुराइयों को अच्छाई से, घृणा को प्रेम से, क्रोध को शांति से, असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से जीतना चाहिए। उसे पाप तथा पापी के मध्य अंतर स्थापित करना चाहिए। उसका लक्ष्य पाप को मिटाना होना चाहिए, न कि पापी को मिटाना। उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के समय स्वतंत्रता आधिपत्य, परिवार इत्यादि की हानि के संबंध में नहीं सोचना चाहिए।²⁶

सत्याग्रह को वैध बनाने हेतु उसे परखना जरूरी है। जब सिद्धांतों को विशिष्ट राजनीतिक और सामाजिक कार्यवाही पर लागू किया जाता है तो असहयोग, सविनय अवज्ञा, अहिंसक हड़ताल उपवास और स्वभाविक कार्यवाही इत्यादि तौर-तरीकों का अवलंबन किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका और भारत वे प्रयोगशालाएँ थीं, जहाँ पर गांधीजी ने अपने नवीन तौर-तरीकों का परीक्षण किया। दक्षिण अफ्रीका और भारत में गांधीजी के लिए सत्याग्रह एक महत्वपूर्ण अस्त्र था। प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान लुई फिशर प्रमाणित करते हैं कि “गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका और भारत में जो कुछ हासिल किया, वह उनके स्वयं के एक विशिष्ट अस्त्र के बिना संभव नहीं था। यह वास्तव में अभूतपूर्व था, यह उतना अनूठा था कि जब तक उन्हें अंततः सत्याग्रह नाम नहीं मिला, तब तक वे इसका कोई नाम नहीं खोज पाए।”²⁷

सत्याग्रह की जन्मस्थली दक्षिण अफ्रीका थी। सत्याग्रह का एक रूप उपवास था। उपवास या अनशन या भूख हड़ताल को परिभाषित करते हुए गांधीजी ने लिखा था, ‘अनशन का अर्थ है-बुराई से परिवर्जन।’ इसमें बुरे विचार,

कार्य और भोजन सभी शामिल थे। प्रार्थना इसके साथ अभिन्न रूप से सम्मिलित रहती थी। अनशन का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वच्छता अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को पश्चाताप हेतु बाध्य करना था, जो गलत मार्ग पर हो। इसका प्रयोग अन्याय के विरुद्ध भी किया जा सकता है। अनशन का उद्देश्य उसका प्रेम प्राप्त करना है, जिसके विरुद्ध अनशन किया जा रहा है। गांधीजी का विचार था कि अनशन को सब विकल्पों को अपनाने के पश्चात ही करना चाहिए।²⁸

सत्याग्रही नेता हेतु आचरण के नियम :

गांधीजी ने एक सत्याग्रही नेता हेतु आचरण के निम्नलिखित नियम बताए हैं। जैसे-

1. एक सत्याग्रही को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।
2. गांधीजी के अनुसार एक सत्याग्रही जीवन हेतु भोजन ग्रहण करता है न कि वह भोजन हेतु जिंदा रहता है।
3. गांधीजी के अनुसार सत्याग्रही को निडर होना चाहिए। उसे ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी से डरने की जरूरत नहीं है।
4. एक सत्याग्रही को अतिरिक्त संपत्ति को समाज के न्यासी के रूप में धारण करना चाहिए।
5. उसे व्यवहार में अस्तेय तथा अपरिग्रह के वृत्त का पालन करना चाहिए।
6. उसे स्वदेशी की अवधारणा में विश्वास रखना चाहिए।
7. उसे रोटी के लिए श्रम के सिद्धांत का पालन करना चाहिए।

उसे जाति-धर्म-संप्रदाय के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में विभेद को मान्यता नहीं देनी चाहिए, बल्कि उसे संपूर्ण मानव जाति की एकता को स्वीकार्य करना चाहिए। उसका समस्त जीवन मानव-मात्र की सेवा हेतु प्रेरित करती है।²⁹

सत्याग्रह एक सम्मिलित कार्यवाही के रूप में :

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों प्रकार का हो सकता है। गांधीजी ने सामूहिक सत्याग्रह के निम्नलिखित प्रमुख तरीकों को स्पष्ट किया है। जैसे-बुराई के साथ समझौता न करना। असहयोग

एक ऐसा अस्त्र है, जो बुराई को शांत या न्यून करने हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी क्रम में सविनय अवज्ञा, उपवास-अनशन-हड़ताल, भूख हड़ताल, धरना देना, सामाजिक बहिष्कार, हिजरत करना।³⁰ हिजरत (यह एक अरबी भाषा का शब्द है) से तात्पर्य है-संकट की स्थिति में किसी स्थान विशेष या देश को छोड़कर दूसरी जगह चले जाना या प्रवास करना। इस्लामी इतिहास में पैगंबर मुहम्मद और उनके अनुयायियों ने सन 622 ई. में मक्का से मदीना की ओर प्रवास किया था, जिसे हिजरत कहा जाता है।³¹ गांधीजी ने कविता के हरिजनों को सवर्ण हिंदुओं के द्वारा उनके ऊपर किए जा रहे आतंक के विरोधस्वरूप हिजरत करने की सलाह दी थी। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि हिजरत का प्रयोग कुछ विशिष्ट मामलों में ही किया जाना चाहिए।³²

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि गांधीजी 'सत्यमेव जयते' की तरह सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के सिद्धांत में विश्वास करते थे। गांधीजी सत्य और अहिंसा की वेदी पर देश और धर्म को न्योछावर करने हेतु भी प्रस्तुत रहते थे। सत्याग्रह को गांधीजी इतना महत्व देते थे कि उसके सामने अपने देश का भी कोई महत्व नहीं समझते थे।³³ सत्य-अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह को आगे चलकर नेलसन मंडेला, अन्ना हजारे जैसे अनेक सत्याग्रहियों ने अपनाया है और भारत सहित विश्व के अनेक स्थानों पर गांधीवादी सत्याग्रह की झलक देखने को मिलती है, जो उनके सत्याग्रह दर्शन की वर्तमान में भी प्रासंगिकता को बताता है। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, अर्चना पब्लिकेशन (प्रा.) लिमिटेड, पृ.-17
2. दृष्टि विजन, नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि, पृ.-284.
3. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-18
4. द होली बाइबिल, सेंट मैथ्यू, अध्याय 26, पृ.-732
5. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-18-19
6. मुखर्जी, डॉ. रवीन्द्रनाथ, सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन-2018, जवाहर नगर दिल्ली-7, पृ.-480
7. गांधी, एम.के., सत्य के मेरे प्रयोग, पृ.-282
8. वही-पृ.-480-481
9. गांधी, मो.क., 'सत्य के मेरे प्रयोग', पृ.-308
10. सुमन, रामनाथ, सत्याग्रह, उत्तर प्रदेश, गांधी स्मारक निधि, सेवापुरी वाराणसी, 1969, पृ.-23-24
11. गांधी, एम.के., सत्य के मेरे प्रयोग, पृ.-292
12. माइकल, एन. नागलर, आशा या आतंक? मिनियापोलिस, मेटा सेंटर फॉर नॉनवायलेंस एजुकेशन, 2009, पृ.-7
13. सुमन, रामनाथ, सत्याग्रह, पृ.-97-98, पूर्वोक्त।
14. मुखर्जी, डॉ. रवीन्द्र नाथ, सामाजिक विचारधारा, पृ.-481, पूर्वोक्त।
15. सुमन, रामनाथ, 'सत्याग्रह', पृ.-50-51, 66, पूर्वोक्त।
16. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-43, पूर्वोक्त।
17. गांधी, एम.के., यंग इंडिया, 30 जुलाई, 1931
18. एस.ई. जोन्स, गांधी, एक मित्र का चित्रण, नैशविले, एबिंगडन प्रेस, 1948, पृ.-82
19. यंग इंडिया, 20 मई, 1926
20. मुखर्जी, डॉ. रवीन्द्र नाथ, सामाजिक विचारधारा, पृ.-477
21. जे.वी. बौदुरंत, हिंसा पर विजय, संघर्ष का गांधीवादी दर्शन। लॉस एंजिल्स : कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस-1965, पृ.-112
22. गांधी, एम.के., हिंदू धर्म, ओरियंट पेपर वर्क्स, पृ.-145
23. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-39-40, पूर्वोक्त।
24. नवजीवन साप्ताहिक पत्रिका (हिंदी), 14 अक्टूबर, 1925
25. सुमन, रामनाथ, सत्याग्रह, उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि, सेवापुरी वाराणसी, पृ.-49
26. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-41 पूर्वोक्त।
27. फिशर, लुई, 'गांधी: उनका जीवन और विश्व के लिए संदेश', न्यूयॉर्क मॅटर बुक्स, 1954, पृ.-35
28. डॉ. शंकर दयाल, स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका, नवभारत टाइम्स, 26/01/1994
29. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-41-42
30. वही, पृ.-42-43
31. पाण्डे, एस.के., 'मध्यकालीन भारत', प्रयाग एकेडमी प्रकाशक, इलाहाबाद, 2010-11, पृ.-1
32. काचरू, जे.एल., गांधी, टैगोर और नेहरू, पृ.-43
33. सुमन, रामनाथ, सत्याग्रह, उत्तर प्रदेश, गांधी स्मारक निधि, सेवापुरी, वाराणसी, पृ.-50

समकालीन हिंदी साहित्य में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श



डॉ. नुरजहाँ रहमतुल्लाह

सारांश :

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी तक महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्शों ने साहित्य की संरचना, विषय-वस्तु और दृष्टि को मूल रूप से परिवर्तित किया है। ये विमर्श उन वर्गों की सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक समस्याओं को केंद्र में लाते हैं, जिन्हें लंबे समय तक साहित्य की मुख्यधारा से बाहर रखा गया। समकालीन हिंदी साहित्य में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी लेखन सामाजिक समानता, अस्मिता और सामाजिक न्याय की चेतना को विकसित करता है। इससे ये तीनों विमर्श अलग-अलग अनुभवों से जन्म लेकर भी एक साझा वैचारिक लक्ष्य-मानवीय गरिमा और समतामूलक समाज-की ओर अग्रसर हैं। यह शोध हिंदी साहित्य को एक समावेशी, लोकतांत्रिक और परिवर्तनकारी मंच के रूप में रेखांकित करता है।

इन विमर्शों ने हिंदी साहित्य की विषय-वस्तु, दृष्टि और संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इन विमर्शों ने उन वर्गों की आवाज को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया है, जिन्हें लंबे समय तक सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर हाशिए पर रखा गया। महिला विमर्श ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की स्थिति, उसकी अस्मिता और अधिकारों पर प्रश्न उठाए हैं। दलित विमर्श ने जाति-आधारित भेदभाव, शोषण और सामाजिक अन्याय को उजागर करते हुए समानता और मानवीय गरिमा की चेतना को सशक्त किया है। तृतीय पंथी विमर्श ने लैंगिक पहचान से जुड़ी धारणाओं को चुनौती देते हुए सामाजिक स्वीकृति, सम्मान और अधिकारों की माँग को सामने रखा है। समकालीन हिंदी साहित्य में इन विमर्शों की उपस्थिति साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और संवेदनशील बनाती है तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान करती है।

बीज शब्द :

समकालीन हिंदी साहित्य, महिला विमर्श, दलित विमर्श, तृतीय पंथी विमर्श, सामाजिक समानता, अस्मिता, सामाजिक न्याय, हाशियाकरण आदि।

प्रस्तावना :

समकालीन हिंदी साहित्य भारतीय समाज में घटित सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की जीवंत अभिव्यक्ति है। स्वतंत्रता के बाद के दशकों में लोकतंत्र, शिक्षा और संवैधानिक मूल्यों के विस्तार के बावजूद भारतीय समाज में लिंग, जाति और लैंगिक पहचान के आधार पर असमानता बनी रही।

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
कोर्टन विश्वविद्यालय, पानबाजार
गुवाहाटी (असम)-781001
☎ 9435161674
✉ nupadinory@gmail.com

इसी पृष्ठभूमि में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्शों का उदय हुआ। इन विमर्शों ने साहित्य को केवल सौंदर्यात्मक अनुशासन न मानकर सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम बनाया। महिला विमर्श ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की स्थिति पर प्रश्न उठाए; दलित विमर्श ने जाति-आधारित शोषण और सामाजिक अन्याय को उजागर किया; वहीं तृतीय पंथी विमर्श ने लैंगिक पहचान से जुड़ी रूढ़ धारणाओं को चुनौती दी।

इन विमर्शों की वैचारिक जड़ें सामाजिक समानता और न्याय की उस चेतना में हैं, जिसे डॉ. भीमराव अंबेडकर और सावित्रीबाई फुले जैसे समाज-सुधारकों के विचारों से बल मिला। समकालीन हिंदी साहित्य में इन विमर्शों की उपस्थिति साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और मानवीय बनाती है।

महिला विमर्श ने पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी अस्मिता और अधिकारों पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं। दलित विमर्श ने जाति-आधारित शोषण और सामाजिक अन्याय को उजागर कर समानता और मानवीय गरिमा की मांग को केंद्र में रखा है। वहीं तृतीय पंथी विमर्श ने लैंगिक पहचान से जुड़ी रूढ़ धारणाओं को चुनौती देते हुए सामाजिक स्वीकृति और सम्मान की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इन तीनों विमर्शों की वैचारिक पृष्ठभूमि सामाजिक न्याय और समानता की उस चेतना से जुड़ी है। समकालीन हिंदी साहित्य में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और मानवीय बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

महिला विमर्श और समकालीन हिंदी साहित्य :

महिला विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा है। स्त्री लेखन ने परिवार, विवाह, मातृत्व, श्रम, देह और शिक्षा जैसे विषयों के माध्यम से स्त्री-जीवन की जटिलताओं को उजागर किया है। आधुनिक शिक्षा, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा वैश्विक नारी आंदोलन के प्रभाव से भारतीय समाज में स्त्री चेतना का विकास हुआ। इसी चेतना ने हिंदी साहित्य में महिला विमर्श को जन्म दिया। समकालीन हिंदी साहित्य स्त्री को केवल त्याग और सहनशीलता की प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि

स्वतंत्र व्यक्तित्व और अधिकार-संपन्न मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करता है। महिला साहित्य सामाजिक समानता को केवल अधिकारों के प्रश्न तक सीमित नहीं रखता, बल्कि सम्मान, स्वायत्तता और निर्णय-क्षमता की माँग करता है। यह विमर्श स्त्री को सहनशील वस्तु नहीं, बल्कि विचारशील और संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करता है। समकालीन महिला लेखन ने पितृसत्तात्मक सत्ता-संरचना पर गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं। समकालीन महिला साहित्य में परिवार, विवाह, मातृत्व, श्रम, शिक्षा और देह जैसे विषयों के माध्यम से स्त्री-जीवन की जटिलताओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह लेखन केवल व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना पर गंभीर प्रश्न भी खड़े करता है। महिला विमर्श सामाजिक समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की माँग करता है तथा समकालीन हिंदी साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक और समावेशी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने जैसे कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा आदि लेखिकाओं ने स्त्री की स्वतंत्र सोच, मध्यम वर्गीय परिवारों में स्त्री की स्थिति, दांपत्य जीवन, सामाजिक संघर्षों का यथार्थ, स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नैतिकता और सामाजिक बंधनों पर प्रश्न, ग्रामीन स्त्रियों के जीवन, संघर्ष और आत्मसम्मान की प्रमुखता, श्रमिक वर्ग, कामकाजी महिलाओं तथा सामाजिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण किया है। समकालीन हिंदी साहित्य में महिला विमर्श केवल स्त्री की पीड़ा का चित्रण नहीं है, बल्कि उसके आत्मविश्वास, संघर्ष, स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की चेतना का साहित्यिक दस्तावेज है।

दलित विमर्श : प्रतिरोध और समानता की चेतना :

भारतीय समाज में वर्ण एवं जाति व्यवस्था के कारण दलित समुदाय सदियों तक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण का शिकार रहा। आधुनिक काल में महात्मा ज्योतिराव फुले, डॉ. भीमराव अंबेडकर, पेरियार तथा अन्य समाज सुधारकों के प्रयासों से दलित चेतना का विकास हुआ। दलित विमर्श का अर्थ है- दलित

समाज के जीवन, संघर्ष, अधिकार, अस्मिता और सामाजिक न्याय से जुड़े प्रश्नों पर विचार करना। दलित साहित्य में प्रतिरोध केवल सामाजिक विद्रोह नहीं है, बल्कि आत्मसम्मान, अधिकार और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का संघर्ष है। दलित विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य की सबसे सशक्त प्रतिरोधी धारा मानी जाती है। दलित साहित्य का मूल आधार अनुभवजन्य यथार्थ है, जो जाति-आधारित शोषण, अपमान और सामाजिक बहिष्कार को उजागर करता है। दलित लेखन में सामाजिक समानता केवल वैचारिक आदर्श नहीं, बल्कि जीवन-संघर्ष का लक्ष्य है। यह विमर्श सामाजिक संरचना की अमानवीयता को सामने लाकर साहित्य को सामाजिक न्याय का माध्यम बनाता है। दलित साहित्य की चेतना भारतीय लोकतंत्र के समतामूलक आदर्शों को मजबूती प्रदान करती है। समकालीन हिंदी साहित्य में दलित चेतना का स्वर अधिक व्यापक और सशक्त हुआ है। आज का दलित साहित्य केवल शोषण का वर्णन नहीं करता, बल्कि परिवर्तन, संघर्ष और सामाजिक समानता का साहित्य बन चुका है। इसमें दलित स्त्री, श्रमिक, ग्रामीण जीवन, शिक्षा, राजनीति और सांस्कृतिक अस्मिता जैसे अनेक प्रश्न शामिल हैं।

दलित साहित्य में प्रतिरोध केवल व्यवस्था-विरोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समानता, सम्मान और मानवीय गरिमा की सशक्त माँग भी है। आत्मकथाएँ, कविताएँ और कथात्मक रचनाएँ दलित जीवन के संघर्षों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती हैं। यह विमर्श जाति-व्यवस्था की जड़ों पर प्रश्न उठाते हुए सामाजिक संरचना में परिवर्तन की चेतना को विकसित करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श ने वंचित वर्गों की आवाज को केंद्र में स्थापित कर साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक और संवेदनशील बनाया है। समकालीन दलित लेखन सामाजिक परिवर्तन का दस्तावेज बनकर उभरा है, जो समावेशी और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। भविष्य में भी यह विमर्श साहित्य और समाज दोनों को नई दिशा प्रदान करता रहेगा।

तृतीय पंथ विमर्श : पहचान और स्वीकृति की तलाश :
भारतीय समाज में तृतीय पंथ समुदाय का उल्लेख

प्राचीन काल से मिलता है। धार्मिक ग्रंथों, लोक कथाओं और इतिहास में उनकी उपस्थिति के प्रमाण हैं, किंतु समय के साथ सामाजिक पूर्वाग्रहों और उपेक्षा के कारण यह समुदाय मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ गया। तृतीय पंथ विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य की एक उभरती हुई वैचारिक धारा है, जो किन्नर, ट्रांसजेंडर तथा अन्य लैंगिक अल्पसंख्यक समुदायों के जीवन, संघर्ष, अस्मिता और सामाजिक अधिकारों को केंद्र में रखती है। हिंदी तृतीय पंथी विमर्श हिंदी साहित्य की अपेक्षाकृत नई, लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण धारा है। यह साहित्य लैंगिक पहचान के आधार पर होने वाले सामाजिक बहिष्कार, अपमान और हिंसा को स्वर देता है।

तृतीय पंथी लेखन समाज की द्विलिंगी सोच को चुनौती देता है और यह प्रश्न उठाता है कि क्या समानता केवल स्त्री-पुरुष के ढाँचे में ही संभव है। यह विमर्श सामाजिक समानता को पहचान, स्वीकृति और आत्मसम्मान से जोड़ता है। यह विमर्श उस समुदाय की सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक पीड़ा को स्वर देता है, जिसे लंबे समय तक समाज की मुख्यधारा से बाहर रखा गया। तृतीय पंथी साहित्य लैंगिक पहचान से जुड़ीं रूढ़ धारणाओं, भेदभाव और बहिष्कार को उजागर करते हुए पहचान और स्वीकृति के प्रश्न को केंद्र में लाता है। तृतीय पंथी लेखन केवल लैंगिक भिन्नता की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समानता, सम्मान और मानवीय गरिमा की सशक्त माँग भी करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में तृतीय पंथी विमर्श ने अनुभवजन्य यथार्थ को महत्व देकर साहित्य को अधिक संवेदनशील बनाया है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जैसे लेखकों के लेखन ने तृतीय पंथी जीवन की वास्तविकताओं को सामने लाकर सामाजिक चेतना को जाग्रत किया है। यह विमर्श साहित्य के माध्यम से समाज में स्वीकृति, समावेशन और समान अधिकारों की दिशा में सार्थक संवाद स्थापित करता है। समकालीन भारत में तृतीय पंथ समुदाय की स्थिति में परिवर्तन के प्रयास हुए हैं। न्यायपालिका, सरकार, शिक्षा संस्थानों और सामाजिक संगठनों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है। साहित्य, सिनेमा, मीडिया और डिजिटल मंचों पर भी तृतीय पंथ समुदाय के जीवन के अधिक

संवेदनशील और यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। तृतीय पंथ समुदाय की वास्तविक स्वीकृति तभी संभव है, जब समाज पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उन्हें समान अधिकारों और सम्मान के साथ स्वीकार करे। समकालीन हिंदी साहित्य इस परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है।

महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श भिन्न अनुभवों से जन्म लेकर भी एक साझा वैचारिक धरातल पर मिलते हैं। तीनों ही विमर्श सत्ता, ज्ञान और संस्कृति की एकांगी संरचनाओं को चुनौती देते हैं।

इनकी भाषा, शिल्प और अभिव्यक्ति में प्रतिरोध, आत्मकथात्मकता और सामाजिक चेतना प्रमुख तत्व हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में इन विमर्शों की उपस्थिति सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देती है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य में महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श सामाजिक समानता और अस्मिता की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। इन विमर्शों ने साहित्य को अभिजात वर्ग की सीमाओं से बाहर निकालकर वंचित समुदायों की आवाज बनाया है। यह साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध

का स्वर प्रस्तुत करता है और एक समतामूलक, न्यायपूर्ण तथा मानवीय समाज की परिकल्पना को सशक्त करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में इन विमर्शों की भूमिका सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य है। इन विमर्शों ने लंबे समय से हाशिए पर रखे गए वर्गों की आवाज को साहित्य के केंद्र में स्थापित कर सामाजिक समानता, अस्मिता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया है। महिला विमर्श ने पितृसत्तात्मक संरचना में स्त्री की स्थिति पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए स्वतंत्रता और अधिकारों की चेतना को सशक्त किया। दलित विमर्श ने जाति-आधारित शोषण और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति दी तथा समानता के लोकतांत्रिक मूल्यों को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। तृतीय पंथी विमर्श ने लैंगिक पहचान से जुड़ी रूढ़ धारणाओं को चुनौती देते हुए सामाजिक स्वीकृति और सम्मान की आवश्यकता को रेखांकित किया। कहा जा सकता है कि महिला, दलित तथा तृतीय पंथी विमर्श न केवल साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सशक्त वैचारिक शक्तियाँ भी हैं, जो समतामूलक और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश-दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. सिंह, नामवर-साहित्य और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
3. चौधरी, नीरजा-स्त्री विमर्श : सिद्धांत और स्वरूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
4. त्रिपाठी, लक्ष्मी नारायण-मी हिजड़ा मी लक्ष्मी, राजहंस प्रकाशन, मुंबई, 2015
5. कुमार, ब्रजेश-समकालीन हिंदी साहित्य और विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018
6. मंडलोई, सुभाषचंद्र-दलित विमर्श और हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2010
7. मिश्रा, अजय-हिंदी साहित्य में अस्मिता विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2016
8. मंडलोई, सुभाषचंद्र-दलित विमर्श और हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2010
9. पांडेय, रामविलास-साहित्य और विचारधारा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984
10. जैन, गरिमा-समकालीन स्त्री लेखन, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
11. मिश्रा, अजय-हिंदी साहित्य में अस्मिता विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2016

भारतीय ज्ञान परंपरा की पृष्ठभूमि और हिंदी साहित्य से उसका संबंध



डॉ. अर्चना त्रिपाठी

शोध-सार :

यह आलेख भारतीय ज्ञान परंपरा की वैदिक जड़ों से लेकर हिंदी साहित्य की आधुनिक काव्य-धारा तक फैली उसकी निरंतर उपस्थिति और रूपांतरण का अनुशीलन करता है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद और वेदांगों के माध्यम से विकसित हुई ऋषि-परंपरा को मनुष्य के आचरण-निर्माण, चरित्र-शुद्धि और समष्टि-केंद्रित नैतिक दृष्टि के मूल स्रोत के रूप में रेखांकित किया गया है। वाल्मीकि के रामायण से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, सूर, रहीम, रसखान, बिहारी और अन्य रीतिकालीन कवियों तक, तथा आगे चलकर प्रसाद, निराला, दिनकर और अन्य आधुनिक रचनाकारों तक, अध्ययन यह दिखाता है कि भक्ति, रीति और नवजागरण-काव्य के भीतर लोकमंगल, वसुधैव कुटुंबकम्, प्रकृति-हजीवन, धर्म-कर्म, योग और वैदिक मानवतावाद की धारा सतत सक्रिय रही है। लेख में यह प्रतिपादित किया गया है कि 20वीं शताब्दी की हिंदी कविता को केवल पाश्चात्य विचारधाराओं या स्वाधीनता आंदोलन की राजनीतिक पृष्ठभूमि से नहीं समझा जा सकता, बल्कि उसे गीता, उपनिषद, वैदिक जीवन-दृष्टि और भारतीय आर्ष ग्रंथों के समन्वित आध्यात्मिक-नैतिक परिप्रेक्ष्य में पढ़ना आवश्यक है। इस प्रक्रिया में भारतीयता को 'जोड़ने, समेटने और मानव-चेतना के विस्तार' की वृत्ति के रूप में व्याख्यायित किया गया है, जो साहित्य को जाति, वर्ग, लिंग और संकीर्ण अस्मिताओं से परे एक समावेशी, करुणामय और सार्वभौमिक मानवीयता की साधना बना देती है।

बीज शब्द :

भारतीय ज्ञान-चिंतन परंपरा, वैदिक जीवन-दृष्टि और मानवतावाद, ऋषि परंपरा, लोकमंगल और सामाजिक समरसता, वसुधैव कुटुंबकम्, प्रकृति-सहजीवन, भारतीयता और नवजागरण, सार्वभौमिक मानवीयता।

प्रस्तावना :

जब हम भारतीय ज्ञान परंपरा की बात करते हैं तो सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि उसकी पृष्ठभूमि क्या है? और भारतीय चिंतन की धारा किस तरह साहित्य, समाज और संस्कृति के बीच प्रवाहित होती रही?

पाश्चात्य चिंतन और भारतीय चिंतन में अंतर किस तरह रहा है? इन महत्वपूर्ण बिंदुओं को समझना जरूरी है। नई शिक्षा नीति जहां एक तरफ ने भारतीय परंपरा, भारतीय मूल्यों का संरक्षण करने तथा भारतीय भाषाओं के अध्ययन पर जोर दिया है तो दूसरी तरफ उसने भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़ने, जानने और समझने की ओर

सह आचार्य, हिंदी विभाग
जीसस एंड मेरी कॉलेज
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली, चाणक्यपुरी - 110021
☎ 9891021839
✉ jnuarchanatritpathi@gmail.com

विद्यार्थियों, शोधार्थियों और प्राध्यापकों को उन्मुख भी किया है। यह बहुत जरूरी प्रयास है और इसमें हम अपनी बहुमूल्य धरोहर से परिचित होने के साथ-साथ गौरव की अनुभूति भी कर रहे हैं कि हम सभी भारत में निवास करने वाले लोग ज्ञान की अपनी ऋषि परंपरा के संवाहक बन रहे हैं, उसे आगे ले जाने का कार्य कर रहे हैं। यह अपने आप पर और अपनी संस्कृति पर गौरव करने वाली बात है।

अज्ञेय की एक पंक्ति है—

किसी का सत्य था,

मैंने संदर्भ में जोड़ दिया ।

कोई मधुकोष काट लाया था,

मैंने निचोड़ लिया ।

इस शोधपरक लेख में मेरा मूल्य उद्देश्य भारतीय चिंतन परंपरा के अविरल प्रवाह को साहित्य के संदर्भ में देखना और विश्लेषित करना है।

जब हम भारतीय ज्ञान परंपरा के आरंभ या मूल तत्व की बात करते हैं तो सर्वप्रथम हमें वेदों का ध्यान करना जरूरी है। विदित है कि वेदों की भाषा, विशिष्ट भाषा रही जिसे वैदिक भाषा ही कहा गया। वह ज्ञान की भाषा थी, मेधा की भाषा थी और वह देवों की भाषा भी थी। यह भी कहा जाता है कि वेदों का निर्माण ईश्वर ने ऋषियों को ज्ञान प्रदान करने के लिए किया इसलिए कहा गया है कि वेदों को सभी लोग नहीं समझ सकते हैं। हमें यह भी जानना जरूरी है कि ऋषि कौन हैं? ऋषि वे हैं जो निर्मल हृदय, निर्मल मन के अपने भीतर, अपने जीवन और आचरण में सात्विक-वृत्तियों को धारण करने वाले हैं।

भारतीय चिंतन प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण सूत्र यह है कि भारतीय ज्ञान/चिंतन की परंपरा मनुष्य के आचरण को शुद्ध करने, उसका चरित्र निर्माण करने वाली रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व और उसके साथ ही आचरण निर्माण पर विशेष बल दिया गया है। शिक्षा ग्रहण करने के योग्य बनाने अर्थात् पात्रता पर विशेष बल दिया गया है।

यदि चलनी में पानी डाला जाएगा तो वह रुकेगा नहीं तो जरूरी है पात्रता। पात्रता चरित्र के शुद्धीकरण और आचरण व्यवहार से ही निर्मित होती है। भारतीय ज्ञान की परंपरा में आचरण और चरित्र को विशेष महत्व दिया गया

है। यह अनायास नहीं है कि आज भी शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों को चरित्र प्रमाण पत्र दिए जाने की परंपरा है।

वेदों को समझने और ठीक ढंग से जानने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों की रचना की गई जो ऋषियों ने की, अर्थात् भारतीय चिंतन की धारा को आगे ले जाने का कार्य ऋषियों ने किया इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा ऋषि परंपरा भी है।

ब्राह्मण ग्रंथों के बाद वेदों के कुछ दूसरे कठिन सूत्रों को समझने और उसका पारायण करने के लिए आरण्यक ग्रंथों की रचना की गई। जैसा कि नाम से ही तय है ऋक्ष आरण्यक अर्थात् ऋषि, जो निर्जन स्थानों में रहकर वेदाभ्यास करते थे। वेदों के कठिन बल्कि सही शब्द है 'गूढ़' विषयों को समझने के लिए आरण्य के एकांत में साधना रत होकर लिखे गए ग्रंथ आरण्यक कहलाए। इसके बाद उपनिषदों की रचना हुई। उपनिषद वह विद्या है जो साधना का विषय है। भारतीय ज्ञान की धारा कैसे धीरे-धीरे निरंतर अलग अलग दिशाओं में प्रवाहित हो रही थी? वह निरंतर चिंतन विचार और अनुभूति से होकर वह आगे बढ़ रही थी। उपनिषदों को सर्वश्रेष्ठ विद्या कहा गया क्योंकि यह ज्ञान की उस अवस्था की ओर ले जाती है जहां आप अनुभूत कर लेते हैं।

इस प्रकार ज्ञान के चार प्रमुख आधार रहे ह—

वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ और उपनिषद। भारतीय ज्ञान परंपरा प्रचार की नहीं विस्तार का विषय रही है, संचार का विषय रही हैं। वेदों में जो ज्ञान के सूत्र रहे हैं उनमें ज्ञान की बातें सूक्तों (मंत्रों) के माध्यम से कही गई हैं, ब्राह्मण ग्रंथ जिसमें वेदों को समझने का प्रयास है एवं आरण्यक ग्रंथों में वेदों के अध्यात्मिक दर्शन की व्याख्या है।

हमारे यहां वेदों के अध्ययन अध्यापन पठन-पाठन एवं उसके अर्थ को जानने के लिए वेदांग साहित्य की रचना की गई। वेदांग साहित्य के छः अंग हैं —

1. शिक्षा—अर्थात् वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा देने के लिए 20 से अधिक ऋषियों ने पुस्तकें लिखीं।

2. कल्प साहित्य—समें श्रवण तथा अर्थ ग्रहण संबंधी सूत्र बताए गए हैं।

3. व्याकरण—महर्षी पाणिनि का लिखा 'अष्टाध्यायी' एक ऐसा ग्रंथ है जिस पर आज के भारतीय भाषाओं का

व्याकरण आधारित है। इसके बाद 'कात्यायन' और 'पतंजलि' का भी नाम आता है। जिन्होंने पाणिनि की परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य किया।

4. निरुक्त साहित्य-यास्क ने वैदिक निरुक्त की रचना की जिसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या है।

5. छंद-पिंगल ने छंद सूत्र की रचना की।

6. ज्योतिष-वेदांग ज्योतिष की रचना की गई।

यह है हमारी वैदिक ज्ञान परंपरा, इसके बाद लौकिक परंपरा भी प्रारंभ होती है। लौकिक साहित्य में प्रेरणा पौराणिक चरित्र रहे हैं। राम के चरित्र को महत्वपूर्ण आधार बनाकर महाकाव्य लिखा गया। आदि कवि वाल्मीकि का नाम तो सभी ने सुना होगा वे स्वयं ऋषि परंपरा के प्रवर्तक हैं। अरण्यों में रहने वाले ऋषि हैं, वाल्मीकि जिनके जीवन से जुड़ी अनेक कथाएँ हैं और राम काव्य की उत्पत्ति से जुड़ी कथा भी है। किस प्रकार उनके भीतर करुणा जन्मी और उससे जो छंद निकला उससे साहित्य का जन्म हुआ। लौकिक साहित्य के द्वारा राम के माध्यम से भी वैदिक चिंतन परंपरा को ही आगे ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। यह कहा जा सकता है कि वे एक पौराणिक चरित्र हैं वैदिक कैसे है? तो समझने वाली बात यह है कि राम के चरित्र, आचरण शिक्षा सबकुछ के माध्यम से उनका निर्माण वैदिक चिंतन पद्धति द्वारा ही किया गया है। राम को दो महत्वपूर्ण गुरुओं का संरक्षण प्राप्त होता है। गुरु वशिष्ठ और गुरु विश्वामित्र दोनों ने मिलकर उनके चरित्र को गढ़ा है। जैसे गुरु अपने शिष्य के चरित्र को गढ़ता है और ये दोनों मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। और उसी राम के चरित्र को आधार बनाकर वाल्मीकि ने जो महाकाव्य लिखा 'रामायण' उसके द्वारा एक तरह से वैदिक चिंतन की परंपरा को ही आगे बढ़ाया है। दरअसल राम के चरित्र को राम की महानता के रूप में सबने स्वीकार तो कर लिया किंतु उनके चरित्र में जो गुरुओं का प्रकाश निहित है, जो गुरुओं का तेज छुपा है, जो गुरुओं का स्नेह आशीर्वचन है उसके अध्ययन की भी जरूरत है। इस पर बहुत विचार नहीं किया गया। यह अनायास नहीं है कि भारतीय संस्कृति, हमारी चिंतन परंपरा में गुरु को श्रेष्ठ मानकर पूजा जाता है। सारस्वत सम्मान और व्यास पूजा की परंपरा आज भी रही है। गुरु से मंत्र धारण करने की परंपरा रही है। कबीर से लेकर तुलसी अर्थात्

निर्गुण सगुण- सभी के यहाँ गुरु की महत्ता विशिष्ट है।

कबीर भी कहीं न कहीं उसी वैदिक परंपरा को ही महत्त्व देते हैं जब वे कहते हैं -

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक ।

लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक ॥

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार ॥

जायसी ने यहाँ तक कहा है कि 'गुरु सुआ जोहि पंथ देखावा'

तुलसीदास ने तो गुरु के चरणों की वंदना से ही रामचरितमानस का आरंभ करते हैं।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥

अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥

वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की परंपरा को हिंदी साहित्य में तुलसीदास आगे बढ़ाते हैं। यह एक तरह से वैदिक जीवन पद्धति को ही आगे बढ़ाना और उसके माध्यम से समाज को प्रेरित करना है। 'रामचरितमानस' के द्वारा मनुष्य का आचरण संबंधों की मर्यादा, वचनबद्धता, सत्यवादिता मर्यादा की रक्षा, कर्तव्य परायणता, सदाशयता त्याग, बंधुत्व, जैसे वैदिक जीवन पद्धति के मूल्यों को ही संरक्षित और अक्षुण्ण बनाए रखने की कोशिश है। वहाँ जाति, धर्म से ऊपर व्यक्ति का आचरण है। आचरण ही मनुष्य को ऊपर उठाता है, उसकी सात्विक वृत्तियों को जागृत करता है। वरना तो मनुष्य और राक्षस में कोई अंतर ही नहीं। चाहे वह निषादराज हो या जटायू हो वे अपने उत्तम चरित्र के आधार पर राम के परम मित्र हैं। वहाँ राजसी ढाढ़ बाट से जीवन जीना उद्देश्य नहीं है बल्कि धर्मसंगत समस्त प्रजा की चिंता करते हुए भोग नहीं त्याग मय, जीवन जीना उद्देश्य है।

तुलसीदास जी कहते हैं - पर हित सरिस धर्म नहीं भाई । पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ॥ यह सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया । का उपनिषद चिंतन ही है। यहाँ भाव 'वसुधैव कुटुंबकम्' का है न कि पश्चिम का ग्लोबलाइजेशन है। वैश्विक धरातल पर देखा जाए तो उदारीकरण, भूमंडलीकरण ये सब एक हवाई बातें शाबित होती हैं। कोई मूल्य नहीं निर्मित कर पाई। तुलसीदास जी

‘नानापुराणनिगमागमसम्मतम्’ की बात करते हैं जो वैदिक साहित्य, उपनिषद और धर्म शास्त्रों पौराणिक ग्रंथों से जुड़ी हुई हैं उनका भी अध्ययन तुलसीकृत रामचरितमानस के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। तुलसीदास के रामचरितमानस में दो बीज शब्द हैं एक लोकमंगल और दूसरा सामाजिक समरसता। यह दोनों आधार भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा से ही जुड़े हुए हैं। सर्वेभवंतु सुखिन : का भाव ही लोकमंगल है और सामाजिक समरसता वसुधैव कुटुंबकम् का विस्तार है। तुलसीदास के मानस में ‘जलचर, थलचर, नभचर नाना, जे जड़ चेतन जीव जहाना’ की पूर्ण स्वीकृति है। तुलसीदास इसी भाव संबंध को मजबूत करने की बात करते हैं। वह मूल्य और नैतिकता पर विशेष बल देते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की जो चिंतन परंपरा है वह किसी भी समाज को बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। इस दार्शनिक आधारशिला को निम्न बिंदुओं के द्वारा समझाया जा सकता है।

धर्म-धर्म एक प्रकार का नैतिक दायित्व है। धर्म के मार्ग पर चलकर ही जीवन के सच्चे उद्देश्य को पूर्ण किया जा सकता है। परिवार में सबका धर्म निर्धारित है सबकी नैतिक जिम्मेदारी है। अपने माता-पिता, गुरु एवं परिवार के सभी बड़े सदस्यों के प्रति आदर का भाव एक धर्म है। जहां धर्म का ठीक से निर्वाह नहीं होता वहां धर्म और निरंकुशता को बढ़ावा मिलता है। अमर्यादित व्यवहार और आचरण परिवार, समाज और राष्ट्र के पतन का कारण बनते हैं। तुलसीदास अपनी परंपरा का पालन करते हुए धर्मयुक्त आचरण की बात करते हैं।

अर्थ-अर्थ का संबंध मनुष्यों के कर्म से भी जुड़ा हुआ है। कर्म में शुचिता और ईमानदारी होनी चाहिए। कर्म पूजा के समान होना चाहिए। जब हम परिश्रम और शुचितापूर्ण कर्म के मार्ग पर चलकर धन का अर्थ का उपार्जन करते हैं तो वह हमारी वृद्धि करता है। हमें ऐश्वर्यावन बनता है। एक व्यक्ति का किया गया अच्छा कर्म उसके पूरे परिवार की अच्छा फल देता है। और कोई व्यक्ति यदि गलत ढंग से धन का उपार्जन करता है तो उसका खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ता है। परिवार में कोई सदस्य यदि गलत रास्ते की ओर जाता है तो परिवार ही उसे रोकता है उसे सही मार्ग भी दिखाता है। इसलिए भी परिवार की

भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अच्छा कर्म पूरे परिवार में सुख समृद्धि लाती है।

काम-इच्छाओं पर, भावनाओं पर संयम भी होना चाहिए। और मोक्ष तो भक्तिकालीन कवियों का लक्ष्य ही है। यही भारतीय चिंतन परंपरा है जिसे वृहद स्तर पर भक्तिकालीन कवियों ने समाज में प्रवाहित किया है।

तुलसीदास ने अपने ‘रामचरितमानस’ में मानवीय संबंधों के आदर्श के साथ-साथ मानवोत्तर संबंधों का आदर्श भी प्रस्तुत किया है। मनुष्य का प्रकृति के साथ सहजीविता और सामंजस्य के भाव को समझने के लिए ‘रामचरितमानस’ अपने आप में समीचीन है। इसी प्रकार देखा जाए तो कृष्ण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास कृत ‘सूरसागर’ में भारतीय ज्ञान भागवत भक्ति का समाहार तो मिलता ही है लोक के धरातल पर पूरी किसान संस्कृति और गोचारण संस्कृति का समावेश भी देखने को मिलता है। गायों को अपने जीवन में विशेष महत्व देने वाले गोपाल ग्वालों का जीवन पूरी तरह से सूरसागर में प्रतिबिंबित है। सूरदास ने कृष्ण के चरित्र को आधार बनाकर ‘सूरसागर’ जैसा वृहद ग्रंथ लिखा और देखा जाए तो कृष्ण का चरित्र भी वैदिक जीवन पद्धति –आनंदवादी धारा का ही प्रवाह है। कृष्ण भी धर्म और अधर्म के बीच के अंतर को बताते चलते हैं और धर्म अर्थात् मनुष्य के हित और कल्याण के भाव को संरक्षित करते हैं। यहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा की लोक की धारा भी साथ-साथ प्रवाहित होती रही है और वह भी कही न कही शास्त्रीय विधि विधान का ही व्यवहारिक रूप रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक और वेद को अलगाकर नहीं देखा जा सकता है। दोनों एक-दूसरे से अविच्छिन्न हैं। यहां लोक का अध्ययन वेद का हिस्सा रहा है और वेद को लोक ने अपने आचरण, व्यवहार में स्वीकृत किया है। इसीलिए हमारी संस्कृति में संरक्षण’ और ‘आचरण’ को विशेष महत्त्व दिया गया है। उसे अपने जीवन पद्धति का हिस्सा अपने व्यवहार और आदत में लाना ही कर्तव्यनिष्ठा है। हमारी संस्कृति में धरती माँ है यह शास्त्र सम्मत भी है। आकाश पिता है। जननी और जन्मभूमि को समान महत्व और श्रेष्ठ माना गया है। भारतीय संस्कृति में लोक का अर्थ समूची दृष्टि है। जिसे तुलसीदास जी ‘जे जड़ चेतन जीव जहाना’ कहते हैं। जड़ और चेतन में कोई भेद नहीं है।

प्रकृति के साथ आपसी सद्भाव, तालमेल, उसके साथ सुख दुख की साझेदारी- यह सब कुछ भारतीय ज्ञान परंपरा का हिस्सा है। जायसी कृत पद्मावत में लौकिक और अलौकिक भाव एक साथ गूँथे हुए रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। उनके पद्मावत में भारत की चिंतन परंपरा और लोक के रीति रिवाज सबकुछ समाहित हैं। जायसी के यहाँ बारहमासा की परंपरा का प्रयोग हुआ है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा का हिस्सा है। दुनिया के किसी दूसरे साहित्य में आपको बारहमासा की परंपरा नहीं दिखाई देगी क्यों? क्योंकि 12 महीनों के अंतराल में जो ऋतुओं का परिवर्तन है वह और कहीं, किसी देश में नहीं है। हमारे यहाँ छः ऋतुएं होती हैं और प्रत्येक ऋतु में दो महीने अलग भाव स्थिति को लिए होते हैं। आप वर्षा ऋतु की प्रकृति देख लीजिए ङ्क आषाढ़ की वर्षा, सावन की वर्षा, भादो की वर्षा तीनों में अंतर भी है। यह अंतर ऋतु परिवर्तन का सूचक है।

चढ़ा असाढ़ गगन घन बाजा (जायसी)

भादो की वर्षा -

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह नघन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर
नाहीं ॥ (तुलसी)

यहाँ तक की जायसी ने नक्षत्रों की वर्षा का भी वर्णन किया है -

‘बरिसैं मघा झँकोरि झँकोरी।

मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी ॥’

जायसी एक ऐसे मुसलमान कवि हैं जो भारतीय सामूहिक मन को समझते हैं, लोक के रीति रिवाज से जुड़े हैं जो भारतीय ज्ञान परंपरा का हिस्सा रहा है। सगुण भक्तिधारा के तमाम मुस्लिम कवियों को कृष्ण ने इतना आकर्षित किया कि वे कृष्ण भक्त कवि कहलाए, वे सम्प्रदायों में दीक्षित हो गए।

भारतीय मन की इसी विशालता के कारण इसाई ‘कमिल बुल्के’ ने राम काव्य की परंपरा पर शोध कर डाला। ग्राउस ने रामचरितमानस का अनुवाद किया। इससे भी पहले मध्यकाल में दारा शिकोह ने फारसी में उपनिषदों का अनुवाद किया। उस उपनिषद् के ज्ञान से पूरा विश्व आश्चर्यचकित हो गया।

लौकिक वाङ्मय में कालिदास ने सर्वप्रथम भारतीय प्रकृति के रूप का वर्णन किया है। उन्होंने ही सर्वप्रथम

ऋतुओं के परिवर्तित रूप और उससे उत्पन्न प्रभाव को देखा। यह जो छः ऋतुएं हैं ये हमारी भारतीय संस्कृति में हैं और यही साहित्य में भी दिखाई देती हैं। सर्वप्रथम कालिदास ने ही स्त्री नायिका प्रधान महाकाव्य रचा। वह एक प्रकार से देखा जाए तो स्त्री चेतना का प्रस्थान बिन्दु है, जहाँ केंद्र में स्त्री है और उस स्त्री से प्रेम के फलस्वरूप एक पुरुष का विरह व्यक्त है। वह यक्ष का विरह है यक्षिणी के लिए। कालिदास ने शकुंतला जैसा नाटक लिखा जिसके केंद्र में भी स्त्री जीवन ही है।

भक्तिकाल के रहीम और रसखान की कविताओं को पढ़कर जान सकते हैं कि भारतीय चिंतन परंपरा क्या रही है। कितने कितने भारतीय ज्ञान, चिंतन लोक और शास्त्र उसमें समाहित है। रहीम जो तुलसीदास के परम मित्र थे दोनों के बीच संवाद, पत्र-व्यवहार, काव्य-शैली का आदान-प्रदान होता था। यह भी जिक्र मिलता है कि ‘बरवै छंद’ रहीम से चलकर तुलसी तक आया। रहीम ने तो भारतीय लोक जीवन का अद्भुत चित्रण किया, नीति काव्य लिखा है। ‘केतु कौटुकम्’ नामक ज्योतिष पर काव्य लिखा जो की अनुपलब्ध है। उसे खोजने की जरूरत है। यह शोध में नया आयाम जोड़ने वाला है। हिंदी साहित्य में उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल का मूल्यांकन केवल श्रृंगारिकता, ऐतिहासिकता और कला के आधार पर किया गया है किंतु भारतीय लोक उत्सवों का वर्णन रीतिकालीन कवियों ने किस रूप में किया है। बोली का, ब्रज की लोक संस्कृति का, प्रकृति के सौंदर्य का कितना अद्भुत वर्णन रीतिकाल में है।

बिहारी के श्रृंगारिक दोहे तो हमें खूब याद है किंतु उनकी ‘सतसई’ रीति श्रृंगार और नीति की त्रिवेणी है। राधा और कृष्ण की भक्ति भावना अपने श्रेष्ठ रूप में बिहारी की कविताओं में दिखाई देती है। उनके नीतिपरक दोहे जिनकी परंपरा संस्कृति काव्य में मौजूद है उसे क्यों नहीं ठीक ढंग से देख पढ़ा जाता है। कहा जाता है कि बिहारी के एक दोहे को पढ़कर राजा जयसिंह ने अपना आत्म परिष्कार किया, कितनी तीक्ष्णता है उनमें परिष्कार की। साहित्य श्रेष्ठ वही है जो किसी व्यक्ति का मानसिक परिष्कार कर दे। रीतिकालीन कवि केशव ने ‘राम काव्य’ लिखा है। उनकी इतिहास दृष्टि अद्भुत है।

आधुनिक काल में भारतीय ज्ञान परंपरा की अभिव्यक्ति

नवजागरण एवं सांस्कृतिक रूपों में दिखाई देती है। स्वाधीनता के प्रश्न को आधार बनाकर आधुनिक साहित्य लिखा गया। 20वीं शताब्दी की श्रेष्ठ रचना कामायनी है। यह पूरा का पूरा वैदिक जीवन पद्धति को आगे लेकर आने वाला चिंतनपरक महाकाव्य है, जिसका उद्देश्य मनुष्यता का सुंदर इतिहास रचना है। देव सभ्यता की विलासिता से बाहर होकर एकाकी बचे मनु के जीवन में घोर नैराश्य छा गया है। सब कुछ विलीन हो चुका है लेकिन उनके भीतर धीरे-धीरे चेतना का जागरण प्रारंभ होता है और उन्हें फिर श्रद्धा मिलती है जो उनके जीवन में आशा का संचार करती है।

यहां 'श्रद्धा' के माध्यम से प्रसाद जी वैदिक सूत्र ही थमाते हैं हमें। जीवन जीने के लिए वह केवल भोग की बात नहीं करते हैं बल्कि कहते हैं-

‘कर्म का भोग, भोग का कर्म

यही जड़ का चेतन आनंद’

और मनु को समझते हुए, उनमें आशा का संचार करते हुए श्रद्धा कहती है-

‘शक्तिशाली हो विजयी बानो,

डरो मत अरे अमृत संतान’

विचित्र बात यह है कि हिंदी आलोचकों ने कामायनी की पंक्तियों को को सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट का प्रभाव/ अनुवाद माना और पश्चिमी प्रभाव को ही देखा परखा। यह उनका दृष्टि दोष है। लेकिन आप जब इस पंक्तियों को समझने के लिए वैदिक साहित्य में जाएंगे तो इनका सही अर्थ और सही संदर्भ समझ में आएगा। वैदिक साहित्य में व्यक्ति को ‘अमृत पुत्र’ ऋग्वेद में कहा गया है ‘विश्व अमृतस्य पुत्रः’ अर्थात् मनुष्य ईश्वर के अंश (दिव्यता) से युक्त है, उसका लक्ष्य अपने भीतर की शक्ति को पहचानना है जिसे वह भ्रमवश भूल गया है और यही भीतरी शक्ति ही उसे आगे बढ़ाने में सहायता करेगी। केवल बाहरी परिवेश, बाह्य वातावरण मनुष्य को नहीं गढ़ता है बल्कि उसकी आंतरिक शक्तियां उसे आगे लेकर जाती हैं इसलिए प्रतिकूल और विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति विकास कर लेता है। उसकी दृढ़ आंतरिक शक्ति उसे प्रेरित करती है। मनुष्य मजबूत तब बनता है जब वह अपने भीतर की ऊर्जा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

यह आत्म गौरव और आत्मविश्वास आपके भीतर

आपकी भारतीय ज्ञान परंपरा भरती है। जयशंकर प्रसाद भारतीय चिंतन परंपरा को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रवाहित और प्रसारित करने वाले राष्ट्र का पालन करने वाले श्रेष्ठ रचनाकार हैं।

यही निराला की राम की शक्ति पूजा में ‘शक्ति की करो मौलिक कल्पना’ भी है जिस पर गांधी का प्रभाव देखा गया। गांधी में भी आत्मबल कहां से आता है? भारतीय चिंतन परंपरा यम, नियम, आचरण और साधना, सत्य का व्रत गीता को पढ़कर ही आया न। प्रसाद और निराला के काव्य पर हम नवजागरण, स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव का हो तो खूब खोजते हैं किंतु उन पर भारतीय चिंतन परंपरा के प्रभाव को नहीं देख पाते हैं। जरूरत है इसे देखने समझने की। 20वीं शताब्दी के दौर में जहां राजनीति भी गीता से प्रेरित और प्रभावित है। ‘गांधी’ गीता का पाठ करते हैं, तिलक गीता का भाष्य रचते हैं वहां यह कैसे संभव है कि हमारे कवि जो चिंतक एवं मनीषी हैं, वह गीता के प्रभाव से अलग हो सकते हैं। भारतीय नवजागरण, पश्चिमी नवजागरण से भिन्न है, उसकी भाव भूमि भिन्न है, परिवेश भिन्न है, परिस्थिति भिन्न है। भारतीय नवजागरण में धर्म, विज्ञान, साहित्य और कला का जागरण साथ-साथ हुआ और उनका एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान हुआ। चाहे जगदीश चंद्र बसु का अनुसंधान हो या गीतांजलि की रचना या निराला और प्रसाद का साहित्य इन सबके भीतर एक भारतीय मन था, जो भारतीय चिंतन परंपरा से जुड़ा हुआ था। विवेकानंद कहते हैं कि- ‘भारतीय मन स्वभावतः एकत्व के भाव का अनुभव करने तथा दृश्यमान जगत के पीछे एक सुसंबद्ध ब्रह्मांड को देखने के समक्ष है।’ जीवन की पूर्णता के लिए विज्ञान और धर्म का समन्वय आवश्यक है। कामायनी में प्रसाद जी लिखते हैं-

‘शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;

समन्वय उसका करें समस्त

विजयिनी मानवता हो जाए।’

और यही भाव निराला की शक्ति पूजा में निहित है। निराला ने तो डंके की चोट पर ‘जागो फिर एक बार’ कविता में लिखते हैं- ‘योग्य जन जीता है, पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है।’ ‘सरोज स्मृति’ कविता निराला ने

लिखी तो कहा गया पश्चिम का elegy है। जबकि ठीक से पढ़ा जाए तो समझा जा सकता है कि यह भारतीय पिता की करुण पुकार है, अभावजन्य जीवन की दुखगाथा है। वह elegy नहीं है। निराला कहते हैं 'कविता परिवेश की पुकार है।' लेकिन इन सबको दरकिनार करके उनकी कविताओं पर पश्चात आलोचना के औजार चलाए गए उन्हें क्षत विक्षत किया गया। मनुष्य केवल देह मात्र है, नहीं उसके व्यक्तित्व के स्थूल शरीर से लेकर मन बुद्धि आत्मा तक सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम, स्तर गूथे हुए हैं। इनकी सही व्याख्या तो भारतीय चिंतन परंपरा में ही मौजूद है, जहां अन्नमय कोश से लेकर आनंदमय कोश तक की बात की गई है। कामायनी इसी अन्नमय कोश से आनंद कोश की यात्रा संपन्न करती है।

वैदिक चिंतन परंपरा समाज के आदर्श प्रवृत्तिमार्गी रही है जो योग, समन्वित त्याग का आदर्श सामने रखता है। इसने सहज स्वाभाविक जीवन दर्शन का आदर्श हमारे सामने रखा। विवेकानंद कहते हैं- 'श्रद्धा शब्द का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हो सकता।'।

कामायनी में श्रद्धा मनु को आत्मा विस्तार का जो संदेश देती है उसके उसमें गीता की ही प्रतिध्वनि सुनाई देती है-

'औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ, अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।'।

वहां सबसे बड़ा भूमंडलीकरण, उदारीकरण और पश्चिमी जीवन शैली पर प्रश्न खड़ा किया गया है।

'अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा

यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।'।

आज की नई पीढ़ी को अपनी प्राइवसी की सबसे अधिक चिंता रहती है और यह घातक जीवन शैली है, जो आत्महत्या तक पहुंचाने में समर्थ है। सच यही है कि अपना कुछ नहीं है सबका सब कुछ है, यही भाव व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाता है।

कामायनी में मानव मूल्य और नैतिक मूल्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा की गई है। वहां एक वैदिक दृष्टि है। मनुष्य की आत्मा विस्तार दृढ़ इच्छा शक्ति का नाम श्रद्धा है। यहां वैदिक मानवतावाद ही व्यापक धरातल पर राष्ट्रवाद है।

'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;

समन्वय उसका करें समस्त

विजयिनी मानवता हो जाए।'।

हमने युद्ध में यूक्रेन या रूस को हरा दिया तो क्या पा लिया, कुछ नहीं हमने तो बहुत कुछ खो दिया। अपनी मनुष्यता की भावना से नीचे गिर गए अधिकार किस पर और आधिपत्य क्यों? सब कुछ एक दिन स्वयं विलीन हो जाएगा इतिहास में आपका नाम नहीं आपका कर्म (कुर्म और सुकर्म) याद रखा जाएगा।

भारतीय नवजागरण भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रवृत्तिमार्गी की धारा को प्रवाहित करने वाला नवजागरण रहा है। यह पश्चिमी नवजागरण नहीं है। तिलक ने गीता की कर्मयोग परक व्याख्या की। विवेकानंद ने उस गीता को महत्व दिया जहां कृष्ण ने अर्जुन को संघर्ष में कूद पड़ने को प्रेरित किया। यहां उद्देश्य की रक्षा करना है, न्याय के पक्ष में खड़ा होना है।

जयशंकर प्रसाद को बुद्ध की करुणा स्वीकार है किंतु दुःखवाद नहीं क्योंकि वह दुःखवाद को वैदिक चिंतन परंपरा का हिस्सा नहीं मानते हैं। वैदिक परंपरा सत चित आनंद की परंपरा है। (सत्यम शिवम सुंदरम) जब वे सब बुद्ध पर कविता लिखते हैं तो उसे 'अरी वरुणा की शांत कछार! तपस्वी के विराग की प्यार !' कहते हैं। 'न दैन्यं न पलायनम्' में विश्वास नहीं करते हैं।

इस तरह से यदि हिंदी कविता के विकास यात्रा को देख तो जो हिंदी कवियों की प्रतिभा संपन्नता है, जो दृष्टि है वह कहीं न कहीं अपनी भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरित प्रभावित है। उनके पास इस पृथ्वी से जड़ चेतन सबके प्रति एक उदार संपन्न दृष्टि है यही भारतीयता का भाव है। प्रसाद जी स्कंद गुप्त नाटक में कहते हैं- 'अन्य देश तो मनुष्यों की भूमि है। किंतु भारत मनुष्यता की भूमि है।'।

आदरणीय विद्यानिवास मिश्रा जब भारतीयता की बात कहते हैं तो कहते हैं- 'भारतीयता भीतर भिन्ना हुआ भाव है। काटना भारतीयता नहीं है, समेटना और समेट कर बड़ा होना भारतीयता है।' यहां भिन्ना हुआ शब्द से जो अर्थ ध्वनित होता है वह लोक में प्रयुक्त शब्द है अर्थात् पूरी तरह से रससिक्त हो जाना, अपने आचरण में उतार लेना।

आप प्रसाद की किसी भी कविता को उठाकर देख

लीजिए उसमें समिष्ट की चिंता, लोक कल्याण का भाव निहित है। आंसू जैसे नितांत वैयक्तिक काव्य में भी वे कहते हैं-

‘सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख के सूखे उपवन में
बरसों प्रभात हिमकन सा
आंसू इस विश्व सदन में’

यहां कवि व्यक्तिगत शोक से ऊपर उठकर करुणा के भाव को धारण कर चुका है और फिर जब करुणा का भाव आ गया है तो चिंता वृहत्तर समाज की हो गई। आगे वह यह कहते हैं-

‘फिर उन निराशा नयनों की, जिनके आंसू सूखे हैं
उस प्रलय दशा को देख, जो चिर वंचित भूखे हैं।’

यह भारतीय ज्ञान परंपरा नहीं तो फिर क्या है? साहित्य सबकी रक्षा करता है और सबके हित का भाव उसके भीतर निहित होता है। उसकी चिंता समाज के वंचितों की चिंता है।

नागार्जुन ने ‘सिंदूर तिलकित बाल’ जैसे सुंदर दाम्पत्य प्रेम की कविता लिखी, गुलाबी चूड़ियां जैसे वात्सल्य भाव की कविता लिखी। कालिदास के विरह पर कविता लिखा, हिमालय के सौंदर्य को मुग्ध भाव से देखा परखा लेकिन हिंदी आलोचना ने उन्हें केवल जनवादी साबित किया है। जबकि उनके भीतर अपने भारतीय समाज अपनी जातिय परंपरा से एक आत्मीय गंध है, उसे भी खोजा जाना चाहिए।

दिनकर की एक कविता है-

‘भारत नहीं स्थान का वाचक,
गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है, देश-

देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है!’

यहां भारत शब्द का पर्याय इंडिया नहीं हो सकता। भारत शब्द में भारतीय ज्ञान का गहरा अर्थ छुपा है। भा का अर्थ प्रकाश ज्ञान है और रत का अर्थ निरंतर लगा हुआ अर्थात् जो ज्ञान में, ज्ञान की खोज में, निरंतर लगा हुआ है वह भारत है। इसी प्रकार हिंदी कविता में प्रयुक्त शब्दों पर ध्यान दिया जाए तो भारतीय ज्ञान परंपरा से उसके जुड़े होने का अर्थ समझ में आ सकता है। जैसे ‘पृथ्वी’। पृथ्वी केवल जमीन का टुकड़ा मात्रा नहीं है इसका गहरा निहितार्थ है। पृथ्वी का अर्थ हमें भूगोल की पुस्तक में नहीं मिलेगा। पृथ्वी का सही अर्थ भारतीय ज्ञान चिंतन परंपरा के भीतर मिलेगा।

साहित्य की मूल प्रवृत्ति मनुष्य मनुष्य को जोड़ना है तोड़ना नहीं टूटेगा तो फिर बिखरेगा। (जैसे आज अस्मिता विमर्श में साहित्य का मूल भाव बिखर गया है) साहित्य का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य से चराचर जगत को जोड़ना है। आत्मीयता और स्मृति की गंध को पहचानना है, मनुष्य चेतना का परिष्कार करना है और उसके माध्यम से भारतीय चिंतन परंपरा को विस्तार देना है। खंड-खंड में अखंड का भाव व्याप्त है, यही भारतीय साहित्य हैं और यही भारतीय ज्ञान परंपरा का वृहद उद्देश्य है। साहित्य में एक नैरन्तर्य होता है, उसके कुछ शाश्वत मूल्य होते हैं। हम उन्हें न ही नष्ट कर सकते हैं, न ही बदल सकते हैं। हम लौट-लौट कर उन्ही जीवन शैली, वैदिक परंपरा की ओर जा रहे हैं, अपने व्यवहार के धरातल पर भी वही मूल्यवान लग रहा है। अतः साहित्य के माध्यम से शाश्वतता, नैरन्तर्यता के साथ मानवीय मूल्यों को खोजना और उन्हें अग्रसर करना ही जरूरी है। यही भारतीय ज्ञान परंपरा का विस्तार है, जो साहित्य के द्वारा संभव है। □

संदर्भ सूची :

1. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण: 2013
2. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, (व्याख्याकार वासुदेव शरण अग्रवाल), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण: 2009
3. तुलसीदास, रामचरितमानस (बालकाण्ड), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 1989
4. उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद् (1.4.14)
5. जयशंकर प्रसाद, प्रसाद की संपूर्ण कविताएं, (कामायनी - श्रद्धा सर्ग), नया साहित्य केंद्र, दिल्ली, संस्करण: 2009
6. जयशंकर प्रसाद, प्रसाद की संपूर्ण कविताएं, (लहर), नया साहित्य केंद्र, दिल्ली, संस्करण: 2009
7. संपादक नंदकिशोर नवल, दिनकर रचनावली- 1 (स्फुट काव्य: राष्ट्र और समाज) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011

उत्तराखण्ड की लोक स्मृति में भारतीय स्वाधीनता संग्राम



डॉ. भावना मासीवाल

शोध-सार :

उत्तराखण्ड अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक व भौगोलिक परिवेश के कारण एक विशिष्ट पहचान रखता है। उत्तराखण्ड की समृद्ध मान्यताएं, परम्पराएँ व लोक जीवन से विशेष जुड़ाव उसे विशिष्ट बनाता है। उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृति, उसकी व्यक्ति चेतना, अस्तित्व व पहचान से जुड़ी है। उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति वहाँ की जीवन शक्ति है। उसके प्रति लोक की अटूट आस्था, विश्वास और जुड़ाव ही उसे परंपराशील बनाता है। उत्तराखण्ड को वीरों की भूमि भी कहा जाता है। यह वीर स्वतंत्रता आंदोलन के अगवा भी रहे और उत्तराखण्ड के जनमानस की स्मृति का केंद्र भी। आंदोलन किसी एक व्यक्ति का नहीं होता है, जब तक वह व्यक्ति से समूह और समूह से राष्ट्र का नहीं होता है, वह आंदोलन का रूप नहीं बनता है। आजादी का आंदोलन भी एक ऐसा ही आंदोलन था। देश के भिन्न-भिन्न राज्यों से होते हुए आजादी का विचार आंदोलन का रूप लेता है। कहीं गर्म दल के रूप में तो कहीं नरम दल के रूप में। इसमें व्यक्ति से समाज तक वैचारिक चेतना का प्रवाह होता है। प्रत्येक दल अपने विचार और व्यवहार से सत्ता को विवश करता है। उत्तराखण्ड का स्वाधीनता आंदोलन भी इसी का हिस्सा था। जिसमें वीर केसरी चंद शर्मा और चंद्र सिंह गढ़वाली की सक्रिय भागीदारी का चित्रण लोक गीतों में देखा जाता है। दूसरी ओर सल्ट की क्रांति, कुली बेगार आंदोलन जैसे बड़े आंदोलनों ने भी समाज में व्याप्त व्यापक जनचेतना को दर्शाया है। उत्तराखण्ड राज्य दुर्गम क्षेत्र में होने के बाद भी यहाँ व्यापक स्तर पर आंदोलन होते रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के उपरांत भी है और सम्मान के लिए व्यापक आंदोलन इस राज्य में हुए है।

बीज शब्द :

उत्तराखण्ड, स्वाधीनता आंदोलन, लोक जीवन, मलाया युद्ध, आजाद हिंद फौज, सल्ट की क्रांति, कुली बेगार आंदोलन, कुमाऊँ की बारडोली

मूल आलेख :

उत्तराखण्ड अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक व भौगोलिक परिवेश के कारण एक विशिष्ट पहचान रखता है। उत्तराखण्ड की समृद्ध मान्यताएं, परम्पराएँ व लोक जीवन से विशेष जुड़ाव उसे विशिष्ट बनाता है। उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृति, उसकी व्यक्ति चेतना, अस्तित्व व पहचान से जुड़ी है। उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति वहाँ की जीवन शक्ति है। उसके प्रति लोक की अटूट आस्था, विश्वास और जुड़ाव ही उसे परंपराशील बनाता है। यह परंपरा ही इसकी प्रवाहमयता को बनाए रखती है। लोक के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी

सहायक आचार्य
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय
लक्ष्मण सिंह महर परिसर, पिथौरागढ़
अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड - 263601
☎ 8447105405
✉ bhawnasakura@gmail.com

अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।' इसी संदर्भ में शिवकुमार मिश्र का कहना है कि 'लोक वह है, जो अभिजात्य के संस्कारों, बोझिल शास्त्रवाद तथा जड़ पांडित्य से दूर है, जो अपनी विशिष्ट ऊर्जा, पारदर्शिता और अकृत्रिमता में समूची परंपरा के भीतर प्राण तत्व के रूप में विद्यमान रहता है। लोक उस जन का पर्याय है जो अज्ञ, निर्मल, जागरूक, अहंकार-शून्य और अपनी धरती के रूप, गंध और रस से सरोबार अपनी धरती की ऊर्जा से ऊर्जावान और इस धरती की चेतना से चेतन और सजीव बना रहता है।'

उत्तराखण्ड का लोक मानस हजारों-लाखों की संख्या में देशभक्तों के पराक्रम और बलिदान को अपने भीतर समेटे बैठा है। इसमें प्रमुख नामों में वीर केसरी चंद और चंद्र सिंह गढ़वाली का नाम आता है। जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। वीर सिंह गढ़वाली को 29 अक्टूबर 1941 को मलाया युद्ध के मोर्चे पर तैनात किया था। मोर्चे पर जापानी फौज द्वारा उन्हें बन्दी बना लिया गया था। जेल से छूटने के उपरान्त वह आजाद हिंद फौज से जुड़े हैं। 1944 में आजाद हिंद फौज वर्मा-भारत सीमा से होते हुए मणिपुर की राजधानी इम्फाल पहुँची, जहाँ 28 जून 1944 में युद्ध के दौरान केसरीचंद को एक पुल उड़ाने के प्रयास में ब्रिटिश फौज ने पकड़ लिया और बन्दी बनाकर दिल्ली की जेल भेज दिया। वहाँ पर ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध षडयंत्र के अपराध में इन पर मुकदमा चलाया गया और मृत्यु दण्ड की सजा दी गई। उन्हें महज 24 वर्ष 6 माह की आयु में 3 मई 1945 को फाँसी की सजा दी गई। वीर केसरी चन्द की शहादत ने न केवल भारत वर्ष का मान बढ़ाया, वरन उत्तराखण्ड और जौनसार बावर का

सीना गर्व से चौड़ा कर दिया। भले ही उनकी शहादत को सरकारों ने भुला दिया हो, लेकिन उत्तराखण्ड के लोगों ने उन्हें और उनकी शहादत को नहीं भुलाया। जौनसारी लोक गीत 'हारल' में इनकी शहादत को सम्मान दिया जाता है-

मोड़ें रे मोड़ाए ला, खेले मोड़ाए ला।
वीर देणा केसरी ला, भारते गाए ला॥
उन्दें बोट छाईयां ला, तापिया नू गामें ला।
केसरी चन्द के वक्ते, थे गुलाम आमें ला॥
नाहैं-धोए केसरी ला, लांवर मुख पौडिरस ला।
ताँके आया केसरी, शुड़ी के ऑडिरस ला॥
नाहैं धोए केसरी ला, शिरे लांवर काँगें ला।
जाईदी बेटा केसरी, माड़ी लेलावर दी मांगें ला॥
शिऐ रे शिकुटिए ला, सरला बांदा ला।
माड़ी भी न मांगदा, शुड़ी के जान्दा ला॥

.....

खुशी मने केसरी ला, शुड़ीके जांवर ला।
तेबी थवा केसरी ला, जौनसार का नांव ला॥

अर्थात् वीर वह होता है जो वीरता का काम करता है। वीर केसरी चन्द शर्मा को हारल (लोककथा) में अमर कर देते हैं। केसरी चन्द के समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था। वीर केसरी चंद को ब्रिटिश हुकूमत के द्वारा फाँसी का आदेश आ गया। केसरी के पिता ने कहा कि ब्रिटिश हुकूमत से क्षमा मांग लो। केसरी चंद शर्मा ने पिता से कहा कि ब्रिटिश हुकूमत के आगे नहीं झुकूँगा। देश के लिए फाँसी के फंदे को खुशी से चूम लूँगा। केसरी चंद शर्मा ने भारत देश को आजाद करने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। धन्य है क्यावा गांव जिस गाँव में महान शहीद वीर केसरी चंद शर्मा जैसे वीर ने जन्म लिया। खुशी मन से केसरी चंद शर्मा ने फाँसी का फन्दा चूम लिया, इस प्रकार केसरी चन्द शर्मा ने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर जौनसार बावर का नाम इतिहास में लिख दिया।

चंद्र सिंह गढ़वाली के महत्व को महात्मा गाँधी के इन शब्दों में समझा जा सकता है, 'यदि मेरे पास एक और चंद्र सिंह गढ़वाली होता तो भारत बहुत पहले स्वतंत्र हो जाता'। पंडित मोतीलाल नेहरू ने भी मृत्युशय्या

पर लेटे हुए कहा था कि 'वीर चंद्रसिंह गढ़वाली को देश न भूले'। चंद्रसिंह गढ़वाली को 23 अप्रैल 1930 के पेशावर विद्रोह के कारण याद किया जाता है। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध में फ्रांस व मेसोपोटामिया में भाग लिया था। वह ब्रिटेन की नीतियों से असहमत थे। जिसमें युद्ध समाप्ति के पश्चात आधे सैनिकों को वापस घर भेज देना, भारतीय सैनिकों को प्रमोशन खत्म कर पूर्व पदों पर ही रखना। निहत्थे अफगानियों पर फायर के आदेश को उन्होंने सीज-फायर घोषित कर दिया। इस कारण 23 अप्रैल 1930 को पेशावर विद्रोह के रूप में याद किया जाता है। सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक आधुनिक भारत में पेशावर के घटनाक्रम के बारे में लिखा 23 अप्रैल को बादशाह खान और कुछ अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के फलस्वरूप पेशावर में भारी जन उभार आया भीड़ कस्सा कहानी बाज़ार में तीन घंटों तक बख्तरबंद गाड़ियों एवं तेज गोली बारी के आगे डटी रही। सरकारी सूचना के अनुसार इस घटना में 30 लोग मारे गये, किन्तु गैर सरकारी आकलन के अनुसार दो ढाई सौ लोगों से कम नहीं मरे थे। गढ़वाल राइफल की एक टुकड़ी के हिंदू सिपाहियों ने मुसलमान भीड़ पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। बाद में कोर्टमार्शल का सामना करते हुए इन सिपाहियों ने साफ़ कहा कि हम निहत्थे भाइयों पर गोलियाँ नहीं चलायेंगे। क्योंकि भारत की सेना बाहरी शत्रु से लड़ने के लिए है। तुम चाहो तो हमें गोली से उड़ा दो। ब्रिटिश सरकार दस दिन बाद जाकर 5 मई को ही पेशावर में कानून-व्यवस्था बहाल कर पाई और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में आतंक और मार्शल लॉ का राज स्थापित हो गया। रूसी इतिहासकारों ने भी इस घटना का जिक्र किया है। रूसी इतिहासकारों ने 'भारत का इतिहास' पुस्तक में लिखा है कि पेशावर की जनता के विरोध के कारण अंग्रेजों को छावनी में शरण लेनी पड़ी। स्थिति को इस बात ने और भी पेचीदा बना 'दिया गढ़वाल रेजीमेंट के सैनिकों ने विद्रोहियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। ब्रिटिश कमांडरों ने रेजीमेंट को निरस्त्र करके तथा सभी सैनिकों को नगर से बाहर हटाकर भारतीय सैनिकों को नगर की जनता के पक्ष को जानने से रोका।'।

जै हो चंद्रसिंह गढ़वलि! जै हो! जै हो! जै हो! दा!

लगुलि कु लेट गढ़वलि, लगलि कु लेट दा!
तमलेटु को पाणि गढ़वलि, मुरछनूं का पेट दा!
झेड़ तोड़ केड़ गढ़वलि, झेड़ तोड़ केड़ दा!
जरमना को म्वार गढ़वलि, जैन लड़ाई छेड़ दा!
दाथुला की धार गढ़वलि, दाथुला की धार दा!
जरमनाल् करि गढ़वलि, बम गोलों की मार दा!
झेड़ तोड़ केड़ गढ़वलि, झेड़ तोड़ केड़ दा!
अंगरेजा को म्वार गढ़वलि, जैन लड़ाई छेड़ दा!
हीलि जौला मीलि गढ़वलि, हीलि जौला मीलि दा!
देशभक्ति समजि गढ़वलि तिन्न, ई लड़ै मा मीलि दा!
बूति जीरो गढ़वलि, बूति जालो जीरो दा!
पेशावर को कांड गढ़वलि, जैको छै तू हीरो दा!
गंगा जि को पाणि गढ़वलि, गंगा जि को पाणि दा!
त्याइस अप्रैल, उन्नीस सौ तीस, संसारल् जाणि दा!
रौलि लगाइ मौलि गढ़वलि, रौलि लगाइ मौलि दा!
तेरि समादि फूल चढ़ांदु, द्यबठैं दूधातोळि दा!
जै हो चंद्रसिंह गढ़वलि! जै हो! जै हो! जै हो! दा।

उत्तराखण्ड के लोक समाज ने अपने सपूत, देश के हीरो और दुनिया को लीक से अलग चलके दिखाने वाले नायक को अपने दिलो-दिमाग में कितने प्यार से संजो रखा है। इस लोकगीत में प्रथम विश्वयुद्ध को बढ़ावा देने के लिए जर्मनी व ब्रिटेन, दोनों को ही गलत बताया गया है। डॉ. नारायणदत्त पालीवाल लिखते हैं कि 'अंग्रेजी राज की स्थापना यद्यपि कुमाऊँ में बड़ी देर से हुई, परंतु उससे जो परिवर्तन हुए उनके कारण वहां की जनता में असंतोष फैला। वहां के प्रसिद्ध कवि गुमानी ने हिंदी में 'अंग्रेजों ने अल्मोड़े का नक्शा और ही और करा' कहकर अपना रोष प्रकट किया तो लोक कलाकार भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में पीछे नहीं रहे। नव-जागरण की ऐसी लहर फैली कि प्रिय अपनी प्रेयसी से 1857 के गदर में शामिल होने के लिए प्रस्थान करने से पहले उसी प्रकार अपनी बंदूक देने को कहता है-

बलि भ्यारा गाड़ि दे थें
सुआ दो नाई बंदूक।
बलि भ्यारा गाड़ि दे थें
सुआ दो नाई बंदूक।
सुआ मुरली समाव,

म्यरा चांदी का सिंदूर।

सुआ मुरली समाव,

म्यरा चांदी का सिंदूर।

उत्तराखंड में अल्मोड़ा के सल्ट क्षेत्र में भी सेनानियों ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया। खुमाण (जो सल्ट में कांग्रेस का मुख्यालय था) नामक स्थान पर रानीखेत तहसील के एस.डी.एम. जानसन ने जनता पर गोलियाँ चलवाई, जिसमें गंगादत्त तथा खीमदेव दो सगे भाई घटना-स्थल पर ही शहीद हो गये और बुरी तरह घायल चूड़ामणी और बहादुरसिंह चार दिन बाद शहीद हुए। खुमाण गोलीकांड में कई अन्य व्यक्ति भी घायल हुए। स्वतन्त्रता संग्राम में सल्ट क्षेत्र के महत्वपूर्ण तथा साहसपूर्ण योगदान से प्रभावित होकर महात्मा गाँधी ने उसे दूसरी 'बारडोली' की संज्ञा देकर गौरवान्वित किया। भारत की आजादी की अलख में उत्तराखण्ड के कुमाऊँ रीजन के सल्ट क्षेत्र में घटित क्रांति को भुलाया नहीं जा सकता है। आजादी के आंदोलन में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन की हवा इतनी तेजी से फैली कि देश की आजादी के लिए बलिदान के लिए तत्पर सेनानियों के हौसलों ने वहाँ के शासकों और अंग्रेज अफसरों को झुकने पर मजबूर कर दिया। सल्ट की क्रांति स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लोक में जिसे आज भी याद किया जाता है।

बाता भुलि जानी नी भुलिना यादा,

सन बयालीसौ को उतपाता।

सन ब्यालीसैकि जो चली आंधी

हर गोविन्द पन्त बणी सल्टका गाँधी

.....

खुमाण गौ मजि जॉनसन आयौ

नैनमणिल हात पारी लट्टा उठाये

खुमाड़ा ढड़या में बादी गो घेरा

गंगादत्त शास्त्री लै धमकाय जै बेरा

होकम दी जौसन सैल गोई च्लैदी

गंगाराम खिमदेवैकि लास बिछेदी

अगिल बै पुलिस हातों में गोली

खेलण बट लाग खूनै की होली

.....

सल्ट में आंदोलन की तीव्रता और उसके परिणाम को उपरोक्त लोकगीत से जाना जा सकता है। जहाँ आंदोलन को दबाने के लिए 5 सितंबर 1942 को एस.डी.एम जानसन के नेतृत्व में पुलिस खुमाण पहुंची। और विद्रोह को दबाने के लिए उसने खुमाण में हजारों निहत्थी जनता पर गोली चला दी थी। सल्ट में ब्रिटिश शासकों ने जनता पर बहुत अत्याचार किया बावजूद इसके वह स्वाधीनता आंदोलन के प्रति लोगो के जोश और उसके लिए पूर्ण समर्पण के मनोबल को तोड़ न सके। 'महात्मा गाँधी ने स्वाधीनता आंदोलन में सल्ट के योगदान की न केवल सराहना की बल्कि उसे कुमाऊँ की बारडोली कहा।' क्योंकि सल्ट क्षेत्र में 1930 में नमक आंदोलन के दौरान नमक बनाया गया। अंग्रेजों द्वारा आंदोलन को दबाने के लिए लोगों की संपत्ति जब्त कर ली गयी, फसले नष्ट कर दी, उनके मवेशियों को उठा लिया गया और आंदोलन में सक्रिय लोगो को खूब पीटा गया। सामूहिक रूप से एकजुट होकर मालगुजारों ने इस्तीफा दे दिया। जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज अफसर नाराज हो गये। इसमें चिंगारी का काम किया 1 सितम्बर 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन की तीव्रता ने। जिसके कारण जॉनसन को खुमाण आना पडा। यही से आंदोलन अपना रुख बदलता है और खुमाण की क्रांति होती है।

स्वाधीनता संग्राम में अल्मोड़ा के सल्ट क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। एक ओर खुमाण का विद्रोह दूसरी ओर कुली बेगार प्रथा का विरोध था। बद्रीनाथ पांडे के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल कुमाऊँ के कुली बेगार अन्याय के विरुद्ध महात्मा गाँधी जी से मिलते हैं। और इस अन्याय के प्रति सत्याग्रह आंदोलन का आशीर्वाद लिया। सन् 1921 में कुली बेगार प्रथा में यहाँ के लोगों ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया तथा लोगों को इसके विरोध में लामबंद किया।

झनदिया मैंसो कुली बेगारा

वेसिक रहजा लौपुरिया लौहारा

स्वदेशी हमरा पलंग

झनदिया मैंसो कुली बेगार स्वदेशी ओढल स्वदेशी बिछलों,

झनदिया मैंसो कुली बेगारा।

xxx

‘झन दिया लोगो कुलि बेगार
आब है गई गाँधी अवतार’

कुली बेगार आंदोलन के पुरोधा बद्रीनाथ पांडे की
मृत्यु के उपरांत कुमाऊँ के कवि गौर्दा कहते हैं कि -

कानून म्हांती करि है विचार ।
पाप बगै हैछ गंगज्यू की धार ॥
अब जन धरि आपणा रूबार ।
निकली नै निकला दिलदार ॥
बागेश्वर है नी गया भ्यार ।
कीर्तिक देखि रया कीर्तिकार ॥
मिनटों में बंद करो छ उतार ।
हाकिम रै गया हाथ पसार ॥
चेति गया तब त जिलेदार ।
बद्रीदत्त जैसा हुन च्याल चार ॥
तवै हुआ छन मुल्क सुधार ।
कारण देश का छड़ि रूजगार ।

महात्मा गाँधी के आंदोलन से पूरा देश जुड़ा था उनके प्रत्येक उद्धोधन पर पूरे देश में क्रांति का बिगुल बज रहा था और आंदोलन हो रहे थे। उत्तराखण्ड के दुर्गम क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं थे। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जितने भी आंदोलन हुए खुमाण के लोग उस आंदोलन से जुड़े रहे। फिर वह सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक सत्याग्रह आंदोलन, कुली-बेगार आंदोलन, स्वदेशी अपनाने, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार (आपण मुलुक भलि जा आपणी थात/ आपण मुलुक भलि जा आपणी थात/ भटका चुबुका भला मादिरौ क भात । / भटका चुबुका भला मादिरौ क भात) तथा अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन (आजादी क लिजिया अब है जाओ तैयार/ पराधीन छुटि जाली देश का उद्धार। हिटो बाट लागो सबै कुटुम परवार / आजादी की रेल ऐगे दिल्ली दरबार।) ही क्यों न रहा हो। खुमाण की जनता ने उसमें अपनी न केवल सक्रिय भागीदारी दी बल्कि अपना बलिदान भी दिया।

स्वाधीनता संग्राम में सालम की क्रांति को भी याद किया जाता है। पुराने जिला अल्मोड़ा के दक्षिण-पश्चिम और नए जिले के उत्तर-पूर्व में लगभग 25,000 की आबादी वाला ग्रामीण क्षेत्र सालम कहलाता था। पनार

नदी के दोनों ओर बसे लगभग 70-80 छोटे-बड़े गांवों की जनता तल्ला व मल्ला सालम पट्टियों में आती है। महात्मा गाँधी द्वारा 8 अगस्त 1942 में बाम्बे में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में ‘भारत छोड़ो’ का नारा दिया। अल्मोड़ा में इसके बाद ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आंदोलन शुरू हो गया। 25 अगस्त 1942 की घटना इतिहास के पन्नों में ‘सालम की जनक्रांति’ के नाम से जानी जाती है। ‘भारत छोड़ो और करो और मरो’ का प्रस्ताव पास होने के बाद नौ अगस्त की सुबह ही महात्मा गाँधी व गोविंद बल्लभ पंत की गिरफ्तारी का असर कुमाऊँ में भी पड़ा। 25 अगस्त 1942 को आंदोलन तीव्र होता है, जनता भड़क गई और ब्रिटिश सेना पर पत्थरों की बौछार शुरू कर दी। एक तरफ दलबल के साथ ब्रिटिश सेना दूसरी ओर कुमाऊँ के निहत्थे स्वतंत्रता सेनानी। इतिहास के आयने में उत्तराखंड को देखा जाय तो स्वतंत्रता आंदोलन में सालम क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका को गर्व से रेखांकित किया जाता है। छोटे-छोटे गाँव समूहों के क्रांति वीरों ने 1942 के स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेजों से लोहा लिया और देश की आजादी के लिए बड़ी कुर्बानी दी। इसी सालम पट्टी में स्वतंत्रता सेनानी श्री राम सिंह धोनी, श्री दुर्गा दत्त पांडे शास्त्री के साथ-साथ अनेक सत्याग्रहियों ने स्वाधीन राष्ट्र के लिए जो आंदोलन खड़ा किया, उसी में श्री नर सिंह व श्री टीका सिंह जैसे क्रांतिकारियों ने अपनी शहादत देकर स्वाधीनता को नई धार दी।

उत्तराखण्ड की लोक स्मृति में स्वाधीनता आंदोलन में योगदान देने वाले सेनानियों को लोक ने याद रखा है। जिसे लोक गीतों व लोक स्मृतियों में देखा जा सकता है। चन्द्र सिंह गढ़वाली, वीर केसरी चंद, खुमाण और सालम की क्रांति के नायक और जनता जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। उत्तराखण्ड पहाड़ी और दुर्गम क्षेत्र है। संसाधनों तक पहुँचने की दूरी और सीमित संसाधनों के बावजूद भी उत्तराखण्ड राज्य में स्वाधीनता आंदोलन की अलख उनके क्रांतिकारियों द्वारा जलाई गई। ब्रिटिश हुकूमत के जिला बगावत, गोली खाना, जेल जाना विद्रोह के लिए सदैव तत्पर रहने की मानसिकता, द्वितीय विश्वयुद्ध में अपने लोगों का साथ

देते हुए सीजफायर की घोषणा करते हुए विद्रोह करना। यह सभी उत्तराखण्ड राज्य के लोगों और स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान था। जो इतिहास में कम ही जाना जाता है लेकिन उत्तराखण्ड का लोकमानस इन्हें अपनी स्मृतियों व गीतों में आज भी याद करता है। इसीलिए सैनिक परम्परा वाले इस राज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए समर्पित होता है और गाता है-

‘देसै की आजादी कणि अमर करिया

मुलुकै की शान रैजो हरिया भरिया ॥’

निष्कर्ष :

उत्तराखण्ड को वीरों की भूमि भी कहा जाता है। यह वीर स्वतंत्रता आंदोलन के अगवा भी रहे और उत्तराखण्ड के जनमानस की स्मृति का केंद्र भी। आंदोलन

किसी एक व्यक्ति का नहीं होता है, जब तक वह व्यक्ति से समूह और समूह से राष्ट्र का नहीं होता है, वह आंदोलन का रूप नहीं बनता है। आजादी का आंदोलन भी एक ऐसा ही आंदोलन था। देश के भिन्न-भिन्न राज्यों से होते हुए आजादी का विचार, आंदोलन का रूप लेता है। कहीं गर्म दल के रूप में तो कहीं नरम दल के रूप में। इसमें व्यक्ति से समाज तक वैचारिक चेतना का प्रवाह होता है। प्रत्येक दल अपने विचार और व्यवहार से सत्ता को विवश करता है। उत्तराखण्ड का स्वाधीनता आंदोलन भी इसी का हिस्सा था। दुर्गम क्षेत्र होने के बाद भी यहाँ व्यापक स्तर पर आंदोलन होता है। स्वतंत्रता आंदोलन के उपरान्त भी है और सम्मान के लिए व्यापक आंदोलन इस राज्य में हुए है। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. कोड़ ओड़ अन्तोनोवा ,ग्रिड़ मड़ बोंगर्द ,ग्रिड़ ग्रिड़ कोतोवस्की, भारत का इतिहास(1984), प्रगति प्रकाशन मास्को
2. सरकार. सुमित, आधुनिक भारत(1993), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. डॉ. धर्मपाल सिंह मनराल एवं डॉ. अरुण मित्तल (2010), उत्तराखंड के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
4. उपाध्याय देवेन्द्र, कुमाऊँ की बारदोली सल्ट(2012), उत्तरा बुक्स, दिल्ली
5. डॉ. रुवाली केशवदत्त, कुमाऊँनी भाषा(1977), अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
6. पाण्डे बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास(2019), श्याम प्रकाशन अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
7. राय केसर सिंह, हारूल पौराणिक वीर गाथाएं(2023), प्रियंका ग्राफिक प्रिंटर्स, देहरादून
8. डॉ. पालीवाल, नारायणदत्त, कुमाउनी काव्य में राष्ट्रीय भावना की झलक(लेख), (सं) भूपाल सिंह बिष्ट , बुराश (उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति)(2011), म्यर पहाड़, नई दिल्ली
9. प्रो. असवाल, हरेंद्र सिंह, उत्तराखंड में स्वाधीनता संग्राम और पेशावर के नायक ‘वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली’(लेख)

अमृतलाल नागर के साहित्य में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद



डॉ. संतोष कुमार भारद्वाज

शोध-सार :

हिंदी साहित्य में अमृतलाल नागर एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने भारत के सम्पूर्ण इतिहास को आधार बनाकर साहित्य की रचना की है। उनके लिए राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा नहीं, बल्कि जनता के जीवन-संघर्ष, उसकी स्मृतियों और स्वाधीनता-बोध से निर्मित चेतना है। प्रस्तुत शोध-पत्र नागर जी के कथा-साहित्य—विशेषतः बिखरे तिनके, बूंद और समुद्र, अमृत और विष तथा पीढ़ियां उपन्यासों—के माध्यम से यह विश्लेषित करता है कि किस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद के मूल्य क्रमशः क्षीण होते चले गए। स्वतंत्रता के पश्चात् जिस उत्साह और आत्मविश्वास के साथ भारतीय जनता ने लोकतंत्र के निर्माण-कार्य को अपनाया था, वह शीघ्र ही स्वार्थी नेताओं, भ्रष्ट अधिकारियों और कर्मचारियों की मिलीभगत से टूटकर बिखर गया। कालाबाजारी, भाई-भतीजावाद, सांप्रदायिक हिंसा, अलगाववाद और भ्रष्टाचार ने राष्ट्रीय एकता को गहरे रूप से आघात पहुँचाया। नागर जी दिखाते हैं कि राजनीतिक दलों के लिए आदर्श और सिद्धांत केवल दिखावटी आवरण बनकर रह गए हैं, जबकि वास्तविक उद्देश्य सत्ता और पूंजी की प्राप्ति है। सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका, गांधी-हत्या का संदर्भ तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार का विवेचन करते हुए यह शोध-पत्र यह प्रतिपादित करता है कि नागर जी की दृष्टि में लोकतंत्र की गरिमा तभी पुनर्स्थापित हो सकती है, जब नेतृत्व ईमानदारी से पहल करे और जनमानस में राष्ट्रवाद की भावना पुनः जाग्रत हो।

बीज शब्द :

अमृतलाल नागर, लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, स्वातंत्र्योत्तर भारत, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, राष्ट्रीय आंदोलन, राजनीतिक मूल्य, जनचेतना, अलगाववाद।

मूल आलेख :

हिंदी साहित्य में अमृतलाल नागर एकमात्र लेखक हैं, जिन्होंने भारत के सम्पूर्ण इतिहास को आधार बनाकर साहित्य लिखा है। नागर जी की इतिहास के प्रति रूचि केवल इतिहास की पुस्तकें पढ़ कर विकसित नहीं हुई। अपितु राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर और राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के सम्पर्क में विकसित हुआ। उनके लिए राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा नहीं, बल्कि जनता के जीवन-संघर्ष, उसकी स्मृतियों और स्वाधीनता-बोध से निर्मित चेतना था। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ अपने आरंभिक जुड़ाव को स्मरण करते हुए वे कहते हैं कि-सन् 30 के आंदोलन में प्रभात फेरी के जुलूस का झंडा उठाते-उठाते मैं सक्रिय आंदोलनकारी बनने लगा तथा राष्ट्रीय नेताओं के संपर्क

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दौलतराम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
☎ 9968972920
✉ santoshbhardwaj@dr.du.ac.in

में, मेरे विचारों को एक व्यापक दृष्टि मिली। इस कथन से स्पष्ट है कि नागर की राष्ट्रीय दृष्टि प्रत्यक्ष जन-सहभागिता और स्वतंत्रता-संग्राम के अनुभव से विकसित हुई। अतः उनके कथा-साहित्य में राष्ट्रवाद व्यक्ति या सत्ता का पर्याय नहीं, बल्कि जाग्रत जनता की सामूहिक आकांक्षा है। इस आकांक्षा की पूर्ति तब होती है, जब भारत गुलामी की जंजीरों को तोड़ देता है। तत्पश्चात् 15 अगस्त सन् 1947 को भारत आजाद हुआ और इसी के साथ भारतवासियों ने गुलाम भारत में जो सपने देखे थे, उन सपनों को साकार करने के लिए तत्पर हो गए। इतिहासकार बिपिन चंद्र ने लिखा कि- भारत की आजादी इसकी जनता के लिए एक ऐसे युग की शुरुवात थी, जो एक नए दर्शन से अनुप्राणित था। 15 अगस्त, 1947 मात्र पहला पड़ाव था। यह उपनिवेशवादी राजनीतिक नियंत्रण में सिर्फ पहला विराम था, शताब्दियों के पिछड़ेपन को अब समाप्त किया जाना था, स्वतंत्रता संघर्ष के वादों को पूरा किया जाना था और जनता की आशाओं पर खरा उतरना था। लेकिन क्या ऐसा हुआ? हम क्या उन शहीदों के सपनों का भारत खड़ा कर पाये? नागर जी अपने साहित्य में ऐसे अनेक सवालों पर विचार करते हैं।

आजादी के बाद भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए एक नवीन लोकतंत्र का निर्माण किया। जिससे प्रत्येक भारतवासी को समान अधिकार प्राप्त हो। भारतीय जनता ने लोकतंत्र के कार्य को उत्साह, दृढ़ निश्चय तथा सफल होने की अपनी क्षमता पर आत्मविश्वास के साथ शुरू किया। लेकिन शीघ्र ही यह आत्मविश्वास कमजोर पड़ने लगा और भारतीयों को महसूस होने लगा कि उनके सपने टूट कर बिखर गए। कारण कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए देश में कालाबाजारी, लूट-खसोट, भाई-भतीजावाद, सांप्रदायिक हिंसा, आतंकवाद, अलगाववाद और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया। इन भ्रष्ट नेताओं के संरक्षण में भ्रष्ट अधिकारियों और कर्मचारियों ने देश को दोनों हाथों से लूटना शुरू कर दिया। नागर जी अपने उपन्यास 'बिखरे तिनके' में देश में फैले भ्रष्टाचार का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि -खाद के लिए बिकने वाली शहर भर की मैला गाड़ियों की कमाई में गुरुसरन

बाबू और चीफ सेनेटरी इंस्पेक्टर तो बड़ी तोंद वाले बने ही मेहतर महावीर चौधरी भी लखपति बन गया। म्युनिसिपल अस्पतालों के लिए दवाओं और इंजेक्शनों आदि सामान की खरीद होने पर भी अच्छा कमीशन डकारा है। हर फूड इंस्पेक्टर को आमदनी इनकी मुट्ठी गर्म किए बिना को हो नहीं सकती। शहर भर के फूड इंस्पेक्टरों को अच्छी आमदनी वाले क्षेत्र में अपनी नियुक्ति के लिए गुरुसरन बाबू के द्वारा आयोजित खुफिया नीलामी में सबसे ऊंची बोली लगानी पड़ती है। यों खाते तो सभी हैं परंतु गुरुसरन बाबू जैसे सबको बोटी-बोटी नोच कर खाते रहे, वैसा कोई बड़ा बेदिल वाला ही खा पाता है। भारत देश का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। जिन लोकतान्त्रिक मूल्यों को लेकर भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार का विरोध किया था, वही मूल्य स्वतंत्र भारत में परिवर्तित हो गए। नागर जी ने स्वातंत्र्योत्तर काल में परिवर्तित होने वाले इन्हीं राजनीतिक मूल्यों को अपने साहित्य में विवेचन का विषय बनाया है।

स्वतंत्रोत्तर भारत में देशवासियों का अपने देश के प्रति मोहभंग होने लगा। वह अपने को ठगा सा महसूस करने लगे। चूँकि अब देश में 'राष्ट्रवाद' से ज्यादा व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्व दिया जाने लगा। इसके लिए कुछ स्वार्थी नेता, अधिकारी और कर्मचारी जिम्मेदार थे। उनका राष्ट्र से कोई लगाव नहीं था। उनके लिए चुनाव लोकतंत्र की मजबूती का माध्यम नहीं था बल्कि खुद की स्वार्थपूर्ति करना था। डॉ. अनीता रावत इस पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं कि- किस प्रकार से आज के नेता अपने स्वयं के स्वार्थ के लिए चुनाव लड़ते हैं। चुनाव जीतने के लिए वे नीच से नीच हरकत करने में भी बाज नहीं आते। कभी युवा शक्ति का सहारा लेते हैं तो कभी पूंजीपतियों का। उनका एकमात्र उद्देश्य चुनाव जीतना और फिर भ्रष्टाचार फैलाना है। इन भ्रष्ट नेताओं के लिए लोकतंत्र एक ढाल है और जनता फुटबाल बन गई है। नागर जी लिखते हैं कि- जैसे फुटबॉल का मैच होता है, राजनीतिक पार्टियों का संघर्ष हू-ब-हू वैसा ही है, जनता फुटबॉल है, मैच उसी के नाम पर हो रहा है, पॉलिटिकल पार्टियों के खिलाड़ी ठोकरे भी उसी को लगा रहे हैं----- जिस व्यक्ति की पीड़ाओं का सामूहिक रूप में दर्शन कर

ये राजनीतिक सिद्धांत बने हैं, उनके अनुभूति, उनकी तड़प भी अब हमारे मन से निकल गई है, हमारी नजर अब सिर्फ पॉलिटिकल रह गई है। कोल्हू के बील की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं। महत्वपूर्ण बात है कि हमारे देश में लोकतंत्र का जो स्वरूप है और इसकी जो संचालक ताकतें हैं, जो इस लोकतंत्र के प्रभु वर्ग हैं उसके लिए राष्ट्रीयता की अब कोई अहमियत नहीं रह गई। वह अब राष्ट्रीय चेतना का मतलब नहीं समझना चाहता है। उसका ध्येय देश की समृद्धि, सुरक्षा और विकास से बढ़ कर सत्ता प्राप्त करना हो गया है। सत्ता का मतलब अब कोई एक दल या एक विचारधारा नहीं रह गया। अनेक ताकतें सत्ता की हिस्सेदारी में हैं। अमृतलाल नागर ने लिखा है कि- आज इस देश में क्या कांग्रेस, क्या सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसंघ, हिंदूमहासभा आदि जितनी भी राजनीतिक पार्टियाँ हैं- सब अधिकांश में एक से बढ़कर एक बेईमान, क्षुद्र आकांक्षाओं वाले जालसाज, दंभी और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं; आदर्श और सिद्धांत शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ हैं। इनका आपसी संघर्ष अधिकतर व्यक्तिगत है। क्योंकि इन पार्टियों के नेताओं को व्यक्तिगत रूप से धर्म, जाति, भाषा और प्रांत या क्षेत्रीयता किसी से भी परहेज नहीं होता, क्योंकि उसका अपना उद्देश्य और आशय सिर्फ पूंजी और ताकत हो गया है। इसलिए अमृतलाल नागर इन भ्रष्ट नेताओं पर व्यंग्य करते हुए अमृत और विष में लिखते हैं कि- आज की राजनीति मात्र अवसरवादियों और चाटुकारों की होकर रह गई है। इसलिए स्वतंत्रता के पश्चात् सैकड़ों निस्वार्थ देश सेवक अपना अस्तित्व खो बैठे और जो इलेक्शन लड़ाने और परमिट दिलाने में पटु हुए वे महत्वपूर्ण नेता बन गए। और जो इस कला में पारंगत नहीं हुए उनको हासिए पर फेंक दिए गए।

कथाकार ने अपने पीढ़ियाँ' उपन्यास में संकेत किया है कि आजाद भारत में न केवल नेता बल्कि प्रशासन के कर्मचारी भी पूरी तरह भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। कालांतर में बड़े पैमाने पर राजनीति तथा पुलिस के गठजोड़ से अपराधीकरण का विकास हुआ। इन सभी लोगों ने एक साथ मिल कर आर्थिक रूप से समृद्ध हो रहे भारत

को अपना चारा बना लिया। जैसाकि आर्थिक विकास से भी राज्य के नियामक कार्यों में भारी वृद्धि हुई है। प्रशासन के बहुत बड़े हिस्से को भ्रष्टाचार के लिए रास्ते खुल गये। अब राज्य के आर्थिक स्रोतों तक पहुँचने और परमिट, लाइसेंस, कोटा हासिल करने के लिए राजनीतिक संबंधों का इस्तेमाल किया जाने लगा। फलस्वरूप जनता के जीवन में सरकार की भूमिका बढ़ने के साथ-साथ भ्रष्टाचार बढ़ता गया। समय के साथ-साथ प्रणाली भ्रष्टाचार का शिकार बनती गई। भ्रष्टाचार को निम्न स्तर पर रोके नहीं जाने के कारण वह प्रशासन तथा राजनीति के उच्च स्तरों तक पहुँच गया। यही नहीं राजनीतिक समर्थन मिलने के कारण भ्रष्टाचार व्यापक रूप से प्रशासन में फैलने लगा। समाज का कोई भी हिस्सा आज उससे मुक्त नहीं है। मीडिया, बुद्धिजीवी, कामकाजी और न्यायपालिका भी इससे प्रभावित हो गईं। जहाँ तक आम आदमी का सवाल है, प्रशासनिक देरी और अकुशलता के साथ भ्रष्टाचार उनके जीवन में शाप बन गया। आजादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, खून और हिंसा, काला बाजारी का जमाना, ये सब देखकर अमृतलाल नागर को पुरानी बातें याद आती हैं। वह अमृत और विष में अरविंद शंकर के शब्दों में कहते हैं आज के जीवन में मुझे एक प्रकार का खोखलापन जान पड़ता है। एक ओर जहाँ मुझे अपना आज का भारत पहले से कहीं अधिक उन्नत और वैभवशाली लगता है। वहीं मुझे अपने बचपन और जवानी के दिनों से यह देश कहीं अधिक खोया हुआ निष्प्राण और निकम्मा लगता है। इसका कारण भारतीयों के अंदर राष्ट्रवाद का अभाव है।

अमृतलाल नागर ने उल्लेख किया है कि आजाद भारत में राष्ट्रवाद की भावना कमजोर पड़ जाने सांप्रदायिकता, अलगाववाद, नक्सलवाद, आतंकवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आदि समस्याओं ने देश की शांति को भंग कर दिया। जिसमें कुछ सांप्रदायिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। यह वही संगठन हैं जो स्वतंत्रता संघर्ष में ब्रिटिश सरकार से मिलकर 'राष्ट्रीय आन्दोलन' को कमजोर करते रहे हैं। पूरन चंद्र जोशी ने उन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि- वर्तमान भारत में असली समस्या ही है रेडिकल विचारधाराएँ और वे

राजनीतिक दल जिनकी जड़े भारत के स्वतंत्रता संग्राम एवं भारतीय ज्ञानोदय और नवजागरण में हैं, वे आजादी के पांच दशकों बाद के भारत के बदलते हुए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को सही-सही समझने और सशक्त रूप से परिभाषित और व्याख्यायित करने में फिलहाल अक्षम साबित हुए हैं। लेकिन आजादी के बाद अपनी धूर्त नीतियों की वजह से लोकतंत्र में उच्च स्थान पाने में सफल रहे। कालांतर में इन्होंने ही सरकार की नीतियों को प्रभावित करना शुरू कर दिया और अपने स्वार्थों के लिए सांप्रदायिकता फैलाने में भी संकोच नहीं करते। इन्होंने राजनीति का सांप्रदायिकरण कर दिया जिससे देश की एकता को खतरा पैदा हो गया। जिसकी ओर संकेत करते हुए बी.टी. रणदिवे ने लिखा है कि- राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए गंभीर चुनौतियाँ पैदा हो गई हैं, इनमें हिन्दू-मुस्लिम संबंधों और जातिवाद की चुनौतियाँ सबसे प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त भारत में समस्याओं का अम्बार लगा हुआ है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे तो अब अतीत की बात हो गई है। भारतीयों के लिए दंगा तो एक समस्या थी ही, दूसरी समस्या, विभिन्न राज्यों में फैली सांप्रदायिक अलगाववाद है, जो बहुत बड़ी समस्या के रूप में उभर रहा है। इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र की गरिमा अब कलंकित हो रही है। सांप्रदायिकता के प्रबल विरोधी गांधीजी थे। इस प्रबल विरोध के कारण ही महात्मा गांधी सांप्रदायिकता की बेदी पर बलि चढ़ गए। जिसका उल्लेख करते हुए पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है कि- खास कर 1948 गांधीजी की हत्या के पहले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिंदू महासभा सरीखे संगठन न केवल सांप्रदायिक हिंसा भड़का रहे थे बल्कि गांधीजी को देश विभाजन और मुस्लिम तुष्टीकरण का सबसे बड़ा अपराधी ठहरा रहे थे।

स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र मजबूत होने की बजाय कमजोर हुआ है। जनमानस में राष्ट्रवाद का भाव दम तो रहा है। भारतीय समाज में नेता, अधिकारी और कर्मचारी भ्रष्टाचार के कीचड़ में गले तक डूबे हुए हैं इसलिए लोगों की लोकतंत्र के प्रति आस्था घटी है। जनता के मन में शासन और सत्ता के प्रति आक्रोश। अमृत और विष का एक पात्र सरकार के प्रति आक्रोश

व्यक्त करते हुए कहता है कि- जहन्नुम में जाय ये बेपेदी की सरकार और इसके कर्णधार। इन्होंने चालीस करोड़ आदमियों को कुत्ता का सा जीवन बिताने पर मजबूर कर रखा है। इन्होंने व्यक्ति का आत्माभिमान नष्ट कर दिया है। अंग्रेजी राज में हम कमसे कम तप तो लेते थे, उस गुलामी से जूझने के लिए अपने सर तो तान लेते थे। अनेक बमकांड हुए, अनेक सामाजिक क्रांतियाँ आई, त्याग और तपस्या का महत्व बढ़ा, पैसे वाले तथा कथित बड़े आदमियों की जगह निःस्वार्थ देशवासियों, ईमानदार व्यक्तियों की साख बढ़ी लेकिन आज सब उलट था। ईमानदार लोग मुर्ख माने जाते हैं, जो मोटरों पर न दौड़ सके, सरकारी परमिट न दिला सके, वह भला देश सेवी कैसे कहा जाय। इस कथन से यही संकेत मिलता है की अधिकांश जनता की यह सोच बन चुकी है कि अब देश नहीं बदलेगा। सच्चाई यह की अब ईमानदारी को केवल एक गहना की तरह इस्तेमाल किया जाता है, जो किसी खास उत्सव और त्यौहार पर भाषण देते समय पहन लिया जाता है। यह हालत देश के अधिकतम संप्रभु वर्ग का हो चुका है, जिस पर देश के लोकतंत्र को बनाने, बचाने और विकसित करने की जिम्मेदारी है। देश की वर्तमान स्थिति पर करारा व्यंग्य करते हुए नागर जी लिखते हैं कि- क्या यही है स्वतंत्र भारत का मंतव्य, हवेली की दीवारें नींव से लेकर ऊपर तक छिटक चुकी हैं, दरारे बढ़ती जा रही है/ इस खस्ता इमारत को गिरा कर नई बनाने का काम तो नहीं हो रहा, बस उन दीवारों पर हल्का प्लास्टर चढ़ा कर ढकने का प्रयत्न किया जा रहा है। राजनीति का सत्य चुनाव के वोटो तक सीमित हो गया है। चोर से हाँ और शाह से भी हाँ, तुम अपना स्वार्थ पूरा करो मैं अपना, क्या यही है स्वस्थ समाज के निर्माण का स्वरूप। आखिर कहां जाएगा वह भारतीय समाज? कहां जाय? क्या करें? आजाद हुए पर भविष्य के जटिल प्रश्न जाल में कैद हो गए। इस जटिल जाल से मुक्ति तभी मिलेगी जब प्रत्येक भारतीय राष्ट्रवाद से अनुप्राणित हो कर लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए कमर कस लेगा। यह असम्भव कार्य नहीं है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमृतलाल नागर राष्ट्रवादी लेखक है। उनकी राष्ट्रीयता की भावना लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित है। इसलिए वह चाहे उपन्यास लिख रहे हो या कहानी या निबन्ध सभी के केंद्र में ये मूल्य ही होते हैं। उनका विचार है की भारत देश का विकास तभी हो सकता है जब भारतीयों की लोकतान्त्रिक मूल्यों में आस्था बनी रहे। इसकी पहल नेताओं को करनी होगी। क्योंकि इन नेताओं की वजह से ही लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में बिखराव आया है। अगर नेता इमानदारी से पहल करेंगे तो निश्चय ही प्रत्येक भारतवासी के मन में देश के प्रति आस्था जगेगी। वरना 'बिष और अमृत' के पात्र अरविन्द शंकर की तरह

राष्ट्रवाद से जुड़ाव नहीं हो पायेगा। अरविंद शंकर कहता है की - सरकार में जाने के बाद हमारे बड़े-बड़े नेताओं में अब वह भावनिष्ठा और सिद्धान्तवादिता नहीं रह गई, जो उनमें आजादी मिलने से पहले दिखाई देती थी, उसी पर तो हम उस जमाने के युवक रीझे थे। हमने आत्म बल पाया था, तरह-तरह की रचनात्मक शक्तियां हमारे अन्दर जागी थीं। आज अपने इन्हीं प्रेरणा पुरुषों को देखकर हमारी वही शक्तियां हमसे उनके सम्बन्ध में सवाल कर उठती हैं- ये लोग वही हैं। एक समय वह भी था जब कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में जाकर हमें आत्म संतोष और जूझने की प्रेरणा मिलती थी, आज वहां जाने पर मुझे ऐसा लगता है जैसे कि जुए के अड्डे में पहुंच गया हूं। □

संदर्भ सूची :

- रामविलास शर्मा, अमृतलाल नागर ग्रंथावली (भाग -एक) : 10
बिपिन चंद्र, 'आजादी के बाद का भारत' : 155
अमृतलाल नागर, 'बिखरे तिनके' : 06
डॉ.अनीता रावत, 'अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता' : 182
अमृतलाल नागर, 'बूंद और समुद्र' : 132-133
बूंद और समुद्र : 428
अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष' : 38
अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष' : 582
पूरनचंद्र जोशी, 'स्वप्न और यथार्थ : आजादी की आधी सदी' : 24
डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी(सं.), रामजन्मभूमि बारी मस्जिद विवाद : 56
पूरनचंद्र जोशी, 'स्वप्न और यथार्थ : आजादी की आधी सदी' : 24
डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी(सं.), रामजन्मभूमि बारी मस्जिद विवाद : 56
पुरुषोत्तम अग्रवाल, 'संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध' : 120
अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष' : 34
अमृतलाल नागर, 'बिखरे तिनके' : 160
अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष' : 38

द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण



डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

शोध सार :

भारत एक बहुभाषी देश है, जहाँ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाएँ बोली-समझी जाती हैं। ऐसे में गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी शिक्षण की कई प्रकार की चुनौतियाँ हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाने की स्थिति, आने वाली समस्याओं और उनके समाधान का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। हिंदी सीखने में भाषायी व सांस्कृतिक अंतर, रुचि की कमी, हिंदी के अभ्यास के लिए उचित वातावरण का अभाव, अच्छे प्रशिक्षित हिंदी शिक्षकों और शिक्षण सामग्री की कमी तथा अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभाव, सरकारी प्रयासों की शिथिलता आदि प्रमुख चुनौतियों के रूप में सामने आते हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए द्विभाषी शिक्षण पद्धति, स्थानीय भाषा के साथ हिंदी को जोड़कर पढ़ाना, हिंदी साहित्य, मीडिया आधारित सिनेमा और संगीत का प्रयोग, नियमित अभ्यास, नाटक एवं भूमिका-आधारित शिक्षण तथा तकनीकी साधनों का प्रयोग उपयोगी हो सकता है। साथ ही, विद्यार्थियों की मातृभाषा का सम्मान करते हुए हिंदी सीखने के प्रति उनके अंदर रुचि और आत्मविश्वास पैदा करना भी आवश्यक है। इस प्रकार हिंदी शिक्षण को केवल कक्षा और पाठ्यक्रम के अतिरिक्त दैनिक जीवन, संस्कृति और व्यवहार से जोड़ने से गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी सीखने और सिखाने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी बनाई जा सकती है।

बीज शब्द :

हिंदी शिक्षण, द्वितीय भाषा, गैर हिंदी भाषी क्षेत्र, भाषायी विविधता, भाषायी बाधाएँ, सांस्कृतिक अंतर, हिंदी अधिगम, द्विभाषी शिक्षण, शिक्षण सामग्री, हिंदी प्रसार, सरा वाणी।

प्रस्तावना :

हिंदी भाषा के उद्भव और विकास की परंपरा पर ध्यान दें तो संस्कृत से पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की विकसनशील परंपरा में कई आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। जिनमें हिंदी की व्यापकता एवं पहुँच अपेक्षाकृत अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं (भारतीय) से कहीं अधिक है। इसका मुख्य कारण है कि शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी के अंतर्गत आने वाली उपभाषाओं की लगभग सभी बोलियों का देवनागरी लिपि में ही प्रयुक्त होना, हिंदी के लचीले स्वरूप के कारण अन्य भाषाओं से रस ग्रहण करना तथा मुख्य हिंदी क्षेत्र का सत्ता केंद्र के नजदीक होना माना जा सकता है। अतः वे सभी क्षेत्र जहाँ-जहाँ हिंदी की अलग-अलग बोलियाँ बोली जाती हैं, वे हिंदी की मानकीकृत भाषा यानी खड़ी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय-110007

☎ 9868976061

✉ singhpradeepgnu.delhi@gmail.com

बोली हिंदी से भी बखूबी परिचित हैं। इस वजह से हिंदी का क्षेत्र-विस्तार उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, दिल्ली आदि में मुख्य भाषा के तौर पर तो है ही, साथ ही भारत के अन्य राज्यों में जैसे—पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और केंद्रशासित प्रदेशों जैसे चंडीगढ़ और अंडमान निकोबार में भी हिंदी समझी जाती है। अतः हिंदी का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत नजर आता है। गैर हिंदी भाषी क्षेत्र जैसे पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के सभी राज्य तथा दक्षिण भारत के पाँचों राज्य—कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु। हालाँकि दक्षिण भारत में भी हिंदी समझने एवं बोलने वाले लोग मिल ही जाते हैं। अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर आदि जगहों पर पश्चिमी हिंदी की आकार बहुला बोली दखिनी व्यवहार एवं संपर्क की भाषा आज भी बनी हुई है।

भारत में गैर-हिंदी क्षेत्र में सामान्यतः उन सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों को रखा जाता है जहाँ हिंदी आधिकारिक भाषा नहीं है। यहाँ राजकाज हिंदी में नहीं, बल्कि अपनी-अपनी राज्यभाषाओं में होता है, जिसकी वजह से हिंदी का क्षेत्र हिंदी पट्टी तक ही सीमित है।

यदि हिंदी जो कि भारत के अधिकतम राज्यों में बोली अथवा समझी जाती है उसे राष्ट्रभाषा बनाना है तो हिंदी को देशव्यापी बनना पड़ेगा। सम्पूर्ण देश में संपर्क एवं व्यवहार भाषा के रूप में क्षेत्र विस्तार करना पड़ेगा। चूँकि 'राष्ट्र की अनिवार्य विशेषताओं में दो हमारे पास हैं भौगोलिक अखंडता और सांस्कृतिक एकता परंतु अब तक हम उस वाणी को प्राप्त नहीं कर सके हैं जिनमें एक स्वतंत्र राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के निकट अपना परिचय देता है।' ¹

भारत अनेकता में एकता की बेजोड़ मिसाल है। इसका प्रमुख कारण भाषायी-सांस्कृतिक वैविध्य ही है। देश की जातीय भाषाएँ भी अपनी समृद्धतम अवस्था में हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह तात्पर्य बिल्कुल भी नहीं है कि अन्य जातीय भाषाएँ दबाई जाएँ या फिर उनके विकास को अवरुद्ध किया जाए, बल्कि भारत सरकार भी त्रिभाषा सूत्र की पक्षधर है।

गैर हिंदी एवं हिंदी भाषाओं के विस्तार को यदि

वैश्विक स्तर पर देखें तो हिंदी भारत के बाहर बारह से भी अधिक देशों में बहुसंख्यक समाज की मुख्य भाषा है साथ ही लगभग 200 देशों में हिंदी का पठन पाठन हो रहा है। फिजी, गुयाना, सूरीनाम, टोबैगो, ट्रिनिडाड तथा अरब अमीरात में हिन्दी को अल्पसंख्यक भाषा के रूप में संवैधानिक दर्जा प्राप्त है। अन्य देशों जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, मॉरीशस, सिंगापुर, यमन, युगांडा आदि देशों में हिंदी भाषी भारतीयों की संख्या आंकड़ों के अनुसार लगभग दो करोड़ से भी अधिक है। जब हम द्वितीय भाषा के रूप में या गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में हिंदी के शिक्षण की बात करते हैं तो हमें भारत के साथ ही वैश्विक स्तर पर भी हिंदी के पठन पाठन को लेकर सामने आने वाली चुनौतियों का ध्यान रखना चाहिए, यदि हम इन चुनौतियों को समझते हुए आगे बढ़ें तभी हिंदी वैश्विक स्तर की भाषा बन पाएगी। जैसे समय के साथ लगातार भाषाई विस्तार पर ध्यान देने की वजह से अंग्रेजी की वैश्विक स्थिति बनी, हालाँकि अंग्रेजों ने साम्राज्यवादी नीति अपनाते हुए अनैतिक रूप से अन्य भाषाओं का दमन कर खुद की भाषा को प्रतिष्ठित किया किंतु उनकी भाषा नीति अत्यंत सफल रही इसमें दो राय नहीं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में किसी भाषा ने किसी दूसरी भाषा के विकास में कभी कोई अवरोध उत्पन्न नहीं किया, बल्कि हमेशा एक-दूसरे के प्रति सहयोग का ही भाव रखा।

गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी की क्या स्थिति है, यह जानने से पहले हमें एक बार हिंदी भाषी क्षेत्रों में गैर हिंदी भाषी भाषाओं की स्थिति पर नजर डाल लेना चाहिए। साथ ही यह भी जानना जरूरी है कि गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में एक कॉमन लैंग्वेज फिलहाल क्या है। यह समझ लेने से वहाँ की स्थिति में तेजी से सुधार न होने के पीछे की मानसिक अवधारणा स्पष्ट हो जाएगी।

'हिंदी, जैसा कहा जा चुका है, कई बोलियों और भाषाओं का समुच्चय है। इन बोलियों और भाषाओं के व्याकरणिक ढाँचे अलग-अलग हैं। फिर भी वे शब्द-समूह, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और रूप-विधान के वैविध्य में भी जातीय एकसूत्रता से जुड़ी हुई हैं।' ² हिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी की बोलियों में तो आदान-प्रदान का

भाव है ही। यहाँ लोग पंजाबी, बंगाली, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के शब्द, वाक्य सहज रूप से प्रयोग करते रहे हैं। इन भाषाओं को बोलने वालों का बड़े शहरों में बड़े समुदाय भी है, जैसे पंजाबी कॉलोनी, बंगाली कॉलोनी आदि मात्र लोगों का समूह नहीं भाषिक समूह भी हैं।

अगर हम उत्तर भारत में दक्षिण की भाषा बोलने वालों की कुल संख्या की बात करें तो ऐसा फिलहाल कोई डेटा उपलब्ध नहीं है। वहीं यदि दक्षिण भारत में भाषाओं की स्थिति का जायजा लें तो अलग-अलग राज्यों की अपनी भाषाएँ हैं और वहाँ भी एक-दूसरे राज्य की भाषा समझने वाले लोग सीमांत जिलों तक ही सीमित हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यह सिर्फ कुछ सीमावर्ती राज्यों के बॉर्डर जिलों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सर्वसाधारण व्यवहार-प्रचलन का एक अत्यंत विस्तृत क्षेत्र है, जो लगभग आधे देश की आबादी तक फैला हुआ है। वहीं उससे कहीं अधिक लोग हैं जो हिंदी समझने में समर्थ हैं। ऐसे में भारत की अखंडता एवं एकता के लिए एक ऐसी भाषा का होना नितांत आवश्यक है, जो न सिर्फ संपूर्ण भारत के लोगों को सांस्कृतिक रूप से आपस में जोड़े, बल्कि भारत को भी वैश्विक स्तर पर प्रतिनिधित्व क्षमता से लैस करें।

अगर हम भारत में हिंदी के अलावा अन्य कोई भाषा देखें जिसका प्रबुद्ध समाज में वर्चस्व है तो वह अंग्रेजी है जो कि भारत में आभिजात्यता की प्रतीक के रूप में देखी जाती है। संपूर्ण भारत में अधिकतम शिक्षित वर्ग आम बोलचाल की भाषा में अत्यंत सहज रूप से इसके शब्दों का प्रयोग करते हैं। शिक्षित वर्ग के लोग इस भाषा के वाक्य और शब्दों का प्रयोग बातचीत में करते हुए अभिजात्य होने के अहं भाव को भी महसूस करते हैं। वहीं ऐसे व्यक्ति जो अंग्रेजी में उतने सहज नहीं हैं, भले ही हिंदी या अन्य भाषाओं में कितने भी उत्कृष्ट क्यों न हों, वह हीनता के भाव से भर जाते हैं और उनका हीनता के भाव से भर जाना इस भाषाई आभिजात्यता को बढ़ावा देना है। जिस दिन भारतीय अपनी मातृभाषा हिंदी को बोलते हुए गर्व महसूस करेंगे और विदेशी भाषा के

बजाय स्वदेशी भाषा में व्यवहार को उत्कृष्ट मानने लगेंगे, उसी दिन से यह विदेशी भाषा का दंभ भी समाज से गायब हो जाएगा।

मानव मन बार-बार अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम का तलाश करती है, वह माध्यम है भाषा। भाषा सांकेतिक भी हो सकती है और संकेत-चिन्हों पर आधारित भी। भाषा दरअसल मानव मन की भाव्याभिव्यक्ति के लिए मानव द्वारा ही निर्मित संकेत-चिन्हों की एक सार्थक, प्रबल एवं सशक्त व्यवस्था है। हिंदी भाषा अपने भाषिक एवं साहित्यिक रूप में काफी समृद्ध है। यह सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं, बल्कि एक मिली जुली समृद्ध संस्कृति की वाहिका भी है। भाषा को समृद्ध से समृद्धतर बनाने की जिम्मेदारी वहाँ के लोगों की ही होती है। भारतेन्दु लिखते हैं -

‘निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटन न हिय के सूल।’³

यानी निज भाषा में ही व्यक्ति अपने भावों को पूरी सहजता के साथ प्रबलतम रूप में अभिव्यक्त कर पाता है। भारत में यदि कोई इतनी विस्तृत भाषा है तो वह हिंदी। हिंदी के साथ जनसाधारण की सांस्कृतिक परंपराएँ जुड़ी हुई हैं। राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए हिंदी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा तक का सफर तय करना ही होगा क्योंकि ‘अकबर के समय से लेकर मैकाले के काल तक फारसी राजभाषा रही, और स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले यहाँ अंग्रेजी थी अब भी है देश की संस्कृति से राजभाषा का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है राजभाषा सदा कोई स्वदेशी भाषा ही होगी भारतीय जनता के व्यवहारों का आदान-प्रदान फारसी अंग्रेजी भाषा में निश्चित ही नहीं होता था ना अब हो सकता है।’ हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसका शिक्षण, संपर्क, व्यवहार एवं प्रसार क्षेत्र गैर हिंदी क्षेत्र तक भी विस्तृत करने की आवश्यकता है।

यदि गैर हिंदी भाषी पाठकों के स्तर पर सोचें तो जो तीन बड़ी चीज उन्हें हिंदी अध्ययन के लिए प्रेरित करती हैं- रुचि, रोजगार और रियायत। गैर हिंदी भाषी लोगों की हिंदी सीखने में रुचि उत्पन्न हो इसका ठोस कारण होना जरूरी है। भाषा सीखने के बाद उन्हें रोजगार के

अवसर मिले, यह भी जरूरी है, पदोन्नति में या फिर अन्य किसी चीज में उन्हें रियायत मिले जिससे वे हिंदी सीखने को उत्सुक हों।

कुछ लोग मानते हैं कि दक्षिण में हिंदी का विरोध है तो यह बिल्कुल सही है। राजनीतिक रोटियाँ सेंकने वाले लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए ऐसे प्रोपागंडा अपनाने में संकोच नहीं करते। दक्षिण और उत्तर का बंटवारा भाषा के आधार पर जो समय समय पर दिखायी देता है वह राजनीतिक है उसका कोई सांस्कृतिक या भावनात्मक नहीं है। दक्षिण के विचार समय समय पर अबाध गति से प्रवाहित होते दिखाई देते हैं। अगर इतिहास में जाएँ तो देश में अध्यात्म का परचम फहराने वाले एवं मानवता का संदेश देने वाले अनेक आचार्य दक्षिण में हुए। संत वल्लभाचार्य, संत रामानुज यहाँ तक कि संत शिरोमणि शंकराचार्य भी दक्षिण भारत की ही देन हैं जिनका प्रभाव समूचे राष्ट्र को सोच समझ पर परिलक्षित होते रहे हैं। दक्षिण की भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द प्रचुर मात्रा में हैं, अतः अच्छा हिंदी भाषाविद् इन भाषाओं को भलीभाँति समझ लेता है। दक्षिण भारतीय लोगों के मन में जो बात सबसे ज्यादा खटकती है, वह यह है कि आखिर वह हिंदी क्यों सीखे जब वह तमिल जैसी भाषा, जो कि भारत की प्राचीनतम भाषा है, उसे जानते हैं और बचपन से उसी में व्यवहार करते आ रहे हैं। उन्हें संस्कृत से कोई परहेज नहीं, बल्कि वह उनके लिए देवभाषा है, वहीं वे हिंदी को संस्कृत का अत्यंत विकृत रूप मानते हैं। यही कारण है कि वह हिंदी को अत्यंत आस्थावान भारतीय होकर नहीं देखते। जबकि 'भाषा निरन्तर प्रवाहमान नदी है। जिस प्रकार विभिन्न जल स्रोत नदी को सबल बनाते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार के शब्द भाषा के रूप को गढ़ते चलते हैं, उसमें निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया आगम, विलोपन आदि चलती रहती है। वस्तुतः परिवर्तन ही भाषा को विकास की दिशा प्रदान करता है।' ⁴

जब तक हिंदी भाषी एवं गैर हिंदी भाषा लोगों के बीच समरसता एवं अपनत्व का भाव नहीं होगा तब तक उनके अंदर का भाषाई अवरोध कम नहीं होगा। संसाधन होने के बावजूद भी वे सीख नहीं पाएंगे।

जब तक हिंदी भाषी लोग स्वयं हिंदी में बोलते हुए, कामकाज एवं अन्य व्यवहार करते हुए गर्व महसूस

नहीं करेंगे तब तक उनके अंदर भाषा के प्रति आत्मविश्वास नहीं आएगा और इससे वे न सिर्फ अपनी भाषा को हीन समझेंगे बल्कि अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को प्रोत्साहन भी देंगे। आज भी हमारे समाज में हिंदी के बजाय अंग्रेजी में व्यवहार, शिक्षा आदि को लोग उत्कृष्ट समझते हैं जबकि हिंदी उससे कहीं अधिक वैज्ञानिक एवं मानकीकृत भाषा है। यशदेव शल्य इसी ग्रंथि भाव को दूर करने के बारे में लिखते हैं कि 'यदि हिंदी के लिए कुछ करना है तो पहले हिंदी भाषा भाषियों की मानसिकता बदलें पीछे अपने शेष देश की।' ⁵ गैर हिंदी क्षेत्र में शिक्षण के लिए जो कि अत्यंत आवश्यक है।

भारतीय लोगों को 1857 के विद्रोह के बाद यह समझ आने लगा था कि एक ऐसी भाषा का होना आवश्यक है जो देशभर के लोगों को आपस में जोड़ सके और उसके बिना आजादी संभव नहीं। महात्मा गांधी, महर्षि दयानंद सरस्वती, केशव चंद्र सेन, राजा राममोहन राय, महायोगी अरविंद, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, सर टी. विजय राघवाचार्य, बंकिम चंद्र चटर्जी, रवींद्रनाथ ठाकुर, श्री गोपालाचारी, हिंदी प्रहरी राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, जवाहरलाल नेहरू, बाबा साहेब आंबेडकर, सुमित्रानंदन पंत एवं ऐसे देशभर के अनेक नेता, शिक्षाविद, पत्रकार, महापुरुष स्वतंत्रता सेनानी हुए जो यह भलीभाँति समझते थे कि एक राष्ट्रभाषा का होना अत्यंत आवश्यक है जो देशव्यापी बने, जिसका विस्तार संभव हो और वह राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो सके।

महात्मा गांधी कहते हैं कि 'हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं' ⁶ वहीं दक्षिण भारत में कर्नाटक राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री एवं महान नेता व स्वतंत्रता सेनानी एस. निजलिंगप्पा कहते हैं कि 'दक्षिण की भाषाओं में ने संस्कृत से बहुत कुछ लेनदेन किया है इसलिए इस परंपरा में आई हुई हिंदी बड़ी सरलता से राष्ट्रभाषा होने के लायक है।' ⁷ वहीं थियोसोफिकल सोसायटी की एनी बेसेंट लिखती हैं कि 'भारत की सभी स्कूलों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।' ⁸ देश के लगभग हर हिस्से के लोग यह मानते हैं कि हिंदी राष्ट्रभाषा के लिए उपयुक्त है अतः उसका शिक्षण एवं प्रसार को और तेजी से बढ़ाया जाना चाहिए।

जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है उन्हें हिंदी का शिक्षण देना थोड़ा चुनौतीपूर्ण अवश्य हो सकता है किंतु प्रशिक्षण और हिंदी में रुचि जाग्रत करके उसका समाधान खोजा जा सकता है।

उत्तर भारत की संस्कृति दक्षिण भारत के राज्यों की संस्कृति, त्योहारों आदि में अपनी क्षेत्रीय विशिष्टताओं के कारण स्वाभाविक रूप से कुछ-कुछ भिन्न अवश्य हैं किंतु मूल्यों, मान्यताओं, संबंधों और विश्वास के स्तर पर अलग नहीं हैं। यही स्थिति दक्षिण के अतिरिक्त अन्य दूसरे भाषाई क्षेत्रों की भी है सुदूर दक्षिण से लेकर सुदूर पूर्वी राज्य सभी शामिल हैं।

गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में हिंदी कक्षाओं तक सीमित रहती है क्योंकि छात्र कक्षा से बाहर अपनी क्षेत्रीय भाषा में बात करते हैं, व्यवहार करते हैं, उनकी विचार प्रक्रिया भी उसी भाषा में होती है, वे उसी भाषा में सोचते और व्यवहार करते हैं। जब सभी कार्य आसानी से राज्य की भाषा में हो जाते हैं, ऐसे में कोई अन्य भाषा क्यों सीखे, यह अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में योग्य और अनुभवी हिंदी शिक्षकों की कमी एक बड़ी चुनौती है। द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए प्रशिक्षित शिक्षक चाहिए। उनको भाषा शिक्षण के लिए उपयुक्त व्याकरण, लक्ष्य भाषा भाषियों के सांस्कृतिक व्यवहारों की और संवेदनशीलता की भी समझ होनी चाहिए। एक कुशल भाषा शिक्षक को दूसरी भाषा की व्याकरणिक संरचना और उस भाषा के व्यवहारों की भी समझ होनी चाहिए। जैसे भाषा शिक्षण की आधुनिक विधियों का ज्ञान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसके अंतर्गत व्यतिरेकी विश्लेषण विधि, प्रत्यक्ष या व्याकरण विधि, ऑडियो लिंगुअल विधि आदि का ज्ञान भाषा शिक्षण को सुलभ बनाता है। भारतीय समाज के अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों के लिए यह उतना चुनौती पूर्ण नहीं है जितना विदेशियों के लिए क्योंकि सांस्कृतिक स्तर पर हमारे व्यवहार और मूल्य, प्रथाएं, विश्वासों में बहुत अंतर नहीं है जैसा कि विदेशी भाषा के साथ है। इससे छात्रों को उचित मार्गदर्शन एवं शिक्षण प्राप्त करने में सुलभता होती है।

शिक्षण हेतु सुलभ, व्यवस्थित एवं बोधगम्य पाठ्य

पुस्तकों की कमी के कारण पाठक सहज रूप से भाषा को समझने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसका निदान तभी हो सकता है जब हम द्वितीय भाषा भाषियों की भाषायी माँग को ठीक से समझें और उस अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार करें। केन्द्रीय हिंदी संस्थान और निदेशालय जैसे संस्थानों ने यह कार्य किया भी है और कर भी रहे हैं किंतु इसके लिए और अधिक संस्थानों की तथा सरकारी प्रयासों की आवश्यकता है।

गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में शिक्षक की सबसे बड़ी चुनौतियों में यह भी है कि जब एक हिंदी क्षेत्र का व्यक्ति गैर हिंदी भाषा के किसी व्यक्ति से मिलता है तो उनका आपसी संवाद अंग्रेजी भाषा के कीवर्ड शब्दों में करते हैं, न कि हिंदी अथवा गैर हिंदी भाषा में, जो कि एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है। हालांकि बाज़ार ने एक स्तर तक इसे दूर भी किया है किंतु चुनौतियां बनी हुई हैं।

गैर हिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी का शिक्षण करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तरीके हो सकते हैं जैसे शुरुआती स्तर पर हिंदी एवं जिस भाषा या बोली के छात्र हैं, उसी भाषा या बोली के बीच संचार स्थापित कर आसानी से सिखाया जा सकता है। गैर हिंदी भाषा के क्षेत्र को यदि हम हिंदी साहित्य की कहानी, नाटक, उपन्यास के साथ-साथ गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में रहने वाले ऐसे लोगों का साहित्य जो हिंदी में हैं, अगर उन्हें पढ़ाया जाए, उसकी जानकारी दी जाए तो छात्रों के अंदर हिंदी को लेकर एक आत्मविश्वास एवं रुचि पैदा होगी, जिससे वह रचनाकारों के साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरित होंगे।

शब्दकोश जैसे- तेलुगू-हिंदी कोश, मलयालम-हिंदी कोश, तमिल-हिंदी कोश आदि, जिसमें शब्द, वाक्य, मुहावरा, लोकोक्ति सब कुछ हों, ऐसे कोशों का निरंतर निर्माण एवं संवर्धन हिंदी विस्तार के लिए अत्यंत आवश्यक है। वहीं अंतरराज्यीय भाषाओं में हिंदी की अनुवाद पुस्तक भी हिंदी सीखने की ललक बढ़ा देती हैं। हालांकि हिंदी लेखन की ही पुस्तक जैसे चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति, भारत भारती आदि रचनाओं को पढ़ने के लिए बहुत से गैर हिंदी भाषी लोगों ने हिंदी सीखी थी। रुचि विकसित करने में इन रचनाओं और रचनाकारों का बड़ा योगदान रहा है किंतु आगे चलकर राजनीतिक समस्याओं

के चलते यह प्रक्रिया बाधित सी हो गयी।

पारंपरिक मीडिया ने रुचि विकसित करने में काफी योगदान किया है। सिनेमा एवं संगीत ऐसे रुचिकर मनोरंजन के साधन हैं जिसका प्रभाव आसानी से किसी भी भाषा भाषी पर पड़ता है। लोग उनमें प्रयुक्त गीतों, संवादों के माध्यम से भाषा सीखते हैं। फ़िल्मों को डब करके सबटाइटल के साथ छात्रों को दिखाना और उन्हें रोचक तरीके के साथ स्टोरी नरेट करना उनकी जिज्ञासा को बढ़ाने में अत्यंत उपयोगी हो सकता है।

इसी क्रम में विभिन्न भूमिकाओं में छात्रों को हिंदी में संवाद करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह विधि उन्हें वास्तविक जीवन में भाषा के प्रयोग के लिए तैयार करती है। नाटक, नुक्कड़ नाटक को भी माध्यम बनाया जा सकता है।

भाषा सीखने में निरंतर अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। समय के साथ सीखे शब्द दिमाग में ज्यों के त्यों छप जाते हैं और वह हमारी स्मृति पटल के स्थायी हिस्से बन जाते हैं। नियमित अभ्यास और पुनरावृत्ति से छात्रों की शब्दावली और व्याकरणिक ज्ञान में सुधार आता है। भाषा के प्रति हीनता बोध भी भाषा सीखने के प्रति अरुचि विकसित करता है। हीनता ग्रंथि किसी भी प्रकार की हानिकारक होती है, अतः शिक्षण के दौरान शिक्षकों को विद्यार्थी को प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रोत्साहन से छात्रों में आत्मविश्वास, रुचि और लगन का भाव बढ़ेगा। वृत्त चित्र, ऑडियो विजुअल माध्यम या अन्य माध्यमों का उचित उपयोग कर भाषा सीखने एवं सिखाने का विस्तार किया जा सकता है। इसके लिए भाषा लैब जैसी व्यवस्था का होना आवश्यक है। प्रशिक्षण केंद्रों में भाषा लैब की व्यवस्था के द्वारा इस प्रक्रिया को आसान बनाया जा सकता है।

आज के तकनीकी युग में 'सरा वाणी' जैसे बहुभाषी AI speech-recognition मॉडल गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भारतीय भाषाओं और क्षेत्रीय बोलियों को डिजिटल माध्यम से जोड़ने वाला ऐसा मॉडल विद्यार्थियों को अपनी मातृभाषा या स्थानीय बोली के माध्यम से हिंदी सीखने में सहायता कर सकते हैं।

इससे हिंदी और स्थानीय भाषाओं के बीच भाषाई दूरी को कम किया जा सकता है तथा हिंदी सीखने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है। AI आधारित वाणी पहचान तकनीक के माध्यम से विद्यार्थी हिंदी के शब्दों और उच्चारण का अभ्यास कर सकते हैं तथा अपनी भाषा में उपलब्ध डिजिटल संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं। इससे हिंदी शिक्षण केवल कक्षा तक सीमित न रहकर डिजिटल माध्यमों के द्वारा अधिक सहज, व्यावहारिक और सुलभ बनाया जा सकता है। साथ ही, भारतीय भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए ऐसी तकनीक हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं के साथ जोड़ने और भाषाई समावेशन को बढ़ावा देने में सहायक हो सकती है।

गैर हिंदी भाषी छात्रों को सरकारों को छात्रवृत्ति प्रदान करना चाहिए। इससे व्यापक स्तर पर छात्रों में हिंदी पढ़ने एवं सीखने के प्रति लालसा उत्पन्न होगी। वहीं यदि सरकार पदोन्नति, प्रोत्साहन आदि में हिंदी सीखे लोगों को रियायत दे तो भी हिंदी सीखने वालों की संख्या बढ़ेगी। हिंदी में यदि रोजगार के अवसर भी उत्पन्न किए जाएँ तो निःसंदेह गैर हिंदी भाषी भी हिंदी सीखने के लिए अत्यंत प्रोत्साहित होंगे।

रचनात्मक लेखन, आसान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता, शब्द व वाक्य अनुवाद प्रतियोगिता आदि का प्रयोग हम गैर हिंदी भाषी छात्रों को हिंदी सीखने के प्रति और आकर्षित कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री यदि बोधगम्य हो एवं सहजता से उपलब्ध हो तो छात्रों को हिंदी सीखने में और भी सहजता होगी। नई शिक्षा नीति के तहत कई बदलाव भाषा शिक्षण को और सुलभ बनाने का काम कर रहे हैं। फिर भी सरकारी स्तर पर अभी और नीतिगत फैसले लेने पड़ेंगे। द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को बढ़ाने के लिए सरकार को चाहिए कि वह केंद्रीय हिंदी संस्थान और भाषा विकास के अन्य उपलब्ध प्रतिष्ठानों की तर्ज पर और नए केंद्र खोले, सभी विश्वविद्यालयों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी भाषा शिक्षण की व्यवस्था हो तथा साथ ही भाषा नीति को विवादों के घेरे से निकालने का प्रयास करे तो निश्चित तौर पर हिंदी को व्यापक बनाने में

आसानी होगी।

राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी अत्यंत आवश्यक है, 'अंग्रेजी पढ़ना बुरा नहीं है, किन्तु बुरा यह है कि वह हमारे पत्र-व्यवहार, वार्तालाप और विचार-विनिमय का माध्यम हो। हिंदी भारत की सांस्कृतिक भाषा है, हमारी राष्ट्रीय चेतना की भाषा है, यदि सभी भारतीय इसका व्यवहार नहीं करेंगे तो बेबल का मीनार बनाने वालों की-सी दुर्दशा हमारी भी होगी। राष्ट्रीय भाषा से ही राष्ट्रीय भावना दृढ़ रहेगी।' ⁹

आर. वी. भांडारकर के शब्दों में कहें तो -

‘बढ़ने दो इसे सदा आगे

हिंदी जनमन की गंगा है

यह माध्यम उस स्वाधीन देश का

जिसकी ध्वज तिरंगा है

हो काम पवित्र इसी सुर में

इसमें हर हृदय तड़पने दो

हिंदी है भारत की बोली

तो अपने आप पनपने दो

बस आवश्यकता है हिंदी का दीप जलाए रखने की।’ ¹⁰

निष्कर्ष :

गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भाषा सीखने में केवल व्याकरण और शब्दों का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों के मन में हिंदी के प्रति रुचि और आत्मविश्वास पैदा करना भी आवश्यक है। भाषायी एवं सांस्कृतिक अंतर, उचित वातावरण की कमी, शिक्षकों और शिक्षण सामग्री की कमी तथा अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव जैसी समस्याएँ हिंदी शिक्षण को प्रभावित करती हैं।

इन चुनौतियों को दूर करने के लिए स्थानीय भाषा का सम्मान करते हुए हिंदी को सरल और व्यावहारिक तरीके से पढ़ाना चाहिए। द्विभाषी शिक्षण, हिंदी साहित्य, सिनेमा और संगीत, नाटक, नियमित अभ्यास तथा तकनीकी साधनों का उपयोग विद्यार्थियों की रुचि बढ़ाने में सहायक हो सकता है। साथ ही, हिंदी सीखने के लिए रोजगार, छात्रवृत्ति और अन्य प्रोत्साहन भी दिए जा सकते हैं।

अतः गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के विकास के लिए हिंदी को थोपने के बजाय प्रशिक्षण, रुचि, संवाद, सम्मान और व्यवहार के माध्यम से आगे बढ़ाना आवश्यक है। यदि हिंदी शिक्षण को स्थानीय संस्कृति और मातृभाषा से जोड़कर सरल एवं रोचक बनाया जाए, तो हिंदी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है और शिक्षण एवं प्रसार को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. वर्मा, महादेवी, 'हमारा देश और राष्ट्र' भाषा भारती पत्रिका, अंक 09, जनवरी 2023
2. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2021, पृ. 16
3. हरिश्चंद्र, भारतेन्दु : निजभाषा कविता
4. कुमार, डॉ. नरेश, भाषा और लिपि, गरिमा बुक्स, 2019, पृ. 25
5. शल्य, यशदेव, 'हिंदी के विश्व भाषा रूप में उन्नयन की संभावनाएँ' भाषा भारती पत्रिका, अंक 09, पृ. 46
6. बाहरी, डॉ. हरदेव. हिंदी भाषा. अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2021, पृ. 158
7. बाहरी, डॉ. हरदेव, हिंदी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ. 159
8. बाहरी, डॉ. हरदेव. हिंदी भाषा. अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ. 156
9. बाहरी, डॉ. हरदेव. हिंदी भाषा. अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ. 165
10. भांडारकर, आर. वी. 'भाषा हिंदी और हम' भाषा भारती पत्रिका, अंक 09, पृ. 49

वर्तमान में खाप पंचायतों की प्रासंगिकता (पश्चिम उत्तर प्रदेश व हरियाणा के विशेष संदर्भ में)



डॉ. लोमेश कुमार

शोध-सार :

विश्व की किसी भी सामाजिक संरचना में उसमें शामिल सामाजिक इकाइयों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये इकाइयाँ ही समाज के चरित्र को निर्धारित करती हैं, उस समाज की सोच, व्यवहार, चरित्र आदि का मापन इन्हीं के द्वारा निर्धारित होता है। उत्तर भारतीय कृषक समाज, खासकर-पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिम उत्तर प्रदेश आदि में खाप एक महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई के रूप में अति प्राचीन काल से मौजूद है, जो अपने व्यवस्थित रूप व संगठन के लिए वर्तमान समय में भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। खाप एक ही गोत्र के लोगों का समूह है। जिसके सामाजिक फैसले, समय-समय भारतीय राज व्यवस्था से टकराते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस प्रकार की पुरातन सामाजिक संस्था का, जिसका सामाजिक प्रभाव विस्तृत होता है, आज किस प्रकार राष्ट्रहित व सामाजिक हित में, उपयोग किया जा सकता है। खाप पंचायतें, कैसे न्याय व्यवस्था से टकराव न उत्पन्न कर, एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, समाज के युवा वर्ग को सही राह दिखा सकती हैं। समाज में गुटों में टकराव का समाधान कर, आपसी वैमनस्य को समाप्त कर, आंतरिक अलगाव का शमन कर सकती हैं स्त्री शिक्षा, कन्या भ्रूण हत्या, मद्यपान जैसी सामाजिक कुरीतियों की रोकथाम एवं इनके समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। जो कि आज अति आवश्यक है क्योंकि 'सशक्त समाज एक सशक्त राष्ट्र की नींव है।'

बीज-शब्द :

खाप, गोत्र, शमन, पंचायत, लोकतांत्रिक-व्यवस्था, सर्व खाप।

मूल आलेख :

किसी भी देश की भौगोलिक परिस्थितियों का वहाँ के सामाजिक संगठन पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। उसके सांस्कृतिक मूल्य, आचार-व्यवहार, खान-पान, वेशभूषा आदि पर इनका व्यापक प्रभाव रहता है। उत्तर भारत में समाज का ढांचा इन्हीं भौगोलिक व राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर खड़ा हुआ है, इसमें अनेक सामाजिक इकाइयों का महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें खाप एक प्रमुख सामाजिक इकाई है। खाप का अर्थ है किसी विशेष जाति, गोत्र, कबीले या भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले सामाजिक मानवीय समूह, जो अपने पारंपरिक सामाजिक-प्रशासनिक नियमों से बंधा होता है। यह किसी एक पूर्वज की स्वयं को संतान मानते हैं तथा उसके नाम या स्थान वाचक संज्ञा के रूप में ही खाप का नाम रखा जाता है। जो कि समय के साथ-साथ भौगोलिक विस्तार होने पर भी नहीं बदलता है। एक अन्य रूप में खाप का अर्थ आकाश व पानी (ख-आकाश, प-पानी) से लगाया जाता है, अर्थात् ऐसा संगठन जो आकाश की तरह सर्वोपरि तथा पानी की तरह निर्मल हो।

कृष्ण एनक्लेव, किला परीक्षितगढ़ रोड
मेरठ, उत्तर प्रदेश-250001
☎ 9718595904
✉ lomeshschauhan@gmail.com

इस प्रकार यह एक सामाजिक-प्रशासनिक ढांचे का निर्माण करती हैं और एक सामाजिक नियामावली के क्रियान्वयन हेतु समूह के रूप में पंचायत का भी निर्माण करती हैं जिसे खाप पंचायत कहा जाता है। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश राजस्थान, पंजाब आदि राज्यों में प्रभावी रूप से दिखाई देती हैं। इस प्रकार यह (खाप) सगोत्रीय सामाजिक समुदाय हैं। जो एक पारंपरिक और अनौपचारिक परिषद् के रूप में कार्य करती हैं। जिसे कोई संवैधानिक व कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं है। खाप पंचायतें वर्तमान पंचायत व्यवस्था से भिन्न होती हैं। पंचायत एक संवैधानिक निकाय है वहीं खाप पंचायत किसी कानून या संविधान का हिस्सा नहीं है। पंचायत में व्यस्क मताधिकार के आधार पर जहाँ चुनाव होता है। वहीं खाप पंचायत प्रमुख परंपरागत रूप से ही चुना जाता है। आधुनिक पंचायत राज व्यवस्था में जहाँ सभी प्रकार के विकास कार्यों में भागीदारी होती है, वहीं खापें सामाजिक आचार-व्यवहार आदि पर ही फैसले आरोपित करती हैं।

खाप पंचायतों का इतिहास काफी प्राचीन है सामूहिक एकता की शक्ति को हमारे धर्म ग्रंथों में भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है। जिसको पंचतंत्रम् एक श्लोक से निरूपित किया गया है-

बहवो न विरोद्धव्या दुर्जया हि महाजनाः ।

स्फुरन्तमपि नागेन्द्रं भक्षयन्ति पीपीलिकाः ॥

अर्थात् विशाल समूह से विरोध नहीं करना चाहिए चाहे वे अकेले में दुर्बल हों परन्तु समूह में वे दुर्जेय हो जाते हैं। जिस प्रकार चींटियाँ मिलकर फुफकारेत विशाल सर्प को भी खा जाती हैं।

इसी सामूहिक शक्ति के सिद्धांत ने खाप जैसे सामाजिक संगठन को जन्म दिया इसकी तुलना प्राचीन-गण, सभा, समीति गणतंत्र से की जाती है। ऐसा कहा जाता है कि राजा दक्ष के यज्ञीय कुण्ड में सती के प्राणोत्सर्ग उपरांत, भगवान शिव ने अपने गण वीरभद्र को अपनी गण सेना के साथ राजा दक्ष के यज्ञ को भंग करने की आज्ञा दी। यह धर्म ग्रंथों में वर्णित इस तरह की सबसे प्राचीन घटना मानी जाती है। किसी न किसी रूप में इनकी प्राचीनता रामायण काल तक जाती है। राजा हर्षवर्द्धन की सहायता खाप पंचायतों द्वारा किए जाने का उल्लेख मिलता है। खापों का सामाजिक प्रभाव काफी अधिक था। मध्यकाल में सर्वखाप नाम से एक वृहत संगठन की रचना की गई। इसमें किसी सामाजिक, राजनैतिक या कभी-कभी धार्मिक मुद्दों को हल करने का प्रयास किया

जाता। सर्वखाप अनेक खापों की पंचायतों का सामूहिक नामकरण है। इसमें अनेक जातियों जैसे- जाट, राजपूत, गुर्जर, त्यागी एवं अन्य सामाजिक समूह मिलकर इस सर्वखाप का निर्माण करते हैं।

इस प्रकार इन सभी जातीय समूहों की खाप पंचायतें मिलकर किसी भी वृहत विषय पर निर्णय सामूहिक रूप से लेती थी। कभी-कभी विदेशी आक्रान्ताओं से अपनी रक्षा हेतु सर्वखाप सेना का भी निर्माण भी किया जाता था। इसका महत्वपूर्ण उदाहरण सन् 1398 ई० में तैमूर लंग के भारत पर आक्रमण के समय हरिद्वार के जोगराज सिंह के नेतृत्व में एक सर्वखाप सेना का गठन किया गया इसमें सभी जाति के युवाओं को स्थान दिया गया साथ ही एक सर्वखाप महिलासेना का गठन रामप्यारी गुर्जर के नेतृत्व में किया गया। इस सर्वखाप सेना ने तैमूर की सेना का मुकाबला किया। इल्तुतमिश की सेना को दो बार सर्वखाप सेना ने हराया। भरतपुर के राजाराम के विद्रोह और उनकी मृत्यु के बाद सर्वखाप पंचायत का मुख्यालय सिनसिन नामक गांव बन गया। सन् 1857 के विद्रोह में सर्वखाप ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। खापों ने बागपत के शाहमल के नेतृत्व में हुए अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह को अपना समर्थन दिया। आजादी के बाद चौधारी चरण सिंह, चौधारी महेन्द्र सिंह के नेतृत्व में खाप पंचायतों ने किसानों व मजदूरों के अधिकारों के लिए हुए आंदोलनों को अपना पूर्ण समर्थन दिया। हरियाणा में चौधारी छोटाराम, चौधारी देवीलाल को खापों का राजनैतिक व सामाजिक समर्थन मिलता रहा। हाल ही 2020 में कृषि बिलों के खिलाफ हुए किसान आंदोलन को भी अनेक खापों ने अपना समर्थन देकर मजबूत किया था।

खाप पंचायतों की कार्य पद्धति सामाजिक विनियमिकरण तक ही सीमित नहीं रही, समय के अनुसार उन्होंने सैन्य संगठन तक तैयार कर अपने क्षेत्र, जान ओ माल की रक्षा की। परंतु आधुनिक युग में ये पंचायतें समय-समय पर लिए गए अपने निर्णयों को लेकर चर्चा में रहती हैं। यह सामाजिक संगठन की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में सामाजिक कुरीतियों, नए सामाजिक प्रचलन, गैर पारंपरिक प्रथाओं के चलन के विरुद्ध नियम बनाकर खाप पंचायतें उसे लागू करने का प्रयास करती हैं।

खाप पंचायतों की रचना पर अगर गौर किया जाए तो उत्तर भारत में खासकर हरियाणा, पश्चिम उप्र. में यह अब जाति आधारित एवं गोत्र आधारित संस्था बन गई है। खेती

हर ग्रामीण समाज में खाप पंचायतें एक ही गोत्र के कई गांवों, जिन्हें ग्वाहंड कहा जाता है, से मिलकर बनती हैं। इनका नामकरण इनके पूर्वज के नाम पर ही होता है। गांवों की संख्या 7 (सतग्रामा) 12 (बारहा) 24 (चौबीसी) 52 (बावनी) 84 (चौरासी) 360 तक भी होती है इनमें एक ही गोत्र व खाप के गांव मिलते हैं। हरियाणा में मुख्यतः जाट समुदाय की महम चौबीसी, कण्डेला खाप, सांगवान खाप आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार पश्चिमी उप्र. में बालियान खाप, जिसके प्रमुख किसान नेता चौधारी महेंद्र सिंह टिकैत थे, प्रमुख है। गुर्जरों की कलस्यान खाप (कैराना), बटार खाप, पंवार खाप (सहारनपुर) प्रमुख है। इसी प्रकार राजपूत समाज में सोम चौबीसी प्रमुख है। खापों में एक प्रमुख के अलावा उसके नीचे थाबेदार होते हैं जिनकी संख्या अलग-अलग खापों में अलग-अलग होती है। इनके द्वारा ही ये अपने नियमों या आदेशों का क्रियान्वयन करती हैं। इन्हीं खापों के मिलने से सर्वखाप का निर्माण होता है। जिसका आयोजन समय-समय पर किया जाता है, और समाज में विवाह खर्च, दहेजप्रथा अन्तर्जातीय विवाह, अन्तर्धार्मिक विवाह आदि विषयों पर अपने विचार व सलाह देती है।

खाप पंचायतों के यदि कार्य कलापों की आधुनिक परिपाटी को देखा जाए तो अब यह केवल सामाजिक विनियमिकरण तक ही सीमित है। इन संस्थाओं पर रूढ़िवादी होने तथा असंवैधानिक होने का आरोप लगता है। आज के समय में जब हम विश्व की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत रह रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में इनका कार्य क्षेत्र काफी सीमित हो जाता है। फिर भी ये समाज में फैल रही कुरीतियों जैसे- दहेज, कन्या भ्रूणहत्या स्त्री अशिक्षा, मद्यपान, अन्य प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन, अन्तर्जातीय विवाह आदि पर अपनी राय व नियमानुसार रोक लगाने तथा समाज में जागरूकता लाने का प्रयास करती हैं। इन्होंने सगोत्रीय विवाह पर अत्यन्त कठोर फैसले भी लिए हैं, जिससे इनकी व्यापक आलोचना भी हुई है। परंतु फिर भी युवा पीढ़ी को सही राह दिखाने, उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक करने, समाज में कन्या भ्रूण हत्या को रोकने, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने में इनकी महती भूमिका रही है। इसके सुखद परिणाम भी दिखाई पड़ते हैं, जब हरियाणा जैसे छोटे राज्य की ग्रामीण परिवेश की लड़कियाँ अंतराष्ट्रीय खेलों में देश का नाम रोशन करती हैं। सामाजिक बदलाव को वे धीरे-धीरे आत्मसात कर रही हैं। इसके अतिरिक्त ये पंचायतें दो भिन्न समाजों के मध्य

उपजे विवाद को आपसी सहमति व समझौते से हल करने का प्रयास करती हैं तथा सामाजिक ताने बाने की रक्षा करती हैं। खाप पंचायतें राजनीति से दूर रहने का प्रयास करती हैं, परंतु राजनैतिक दल इनके समर्थन व सहयोग का निरंतर प्रयास करते हैं, किसी भी खाप प्रमुख का कोई वाक्य या वचन चुनाव को प्रभावित करने की क्षमता रखता है क्योंकि लोगों का न केवल रक्त संबंध होता है बल्कि वे भावनात्मक रूप से भी उनसे जुड़े होते हैं। 12 जनवरी 2013 के राष्ट्रीय सहारा अखबार के एक लेख के अनुसार प्राचीन काल में खाप पंचायतों की स्थापना भारतीय संस्कृति के उन्नयन एवं देश व समाज की स्वस्थ परंपराओं को बनाए रखने के लिए की गई थी। इनके क्रिया कलापों पर (ऑनर किलिंग मुद्दे पर) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सख्त टिप्पणी की तथा उन्हें अपने दायरे में रहने की नसीहत दी थी। हरियाणा प्रदेश के निवर्तमान मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर ने 2017 में इनको समाज के लिए उपयोगी बताया तथा इन पर प्रतिबंध का विरोध किया तथा इनके आधुनिकीकरण की वकालत की।

निष्कर्ष :

आधुनिक युग में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरता है कि किसी समाज में, किसी प्राचीनतम संस्था, जिस पर रूढ़िवादी होने का आरोप लगता हो, क्या प्रासंगिकता है। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि जहाँ आज विज्ञान ने इतनी प्रगति की है, जिससे न केवल आर्थिक क्षेत्र में, वरन् सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव दिखाई देते हैं। सामाजिक ताने-बाने पर इण्टरनेट, सोशल मीडिया का व्यापक प्रभाव दिखता है। जिसने न केवल पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित किया है बल्कि व्यक्ति के सामाजिक दायित्वों पर भी नई बहस छेड़ दी है। सोशल मीडिया, इण्टरनेट, टी.वी. आदि ने रॉइट टू फॉरगॉटन (भूलने का अधिकार) को खत्म कर दिया है। जिससे कुछ घटनाओं व बातों का लगातार सोशल मीडिया पर बने रहना सामाजिक समरसता को न केवल कम करता है बल्कि इससे सामाजिक तनाव और बढ़ता है। जिससे न केवल व्यक्तिगत वरन् परिवार व समाज और राष्ट्र की भी व्यापक क्षति होती है, और एक मजबूत सामाजिक आधार में दरारें पैदा होती हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ व्यक्ति, खासकर नई पीढ़ी, जो बाहर पढ़ाई, रोजगार के लिए कार्यरत है, वह इस आधुनिक वैश्विक गांव (ग्लोबलाइजेशन) के प्रभाव से खुद को नहीं बचा पा रही है। संचार माध्यमों ने उसकी सोच

को व्यापक रूप से प्रभावित किया है जिसके प्रभाव में व्यक्ति अपने दायित्वों को निर्वहन एक सामाजिक इकाई के रूप में नहीं वरन् ज्यादा व्यक्तिगत होकर कर रहा है, ऐसी स्थिति में सामाजिक मूल्यों के रक्षार्थ इन खाप पंचायतों की भूमिका बढ़ जाती है। इनका व्यापक जनाधार (खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में) आज 21वीं सदी में भी बरकरार है। अपनी पंचायत प्रणाली और सामाजिक स्वीकार्यता के आधार पर आज भी यह बहुत से सामाजिक मुद्दों को हल करने की शक्ति रखती है। जब राष्ट्र, जाति, धर्म अथवा सामाजिक संस्कारों या परम्पराओं पर आघात होता है अथवा किसी सामाजिक या राजनैतिक समस्या का समाधान किसी अन्य संगठन द्वारा नहीं होता है तब सर्वखाप पंचायतें भी उसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। समयानुसार इनकी कार्य-शैली और आयोजन परिस्थितियाँ अवश्य बदलती रहती हैं, परंतु फिर भी देश में लंबे समय से भिन्न-भिन्न शासन तंत्र इस प्रणाली को समाप्त नहीं कर पाए। आज इस पंचायत प्रणाली को भी स्वयं को समय के अनुसार ढलने की आवश्यकता है जिससे देश व समाज को इनका अधिक से अधिक फायदा मिल सके।

आज एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में रूढ़िवाद एवं आधुनिकता के टकराव को दूर करने के लिए उन मुद्दों की पहचान आवश्यक है जो कि टकराव के मुख्य बिन्दु हैं। इनमें कुछ निम्न हैं-

- पितृ सत्तात्मक समाज में, लैंगिक असमानता से जुड़ी प्रथाएँ और उनके कठोर सामाजिक मानदण्ड जो महिला स्वायत्तता को बाधित करते हैं।
- अन्तर्जातीय एवं सगोत्र विवाह पर कठोर मानदण्ड, जो कि कभी-कभी ऑनर किलिंग जैसी घटनाओं की मंजूरी देती है।
- इनके निर्णय संवैधानिकता के दायरे का उल्लंघन करते हैं, जो कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता व गरिमा के सिद्धांतों का

उल्लंघन करते हैं। जिसके लिए सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं है।

□ कभी-कभी जातीय पदानुक्रम पर कठोर निर्णय लेती हैं, जो कि सामाजिक अलगाव पैदा करता है, जो कि जातीय वैमनस्य को बढ़ाता है। सरकारों एवं इन खाप पंचायतों के मध्य विवाद बिन्दुओं को हल करने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं, जो अभी तक नाकाफी साबित हुए हैं। इस संबंध में, निम्न प्रयास भी किए जा सकते हैं-

□ खाप पंचायतों को वैकल्पिक विवाद समाधान के प्रभावी उपकरण के रूप में विकसित किया जा सकता है। इसके लिए संवैधानिक ढांचे के अनुरूप इनको राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (1987) की भांति ADR प्रणाली में एकीकृत किया जा सकता है।

□ इनकी गतिविधियों और सीमाओं को परिभाषित करने के लिए कानून तैयार किया जा सकता है। जो कि मानवाधिकारों के अनुरूप हो जिससे ऑनर किलिंग, जबर्न विवाह रद्द जैसी असंवैधानिक प्रथाओं पर रोक लग सके।

□ समाज में फैली कुरीतियों यथा- देहेज प्रथा नशीले पदार्थों के सेवन, स्त्री अशिक्षा आदि के लिए इन संस्थाओं का उपयोग जागरूकता लाने एवं कानूनों के बेहतर उपयोग हेतु किया जा सकता है।

इस प्रकार सभी पक्षों के सहयोग व समर्थन से इन पंचायतों का बेहतर एवं समुचित उपयोग किया जा सकता है। ये अपने स्तर पर भी शिक्षा, खेल आदि क्षेत्रों में जागरूकता लाकर एवं प्रोत्साहन कार्यक्रम आयोजित कर युवाओं खासकर लड़कियों का उत्साहवर्द्धन कर रही हैं। धीरे-धीरे दकियानूसी सोच पीछे छूट रही है। परंतु फिर भी सरकार यदि अधिक सहयोग करें तथा इन खाप पंचायतों को संवैधानिक दायरे में परिभाषित कर इनकी सीमाओं का निर्धारण करे तो इन स्थापित सामाजिक संस्थाओं का और अधिक उपयोग देश एवं समाज के लिए किया जा सकता है। □

संदर्भ सूची :

1. अग्रवाल, डॉ. अमित, 'भारत में ग्रामीण समाज', विवेक प्रकाशन, दिल्ली-7
2. शर्मा, के. एल., 'भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन', रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. सिंह, डॉ. नन्धन, 'उत्तरी भारत एवं पंचायत व्यवस्था', प्रकाशन, दिल्ली।
4. राबर्ट, रैडफील्ड, 'कृषक समाज तथा कृषक संस्कृति राजस्थान', दिल्ली ग्रंथ एकादमी, 1973
5. भारद्वाज, एस.बी., 'मिथ एण्ड रियलटी आफ खाप पंचायत', (2013)
6. सिन्हा, मनोज, 'समकालीन भारत का एक परिचय', आरियन्टल ब्लैकस्वान।
7. रावत, इंद्र सिंह, 'किसान यूनियन के साथ छः वर्ष', सर्जनप्रेस, मुड़ नगर।
8. बालियान, अशोक, 'सर्वखाप पंचायत इतिहास और भविष्य', निखिल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. हिन्दुस्तान, 17 जनवरी, 2012
10. राष्ट्रीय सहारा, 12 फरवरी, 2013
11. दैनिक जागरण, 01 सितंबर, 2016, मेरठ संस्करण।
12. What are khap panchayat acts, Hindustan times, New Delhi.

नागामिज और हिंदी का अंतर्संबंध



डॉ. बृजेश कुमार

शोध-सार :

प्रस्तुत शोध आलेख में नागामिज और हिंदी के अंतर्संबंध का भाषावैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। नागामिज नागालैंड की बहुभाषिक परिस्थिति से विकसित एक संपर्क भाषा है, जिसमें विभिन्न नागा भाषाओं के साथ असमिया, नेपाली, बंगला, अंग्रेजी और हिंदी के भाषायी तत्वों का समावेश दिखाई देता है। आलेख में हिंदी और नागा भाषाओं के ध्वनि, रूप-रचना, लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल-अर्थ, वाक्य-विन्यास तथा शब्द-रचना संबंधी पक्षों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं में कुछ समानताएँ विद्यमान होने के बावजूद उनकी संरचनात्मक विशेषताओं में पर्याप्त भिन्नता है। नागा भाषाओं की सुरात्मकता, प्राकृतिक लिंग-व्यवस्था तथा प्रत्यय-प्रधान रूप-रचना हिंदी से अलग विशेषताएँ प्रस्तुत करती हैं। नागामिज के विभिन्न वाक्य-प्रयोग भी हिंदी तथा अन्य संपर्क भाषाओं के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। नागामिज और हिंदी का अंतर्संबंध भाषायी संपर्क, सामाजिक व्यवहार तथा शब्दों और अभिव्यक्तियों के आदान-प्रदान पर आधारित है। यह संबंध नागामिज के संपर्क-भाषा स्वरूप और नागालैंड की बहुभाषिक सामाजिक संरचना को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

कूट शब्द :

नागामिज, हिंदी, अंतर्संबंध, बहुभाषिकता, संपर्क, ध्वनि-व्यवस्था, सुरात्मकता, पिजिंग, लिंगुआ फ्रैंका।

प्रस्तावना :

नागामिज नागालैंड की एक प्रमुख लिंगुआ फ्रैंका (संपर्क भाषा) है। यह विभिन्न भाषाओं के संपर्क से विकसित हुई भाषा है, जिसमें असमिया, बंगला, नेपाली, अंग्रेजी तथा विभिन्न नागा भाषाओं के तत्व पाए जाते हैं। यह भाषा कोई पारंपरिक भाषा नहीं बल्कि एक पिजिन भाषा है। नागामिज का विकास किसी एक पारंपरिक मातृभाषा के रूप में नहीं हुआ, बल्कि दो या दो से अधिक भाषाओं के संपर्क से उत्पन्न एक व्यावहारिक संपर्क भाषा के रूप में हुआ। इस दृष्टि से नागामिज के निर्माण में नागालैंड की बहुभाषिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

मूलतः नागा भाषाएँ तिब्बती-चीनी परिवार के अंतर्गत तिब्बती-बर्मी उपपरिवार से संबंधित मानी जाती हैं। नागा भाषा-समुदाय अनेक भाषाओं और बोलियों से निर्मित है। इन बोलियों में ध्वनि, रूप-रचना, वाक्य-विन्यास तथा शब्दावली के स्तर पर पर्याप्त भिन्नताएँ विद्यमान हैं। ऐसी भाषायी विविधता के

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
नागालैंड विश्वविद्यालय
कोहिमा परिसर, मेरिमा -797004
☎ 8318485669
✉ brijeshsharma099991@gmail.com

कारण विभिन्न नागा समुदायों के बीच संपर्क और संचार के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता अनुभव हुई, जिसे नागामिज ने काफी हद तक पूरा किया।

नागा भाषाओं का वर्गीकरण :

नागा भाषाओं के वर्गीकरण और अध्ययन का कार्य विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर किया गया है। नाथन ब्राउन (1838) ने नागा भाषाओं को नोक्ते, कोन्याक और आओ आदि प्रमुख वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया। इसके बाद सर जी. ग्रियर्सन ने 1903 में नागा भाषाओं के वर्गीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। इसके पश्चात आर. शेफर (1957) ने उत्तरी नागा भाषाओं के वर्गीकरण का अध्ययन किया। इसी क्रम में जी. ई. मेरी (1967) ने भारत की नागा भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उनका वर्गीकरण आधुनिक प्रारूपात्मक अथवा प्रकारात्मक (Typological) अध्ययन पर आधारित था। इन अध्ययनों से नागा भाषाओं की विविधता और उनके पारस्परिक संबंधों को समझने में सहायता मिलती है।

नागालैंड में अनेक नागा भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं। इनमें आओ, अंगामी, सेमा, लोथा, कोन्याक, चोर्की, चाड, संगतम, फोम, यिमचुंगर, कुकी, पोचुरी, खियामिनियुंगन, कचारी, माकबारे, तिखिर, खेजा, रांग्मेई, जेमी तथा लियांग्मेई आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन भाषाओं की अपनी-अपनी विशिष्ट भाषायी एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं।

नागामिज का सामाजिक महत्व :

नागामिज का प्रयोग संपूर्ण नागालैंड में संपर्क भाषा के रूप में किया जाता है और विभिन्न भाषायी समुदायों के लोग इसे समझते तथा बोलते हैं। यह केवल अशिक्षित लोगों के बीच ही नहीं, बल्कि शिक्षित लोगों के बीच भी व्यवहार और संपर्क का माध्यम है। विभिन्न मातृभाषाओं को बोलने वाले लोगों के लिए नागामिज पारस्परिक संचार को सहज बनाने का कार्य करती है। आकाशवाणी कोहिमा से भी नागामिज में समाचार प्रसारित किए जाने का उल्लेख मिलता है। इससे इसके व्यापक सामाजिक एवं संचारात्मक महत्व का पता चलता है। नागामिज के शब्द-भंडार और संरचना में असमिया, बंगला, हिंदी,

अंग्रेजी तथा नागा भाषाओं के प्रभाव दिखाई देते हैं। इसलिए इसे विभिन्न भाषाओं के संपर्क और समन्वय से विकसित भाषा के रूप में देखा जा सकता है।

हिंदी और नागा भाषाओं का भाषायी संबंध :

हिंदी और नागा भाषाएँ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग परिवेश में विकसित हुई हैं। हिंदी और नागा भाषाओं का संबंध दो भिन्न भाषायी परिवारों से होने के कारण दोनों की ध्वनि-व्यवस्था, रूप-रचना तथा वाक्य-संरचना में अनेक असमानताएँ स्वाभाविक हैं। इसके बावजूद दोनों में कुछ भाषायी समानताएँ भी दिखाई देती हैं। इन समानताओं और असमानताओं का अध्ययन ध्वनि, रूप-रचना, लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल-अर्थ, वाक्य तथा शब्द-रचना आदि के आधार पर किया जा सकता है।

ध्वनि व्यवस्था :

हिंदी और नागा भाषाओं की ध्वनि-व्यवस्था का अध्ययन करने पर दोनों में अनेक समानताएँ तथा असमानताएँ स्पष्ट होती हैं। नागा भाषाओं के विभिन्न रूपों में स्वर और व्यंजन-स्वनिमों की संख्या तथा उनका प्रयोग एक समान नहीं है। अंगामी, सेमा और लोथा आदि भाषाओं में कुछ ऐसी ध्वनियाँ पाई जाती हैं जो अन्य नागा भाषाओं में नहीं मिलतीं। नागा भाषाओं में प, त, क, च, म, ज, भ, न, ल, ब और य जैसी व्यंजन ध्वनियों का उल्लेख किया गया है। वहीं हिंदी में फ, थ, ध, छ आदि ध्वनियाँ भी मिलती हैं, जिनका नागा भाषाओं में उसी रूप में पाया जाना आवश्यक नहीं है। अंगामी, सेमा तथा लोथा में कुछ विशिष्ट स्वनिम पाए जाते हैं, जबकि आओ में उनका अभाव बताया गया है। इसी प्रकार हिंदी के ब, द, ग जैसे स्वनिम केवल कुछ नागा भाषाओं, विशेषकर अंगामी और सेमा में पाए जाने का उल्लेख है। हिंदी के स्वर स्वनिमों में अ, इ, उ, ए और ओ प्रमुख हैं। नागा भाषाओं में भी स्वर पाए जाते हैं, किंतु उनका वितरण और प्रयोग हिंदी से भिन्न है। हिंदी के सभी घोष तथा महाप्राण ध्वनियों और मूर्धन्य ध्वनियों का नागा भाषाओं में उसी रूप में मिलना नहीं पाया जाता।

नागा भाषाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमें सुरात्मकता (टोन) का महत्व है। इस कारण

शब्द के उच्चारण में स्वर के साथ सुर का भी अर्थ-भेद में योगदान हो सकता है। हिंदी की ध्वनि-व्यवस्था की तुलना में यह एक महत्वपूर्ण अंतर है।

रूप-रचना :

नागा भाषाओं की रूप-रचना में प्रत्ययों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन प्रत्ययों के माध्यम से लिंग, वचन, कारक तथा काल आदि का बोध कराया जाता है। ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया आदि के साथ प्रयुक्त होते हैं। हिंदी और नागा भाषाओं में इस दृष्टि से एक समानता यह है कि दोनों में व्याकरणिक अर्थों को व्यक्त करने के लिए रूपात्मक साधनों का प्रयोग होता है। किंतु दोनों के प्रयोग में अंतर है। हिंदी में प्रत्यय लगने पर कई बार शब्द के मूल रूप में परिवर्तन हो जाता है, जबकि नागा भाषाओं में कुछ अपवादों को छोड़कर मूल रूप अपेक्षाकृत अविकृत रहता है और प्रत्यय उसके साथ जुड़कर व्याकरणिक अर्थ को व्यक्त करता है।

लिंग व्यवस्था :

हिंदी में मुख्यतः दो लिंग माने जाते हैं—

1. पुल्लिंग
2. स्त्रीलिंग

इसके विपरीत दिए गए विवरण के अनुसार नागा भाषाओं में चार प्रकार की लिंग-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है—

1. पुल्लिंग
2. स्त्रीलिंग
3. नपुंसकलिंग
4. उभयलिंग

नागा भाषाओं में लिंग की यह व्यवस्था प्राकृतिक आधार पर मानी गई है। लिंग के कारण संज्ञा तथा क्रिया के रूपों पर हिंदी की तरह व्यापक रूपात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार लिंग की दृष्टि से हिंदी और नागा भाषाओं में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है

वचन व्यवस्था :

हिंदी और नागा भाषाओं दोनों में मुख्यतः दो वचन पाए जाते हैं—

1. एकवचन
2. बहुवचन

नागा भाषाओं में बहुवचन बनाने के लिए प्रयुक्त प्रत्यय सामान्यतः शब्द के मूल रूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं करते। इसके विपरीत हिंदी में बहुवचन के निर्माण के समय कुछ शब्दों के मूल रूप में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार वचन की संख्या दोनों भाषाओं में समान होते हुए भी उसके रूपात्मक प्रयोग में अंतर पाया जाता है।

कारक व्यवस्था :

नागा भाषाओं में हिंदी की तरह कारकों का प्रयोग किया जाता है। किंतु दोनों भाषाओं में कारक-चिह्नों के प्रयोग की पद्धति समान नहीं है। दिए गए विवरण के अनुसार नागा भाषाओं में कर्म तथा संबंध कारक को व्यक्त करने के लिए हिंदी की तरह प्रत्ययों का प्रयोग नहीं होता। एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर यह है कि नागा भाषाओं में कारक का प्रभाव संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया के रूपों पर हिंदी की अपेक्षा कम दिखाई देता है। हिंदी में कारक-व्यवस्था शब्दों के रूप तथा वाक्य में उनके संबंध को प्रभावित करती है। इस कारण कारक के स्तर पर भी दोनों भाषाओं में पर्याप्त अंतर दिखाई देता है।

पुरुष व्यवस्था :

हिंदी में तीन पुरुष माने जाते हैं—

1. उत्तम पुरुष
2. मध्यम पुरुष
3. अन्य पुरुष

इनके एकवचन तथा बहुवचन रूप भी पाए जाते हैं। नागा भाषाओं में भी तीनों पुरुषों की व्यवस्था मिलती है और एकवचन तथा बहुवचन का भेद किया जाता है। किंतु दोनों भाषाओं में क्रिया-रूपों के साथ पुरुष के संबंध में अंतर है। हिंदी में पुरुष और वचन का प्रभाव कई बार क्रिया के रूप पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जबकि नागा भाषाओं में पुरुष का क्रिया की रूप-रचना पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से दोनों भाषाओं की रूपात्मक संरचना में भिन्नता दिखाई देती है।

काल और अर्थ :

नागा भाषाओं में हिंदी की तरह विभिन्न कालों और अर्थों को व्यक्त करने के लिए क्रिया के साथ प्रत्ययों अथवा अन्य रूपात्मक साधनों का प्रयोग किया जाता है। इनके माध्यम से कार्य के समय और उसके अर्थ का बोध

होता है। किंतु हिंदी में काल तथा अर्थ से संबंधित रूपात्मक परिवर्तन होने पर क्रिया के मूल रूप में परिवर्तन हो सकता है। इसके विपरीत नागा भाषाओं में काल और अर्थ को व्यक्त करने वाले प्रत्यय सामान्यतः क्रिया के मूल रूप को परिवर्तित किए बिना उसके साथ जुड़ते हैं। इस प्रकार दोनों भाषाओं में काल और अर्थ की अभिव्यक्ति की आवश्यकता समान है, परंतु उसके रूपात्मक साधन और क्रिया पर पड़ने वाला प्रभाव अलग-अलग है।

वाक्य :

नागा भाषाओं में मुख्यतः कर्तृवाच्य के प्रयोग की प्रधानता बताई गई है। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के प्रयोग की परंपरा हिंदी की अपेक्षा सीमित है। इसके विपरीत हिंदी में कर्तृवाच्य के साथ-साथ कर्मवाच्य और भाववाच्य का भी व्यापक प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टि से वाक्य-रचना में भी दोनों भाषाओं के बीच पर्याप्त अंतर दिखाई देता है। नागा भाषाओं में वाक्य निर्माण अपेक्षाकृत सीधे ढंग से होता है, जबकि हिंदी में वाच्य परिवर्तन के कारण क्रिया और वाक्य के अन्य घटकों के रूप में भी परिवर्तन हो सकता है।

शब्द-रचना :

नागा भाषाएँ भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी से भिन्न परिवेश में विकसित हुई हैं। हिंदी एक व्यापक संपर्कशील भाषा रही है और समय-समय पर अनेक भाषाओं से शब्द ग्रहण करती रही है। नागा भाषाओं का विकास मुख्यतः अपने स्थानीय भाषायी परिवेश में हुआ है। इसके बावजूद दोनों भाषाओं में रूपिम व्यवस्था की दृष्टि से कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं। नागा भाषाओं और हिंदी के बीच शब्द-स्तर पर भी पारस्परिक समानता के उदाहरण मिलते हैं। कुछ शब्द लगभग उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं, जबकि कुछ शब्दों में उच्चारण के स्तर पर थोड़ा परिवर्तन दिखाई देता है।

हिंदी और नागा भाषा में समान अथवा निकट रूप वाले शब्द :

हिंदी	नागा
कलम	कोलम
चिट्ठी	चिठी
स्याही	स्याई

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संपर्क के कारण कुछ शब्दों का रूप दोनों भाषाओं में समान या निकट हो सकता है। इसी प्रकार निम्न शब्द और अभिव्यक्तियाँ भी लगभग उसी रूप में प्रयोग किए जाने का उल्लेख मिलता है- फीका, एक हो, मुर्गी, नाम, खुशी, शादी, बीस, जन, चप, दाम, फूल, रास्ता, साल, काम, मगन, आस्ते-आस्ते, चलो-चलो, आरते-आरते, अद-भद आदि। इन शब्दों के प्रयोग से यह संकेत मिलता है कि भाषायी संपर्क के कारण केवल अलग-अलग शब्द ही नहीं, बल्कि कुछ अभिव्यक्तियाँ और बोलचाल के प्रयोग भी एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रवेश कर सकते हैं।

10. नागामिज और हिंदी के वाक्य-प्रयोग :

नागामिज और हिंदी के अंतर्संबंध को समझने के लिए दिए गए कुछ वाक्य-प्रयोग विशेष रूप से उपयोगी हैं। इनके माध्यम से दोनों भाषाओं में शब्दावली तथा वाक्य-विन्यास की समानता को देखा जा सकता है।

ताय बीसी सुन्दरी आसे।

वह बहुत सुंदर है।

भाल आसे।

ठीक है।

मोई ताईके खुशी पायी।

मैं उसे पसंद करता हूँ।

ताय बीसी पतला आसे।

वह बहुत पतला है।

मिसा ना कोवी।

झूठ मत बोलो।

खाबोले कि कि आसे?

खाने के लिए क्या-क्या है?

आपुनी ला बाचा किमान आसे?

आपके कितने बच्चे हैं?

कमती दिबी ना।

कम दीजिए न।

इन वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों और संरचनाओं को देखने पर स्पष्ट होता है कि नागामिज के प्रयोग में स्थानीय भाषायी प्रभाव के साथ-साथ हिंदी तथा अन्य संपर्क भाषाओं का प्रभाव भी दिखाई देता है। विशेष रूप से दैनिक व्यवहार से संबंधित शब्दों और वाक्य-प्रयोगों में यह संपर्क अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि नागामिज और हिंदी का संबंध मुख्यतः भाषायी संपर्क और सामाजिक व्यवहार के स्तर पर स्थापित होता है। नागामिज नागालैंड की बहुभाषिक परिस्थिति से विकसित हुई संपर्क भाषा है, जिसमें असमिया, नेपाली, बंगला, अंग्रेजी तथा विभिन्न नागा भाषाओं के साथ हिंदी के भी तत्व दिखाई देते हैं। दूसरी ओर हिंदी और नागा भाषाओं की अपनी स्वतंत्र ऐतिहासिक एवं भाषायी पृष्ठभूमि है। इसलिए ध्वनि, रूप-रचना, लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल-अर्थ तथा वाक्य-रचना आदि स्तरों पर दोनों में अनेक समानताएँ होने के साथ-साथ पर्याप्त भिन्नताएँ भी मिलती हैं। ध्वनि-व्यवस्था की दृष्टि से कुछ स्वर और व्यंजन दोनों भाषाओं में समान रूप से पाए जाते हैं,

जबकि घोष, महाप्राण और मूर्धन्य ध्वनियों तथा सुरात्मकता के स्तर पर स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। रूप-रचना की दृष्टि से दोनों भाषाओं में प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है, किंतु उनके प्रयोग और मूल शब्द पर पड़ने वाले प्रभाव में अंतर है। लिंग, वचन, कारक, पुरुष और काल-अर्थ की व्यवस्थाओं में भी दोनों भाषाओं की अपनी विशिष्ट विशेषताएँ हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नागामिज केवल संपर्क भाषा के रूप में ही नहीं अपनी भूमिका निभा रही बल्कि हिंदी के साथ निरंतर संपर्क स्थापित करकर भावनात्मक एवं सांस्कृतिक सम्बंधों को भी मजबूती प्रदान कर रही हैं।

अतः यह संबंध भाषायी एवं सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। □

संदर्भ-ग्रंथ एवं स्रोत :

1. कुमार, रामकृपाल. नागा भाषा-भाषी छात्रों की हिंदी सिखने की समस्याएं. कुमार प्रकाशन. वैशाली. 1987
2. पाण्डेय, रघुनाथ. अवस्थी, दिलीप कुमार (सं). पूर्वोत्तर की भाषा-संपदा. निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2022
3. Grierson, George Abraham. Linguistic Survey of India. Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing, India, 1903-1928. विशेष रूप से Volume III, Part II
4. Grierson, George Abraham. Languages of India: Being a Reprint of the Chapter on Languages from the Census of India, 1901. Government of India, 1903.
5. Aye, N. Khashito. Nagamese: The Lingua Franca of Nagaland Translated into English and Sumi. Dimapur, Nagaland: ATICOS, 2007.
6. Government of Nagaland. People & Culture – Nagaland State Portal.
7. Ministry of Development of North Eastern Region, Government of India. Nagaland – About North ßast.
8. Digital South Asia Library. Linguistic Survey of India. University of Chicago Library.
9. Morang, Ekha; Ngullie, Surhoni A.; Longkumer, Sashienla; Angami, Teisovi. "Sentiment Analysis and ßmotion Classification for the Nagamese Language – A Low-Resource Language." 2025.
10. Shohe, Aloi N.; Khiamungam, Chonglio; Angami, Teisovi. "Part-of-Speech Tagging for Nagamese Language using CRE." 2025.

कुबेरनाथ राय के निबंधों में पूर्वोत्तर भारत का सांस्कृतिक सौंदर्य



अनुपम भट्ट

सारांश :

कुबेरनाथ राय के निबंधों में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों का वर्णन देखा जा सकता है। उनके लेखन के केंद्र बिंदु में भारतीय संस्कृति की विस्तृत व्याख्या विभिन्न संदर्भों के माध्यम से देखी जा सकती है। उन्होंने अपने लेखन में पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति पर गहन चिंतन किया है और अपने निबंधों में वहाँ का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है। अपनी सांस्कृतिक सुंदरता और प्राकृतिक संपदा के कारण पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति को अत्यंत समृद्ध माना जाता है। पूर्वोत्तर के अनेक राज्य असम, मणिपुर, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड में भारतीय संस्कृति के विविध रूप देखे जा सकते हैं। इन्हीं विविध रूपों के अनेक प्रसंगों की व्याख्या को कुबेरनाथ राय ने अपने निबंधों में प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द :

पूर्वोत्तर, सांस्कृतिक, वैष्णव, जनमानस, किरात, निषाद, पर्वत, दार्शनिक, पृष्ठभूमि, पहाड़ियाँ।

मूल आलेख :

हिंदी साहित्य में कुबेरनाथ राय का लेखन भारत की समस्त सांस्कृतिक धाराओं से जुड़ा रहा है। उन्होंने अपने निबंधों में भारत की सांस्कृतिक की चेतना की अनेक धाराओं को समाहित कर अपना लेखन कार्य किया है। पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति कुबेरनाथ राय के निबंधों में इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि वर्षों तक पूर्वोत्तर का असम इनका कार्यक्षेत्र भी रहा है। कुबेरनाथ राय असम के नलबाड़ी नामक स्थान पर नलबाड़ी कॉलेज, असम में अंग्रेजी विषय के प्राध्यापक रहे और वर्षों तक नलबाड़ी उनका कार्यक्षेत्र रहा तथा वहाँ रहकर उन्होंने अपने साहित्य का खूब सृजन किया। पूर्वोत्तर में उनके रहने का संस्मरण निवेदिता पत्रिका के रजत जयंती विशेषांक में भी देखा जा सकता है। इस अंक में 'असम की माटी के पुत्र कुबेरनाथ राय' शीर्षक नामक लेख में उदयभानु पांडेय उनके असम में रहने और पूर्वोत्तर भारत में बीते उनके जीवन के विषय में संस्मरण के माध्यम से चर्चा करते हैं। उनकी भेंट कुबेरनाथ राय से असम प्रवास के दौरान हुई थी। इस पर वह लिखते हैं कि- "वैष्णव साहित्यकारों की एक आधुनिक कड़ी उत्तर-प्रदेश से चलकर असम पहुँच गई है। असमिया छात्र-छात्राओं के आचरण की गरिमा, असमिया जनमानस का बड़प्पन तथा संस्कृत भाषा के प्रति उनका आदर।" कुबेरनाथ राय से जब उनकी भेंट असम में हुई तो ये महत्वपूर्ण बातों

शोधार्थी, हिंदी विभाग
डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय
दिल्ली - 110006
☎ 9818791626
✉ anupambhai0922@gmail.com

ही इन दोनों लोगों द्वारा की गई चर्चा का केंद्रीय विषय रहें। प्राचीन मान्यताओं के अनुसार देखा जाए तो असम को प्रागज्योतिषपुर तथा कामरूप के नाम से जाना जाता था। मगर यहाँ के जनमानस के अनुसार बाद में आहोम राजा के शासन के कारण यहाँ का नाम असम हो गया। इसके असम नाम होने के विषय पर कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि- “असम शब्द हाल का है। चार पाँच सौ वर्षों का वैष्णव पोथी लेखक (चरित पुथी आदि) ‘आसाम’ और ‘अचाम’ (च-स) असमिया उच्चारण दोनों शब्दों का प्रयोग करते थे। ‘आ’ शब्द आहामों के लिए चला था। आहोम 12वीं शती के बाद असम के इतिहास में प्रवेश करते हैं, मगर इन्होंने अपने को आहोम नहीं कहा। स्थानीय लोगों ने इन्हें आहोम कहना शुरू किया था।”² इस प्रकार असम नाम वहाँ प्रचलित हुआ। असम में अनेक संस्कृतियों के समन्वय को भी देखा जा सकता है, जिसमें बोडो, नगा तथा अरुणाचल और मेघालय की जनजातियों के अनेक सांस्कृतिक पहलू शामिल हैं। इसके साथ-साथ असमिया संस्कृति में निहित आर्य-आर्येतर संस्कृति के अनेक पक्षों के उद्घाटन को भी देखा जा सकता है। असम में असमिया संस्कृति और भाषा के साथ हिंदी भाषा का भी समन्वय खूब देखा जा सकता है। इसके साथ ही वहाँ किरात संस्कृति का भी खूब विकास हुआ। कुबेरनाथ राय अपने दृष्टि में यहाँ के लोगों को नव्य आर्य या पौराणिक हिंदू मानते हैं तथा लेखक ने यहाँ माँ कामाख्या की उपासना की दार्शनिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अत्यंत करीब से देखा है। माँ कामाख्या को प्राकृतिक रूप से सोलह कलाओं का रूप माना गया है, जिसे अमृता कला का प्रतीक कहा गया है तथा यहाँ की जातीय संस्कृति में किरातों के साथ निषादों की संस्कृति का भी कुबेरनाथ राय ने अपने निबंधों में सौंदर्य के साथ वर्णन किया है। असम की संस्कृति में पान-तांबुल का भी अपना एक विशेष महत्व रहा है। वहाँ पान-सुपारी के प्रचलन के पीछे भी एक संस्कृति रही है। इसके बारे में भी लेखक अपने निबंधों में कई जगह जिक्र करते हैं। पान-तांबुल खाने की प्रथा भारत के पश्चिमी क्षेत्र से आए आर्यों से भी पहले की है। आज भी पूरे असम क्षेत्र के अंदर पान में कत्थे का प्रयोग नहीं होता है, बल्कि वहाँ

कत्थे के स्थान पर सुपारी (चूने का साथ) का प्रयोग ज्यादा होता है। यहाँ पाई जाने वाली सुपारी अन्य स्थान के अपेक्षा थोड़ा ज्यादा नशीली होती है। इस विषय में वहाँ की जनश्रुति में एक कथा प्रचलित है। वहाँ के लोक विश्वास में यह कहानी चलती है कि समुद्र मंथन के दौरान एक घोड़ा नारद जी की शिखा को देखकर भड़क गया था। उसकी टाँगों के झटके से एक वारुणी कुम्भ छलक गया। इसके परिणामस्वरूप धरती पर गिरी उस आदिवारुणी से एक वनस्पति उत्पन्न हुई, जिसे तामोल तथा सुपारी का वृक्ष कहा गया। इस संबंध में कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि- “असमवासियों को यह तामोल या सुपारी इतनी अच्छी लगती है कि वह इसे कच्चा खाना ही पसंद करते हैं। इसी कारण से उन्होंने अपने प्रधान नगर का नाम गुवाहाटी रखा है। हिंदी क्षेत्र वाले इसे गौहाटी कहते हैं, पर इसका शुद्ध स्थानीय उच्चारण गुवाहाटी है। यह गुवाक शब्द से बना है, ‘गुवाहाटी’ अर्थात् ‘गुवाक’ (तामोल या सुपारी)।”³ इस प्रकार पूर्वोत्तर के राज्य असम का सांस्कृतिक सौंदर्य कुबेरनाथ राय के निबंधों में देखा जा सकता है। इसके अलावा पूर्वोत्तर के अन्य राज्य मणिपुर, अरुणाचल, मेघालय, नगालैंड के अनेक सांस्कृतिक परिदृश्य को उनके निबंधों में देखा जा सकता है। उन्होंने मणिपुर राज्य के सांस्कृतिक सौंदर्य पर भी अपने निबंधों में सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है। मणिपुर के संदर्भ में उनके द्वारा रचित ‘सहस्र फणों का मणि-द्वीप’ नामक निबंध में मणिपुर के सांस्कृतिक सौंदर्य को बड़े व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस निबंध में कुबेरनाथ राय ने मणिपुर के प्राकृतिक सौंदर्य के बारे में अत्यंत विस्तार से बताया है। वह यहाँ के पेड़-पौधों व घने वनों का वर्णन करते हुए देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही वह मणिपुर के पौराणिक इतिहास की भी विस्तृत रूप से चर्चा करते हैं। मणिपुर राज्य प्राकृतिक संपदा और सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध राज्य है। कुबेरनाथ राय ने वहाँ की जातीय संस्कृति का वर्णन भी अपने निबंधों में प्रस्तुत किया है। वह वहाँ के चीनी नगाओं के वंशजों एवं मैतेई समाज का वर्णन करते हुए देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही वहाँ की प्राकृतिक संपदा के विषय में वह अपने निबंध में एक जगह जिक्र करते हुए लिखते हैं- “मैंने

देखा चारों ओर पहाड़ की परतें-दर-दर और वो कोमल काठ वाले पंजा, उरियां, गंभर से लेकर सदाबहार चीड़, साल, सागौन और खासी देवदारु के वृक्ष भरे पड़े हैं। पहाड़ों को देखें तो वहाँ अपने आप वेणुवन उगा है तथा वहाँ पर बराक नदी के अंचल में चाल मोंगरा और बेंत के निकुंज हैं। यहाँ पर दो प्रधान नदियाँ हैं-‘बराक’ जो सुरमा नदी में जाकर मिलती है और ‘मणिपुर’ जिसका नाम ‘इम्फाला’ नदी है, जो सिंधुविना में जाकर मिलती है। यहीं नदी के पास अगर वृक्षों का वन है, जिसके पत्ते श्याम, हरित वर्ण के होते हैं। मणिपुर की नदी ही मणिपुर नगर का हृदय है।”⁴ वे अपने निबंधों में मणिपुर परिक्षेत्र के प्राकृतिक सौंदर्य के अलावा किरात, निषाद, संस्कृति का गहन चित्रण प्रस्तुत करते हैं। किरात संस्कृति को विस्तारपूर्वक कुबेरनाथ राय अपने स्वयं की दृष्टि में ‘किरातारण्य’ कहते हैं। उन्होंने इस क्षेत्र को यक्षलोक, गंधर्वलोक, अप्सरा भूमि, कदलीवन आदि के रूप में बताया है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो मणिपुरी समाज वंश परंपरा में नाग गण कुकी तथा चीनी नगाओं के वंशज यहाँ रहा करते थे। इस प्रकार मणिपुर राज्य कई संस्कृतियों का उद्गम स्थान रहा है। माना यह भी जाता रहा है कि आर्यों का भारत में जब प्रवेश हुआ तो इनका बड़ा समूह पश्चिम की ओर से मणिपुर आकर ही कुछ दिनों तक रुकता था। मणिपुर में जातीय संस्कृतियों की संरचना बड़ी विस्तृत है। यहाँ अन्य जातियों की तुलना में मैतेई जाति की आबादी बहुसंख्यक रूप में निवास करती है। कुबेरनाथ राय का इनके संबंध में यह मानना है कि इनका संबंध आर्यों से रहा होगा तथा वह मणिपुरी लोगों की आध्यात्मिक और धार्मिक संस्कृति की भी चर्चा करते हैं। उनका मानना है कि मणिपुर के लोग शिव और पार्वती के उपासक रहे हैं। इस विषय पर वे कहते हैं कि- “मणिपुर मूलतः शिव रास नृत्य की भूमि रहा है। इस उत्सव में यहाँ एक विशेष प्रकार का वाद्ययंत्र बजाया जाता है, जिसे मृदंग कहते हैं तथा मणिपुर में वीण को ‘पंखोल’ और ‘पिना’ या ‘पेना’ नाम से जानते हैं। यहाँ शिव के रास को कृष्ण के रास के साथ जोड़कर देखा जाता है। आधुनिक मणिपुरी रास नृत्य आर्यवंशियों तथा रास और किरातवंशियों के सम्मिश्रण के रूप में देखा

जाता है। ‘लाईहारौवा’ यहाँ का लास्य प्रधान रास नृत्य है।”⁵ इस प्रकार कुबेरनाथ राय मणिपुर की संस्कृति का सुंदर वर्णन प्रस्तुत करते हैं। इसी क्रम में आगे वह उत्तरकुरु में संकलित निबंध ‘अगरुवनों की पगध्वनि’ में वहाँ की लोकताग नामक झील का वर्णन करते हैं और उसके संबंध में कहते हैं कि- “मइराइड के अगरु वनों और गमहार वनों से होते हुए काली छाया और काली पत्तियों वाले सरल देवदारु और पंजा के वनों के ऊपर विहार करते हुए मैं लोकताग झील के मनोरम तट पर पहुँचा हूँ।”⁶ इस प्रकार कुबेरनाथ राय ने अपने निबंध ‘सहस्त्र फणों का मणिद्वीप’ तथा ‘अगरुवनों की पगध्वनि’ में पूर्वोत्तर भारत के राज्य मणिपुर का सांस्कृतिक सौंदर्य प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में आगे कुबेरनाथ राय ने मेघालय की संस्कृति का जिक्र अपने निबंध साहित्य में किया है। मेघालय की चर्चा उनके निबंध ‘कजरीबन में जीवहंस’ नामक निबंध में विस्तृत रूप से देखी जा सकती है। यह निबंध इनके द्वारा लिखित ‘गंधमादन’ नामक निबंध में संकलित है। इस निबंध को लेखक ने रिपोतार्ज शैली के रूप में लिखा है, जिसमें वह मेघालय की शिलोंग यात्रा का वर्णन करते हैं। वह मेघालय के बारे में इस निबंध में लिखते हैं- “इस बार गाड़ी शिलोंग रोड के वक्र ऊर्ध्व मार्ग पर चल पड़ी, जैसे साक्षात् आर्य समाज की भाँति श्रीयुत ‘अथर्ववेद’ चल रहे थे। शिलोंग पर्वत माला दाहिनी ओर हाथ दो हाथ के हाशिए के बाद सैकड़ों गज की खाई। इसके मध्य अविराम अपन मुखरित यान पर भय की कोई बात नहीं, रास्ता चालू है।”⁷ इस प्रकार वह मेघालय में शिलोंग के दुर्गम रास्तों का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि शिलोंग जाने के लिए सभी चालकों को इसी मार्ग से आना-जाना पड़ता है। वह यह भी बताते हैं कि यह जो शिलोंग पर्वतमाला है, यह प्राग्योतिषा पहाड़ियाँ हैं, जिन्हें मेघालय के नाम से जाना जाता है और वह यह भी बताते हैं की भूगोलवेत्ताओं का यह भी मानना है कि यह शिलोंग पर्वतमाला हिमालय से भी पुराना है। कुबेरनाथ राय ने अपनी दृष्टि से मेघालय की संस्कृति का वर्णन किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपने निबंध ‘षोडशी के चरण कमल’ में मेघालय के मातृ सत्तात्मक समाज का भी जिक्र किया है तथा इसके साथ

ही वह वहाँ की आर्येतर संस्कृति का वर्णन भी करते हैं और इसके साथ ही वह बताते हैं कि मेघालय के लोग कामाख्या को कामरूप कहते हैं। प्राचीन समय में मेघालय खासी जनजातियों की भूमि रही है। जिस प्रकार असम किरातों और निषादों की भी भूमि रही है और इन सबका संबंध कामाख्या से रहा है, वह इनकी कुल प्रतीक देवी रही होंगी। इस प्रकार वह अपने निबंधों में मेघालय (शिलोंग) के प्राकृतिक सौंदर्य तथा जातीय संस्कृति और वहाँ के मातृसत्तात्मक समाज का सुंदर सांस्कृतिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं। इसी क्रम में आगे उनके निबंधों में पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख राज्य अरुणाचल प्रदेश की संस्कृति का वर्णन भी देखा जा सकता है। अरुणाचल भारत का एक सुंदर राज्य है, जो हरे-भरे वनों और अपनी प्राकृतिक संपदा से भरा हुआ है। बीहड़ वनों, पहाड़ियों तथा घाटियों के कारण यह अत्यंत सुंदर है। इस प्रदेश की अपनी खास लोक परंपरा भी अत्यंत समृद्ध है। इसके साथ-साथ अरुणाचल में साठ से अधिक जनजातीय भाषाएँ विद्यमान हैं तथा इस प्रदेश में बत्तीस जनजातियाँ निवास करती हैं। अरुणाचल के लोग प्रकृति की पूजा में अधिक विश्वास रखते हैं। यह उनकी मान्यता में है। इसके साथ ही वहाँ विशेष रूप से सूर्य और चंद्रमा की पूजा भी होती है तथा त्योहार ऋतु और फसलों के अनुसार मनाए जाते हैं। अरुणाचल प्रदेश का वर्णन कुबेरनाथ राय के निबंधों में बहुत कम आता है, मगर लेखक द्वारा निबंधों में इसका वर्णन कहीं-कहीं आवश्यक रूप से किया गया है। वह अपने निबंधों में अरुणाचल प्रदेश की दुर्गम प्राकृतिक संपदा का जिक्र करते हैं। अरुणाचल के दुर्गम रास्तों को कुबेरनाथ राय महा-एकांतपथ कहते हैं तथा असम में बहने वाले ब्रह्मपुत्र नद को अरुणाचल के साथ सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़कर देखते हैं। इस विषय पर उनका कहना है कि- “पूरे अरुणाचल में ब्रह्मपुत्र का ‘साङपो’ बदलकर हो जाता है ‘दिहाङ’। इसी में उत्तर से आकर एक छोटी नदी दिवाङ मिलती मिलती है और पूर्व से एक नदी आकार मिलती है ‘लुइत’। लोहित इसी का संस्कृतकरण है। दिवाङ और लुइत की धारा को हम ब्रह्मपुत्र से जोड़कर देखते हैं।”⁸ इस प्रकार कुबेरनाथ राय पूर्वोत्तर भारत की नदियों एवं संस्कृति के बारे में विस्तृत चर्चा करते हैं।

इसी क्रम में आगे वह अपने निबंधों में नगालैंड की संस्कृति का वर्णन करते हैं। नगालैंड भारत का जनजातीय आबादी वाला राज्य है। यहाँ पर भारतीय जनजातियों की संख्या बहुसंख्यक है। यहाँ की जनजातियों में प्रमुख नगा जनजाति है, जिनकी जनसंख्या पर सर्वाधिक है। भाषायी दृष्टि से यहाँ के नगा जनजाति की भाषा नागा है। कुबेरनाथ राय ने नगा समुदाय के बारे में अपने निबंधों में चर्चा की है। उन्होंने अपने निबंध ‘सहस्र फणों का मणिद्वीप’ में मणिपुर में निवास करने वाली नगा जनजाति का जिक्र किया है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर देखा जाए तो इन नगाओं का संबंध नगालैंड से ही रहा है। यह नगालैंड के सीमावर्ती इलाकों से निकालकर मणिपुर में जा बसे थे तथा अपने साथ वह अपनी नगा संस्कृति को भी साथ लेकर गए। इस संबंध में कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि- “मणिपुर प्रदेश में नगा, कुकी आदि जनजातियों के युद्ध नृत्य, शिकार नृत्य, बछी नृत्य आदि आज भी वहाँ प्रचलित हैं। यह तांडव रूपी रूप धरण करके नृत्य करते हैं। यह शुद्ध रूप से नगाओं में ही देखी जा सकती है। यह संस्कृति मणिपुर से बाहर भी नगा प्रदेश में देखी जा सकती है।”⁹ इसी प्रकार कुबेरनाथ राय अपने निबंध ‘महाकांतर’ में असम के काजीरंगा शब्द को नगाओं की देन मानते हैं। उनके अनुसार यह शब्द नगाओं का दिया हुआ है। इसके संबंध में वह लिखते हैं- “काजीरंगा नगा बोलियों से यह शब्द आता है और इसका अर्थ होता है स्वर्गोद्यान और आरण्यक जनजातियों की स्वर्ग कल्पना भी आरण्य जैसी होगी।”¹⁰ इसी प्रकार अनेक संदर्भों के साथ कुबेरनाथ राय ने नगालैंड की संस्कृति का वर्णन किया है तथा लेखक ने नगाओं में प्रचलित संस्कृति की व्याख्या अपने निबंधों में प्रस्तुत की है। कुबेरनाथ राय का समग्र साहित्य भारतीयता और सांस्कृतिक चेतना को विस्तृत रूप में व्याख्यायित करता है। उन्होंने अपने लेखन का मुख्य बिंदु सांस्कृतिक चेतना को बनाया है, जिसमें भारतीय संस्कृति के अनेक पक्षों की व्याख्या वह विभिन्न संदर्भों के साथ करते हुए देखे जा सकते हैं। इसमें पूर्वोत्तर भारत का सांस्कृतिक सौंदर्य भी उनके निबंधों में प्रमुख रूप से देखा जा सकता है।

निष्कर्ष :

कुबेरनाथ राय हिंदी ललित निबंध साहित्य परंपरा में भारतीय संस्कृति के निबंधकार की श्रेणी में आते हैं। उनके लेखन के केंद्र बिंदु में भारतीय संस्कृति को विभिन्न प्रसंगों को देखा जा सकता है। उन्होंने अपने लेखन में पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति को सुंदर रूप से रेखांकित किया है। उनके साहित्य में पूर्वोत्तर भारत इसलिए भी

केंद्र में है, क्योंकि उनका कार्य क्षेत्र लंबे समय तक पूर्वोत्तर भारत रहा है। इसी कारण उन्होंने पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक आयामों को अत्यंत करीब से देखा है और अपने लेखन में उसका वर्णन प्रस्तुत किया है। पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक और प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है, इसलिए कुबेरनाथ राय के निबंधों में पूर्वोत्तर भारत का सांस्कृतिक सौंदर्य का वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण है। □

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. राय मांझाता, संपादक, निवेदिता रजत जयंती अंक (कुबेरनाथ राय विशेषांक), स्वामी सहजानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, 1997, पृ.सं.-21
2. राय कुबेरनाथ, किरात नदी में चंद्रमधु, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण प्रथम, पृ.सं.-150
3. राय कुबेरनाथ, निषाद बाँसुरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ.सं.-189
4. राय कुबेरनाथ, दृष्टि अभिसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ.सं.-64
5. वही, पृ.सं.-69
6. राय कुबेरनाथ, उत्तर कुरु, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण तृतीय, पृ.सं.-80
7. राय कुबेरनाथ, गंधमादन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण द्वितीय, पृ.सं.-151
8. राय कुबेरनाथ, निषाद बाँसुरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ.सं.-212
9. वही, पृ.सं.-213
10. राय कुबेरनाथ, दृष्टि अभिसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ.सं.-134

ग्लोबल विलेज में बचपन : बाल साहित्य का बदलता स्वरूप और चुनौतियाँ



अन्नू शर्मा

शोध सार :

प्रस्तुत आलेख मार्शल मैकलुहान के 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना के आलोक में आधुनिक बाल साहित्य के रूपांतरण का विश्लेषण करता है। वैश्विकरण और सूचना क्रांति ने पारंपरिक 'दादी-नानी' की कहानियों का स्थान स्मार्टफोन, डिजिटल ऐप्स और 'मिकी माउस' व 'डोरेमोन' जैसे वैश्विक पात्रों को दे दिया है। आज का बाल साहित्य 'आदर्शवाद' से निकलकर 'यथार्थवाद' की ओर बढ़ रहा है, जहाँ विज्ञान और सूचनात्मक तथ्यों का महत्व बढ़ा है। यद्यपि ई-बुक्स और ऑडियो बुक्स जैसे माध्यमों ने शिक्षा को हाइब्रिड अधिगम और सुलभता प्रदान की है, किंतु इसके साथ गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

सोशल मीडिया के 'माइक्रो कंटेंट' ने बच्चों में पठन संस्कृति और धैर्य का ह्रास किया है, जिससे वे 'गहन पाठक' के बजाय देखने वाले उपभोक्ता मात्र बन रहे हैं। इसके अतिरिक्त, वैश्विक व्यक्तिवाद और भारतीय सामूहिकता के बीच मूल्यों का द्वंद्व तथा हिंदी साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभुत्व प्रमुख संकट हैं। अंततः आलेख 'ग्लोकल' (वैश्विक प्रस्तुति और स्थानीय आत्मा) दृष्टिकोण अपनाने पर बल देता है, ताकि तकनीक और परंपरा के संतुलन से भविष्य की पीढ़ी को एक संवेदनशील 'ग्लोबल सिटिजन' बनाया जा सके।

बीज शब्द :

ग्लोबल विलेज, बाल-मनोविज्ञान, सूचनात्मक साहित्य, डिजिटल विखंडन, पठन संस्कृति, ग्लोकल, अटेंशन इकॉनमी, हाइब्रिड अधिगम, संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह, सांस्कृतिक उत्तराधिकार।

मूल आलेख :

सन 1960 के दशक में जब सुप्रसिद्ध मीडिया सिद्धांतकार मार्शल मैकलुहान ने 'ग्लोबल विलेज' (वैश्विक ग्राम) की अवधारणा प्रस्तुत की थी, तब उनका मुख्य ध्यान संचार क्रांति की ओर केंद्रित था। वे यह भविष्य देख पा रहे थे कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भौगोलिक सीमाओं और दूरियों को समाप्त कर पूरी दुनिया को एक छोटे से गाँव में परिवर्तित कर देगा, जहाँ सूचनाएँ पलक झपकते ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच सकेंगी। किंतु उन्होंने शायद ही यह कल्पना की होगी कि इस ग्लोबल विलेज का सबसे गहरा, दूरगामी और संवेदनशील प्रभाव बच्चों के कोमल मानस पर पड़ेगा।

परंपरागत भारतीय समाज संरचना में बचपन एक नितांत सामूहिक अनुभव

शोधार्थी, हिंदी विभाग
राँची विश्वविद्यालय
राँची - 834008
☎ 9875455877

✉ annusharma12999@gmail.com

हुआ करता था। दादी-नानी की कहानियाँ और 'पंचतंत्र' जैसे किस्से बच्चों को खेल-खेल में ही जीवन के संस्कार और नैतिकता का पाठ पढ़ा देते थे। उस दौर में साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं था, अपितु उसका लक्ष्य एक बेहतर और संवेदनशील मनुष्य का निर्माण करना था।

मगर आज का परिदृश्य सर्वथा भिन्न है। 21वीं सदी का बच्चा अब केवल अपने घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि वह एक ग्लोबल सिटिजन (वैश्विक नागरिक) बन चुका है। अब उसके नन्हें हाथों में किताबों का स्थान स्मार्टफोन और टैबलेट ने ले लिया है। उसकी कल्पनाशीलता के संसार में अब केवल भारतीय लोक कथाएँ नहीं, बल्कि डिज्नी के पात्र, जापानी माँगा, ब्लूई, पाव पेट्रोल, पेपा पिग, स्पंजबाब स्क्वायरपेंट्स, कोकोमेलन, टॉम एंड जेरी, स्कूबी-डू, मिकी माउस, डोरेमोन, शिन-चैन, पोकेमॉन, ऑगी एंड द कॉकरोचेस और तमाम तरह के वैश्विक वीडियो गेम्स बसते हैं। इस आमूलचूल बदलाव ने बाल साहित्य के स्वरूप को भी पूरी तरह बदल दिया है।

*“डिजिटल दुनिया बच्चों के लिए एक सपनों की दुनिया की तरह है, जहाँ उनके लिए कुछ खोजने एवं अनुभव करने हेतु बहुत कुछ है। जिन इच्छाओं/आकांक्षाओं को बच्चे अपने वास्तविक जीवन में पूरी नहीं कर पाते हैं उन्हें वह विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से पूर्ण कर लेते हैं जैसे-डिजिटल गेम में सैनिक आदि पात्रों की भूमिका का चयन करना।”*¹ अब कहानियाँ केवल कागज के पन्नों पर मुद्रित नहीं होतीं, बल्कि ई-बुक्स और इंटरैक्टिव ऐप्स के माध्यम से डिजिटल स्क्रीन पर तैरती हैं।

इस संदर्भ में डॉ. सुरेन्द्र विक्रम और जवाहर 'इंदु' का मत अत्यंत सटीक और प्रासंगिक प्रतीत होता है- *“बाल मनोविज्ञान का अध्ययन किए बिना कोई भी रचनाकार स्वस्थ एवं सार्थक बाल साहित्य का सृजन नहीं कर सकता है। यह बिल्कुल निर्विवाद सत्य है कि बच्चों के लिए लिखना सबके वश की बात नहीं है। बच्चों लिखने के लिए रचनाकार को स्वयं बच्चा बन जाना पड़ता है। यह स्थिति तो बिल्कुल परकाया प्रवेश वाली है।”*²

वैश्विकरण के प्रभाव से बाल साहित्य में बहुआयामी

और युगांतकारी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। इन व्यापक परिवर्तनों को मुख्यतः तीन स्तरों पर समझा जा सकता है- कथ्य (Content), माध्यम (Medium) और भाषा (Language)।

कथ्य और विषय-वस्तु में बदलाव :

पुरातन बाल साहित्य का प्रमुख आधारस्तंभ आदर्शवाद था। उस समय कहानियों का ढाँचा अत्यंत सरल और सीधा होता था, जिसमें सदैव सत्य की विजय, बड़ों का आदर और त्याग जैसे नैतिक पाठों की प्रधानता रहती थी। लेकिन वैश्विकरण ने इस लेखन के चेहरे और चरित्र को पूरी तरह बदल दिया है। आज की कहानियाँ केवल 'सही और गलत' के द्वंद्व तक सीमित नहीं हैं। वे अब अधिक जटिल और यथार्थवादी हैं, जो बच्चों को दुनिया की कठोर वास्तविकताओं और विविध पहलुओं से रूबरू कराती हैं। जॉर्ज कॉलिन का यह मत यहाँ पूर्णतः सार्थक प्रतीत होता है- *“अपने बच्चों को सिर्फ पढ़ना ही मत सिखाओ। जो पढ़ा है उस पर सवाल करना भी सिखाओ। उन्हें हर चीज पर सवाल करना।”*³

यथार्थ पर आधारित साहित्य ही सच्चा 'सूचनात्मक साहित्य' है। यथार्थ आधारित सूचनात्मक साहित्य में कल्पना का विशेष महत्व होता है। तथ्यों पर आधारित इस उर्वर कल्पना ने कई बार विलक्षण आविष्कारों को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए, यूगोस्लाविया के लेखक कारेल चापेक ने अपने नाटक रोसम्स यूनिवर्सल रोबोट्स के जरिए सबसे पहले 'मशीनी मानव' का विचार दुनिया के सामने रखा, जिसे बाद में विज्ञान ने साकार किया। इसी प्रकार सन 1933 में एल्डस हक्सले ने अपने उपन्यास 'द ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में कृत्रिम गर्भाधान की कल्पना की थी। आज यह चिकित्सा विज्ञान की एक सामान्य और सफल पद्धति बन चुकी है। हक्सले ने ही मानव क्लोन की भी परिकल्पना की थी। वैज्ञानिकों ने पहले भेड़ का क्लोन बनाया और बाद में दक्षिण कोरियाई वैज्ञानिकों ने सफलतापूर्वक मानव क्लोन भी तैयार कर लिया (यद्यपि कानूनी प्रतिबंधों के कारण उसे नष्ट करना पड़ा)।

अतः, यह स्पष्ट है कि बाल साहित्य का सूचनात्मक पक्ष बच्चों के मानस में वैज्ञानिक चेतना का संचार करता है। यथार्थ पर आधारित होने के कारण यह उन्हें केवल

ज्ञान से ही समृद्ध नहीं करता, बल्कि हर घटना को 'कार्य-कारण संबंध' की कसौटी पर परखने की क्षमता भी प्रदान करता है। यह बच्चों के भीतर छिपे भ्रम के जालों को काटकर उन्हें विवेकपूर्ण और प्रगतिशील बनाता है, जिससे वे रूढ़ियों को त्यागकर सच्चाई को स्वीकार करना सीखते हैं। इसी संदर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरू जी का कथन द्रष्टव्य है- *“शुरू के वर्षों में बच्चों में जो आदतें पड़ जाती हैं और बच्चे जिस तरह सोचने लगते हैं, उसका सारे जीवन पर असर पड़ता है। इसलिए मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि बच्चों पर अधिक ध्यान दिया जाए और इसके लिए राष्ट्रीय नीति तय की जाए।”*⁴

आज का समाज एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा है, जहाँ भौतिकवाद की अंधी दौड़ ने मानवीय संवेदनाओं को हाशिए पर धकेल दिया है। स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के इस दौर में भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्य धूमिल होते प्रतीत हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य हो गया है कि यथार्थ पर आधारित सूचनाएँ बच्चों तक पहुँचाई जाएँ। परशुराम शुक्ल की कविता 'हँसीघर' विज्ञान और मनोरंजन के सामंजस्य का सर्वोत्तम उदाहरण है। बच्चों के विज्ञान भवन में बने हँसीघर के उत्तल-अवतल दर्पण के प्रभाव को निम्न पंक्तियों में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है- *“पतली दीदी लम्बी हो गई, जैसे बिजलीवाला पोल और बिचारे मोटे पापा, बने बजाने वाला ढोल। भैया ने जब हवा भरी तो, गेंद सरीखे फूले गाल। और हमारी नाटी मम्मी, बनी देखने में फुटबॉल। हम सबने देखा दर्पण में, अपने-अपने तन का हाल। हँसते-हँसते लोटपोट सब, क्या दर्पण ने किया कमाल।”*⁵

मनोरंजन और हास्य के साथ उत्तल और अवतल दर्पण का परिचय कराना इस कविता की प्रमुख विशेषता है। आज के बाल साहित्य के लिए 'परियों' की परिभाषा भी पूर्णतः बदल गई है। आज की परियाँ पुराने युग के समान काल्पनिक नहीं रह गई हैं, बल्कि नए युग के अनुरूप वे 'सूचना परी', 'संगीत परी', 'डिजिटल परी' और 'पोषण परी' में तब्दील हो गई हैं।

माध्यम का तकनीकीकरण :

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप बाल साहित्य के क्षेत्र

में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे स्टोरीटेल, किंडल और ऑडिबल ने पढ़ने और सुनने की आदत (Reading and Listening habits) को पूरी तरह बदल दिया है। ऑडियो बुक्स ने दादी-नानी की कहानी सुनाने की लुप्त होती परम्परा को डिजिटल रूप में पुनर्जीवित किया है। इसके साथ ही ग्राफिक नोवेल्स एवं कॉमिक्स का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है, क्योंकि दृश्य एवं शब्दों का संयोजन बच्चों के मस्तिष्क पर बहुत अधिक और गहरा प्रभाव डालता है। बच्चे उसे अधिक समय तक स्मृति में सँजोकर रख पाते हैं। इस संदर्भ में संजय सिंह बघेल का मत दर्शनीय है- *“वाचिक संवाद की परंपरा को प्रिंटिंग माध्यम के विकास ने बदल दिया। रेडियो के विकास ने लिखित और मुद्रित माध्यम से अलग अपनी जगह बनाई। फिर टेलीविजन ने पुराने माध्यमों पर अपना प्रभाव कायम किया और आज इन्टरनेट के विशाल प्रयोग ने विभिन्न युक्तियों द्वारा हिंदी साहित्य के संचार को बुनियादी ढंग से बदल दिया है। यह कह सकते हैं कि हिंदी को अब तकनीक के पंख लग चुके हैं, जो अब टाइपिंग और कार्यालयी भाषा की दुनिया से निकलकर वैश्विक दुनिया में विचरण कर रही है।”*⁶

अब हमारी शिक्षा पद्धति भी मिश्रित या 'हाइब्रिड अधिगम' की ओर बढ़ रही है, जहाँ परंपरागत कक्षा-शिक्षण की जीवंतता और डिजिटल तकनीक की व्यापकता को एक साथ परोसा जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पूर्णतः विद्यार्थी-केंद्रित है। अब शिक्षक किसी विषय को पढ़ाने के पहले उसकी ऑडियो-वीडियो क्लिप्स, ग्राफिक्स और कंटेंट विद्यार्थियों को भेज सकता है, ताकि बच्चों को उस विषय की थोड़ी-बहुत जानकारी पहले से हो। इससे अगले दिन कक्षा में शिक्षक एवं छात्रों के बीच परस्पर सहयोग और सुलहपूर्ण व्यवहार स्थापित हो सके। इससे बच्चों में धारण शक्ति (Retention Power) बढ़ती है और स्व-अधिगम (Self-learning) को बढ़ावा मिलता है। धीरे-धीरे शिक्षा दीक्षा पोर्टल, ई-पाठशाला, स्वयं प्रभा, राष्ट्रीय डिजिटल लाइब्रेरी, स्पोकन ट्यूटोरियल, गूगल क्लास, गूगल मीट, यूट्यूब और फेसबुक की सहायता से सुगमतापूर्वक बच्चों तक पहुँचने लगी है।

भाषायी संक्रमण :

वैश्विकरण की प्रमुख संपर्क भाषा अंग्रेजी है। इसके परिणामस्वरूप उच्च और मध्यवर्गीय बाल साहित्य का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेजी में लिखा जा रहा है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में मौलिक लेखन की तुलना में अनुवाद कार्य अधिक हो रहा है। परंतु सुखद पक्ष यह है कि धीरे-धीरे यह स्थिति बदल रही है और बाल साहित्य में भी नए-नए विषयों का प्रवेश हो रहा है।

प्रमुख चुनौतियाँ :

वैश्विकरण के वर्तमान दौर में बाल साहित्य के समक्ष जो चुनौतियाँ उपस्थित हैं, वे केवल साहित्यिक नहीं हैं, बल्कि वे मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और शैक्षिक भी हैं।

पठन संस्कृति का ह्रास :

आज का बाल साहित्य केवल एक माध्यम नहीं, बल्कि एक 'अटेंशन इकॉनमी' का हिस्सा बन गया है। सोशल मीडिया, रील्स और शॉट्स जैसे 'माइक्रो कंटेंट' ने बच्चों के मस्तिष्क को 'हाइपर-स्टिम्युलेशन' (अति-उत्तेजना) और 'तत्काल परितोष' (Instant Gratification) का अभ्यस्त बना दिया है। इस तीव्र दृश्य-प्रवाह के कारण बच्चों में उस धैर्य का क्रमिक ह्रास हो रहा है, जो लंबी कहानियों या उपन्यासों के गहन रसास्वादन के लिए अनिवार्य होता है। जब मस्तिष्क को हर कुछ सेकंड में नया उद्दीपन मिलने लगता है तो वह साहित्य में निहित गहन चिंतन की प्रक्रियाओं से विमुख होने लगता है। नील पोस्टमैन, जिनका शिक्षा के दर्शन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा और जो जनसंचार की सामाजिक आलोचना (विशेष रूप से टेलीविजन और बच्चों के विकासशील मस्तिष्क पर इसके प्रभाव) के संदर्भ में जाने जाते हैं, ने कहा था- *“सूचना के प्रसारण का स्वरूप कुछ संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों को जन्म देता है।”*

नील पोस्टमैन ने बहुत पहले ही चेतावनी दी थी कि दृश्य-प्रधान मीडिया 'पढ़ने वाले बच्चे' को 'देखने वाले उपभोक्ता' में बदल देगा। यह प्रक्रिया बच्चों की मौलिक कल्पनाशीलता और सूक्ष्म विश्लेषण की शक्ति को कुंद करती है। अंततः इस डिजिटल विखंडन का सबसे गंभीर परिणाम यह है कि जो गहन कथानक कभी चरित्र-निर्माण और नैतिक सुदृढ़ता के आधार होते थे, वे अब

बच्चों को उबाऊ लगने लगे हैं। इससे साहित्य के समक्ष अपनी प्रासंगिकता बचाए रखने की एक बड़ी मनोवैज्ञानिक चुनौती खड़ी हो गई है।

मूल्यों का संकट :

भारतीय समाज की मूल संरचना सामूहिकता पर आधारित है, जबकि पश्चिमी बाल साहित्य में 'व्यक्तिवाद' प्रमुख मूल्य के रूप में उभरता है। जब बच्चा विदेशी साहित्य पढ़ता है, तो वह अपने पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों से एक प्रकार का टकराव महसूस करता है। यह टकराव कभी-कभी बच्चे को भ्रमित कर देता है वह न तो पूरी तरह अपनी परंपरा से जुड़ा रह पाता है और न ही पूरी तरह वैश्विक मूल्यों को आत्मसात कर पाता है। यह स्थिति एक गहरे मूल्यगत द्वंद्व को जन्म देती है।

हिंदी और क्षेत्रीय बाल साहित्य का संकट :

अंग्रेजी बाल साहित्य की विपणन क्षमता और व्यापक वैश्विक पहुँच के सामने हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं का बाल साहित्य संघर्ष कर रहा है। 'नंदन', 'पराग' और 'चंदामामा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का बंद होना या सीमित हो जाना इस संकट का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह संकट केवल बाज़ार का नहीं, बल्कि हमारे सांस्कृतिक उत्तराधिकार का भी है।

हिंसा और आक्रामकता का बढ़ता चित्रण :

आधुनिक ग्राफिक नोवेल्स और वीडियो गेम्स से प्रेरित बाल साहित्य में हिंसा और आक्रामकता का चित्रण अत्यधिक बढ़ा है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यह हिंसक प्रदर्शन बाल मन को धीरे-धीरे असंवेदनशील बना सकता है।

संभावनाएँ और भविष्य : 'ग्लोकल' दृष्टिकोण

इन सभी चुनौतियों के बीच बाल साहित्य के भविष्य को पूरी तरह निराशाजनक मानना उचित नहीं होगा। वैश्विकरण ने जहाँ संकट पैदा किए हैं, वहीं नए अवसर भी प्रदान किए हैं।

'ग्लोकल' दृष्टि का महत्व :

'ग्लोकल' का अर्थ है-वैश्विक मंच पर स्थानीय आत्मा के साथ उपस्थित होना। बाल साहित्य के संदर्भ में इसका अर्थ यह है कि कथ्य स्थानीय हो, किंतु उसकी प्रस्तुति वैश्विक स्तर की हो। भारतीय लोक कथाओं,

मिथकों और ऐतिहासिक पात्रों को आधुनिक कथा-शिल्प, ग्राफिक डिजाइन और डिजिटल माध्यमों के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे बच्चे वैश्विक भाषा और तकनीक के माध्यम से भी अपनी संस्कृति से जुड़ पाएँगे।

तकनीक का सकारात्मक उपयोग :

यदि बच्चे स्क्रीन पर मौजूद हैं तो साहित्य को भी स्क्रीन पर जाना होगा, लेकिन संवेदनशीलता के साथ। इंटरैक्टिव ई-बुक्स, ऑडियो-विजुअल कहानियों और गेम-आधारित कथाएँ बच्चों में पठन के प्रति पुनः रुचि जगा सकती हैं।

अनुवाद को सांस्कृतिक सेतु के रूप में देखना :

अनुवाद को केवल बाजार की आवश्यकता न मानकर 'सांस्कृतिक संवाद' का माध्यम बनाया जाना चाहिए। भारतीय लोक कथाओं और बाल साहित्य का विश्व भाषाओं में अनुवाद भारत को सांस्कृतिक रूप से वैश्विक

मंच पर स्थापित कर सकता है।

निष्कर्ष :

वैश्विकरण के इस युग में बाल साहित्य एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा है, जहाँ उसके सामने दो रास्ते हैं-या तो वह बाजारवाद के दबाव में अपनी सांस्कृतिक आत्मा खो दे या फिर वैश्विक मंच पर खड़े होकर अपनी स्थानीय पहचान को नए और सशक्त रूप में प्रस्तुत करे।

यह शोध स्पष्ट करता है कि समस्या वैश्विकरण स्वयं नहीं है, बल्कि उसका अंधानुकरण है। यदि बाल साहित्य तकनीक और परंपरा, वैश्विकता और स्थानीयता तथा मनोरंजन और संस्कार-इन सभी के बीच संतुलन साध सके तो वह आने वाली पीढ़ियों को न केवल 'ग्लोबल सिटिजन', बल्कि संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से सजग नागरिक भी बना सकता है। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. चंदन श्रीवास्तव : डिजिटल दुनिया और बच्चे, समकालीन परिदृश्य की सैद्धांतिक समझ, भारतीय आधुनिक शिक्षा (अंक-1), जुलाई, 2020, पृ.सं. 115-119
2. राष्ट्रबंधु, बालसाहित्य समीक्षा, बाल कल्याण संस्थान, कानपुर, 1998, पृ.सं.-6
3. बचपन और बाल साहित्य के सरोकार, ओम प्रकाश कश्यप, सेतु प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्रथम सं. 2024, पृ.सं.-60
4. हिंदी बाल साहित्य कुछ पड़ाव, दिविक रमेश प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, प्रकाशन, 2015, पृ.सं.-1
5. हिंदी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, डॉ. परशुराम शुक्ल, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, प्रथम सं. 2016, पृ.सं. - 206
6. संजय सिंहबघेल, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2020, पृ.सं.-117
7. <https://www.britannica.com>

प्रयाग रंगमंच : रंगकर्म से जनकर्म तक



राम कुंवर

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली - 110007
☎ 8595589011

✉ ramkuwar211297@gmail.com



प्रो. दर्शन पांडेय

शोध निर्देशक, प्राचार्य
राजधानी महाविद्यालय
दिल्ली - 110015
☎ 9891320580

✉ darshan.du@gmail.com

शोध सार :

इस शोध प्रबंध में प्रयाग रंगमंच के विकास, योगदान और अवसान का अध्ययन किया गया है। यह संस्था हिंदी रंगमंच की एक महत्वपूर्ण प्रयोगधर्मी रंग संस्था थी, जिसने सीमित संसाधनों में भी रंगकर्म को सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। सामूहिक कार्यप्रणाली, आत्मप्रशिक्षण और नवीन प्रयोगों द्वारा इसने हिंदी रंगमंच को नई दिशा प्रदान की। प्रयाग रंगमंच ने अनेक महत्वपूर्ण नाटकों के मंचन के माध्यम से नए नाटककारों और रंगकर्मियों को पहचान दिलाई। जनसहयोग और समर्पित रंगकर्मियों के बल पर इसने राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान स्थापित की।

बीज शब्द :

रंग-चेतना, जनसरोकार, आंदोलन, संवेदनाओं, भावभूमि, रंगभाषा, प्रयोगशीलता, प्रतिबद्धता, संघर्ष, सामाजिक, प्रशिक्षण, प्रयोग धर्मिता, राष्ट्रीय, आत्म प्रशिक्षण, सांस्कृतिक।

प्रस्तावना :

प्रयाग रंगमंच (संस्था) का उद्भव एक साधारण सांस्कृतिक संस्था के रूप में नहीं हुआ था, संस्था यह हिंदी रंग-चेतना को पुनर्जीवित करने वाले एक व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। इसका उद्देश्य नाट्य प्रस्तुतियाँ करने के साथ-साथ समाज में जागरूकता, राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक संवेदनशीलता का विकास करना भी था। हिंदी रंगमंच की जिस परंपरा को भारतेंदु युग के नाटककारों और रंगकर्मियों ने नई दिशा और गति प्रदान की थी, प्रयाग रंगमंच ने उसी परंपरा को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। भारतेंदु युग में नाटक सिर्फ मनोरंजन का माध्यम नहीं था, बल्कि वह जनजीवन की समस्याओं, सामाजिक विसंगतियों और राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त उपकरण बन गया था। उस समय के रंगकर्मियों ने रंगमंच को समाज से जोड़ने का सफल प्रयास किया, जिसके कारण नाटक जनचेतना का प्रतिबिंब बन गया। किंतु इसके बाद से यह धारा मंद पड़ती गई। नाटकों की रचना तो बदलते कालखंडों में निरंतर होती रही, परंतु उनमें वह सामाजिक प्रतिबद्धता और जनसरोकारों की तीव्रता दिखाई नहीं दी, जो भारतेंदु युग की विशेषता थी। रंगमंच आम जनता की भावनाओं और संघर्षों से दूर होता गया। इस संबंध में रीतारानी पालीवाल जी लिखती हैं- “भारतेंदु युग के तो अधिकांश नाटककार उद्योग करके अभिनय का प्रबंध किया करते थे। उनका प्रयास पूरी तरह से जनता की रुचि का परिमार्जन कर उसे नाटक की ओर प्रवृत्त कराने का रहता था। भारतेंदु

की अल्प आयु में मृत्यु का सबसे घातक प्रभाव हिंदी नाटक एवं रंगमंच पर पड़ा। उनके बाद नाटक के क्षेत्र में वैसी उन्नति नहीं दिखाई पड़ी।¹ रंगमंच की इस ह्रास होती हुई परंपरा को जीवनदान देने का कार्य प्रयाग रंगमंच संस्था द्वारा किया गया। ऐसे समय में प्रयाग रंगमंच ने हिंदी रंगमंच को केवल कला प्रदर्शन तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक परिवर्तन और वैचारिक जागरण का माध्यम बनाया। इन्होंने हिंदी रंगमंच आंदोलन में सक्रिय होकर उसके विविध पक्षों को कुशलता के साथ समझने और कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया, जिससे समाज में एकत्व की भावना का संचार हुआ। लोग एक बार फिर व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर देश और समाज के बारे में सोचने लगे।

भारतीय पुनर्जागरण के प्रवर्तक रवींद्रनाथ टैगोर से प्रेरणा ग्रहण करते हुए, उनकी शतवार्षिकी पर प्रयाग रंगमंच की स्थापना करने का निश्चय हुआ। “राष्ट्रीय अस्मिता को उपलब्ध करने की बेचैनी पूरे देश में थी। हिंदी रंगकर्म स्वयं को पहचानने पर खने और आत्मसाक्षात्कार करने के लिए रवींद्रनाथ टैगोर को सर्वाधिक जीवंत प्रतीक रूप में स्वीकार करता हैं। उनके शतवार्षिकी पर 30 जुलाई 1961 को प्रयाग रंगमंच की स्थापना हुई।”²

प्रयाग रंगमंच के रंगकर्मी रवींद्रनाथ टैगोर के विचारों से प्रभावित होने से अधिक इस प्रश्न पर विचार कर रहे थे कि हिंदी रंगमंच को अधिक प्रभावी, जनोन्मुख और जीवंत बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए? उनका उद्देश्य नाटकों का मंचन करना नहीं था, रकने के साथ-साथ रंगमंच को समाज की चेतना और और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाना था। “जब हिंदी रंगमंच को हम अपना सर्वोपरि उद्देश्य स्वीकार कर लेते हैं तो हम अपने व्यक्तित्व रूप में नगण्य हो जाते हैं और हमारी व्यक्तिगत परिस्थितियाँ गौण हो जाती हैं।”³ इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रयाग रंगमंच के कलाकारों और कार्यकर्ताओं ने एक ऐसी पद्धति विकसित की जिसमें कलाकार, कार्यकर्ता, निर्देशक, नाटककार और प्रेक्षक एक समान भावभूमि को ग्रहण कर सकें। इस पद्धति का मूल आधार सामूहिकता और सहभागिता था।

इन्होंने रंगमंच को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर सामाजिक संवाद का माध्यम बनाया, जहाँ मंच और दर्शक के बीच किसी प्रकार की दूरी न रहे। कलाकार और दर्शक दोनों एक साझा भावभूमि पर खड़े होकर समाज, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं से जुड़े प्रश्नों पर विचार कर सकें। लेकिन समाज जो है, एक अलग तरह के सिद्धांत पर काम करता है। यही कार्य पद्धति समाज को मानसिक रूप से उभरने नहीं देती है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. अनुपम आनंद जी लिखते हैं— “वास्तव में समाज की गति बड़ी न्यायी होती है। समाज चाहता है कि उसके बीच से सामाजिकता के हर क्षेत्र को बनाने और सँवारने वाले उत्पन्न हों और जब तुम्हारे जैसे बनाने सँवारने वाले उत्पन्न होते हैं, तब शुरू-शुरू में समाज बड़ी वाहवाही देता है। किंतु जब तुम उस सामाजिक कार्य को करने लगते हो तो उस समय तक समाज तुम्हारे साथ निर्मम व्यवहार करता रहता है, जब तक कि तुम्हारा व्यक्तित्व इतना न उठ जाए कि समाज तुमको स्पर्श ही न कर सके। और अंत में संपूर्ण समाज तुम्हारे चरणों में झुक जाता है।”⁴

प्रयाग रंगमंच से जुड़े कलाकारों में डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, जीवनलाल गुहा, जगदीश जायसवाल, रामचंद्र गुप्त, सूर्य प्रताप, सोमनाथ मिश्र, शांति स्वरूप प्रधान, सुशीला कशालकर, वनिता सेठी, राम गोपाल, हरिराम, शांताराम विष्णु कशालकर, सुनीता ओबेरॉय, गजानन पित्रे और राजाराम सिंह आदि अनेक समर्पित रंगकर्मी शामिल थे।

“रवींद्रनाथ टैगोर के उपन्यास ‘गोरा’ का जीवनलाल गुहा कृत हिंदी नाट्य रूपांतरण 7/10/1961 को प्रस्तुत किया गया।”⁵ इस नाटक का कुल चार बार प्रदर्शन प्रयाग रंगमंच संस्था द्वारा किया गया। “दूसरा नाटक मराठी के विख्यात नाटककार पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे का ‘तुझे आहे तुझे पाशी’ का हिंदी नाट्य रूपांतरण कस्तूरी मृग था।”⁶ इसका कुल दो बार प्रदर्शन किया गया। पहला 17/2/1962 को और दूसरा 12/10/1962 को। इन प्रदर्शनों से यह पता चलता है कि प्रयाग रंगमंच केवल मूल हिंदी के नाटकों को ही प्रदर्शित नहीं करता था, वह अन्य भाषाओं के नाटकों का हिंदी रूपांतरण कर उन्हें समाज के बीच ले जाता था। किसी भी भाषा में

लिखा नाटक अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने समाज में व्याप्त विषमताओं को ही उजागर करने का कार्य करता है। प्रयाग रंगमंच ने परंपरा और प्रयोगशीलता के समन्वय के माध्यम से हिंदी रंगमंच के लिए एक विशिष्ट रंग-मुहावरा और स्वतंत्र रंगभाषा विकसित करने का गंभीर प्रयास किया। प्रयोगधर्मिता प्रयाग रंगमंच की सबसे बड़ी विशेषता रही है। इसने पारंपरिक रंग शैली से आगे बढ़कर नए विषयों, नई मंचीय तकनीकों और नई प्रस्तुत-शैलियों को अपनाया, जिससे इन्होंने न अपनी अलग पहचान बनाने के रंगकर्मियों को नई संभावनाओं की खोज के लिए प्रेरित भी किया। प्रयाग रंगमंच ने उन विषयों को मंच पर लाने का साहस किया, जो समाज की जटिलताओं, मानवीय संघर्षों और बदलती संवेदनाओं से जुड़े हुए थे। *“प्रयोगशीलता ने प्रयाग रंगमंच को नया स्पेस प्रदान किया, उसने नई जमीन तलाशी। कुंवर नारायण का खाली जगह, विपिन अग्रवाल का तीन अपाहिज, आँख रोशनी कोण, मोहन राकेश का आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस आदि का पहला मंचन प्रयाग रंगमंच ने ही किया।”*

प्रयाग रंगमंच ने जिस समय अपने कार्यों की शुरुआत की, उस दौर में हिंदी रंगमंच के लिए परिस्थितियाँ अत्यंत चुनौतीपूर्ण थीं। उस समय राष्ट्रीय अथवा प्रादेशिक स्तर पर रंगकर्म के व्यवस्थित प्रशिक्षण की कोई सुदृढ़ व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी। रंगमंचीय शिक्षा और अभ्यास के लिए कलाकारों को स्वयं ही मार्ग तलाशना पड़ता था। ऐसे समय में प्रयाग रंगमंच ने आत्म प्रशिक्षण के केंद्र के रूप में अपनी पहचान बनाई। यहाँ कलाकार अभ्यास, प्रयोग और सामूहिक सहभागिता के माध्यम से स्वयं को विकसित करते थे। इस प्रकार प्रयाग रंगमंच मात्र एक संस्था न रहकर रंगकर्मियों के लिए सीखने और सृजन का सक्रिय मंच बन गया। *“प्रयाग रंगमंच को तत्कालीन प्रतिष्ठित लोगों की चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जो मानते थे कि नाटक और रंगकर्म के वे ही जनक हैं, वे ही सम्राट हैं। इतिहास उन्हीं से प्रारंभ होता है और उन्हीं के साथ समाप्त हो जाता है। भुवनेश्वर प्रसाद जैसी प्रतिभा हिंदी रंगकर्म की मुख्य धारा से बाहर थी। उनके नाटक तांबे के कीड़े को मंचित कर प्रयाग रंगमंच ने उन्हें पहचानने*

*की चेष्टा की, उनके रंग मुहावरे एवं नाट्यभाषा को स्थापित करने की चेष्टा की गई। संस्थान और प्रतिष्ठान उन्हें नाटककार ही मानने को तैयार नहीं थे।”*⁸

सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी वह समय अत्यंत अस्थिरता से भरा हुआ था। सन 1962 के भारत-चीन युद्ध में मिली पराजय के बाद देश में निराशा और आर्थिक संकट का वातावरण उत्पन्न हो गया था। समाज में अनास्था, संत्रास तथा मानसिक असुरक्षा की भावना बढ़ने लगी थी। साहित्य और रंगमंच भी इस सामाजिक परिवर्तन से अछूते नहीं रहे। नाटकों में उस समय की बेचैनी, असंतोष और मूल्य-संकट को अभिव्यक्त करना एक कठिन चुनौती थी। प्रयाग रंगमंच ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपने नाटकों के माध्यम से उस युग की संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। यही प्रयाग रंगमंच की यात्रा का मूल आधार बना। संस्था निरंतर बढ़ते हुए समाज के भीतर एक सकारात्मक और रचनात्मक संगठन के रूप में विकसित होती गई। समय के साथ यह संगठन प्रेक्षकों से निरंतर संवाद स्थापित करता रहा और उन्हें भी अपने सांस्कृतिक आंदोलन का सक्रिय भागीदार बनाता गया। *“प्रेक्षक सदस्यता का आंदोलन चलाया गया। वर्ष में एक बार वार्षिक सदस्यता ली जाती तथा उन्हें वर्ष में दो या तीन प्रस्तुतियाँ दिखाई जातीं। संपूर्ण रंगकर्म जनाधारित ताकतों पर ही आश्रित था। तब तक अनुदान, उसकी दलाली, चापलूसी का युग प्रारंभ नहीं हुआ था। रंगकर्म प्रयाग रंगमंच के लिए प्रतिबद्धता थी, त्याग और बलिदान का पर्याय था।”*⁹ यहां रंगमंच को जीवन के लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया। रंगकर्मियों के लिए यह कोई भविष्य बनाने का या सफलता प्राप्त करने का जरिया नहीं था। इसमें निरंतर अभ्यास और आत्मानुशासन की कठिन राह पर चलना पड़ता था।

प्रयाग रंगमंच का मार्ग सुविधाओं का राजमार्ग नहीं, वरण संघर्षों और चुनौतियों से भरा जनपथ था। संस्था के कलाकार आत्म प्रशिक्षण की प्रक्रिया में गहरी आस्था रखते थे। प्रत्येक सदस्य अभिनय, मंच-निर्माण, रंग-योजना, निर्देशन, संगठन और रंग-सिद्धांत जैसे विभिन्न पक्षों का गंभीर अध्ययन करता था। इसके बाद गोष्ठियों

और सामूहिक चर्चाओं के माध्यम से अपने अनुभवों और ज्ञान को अन्य साथियों के साथ साझा करता था। इस प्रकार अध्ययन और प्रशिक्षण की एक सामूहिक परंपरा विकसित हुई, जिसमें प्रत्येक कलाकार स्वयं भी सीखता था और अपने सहकर्मियों को भी प्रशिक्षित करने में योगदान देता था। प्रयाग रंगमंच की यह कार्यप्रणाली उसे अन्य संस्थाओं से अलग और अधिक जीवंत बनाती थी। संस्था के कलाकार सीमित संसाधनों के बावजूद बड़े से बड़े सांस्कृतिक कार्य को संपन्न करने की क्षमता रखते थे। कठिन परिस्थितियों को स्वीकार करना और उनसे संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना ही उनकी विशेषता थी। इसी साहस और संगठन क्षमता ने प्रयाग रंगमंच को अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्रदान कीं।

कुछ नाट्य प्रस्तुतियों का विवरण :

“15/10/1965 को ‘प्रेम तेरा रंग कैसा’ का मंचन जीवनलाल गुहा के निर्देशन में हुआ।”¹⁰ यह पहला अवसर था, जब जीवनलाल गुहा ने संपूर्ण नाटक के निर्देशन का कार्य संभाला। हालाँकि सब कुछ ठीक था फिर भी कुछ त्रुटियाँ रह गई थीं, जिनमें अभिनेताओं का अंग-संचालन और प्रवेश प्रस्थान आदि शामिल हैं। जीवनलाल गुहा स्वयं इस नाटक के प्रमुख पात्र प्रो.गुप्ते की भूमिका में थे। शायद इस कारण ही यह त्रुटियाँ रही हों। इस नाटक में प्रो.गुप्ते की बेटी की भूमिका वनिता सेठी निभा रही थी, जिनकी यह पहली मंचीय प्रस्तुति थी। इस प्रदर्शन से यह स्पष्ट हो गया की वनिता सेठी में अभिनय करने की पूरी क्षमता है और वह आगे एक अच्छी कलाकार के रूप में नाम कमा सकती हैं। शांतिस्वरूप प्रधान, जो इसमें प्रो.गुप्ते के न्यूरोटिक पुत्र का अभिनय कर रहे थे, उन्होंने दर्शकों का मनोरंजन तो किया, लेकिन उनके अभिनय में अभिजात्य की कमी बराबर खटकती रही। प्रो.गुप्ते के दामाद के रूप में प्रदीप कुमार ने अभिनय किया तथा प्रो.गुप्ते के कंजूस समधी की भूमिका में शांताराम जी मौजूद थे।

26 दिसंबर 1965 को जीवनलाल गुहा के निर्देशन में भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत ‘अंधेर नगरी’ और विपिन अग्रवाल कृत ‘एक स्थिति’ का मंचन किया गया। “भारतेन्दु के अंधेर नगरी को आधुनिक वेशभूषा और सांकेतिक मंच

सज्जा के साथ प्रस्तुत किया गया। इस नाटक में मुखौटा का भी प्रयोग किया गया। मुजरिम के रूप में कल्लू बनिया, भिस्ती, गड़रिया आदि का अभिनय एक ही व्यक्ति ने आधुनिक चेहरों के मुखौटे लगाकर किया।”

¹¹ जीवनलाल गुहा ने चौपट राजा के रूप में भ्रष्ट और अर्थहीन शासन-व्यवस्था का अत्यंत सशक्त चित्र प्रस्तुत किया। उनकी अभिनय शैली ने तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर तीखा व्यंग्य किया। वहीं शांतिस्वरूप प्रधान ने घूसखोर और कर्तव्यहीन मंत्री की भूमिका को प्रभावशाली ढंग से मंच पर प्रस्तुत किया। ‘राम भजो, राम भजो’ तथा ‘फाँसी हम चढ़ेंगे’ जैसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग केवल संवाद के रूप में नहीं, बल्कि समकालीन समाज की विसंगतियों और विडंबनाओं को उजागर करने के लिए किया गया था। सूर्यप्रताप जी चूरन वाले की भूमिका में थे। सब्जीवाली की भूमिका वनिता सेठी निभा रही थी। उस समय के परिवेश को मंच पर उभारने के लिए इन पात्रों की वेशभूषा, संवाद और प्रस्तुति शैली का विशेष ध्यान रखा गया। “चेला गोवर्धनदास के रूप में हरीराम ने जेरी लुई और डेनी के मिश्रित रूप को पकड़ने की कोशिश की। चेला नारायणदास, गुरुजी, कोतवाल, पानवाला तथा फरियादी की भूमिकाएँ रामचंद्र गुप्त, गजानन मित्रे, द्वारिका प्रसाद, रामगोपाल तथा सूर्यप्रताप ने सुंदर ढंग से प्रस्तुत कीं।”¹²

“एक स्थिति में माधो के रूप में जीवनलाल गुप्त का और माधो की बहू के रूप में ज्योति शुक्ल का अभिनय अत्यंत कलात्मक था।”¹³ शांतिस्वरूप प्रधान, रामचंद्र गुप्त, द्वारिका प्रसाद, सूर्यप्रताप और अशोक सेठ ने अन्य पात्रों की भूमिकाओं को प्रदर्शित करते हुए पंचायत के वातावरण सफलतापूर्वक निर्मित किया।

“1961 में गठित प्रयाग रंगमंच ने राष्ट्रीय स्तर पर नाट्य समारोह का आयोजन 1966 में किया। बिना किसी अनुदान के, राजाश्रय के बिना और सेवाश्रय के। बस दर्शकों के बूते। टिकट खरीद कर देखने का प्रशिक्षण पाए हुए दर्शकों के बूते इतना बड़ा समारोह का आयोजन कभी स्वप्न, कभी चुनौती, कभी पागलपन लगता था। इसमें कलकत्ता से शंभू मित्र व दिल्ली से इब्राहिम अल्काजी सरीखे रंगकर्मी शामिल हुए और अपनी प्रस्तुतियाँ दीं।

प्रयाग रंगमंच ने पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान की स्वीकृति करवाई।”¹⁴

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा एंड एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट ने ‘कंजूस’ नाटक को प्रयाग रंगमंच द्वारा आयोजित नाट्य समारोह में प्रस्तुत किया। यह नाटक मोलियर कृत ‘दि माइजर’ का रूपांतरण था, जिसे हजरत आवाग ने रूपांतरित किया था। “इस नाटक के प्रस्तुतिकरण के बारे में दयप्रकाश सिन्हा ने कहा है कि इसमें शैली के अनुरूप ही अभिनेताओं का अभिनय अतिरंजना का नमूना था। नाटक की गति, व्यवस्था और व्यावसायिक स्तर की पूर्णता प्रशंसनीय थी। अभिनय में कंजूस की भूमिका में ओम शिवपुरी की व्यक्तिगत सफलता उल्लेखनीय है। उनकी चाल, कंधे का झुकाव, गले की खर खराहट, भावावेगों के साथ परिवर्तित होने वाला स्वर और हृदय में उठने वाली छोटी से छोटी घृणा, क्रोध, संतोष, प्रेम, स्वीकृति आदि की भावना को दर्पण के सामने उजागर करने वाली आकृति ने मिल-जुल कर एक ऐसे परिचित से चरित्र का निर्माण किया जिससे हम सभी कभी न कभी अवश्य मिले हैं।”¹⁵

सन 1961 से लेकर 1975 तक का समय निरंतर समर्पण, निष्ठा और प्रतिबद्धता का काल रहा। इस दौरान प्रयाग रंगमंच प्रयोगधर्मिता को केंद्र में रखकर नाट्य-आंदोलन को सक्रिय रूप से आगे बढ़ाता रहा। रंगकर्मियों ने नए-नए विषयों, शैलियों और अभिव्यक्तियों के माध्यम से रंगमंच को जीवंत बनाए रखा। किंतु 26 जून, 1975 को देश में आपातकाल लागू होने के साथ ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर गंभीर प्रतिबंध लग गया। जिस स्वतंत्र और निर्भीक अभिव्यक्ति ने ‘अंधेर नगरी’ जैसे नाटकों के माध्यम से प्रयाग रंगमंच को राष्ट्रीय पहचान दिलाई थी, वही अभिव्यक्ति अब संकट में पड़ गई। इसके बावजूद 1975 के जून माह में भोपाल, इंदौर और उज्जैन जैसे शहरों में ‘अंधेर नगरी’, ‘वेटिंग फॉर गोदो’ और ‘बहुत बड़ा सवाल’ जैसे नाटकों का मंचन किया गया। इन प्रस्तुतियों का आयोजन प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी के मार्गदर्शन में हुआ। आपातकाल लागू होने बाद उस समय सरकार को सबसे अधिक भय स्वतंत्र अभिव्यक्ति से था, क्योंकि यही उसकी नीतियों के विरोध का सबसे

प्रभावी माध्यम बन चुकी थी। 25 जुलाई, 1975 को देशभर में व्यापक स्तर पर विरोधियों, कलाकारों और साहित्यकारों को गिरफ्तार किया गया।

इन घटनाओं के परिणामस्वरूप प्रयाग रंगमंच की सतत चल रही गतिविधियाँ पहली बार बाधित हुईं। “नवंबर, 1936 में डॉ. सत्यव्रत सिन्हा का निधन हो गया। आपातकाल, मीसा में गिरफ्तारी और जेल में ही शहादत ने देश भर के संवेदनशील लोगों को स्तब्ध कर दिया था।”¹⁶

मार्च, 1977 में जब आपातकाल की समाप्ति हुई, तब देश के सांस्कृतिक और बौद्धिक वातावरण में एक प्रकार की नई हलचल और राहत का अनुभव हुआ। इसी परिवेश में प्रयाग रंगमंच से जुड़े कलाकार भी पुनः सक्रिय हुए और उन्होंने अपने नाट्य-कार्यक्रमों तथा सृजनात्मक गतिविधियों को फिर से गति देने का प्रयास किया। लंबे समय तक दमन और प्रतिबंधों का सामना करने के बाद यह पुनरारंभ उत्साहपूर्ण तो था, परंतु उसमें पहले जैसी स्वाभाविक ऊर्जा और निरंतरता का अभाव स्पष्ट रूप से महसूस किया जा रहा था। लगभग 1985 तक यह प्रयास चलता रहा, किंतु इस अवधि में रंगमंच की आंतरिक शक्ति, संगठनात्मक दृढ़ता और सृजनात्मक तीव्रता धीरे-धीरे क्षीण होती दिखाई दी। जो जीवंतता, नवीनता और प्रतिबद्धता पहले इसकी पहचान हुआ करती थी, वह अब कमजोर पड़ने लगी थी। परिस्थितियों के प्रभाव, निरंतर संघर्ष और समय के बदलाव ने इसकी मूल चेतना को प्रभावित किया।

वास्तव में, जिस प्रकार किसी व्यक्ति के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब उसकी ऊर्जा और सक्रियता धीरे-धीरे कम होने लगती है। उसी प्रकार संस्थाओं के जीवन में भी एक अवसान का चरण स्वाभाविक रूप से उपस्थित होता है। प्रयाग रंगमंच भी इस अपरिहार्य प्रक्रिया से अछूता नहीं रह सका। परिणामस्वरूप जो संस्था कभी अत्यंत सशक्त, सक्रिय और प्रभावशाली थी, उसका धीरे-धीरे क्षरण होने लगा और उसका पतन एक मौन, अप्रकट रूप में हो गया।

निष्कर्ष :

प्रयाग रंगमंच हिंदी रंगमंच की एक महत्वपूर्ण और प्रयोगधर्मी संस्था थी, जिसने सीमित संसाधनों और कठिन परिस्थितियों में भी रंगकर्म को सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इस संस्था ने आत्म प्रशिक्षण, सामूहिक कार्यपद्धति और नवीन प्रयोगों के माध्यम से हिंदी रंगमंच को नई रंगभाषा और नई दिशा प्रदान की। प्रयाग रंगमंच ने अनेक महत्वपूर्ण नाटकों का मंचन कर नए नाटककारों और रंगकर्मियों को पहचान दिलाई। जनसहयोग और समर्पित कार्यकर्ताओं के बल पर इसने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित

की तथा हिंदी रंगआंदोलन को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रयाग रंगमंच का विकास और अवसान दोनों ही उसके समय की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित रहे। एक ओर यह संस्था अपनी सृजनात्मकता, प्रयोगधर्मिता और प्रतिबद्धता के बल पर राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हुई, वहीं दूसरी ओर आपातकाल जैसी दमनकारी परिस्थितियों ने उसकी स्वाभाविक गति और ऊर्जा को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

यद्यपि आपातकाल के बाद पुनः सक्रिय होने के प्रयास किए गए, परंतु वह पूर्व की जीवंतता, संगठनात्मक शक्ति और रचनात्मक तीव्रता को पुनः प्राप्त नहीं कर सका। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रंगमंच नया परिदृश्य, रीतारानी पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ.215
2. बरगद का रंगमंच विशेषांक, प्रयाग रंगमंच हिंदी आंदोलन का जयघोष, डॉ. अनुपम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, वर्ष-2, अंक-3
3. हिंदी रंगकर्म के अमृतपुत्र डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, डॉ. अनुपम आनंद, हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयागराज, 2009, पृ.71
4. वही, पृ.73
5. हिंदी रंगमंच का इतिहास भाग-1, डॉ. चंदुलाल दुबे, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, पृ.267
6. बरगद का रंगमंच विशेषांक, प्रयाग रंगमंच हिंदी आंदोलन का जयघोष, डॉ. अनुपम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, वर्ष-2, अंक-3
7. वही
8. वही
9. वही
10. हिंदी रंगमंच का इतिहास भाग-1, डॉ. चंदुलाल दुबे, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, पृ.268
11. वही, पृ.269
12. वही
13. वही, पृ.270
14. बरगद का रंगमंच विशेषांक, प्रयाग रंगमंच हिंदी आंदोलन का जयघोष, डॉ. अनुपम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, वर्ष-2, अंक-3
15. हिंदी रंगमंच का इतिहास भाग-1, डॉ. चंदुलाल दुबे, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, पृ.272
16. बरगद का रंगमंच विशेषांक, प्रयाग रंगमंच हिंदी आंदोलन का जयघोष, डॉ. अनुपम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, वर्ष-2, अंक-3

स्त्री जीवन के आत्म संघर्ष का सशक्त दस्तावेज 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास



भारती

शोध-सार :

पिछले डेढ़-दो दशकों से हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में स्त्री संदर्भों की हैसियत केंद्र में है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के विभिन्न रूप तथा समाज में उसके वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। कथा लेखन के क्षेत्र में महिलाओं के आगमन के बाद समाज को देखने और परखने की एक नई दृष्टि और दशा मिली है। उन्होंने वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष के बदलते संबंध, परंपराओं एवं रूढ़ियों को तोड़ती स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती नारी का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ समाज में व्याप्त शोषण, दमन, अत्याचार, राजनीति, मध्यम वर्ग की हताशा, निराशा, विवशता तथा घुटन को अपने-अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त कर समकालीन कथा साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नासिरा शर्मा महिला रचनाकारों में महत्वपूर्ण नाम है। इनके द्वारा लिखित 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करता है। स्त्री विमर्श की नई ऊँचाइयों को छूता यह उपन्यास स्त्री जीवन के आत्म संघर्ष का सशक्त दस्तावेज है। ठीकरे की मंगनी उपन्यास में नारी मन के नवीन मत और पुरानी रूढ़ियों का यथार्थ चित्रण है। "नासिरा शर्मा का यह उपन्यास स्वतंत्रता के बाद पैदा हुई आधुनिक और प्रगतिशील भारतीय स्त्री की संवेदनाओं, सरोकारों, मूल्यों, जीवन दर्शन और उसकी सार्वजनिक करुणा का नव्यतम काव्य है।"¹

बीज शब्द : स्त्री संघर्ष, बाल विवाह, आधुनिकता, पारंपरिक रूढ़ियों, समकालीन महिला लेखन, आत्म संघर्ष, शोषण, चुनावी राजनीति, मानवीय संवेदना।

मूल आलेख :

समकालीन रचनाकारों में नासिरा शर्मा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। नासिरा शर्मा का साहित्य मानवीय चेतना का चिंतन हृदय को स्पर्श करता है। उनके लेखन में समाज की सच्चाई की अनुभूति यथार्थ की जमीन से उपजी है, जो बड़ी सादगी से पाठकों के सामने प्रस्तुत हुई है। नई चिंतन के साथ-साथ नारी की प्रतिरोध क्षमता में जो नई मुखरता वर्तमान समय में आई है, लेखिका ने उसका यथार्थ चित्रण किया है। कामकाजी महिलाओं की स्थिति, मजबूरी, और वेदना को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करने में नासिरा शर्मा ने अद्भुत सफलता प्राप्त की है। "समकालीन लेखन की परिचित लेखिका नासिरा शर्मा का यह एक

शोधार्थी, हिंदी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी सम-विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड-249404
☎ 9588377017
✉ bhartisharma5664@gmail.Com

ऐसा उपन्यास है, जिसमें महरूख की दास्तान के माध्यम से दो खिड़कियाँ खोलती हैं, जिसमें एक गाँव है, वहाँ का स्कूल है, गाँव के असहाय लोग हैं, जिनके छोटे-छोटे दुखों से भी वह विचलित हो उठती है। दूसरी तरफ एक परंपरागत मुस्लिम खानदान है, उसमें रह रहे लोगों के अपने-अपने सरोकार और टकराव हैं। इन दोनों ही परिवेशों से गुजरते हुए महरूख बदहवास दुनिया की सच्चे अर्थों में पड़ताल करती है और चुनती है अपने लिए उस थरथराते सत्य को, जो उसे अकेला तो कर देता है, पर सशक्त ढंग से खड़ा होना सिखा देता है। औरत को जैसा होना चाहिए, उसी की कहानी है उपन्यास कहता है।² मुस्लिम परिवार में कई वर्षों के पश्चात पैदा हुई लड़की की जन्म के साथ ही ठीकरे के साथ मंगनी करवा दी जाती है, उसकी सारी जिंदगी इसी अंधविश्वास के इर्द-गिर्द घूम के रह जाती है। महरूख ने जब हाई स्कूल की परीक्षा पास की तो उसे मालूम हुआ कि पैदाइश के वक्त ही उसकी मंगनी उसके मौसी के बेटे रफत से हो गई थी।

रफत जो कि महरूख का मंगेतर है, आधुनिक विचारों का लड़का है। वह महरूख को पढ़ने के लिए दिल्ली बुलाता है। लेकिन यँ शादी से पहले महरूख का रफत के पास जाना परिवार वालों को अच्छा नहीं लगता। महरूख के पिता तो कहते हैं कि “मैं तो चाहता था कि रफत मियाँ, अब खुद अपनी जिम्मेदारी संभाल लें, मगर वह बजाए शादी करने के लड़की को आगे पढ़ने का मसला उठा रहे हैं... महरूख बी.ए. कर चुकी है। ज्यादा पढ़कर अब उसे करना भी क्या है?”³

सबके कहने सुनने के बावजूद भी रफत की जिद के आगे महरूख को दिल्ली जाना पड़ता है। दिल्ली जाकर महरूख आधुनिकता की जिंदगी में नया कदम रखती है। लेकिन शहरी वातावरण उसे पसंद नहीं आता। “उसे हैरत होती है कि इस विश्वविद्यालय में अब भी औरत को देखने वाली नजरों का वही पुराना दृष्टिकोण है तो फिर यह किस अर्थ में अपने को स्वतंत्र, प्रगतिशील और शिक्षित कहते हैं?”⁴ महरूख जब विश्वविद्यालय में दाखिला लेती है तो उसे वहाँ का रहन-सहन, लड़के-

लड़कियों का देर रात तक घूमना, डिस्को तथा क्लब में जाना पसंद नहीं आता। वह क्लास लेने के पश्चात घर पर आकर ही अकेले रहती है, वहीं दूसरी तरफ रफत मियाँ साम्यवादी पार्टी के सदस्य होने के कारण महरूख को बिल्कुल भी समय नहीं देते। कुछ समय पश्चात रफत महरूख से कहता है-मुझे पीएचडी करने के लिए अमेरिका जाना है। रफत की ये बात सुनकर पहले तो वह बहुत हैरान हो जाती है, लेकिन उसके जाने पर कोई आपत्ति नहीं जताती।

महरूख की जिंदगी में नया मोड़ जब आता है, जब उसे पता चलता है कि रफत अमेरिका में वेलरी नामक लड़की के साथ रह रहा है। “मरती है वेलरी अपने रफत पर...”⁵ इस घटना से महरूख पूरी तरह अंदर से टूट जाती है। उसके अंदर नफरत का आसमान फैला हुआ था, जो महरूख को बताता है कि सबने उसे छला है, कभी प्यार के नाम पर, कभी जिम्मेदारी के नाम पर, तो कभी रिश्तेदारी के नाम पर। महरूख अपने आप को समझाती है कि यह तन्हाई का एहसास कुछ दिन बाद खत्म हो जाएगा। वक्त सबसे बड़ा मरहम होता है। ये यादें दफन हो जाएँगी।

कुछ समय पश्चात महरूख अपना घर तथा परिवार को छोड़कर पास के गाँव में आकर रहने लग जाती है। “उस समय महरूख के सामने दो रास्ते थे। या तो थीसिस जमा करे और इस यूनिवर्सिटी में रहे या फिर आवश्यकता में निकली किसी आवश्यकता में खप जाए। उसने इस गाँव को पसंद किया था, तब इंटरव्यू लेते समय वहाँ मौजूद सारे लोग ताज्जुब में पड़ गए कि आखिर फर्स्ट क्लास और एम. फिल. की डिग्री दिल्ली से लेने वाली यह जवान खूबसूरत लड़की, इतनी छोटी और मामूली नौकरी क्यों करना चाह रही है?”⁶

महरूख अपना घर-परिवार सब छोड़कर गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ाने लग जाती है। लेकिन अतीत की यादें उसका पीछा नहीं छोड़तीं। वह अंदर-ही-अंदर पुरानी यादों को लेकर परेशान रहती है। लेकिन अपनी इस तन्हाई से निपटने का भी उसने इलाज ढूँढ़ लिया था। क्लास के कमजोर बच्चों को वह शाम को घर पर पढ़ने के लिए

बुलाने लगी थी। इसका असर यह हुआ कि जो बच्चे पढ़ने में कमजोर थे उनका परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा आया। इससे महरूख का वक्त आसानी से कटने लगा। कोई भी नया एहसास इंसान को सिर्फ देखने का एक नजरिया ही नहीं, बल्कि नए तजुर्बे और नई अनुभूति का पूरा संसार बक्श देता है और यह विस्तार महरूख को मिला। नासिरा शर्मा स्त्री के अधिकारों तथा स्वतंत्रता की माँग करते हुए पुरानी रूढ़ियों तथा परंपराओं को तोड़ते हुए कहती हैं— “मेरी नजर में औरत को अपनी तरह से जीने की आजादी मिले छ उसको इंसान की तरह जीने का हक मिले, मगर सारे कर्तव्यों से मुक्ति नहीं छ स्त्री विमर्श यह स्त्रीवाद का अर्थ व्यापक अर्थों में हो कि जो बदलाव आए या लाया जाए उसे सारी स्त्रियाँ फायदा उठा सके।”⁷

अपने व्यवहार के कारण महरूख ने सभी गाँव वालों के दिल में अपनी जगह बना ली थी। सभी उसका आदर तथा सत्कार करते थे। लेकिन इसके विपरीत विद्यालय के अन्य अध्यापक महरूख के प्रति गाँव वालों की हमदर्दी को देखकर मन ही मन जलते थे। “आप जिसे चाहती हैं सड़क के किनारे खड़े होकर बात करने लगते हैं। अपनी न सही, स्कूल की मान मर्यादा की तो चिंता करें?”⁸ एक दिन स्कूल की अध्यापिका सरला ने महरूख से चिढ़कर ये बातें कही।

उपन्यास में दूसरी तरफ नासिरा शर्मा द्वारा गाँव में व्याप्त भ्रष्टाचारी राजनीति का भी यथार्थ चित्रण किया गया है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भ्रष्ट राजनेता लोग पहले तो गाँव वालों से झूठे वादे करते हैं, लेकिन जैसे ही चुनाव जीत जाते हैं, वे अपने सभी बातों से मुकर जाते हैं। महरूख के घर काम करने वाली लछमिनिया कहती है— “ई जमाना में कोउ भलामानुस नहीं है। जइसे सांपनाथ वइसे नागनाथ। कहत तो रहे गणपत काका कि ई मान मनोवल तो बस समझो वोट वाले दिन तक है, हम लोगन का ना सियाराम दाऊ, ना गनारामऊ पहचानिए छ तब लगिहे है वही कुरुर वाली दुतकार और पीठ पर खुले आकाश की घाम।”⁹ अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भ्रष्टाचारी राजनेता लोग गाँव वालों को बहला-फुसलाकर पहले वोट तो ले लेते हैं, लेकिन बाद में उनकी समस्याओं की तरफ कोई ध्यान न देकर अपनी स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति

करते हैं, जिसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। यही नहीं, स्त्री पढ़-लिखकर राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी बराबरी निभा सकती है। महरूख के माध्यम से नासिरा शर्मा ने लिखा है— “राजनीतिक भागीदारी तो औरत के बुनियादी अधिकारों में से एक है। एक ही घर का मर्द वोट डाले और औरत वोट अपनी मर्जी से ना डाले, आखिर क्यों सही और गलत की कसौटी भी औरत होती है। परिवार और कुल की मर्यादा भी औरत होती है तो फिर यही दृष्टिकोण उसके लिए राजनीति में क्यों नहीं है। उसका राजनीति में बराबर का हिस्सा होना चाहिए। उसकी माँग, जरूरत और पुकार को तभी दूसरा पक्ष समझ पाएगा।”¹⁰

गाँव में कोई सुविधा न होने के कारण गाँव की महिलाओं तथा बच्चों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उचित उपचार तथा दवाइयों का प्रबंध न होने के कारण कुछ तो समय से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं या फिर कुछ बीमारियों को लेकर ग्रस्त रहते हैं। एक बार जब लक्ष्मीनिया प्रसव पीड़ा पीड़ित हुई तो उसकी हालत बहुत खराब हो गई थी। महरूख पास के सलमान साहब के घर जाती है और उन्हें किसी लेडिस डॉक्टर को बुलाने के लिए कहती है— “देखिए, लक्ष्मीनिया की हालत बहुत खराब है। अगर आसपास से किसी लेडी डॉक्टर का इंतजाम हो सके तो वह जरूर बच जाएगी। इस वक्त आपकी मदद दरकार है।”¹¹ इस प्रकार गाँव में लेडी डॉक्टर का इंतजाम हो जाता है और लक्ष्मीनिया एक स्वस्थ पुत्र को जन्म देती है।

अतीत कभी भी इंसान का पीछा नहीं छोड़ता। बीती जिंदगी की यादें इंसान को बहुत परेशान करती हैं। स्कूल की छुट्टियों के दौरान महरूख अपने घर जाती है तो उसकी अम्मी उसे शादी के लिए कहती है। लेकिन महरूख शादी के लिए साफ मना कर देती है। वह सोचती है— “शादी हर औरत मर्द के लिए जरूरी है, मगर इतनी भी जरूरी नहीं कि वह बेजान दीवारों और बेजान पलंगों से कर ले या जो भी अंधा, लूला, लंगड़ा रास्ते में आ टकराया उसी के साथ निकाह पढ़वा लिया जाए। आखिर हर जिंदगी का एक ही चौखट तो नहीं हो सकता। यह बात घर में कोई क्यों नहीं समझता है? यह भी कोई नहीं

समझता है कि एक पढ़ी-लिखी लड़की के हर एहसास में कितनी शिद्दत, कितना विस्तार, कितने अर्थ और कितने आयाम शामिल होते हैं? उसे शौहर के साथ एक साथी की भी जरूरत होती है, जो उसकी हर शक्ल, हर हाल में संभाल सके, समझ सके।”¹²

उपरोक्त पंक्तियाँ महरूख के आत्म संघर्ष को चित्रित करती हैं। बचपन में अंधविश्वास के चलते ठीकरे से की गई मंगनी उसके संपूर्ण जीवन का अभिशाप बन जाती है। लेकिन फिर भी महरूख अपनी जिंदगी से निराश नहीं होती घ वह अपनी सारी उम्र गाँव वालों की सेवा में गुजार देती है। नासिरा शर्मा वर्तमान समय के बदलते परिवेश में स्त्री को अपने आप को बदलने की बात कहती हैं- “औरत की स्थिति को बदलने में स्वयं औरत सहयोगी भूमिका अदा कर सकती है। जरूरी नहीं है कि यह बदलाव किसी आंदोलन, किसी विद्रोह, किसी निर्भरता से शुरू हो। स्वयं औरत अपनी दयनीय स्थिति को सुधारने की कोशिश करें तभी परिदृश्य बदलेगा। आस-पास के लोग जो अपने बचाव और लापरवाह प्रवृत्ति के चलते औरत के विपक्ष में हल्की बातें कहने के आदी हो चुके हैं, वे अपनी जबान पर लगाम देना सीख लेंगे।”¹³ औरत को अपनी स्थिति में खुद ही सुधार करना होगा। कोई दूसरा उसे उसकी दयनीय स्थिति से बाहर नहीं निकल सकता। नासिरा शर्मा द्वारा लिखित उपन्यास नारी जीवन के संघर्ष तथा बलिदान का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :

अतः सार रूप में हम यह कह सकते हैं कि नासिरा शर्मा ने ‘ठीकरे की मंगनी’ उपन्यास के माध्यम से समाज को स्त्री के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण से देखने का यथार्थ चित्रण किया है। बदलते परिवेश तथा वर्तमान संदर्भ में आज स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कमतर नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में महरूख के माध्यम से पुरानी रूढ़िवादी सोच का खंडन करके नवीन मत की स्थापना करने का प्रयास किया गया है। आज के समय में स्त्री पुरुष के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर समाज में अपनी पूर्णतः भागीदारी देने को तैयार है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से नासिरा शर्मा ने वर्तमान समय की राजनीति में जो भ्रष्टाचार का बोलबाला है, उसका भी यथार्थ चित्रण किया है। वोट बैंक तथा चुनावी राजनीति के चलते राजनेता लोग झूठे वादे कर आमजन को अपने जाल में फँसा लेते हैं तथा जैसे ही उनका मतलब निकलता है, वह जनता का शोषण करना शुरू कर देते हैं। इतना ही नहीं, आज भी हमारे समाज में स्त्री को अपनी मर्जी से वोट डालने का अधिकार भी नहीं है। महरूख जो कि एक पढ़ी-लिखी लड़की है, अंधविश्वास के चलते उसका सारा जीवन तबाह हो जाता है। लेकिन वह फिर भी हिम्मत नहीं हारती। प्रस्तुत उपन्यास में महरूख का चरित्र स्त्री समाज के लिए एक संदेश है। अगर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में औरत को अपनी स्थिति में सुधार लाना है तो उसे खुद अपने अधिकारों तथा कर्तव्य के लिए आगे आना होगा। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. शब्द और संवेदना की मनोभूमि : नासिरा शर्मा, सं. ललित शुक्ल, पृ. 38
2. वहीं पृ. 50
3. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 17
4. वहीं पृ. 19
5. वहीं पृ. 60
6. वहीं पृ. 81
7. नारीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 208
8. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 82
9. वहीं पृ. 90
10. वहीं पृ. 178
11. वहीं पृ. 137
12. वहीं पृ. 136
13. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, पृ. 65

हिंदी काव्य की गीति परंपरा



राजू सिंह

शोध-सार :

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा की शुरुआत अनादि काल से ही माना जा सकता है। मनुष्य अपने जीवन के आरंभ से ही अपने भावों को गीतों में सँजोकर व्यक्त करता रहा है। कविता वास्तव में मानव के अन्तःकरण में विद्यमान भावों की ही अभिव्यक्ति है। जीवन और जगत के विभिन्न पहलुओं के फलस्वरूप मानव-मन में जो जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती हैं, यदि उन्हें ही विशिष्ट शैली में कह दिया जाए तो वही काव्य हो जाता है। वही कथन जब लयात्मकता एवं गीतात्मकता आदि लक्षणों से युक्त हो जाए तो वह गीतिकाव्य कहलाता है। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यह सत्य है कि मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ गीतिकाव्य का स्वरूप भी बदलता रहा है, परंतु गीतिकाव्य में निहित भाव प्रवणता एवं लयात्मकता का महत्व आज भी उतना ही है, जितना प्राचीन काल में समझा जाता था। कवि के मन की सरस एवं कोमल भावों को संक्षिप्त रूप में लयात्मकता के साथ चित्रण करना ही गीतिकाव्य है, जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण विद्यमान रहता है। मानव सभ्यता में गीत की प्राचीन परंपरा है। गीत अथवा संगीत का मानव जीवन में विशेष महत्व है। गीतों का उद्भव मानव की स्वाभाविक रागप्रियता के कारण हुआ।

बीज शब्द :

गीतिकाव्य, भावप्रवणता, विकास, सभ्यता।

प्रस्तावना :

गीति प्रचीनतम विधा है। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार भी गीत का प्रयोग प्राचीनतम रूप है। छंद स्वयं गीतिकाव्य की एक इकाई है। इसमें मानव का दर्द और दिल बजता है। मानवीय अनुभूतियों, जीवनानुभवों और विचारों की गीतात्मक अभिव्यक्ति ही वास्तविक कविता है। गीत का गायन-तत्व उसे अनिवार्य और अमर बनाता है। गीत की प्रकृति बहुआयामी है। गीत ने जीवन के हर पक्ष को अपनी परिधि में समेटा है—चाहे वह कृषि हो, चाहे विवाह का समय अथवा पुत्र जन्म का अवसर। गीतिकाव्य का अर्थ अंग्रेजी के शब्द 'लिरिक' के समानांतर है। इस पर विद्वानों में मतभेद भी हैं। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार गीतिकाव्य 'लिरिक' के तत्व बोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूत आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लोचन प्रसाद पांडेय ने 'कविता-कुसुम-माला (प्रथम संस्करण-जून 1909) की भूमिका में किया। गीत की मूल पूँजी गायन है। इसमें संगीत प्रवाहित रहता है। गीत ही

शोधार्थी, हिंदी विभाग
रांगापाड़ा कॉलेज
शोणितपुर- 784505
☎ 9707555550
✉ rajusingh.gu@gmail.com

गीतिकाव्य का आधारभूत तत्व है। मानव सभ्यता के जन्म के साथ ही गीत का जन्म हुआ है। गीत भावना, संगीत और छंद का समन्वय है। भावानुभूति गीत की अनिवार्यता है। गीत इतना व्यापक और बहुरंगी है कि उसे एक वाक्य में परिभाषित कर देना संभव नहीं होता है। मानव जीवन के अधिकांश क्षण दैनिक अभ्यासों के संकलन मात्र होते हैं। कुछ ही क्षण भावुकता कल्पना और प्रेरणा से उद्बलित होते हैं और गीतिकाव्य ऐसे ही रागात्मक अनुभूतियों की इकाई है। गीतिकाव्य या गीत हमारे जीवन में हर स्तर पर व्याप्त रहता है। यहाँ तक कि शोक के अवसरों पर शोकगीत का भी विधान है। कहा तो यह भी गया है कि हमारे दुःखद संवादों का चित्रण करने वाले गीत ही अधिक मधुर होते हैं। गीत या गान का जन्म ही दुःख से माना गया है। गीत को मुक्तक माना गया है। इसका आकार भी स्वतंत्र और स्वतःपूर्ण होता है। गीतिकाव्य अर्थ गीत के लक्षणों को जानने से भी प्रकट हो जाता है। गीतिकाव्य में सरस एवं कोमल भावों को संक्षिप्त रूप में लयात्मकता के साथ चित्रण करना ही गीतिकाव्य है।

अध्ययन का उद्देश्य :

गीतिकाव्य परंपरा पर विपुल शोध कार्य हुआ है, अनेक शोध-पत्र लिखे गए हैं। साहित्य-समीक्षा के फलस्वरूप विभिन्न शोधों एवं पुस्तकों का अध्ययन किया गया, जिसमें हिंदी साहित्य में गीतिकाव्य परम्परा, उसके स्वरूप एवं विकास के संदर्भ में चर्चा समाहित है। सत्य तो यह है कि काव्य-साहित्य का आदि स्वरूप गीति काव्य है। सुख या दुःख की तीव्र भावावेश की अवस्था में मानव की वाणी में लयात्मकता का समावेश स्वतः ही हो जाता है। शब्द के रूप में मानव की अनुभूति का व्यक्त रूप सर्वप्रथम वेदों में ही उपलब्ध होता है। अतः गीतिकाव्य की परंपरा भी वैदिक काल से ही प्रारंभ होती है।

गीतिकाव्य संबंधी विचारकों के मत :

महादेवी वर्मा के अनुसार, “सुख-दुःख की भावावेगमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वरसंधान से उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।”¹

डॉ. नगेंद्र के अनुसार, “गीतिकाव्य की आत्मा हैं-भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीत

में फूट निकलता है।”²

डॉ. गणपति चंद्रगुप्त के अनुसार, “गीतिकाव्य एक ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है, जिसमें कवि निजी अनुभूतियों या किसी एक भाव-दशा का प्रकाशन गीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता है।”³

सुमित्रा नंदन पंत के अनुसार, “कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृदयकपन, कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है। गीत और संगीत का चोली दामन का साथ रहता है। वैसे कहा तो यह भी जाता है कि साहित्य संगीत के बिना संगी और पूँछविहीन पशु के समान लगता है। गीतिकाव्य में संगीत की अनिवार्यता अन्य विधाओं से अधिक रहती है।”⁴

डॉ. रामेश्वर द्विवेदी गीतिकाव्य को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं, “गीतिकाव्य वह काव्य है, जिसकी आत्मा अंतर्निहित संगीत से युक्त अपने स्रष्टा की हृदयानुभूतियों का सहज विस्फोट हो और जिसका कलेवर अपनी रचना में किसी नियम का अनुगामी न होकर भी इतना सुगठित एवं स्वस्थ हो कि भाव के आकलन एवं विकास में स्वतः समर्थ बने रह कर रसानुभूति कर सके।”⁵

हरबर्ट रीड के अनुसार, “गीत का मूल अर्थ तो लुप्त हो गया है, लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष प्रचार में आ गया है। अब गीत से उस रचना का बोध होता है, जिसमें सूक्ष्म अनुभूतियाँ हों, जो एकांत आनंद से प्रबुद्ध होती हैं।”⁶

हीगेल के अनुसार, “गीतिकाव्य का एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आंतरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरंगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना।”⁷

गीतिकाव्य का उद्भव :

गीतिकाव्य को ही काव्य का सबसे प्राचीन रूप माना जाता है। वेदों में भी सामवेद का गायन होता है-गीति शब्द का अर्थ भी गाए जाने से ही है। बौद्ध साहित्य कि थेर गाथाओं में भी गीति काव्य के दर्शन मिलते हैं। ‘मेघदूत’ को भी अधिकांश विद्वान गेय काव्य ही मानते हैं। संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य अपने वास्तविक रूप में ‘गीतगोविन्द’ में प्राप्त होता है। जयदेव के इस काव्य का हिंदी साहित्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

विद्यापति और चंडीदास दोनों कवियों ने जयदेव की शैली को ऐसा आत्मसात किया, जिससे काव्यरस और संगीत रस के मिश्रण से गीतकारों के सम्मुख हिंदी गीतों का एक आदर्श रूप सामने आया।

कबीरदास के रहस्यगीत बहुत लोकप्रिय हुए, जिन्होंने खुद को अपने राम की बहुरिया बनाकर विरह और मिलन संबंधी गीतों का ऐसा राग फूँका कि आज तक जनता को तड़पाता और आह्लादित करता है। कबीर के बाद सूरदास, तुलसी और मीरा आदि वैष्णव भक्तों के गीति काव्यों में रागात्मक तत्वों की प्रधानता पाई जाती है। विद्यापति के सामान सूर के पदों पर भी 'गीतगोविन्द' का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। सूर के गीतिकाव्य में भगवद्विषयक रति, वात्सल्य और दांपत्य रति प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। मीरा ने विरहिणी के रूप में जिन पदों में आत्मनिवेदन किया है, वे निजत्व कि पराकाष्ठा तक पहुँच गए हैं। मीरा के विरह से आहत हृदय को जब कसक और वेदना विक्षिप्त बना देती है, उसकी मनोदशा का कोई पारखी नहीं मिलता। रामभक्ति काव्यधारा की 'विनय पत्रिका' एवं 'कृष्ण गीतावली' गीतिकाव्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। संगीतात्मकता, आत्माभिव्यक्ति आदि विशेषताओं से ओत-प्रोत 'विनय पत्रिका' का हिंदी गीतिकाव्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसीदास की गीतावली में भी भावों की व्यंजना उसी रूप में हुई है, जिस रूप में मनुष्य को उनकी अनुभूति हुआ करती है। भक्ति काव्यधारा के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम एवं माधुर्य रूप का वर्णन किया है। ऐसा वर्णन करते हुए कवि अत्यंत भावुक एवं संवेदनशील हो जाता है। यही भावुकता एवं संवेदनशीलता गीतिकाव्य के महत्वपूर्ण उपादान हैं। सूरदास एवं अष्टछाप के अधिकांशतः कवियों के काव्य में गीतितत्व की प्रधानता है। सूर कृत 'सूरसागर' गीतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। गीतिकाव्य के विकास में मीराबाई का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

रीतिकालीन साहित्य में गीति तत्व उतना व्यापक रूप में दिखाई नहीं देता, जितना भक्तिकालीन साहित्य में विद्यमान है। घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि कवि राज्याश्रय से दूर रहकर जिस स्वतंत्र काव्य की रचना कर रहे थे, उन्हीं रचनाओं में गीतितत्व की कुछ रक्षा की जा

सकती। इनकी रचनाओं में भी भावों की उत्कृष्टता, सरलता और स्वाभाविकता विद्यमान है।

रीतिकाल के पश्चात भारतेंदु युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता में देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता तथा सामाजिक चेतना का स्वर मुखरित किया। उन्होंने अपने नाटकों में परिस्थिति को उभारने तथा भावपूर्ण मनोवृत्तियों को प्रस्तुत करने के लिए गीतों की रचना की। इस दृष्टि से उनके 'विद्यासुन्दर' 'चन्द्रावली' 'भारत दुर्दशा' आदि नाटक महत्वपूर्ण हैं।

द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त आदि ऐसे प्रतिनिधि गीतकार हैं, जिन्होंने अपने देश की संस्कृति, भाषा, वेश-भूषा, आचार-विचार आदि का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। इनके अतिरिक्त गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने राष्ट्र प्रेम तथा दार्शनिक भावनाओं से ओत-प्रोत कुछ अच्छे गीत लिखे हैं।

छायावादी कवियों ने व्यक्तिगत भावनाओं एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए कल्पना का आश्रय लेते हुए गीतात्मकता से ओत-प्रोत काव्य लिखा। छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद के गीत उनके काव्य-संग्रहों, नाटकों एवं महाकाव्यों में भी मिलते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य, राष्ट्रीय भावना, दार्शनिकता तथा रहस्य-भावना से ओत-प्रोत गीत प्रसाद की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं -

“बीती विभावरी जागरी

अम्बर पनघट में डुब रही तारा घट ऊषा नागरी।”⁸

'चन्द्रगुप्त' नाटक के अनेक गीत राष्ट्रीय-भावना से ओत-प्रोत हैं। प्रसाद की रचना 'लहर' में उनकी गीतकला का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है। गीतिकाव्य रचना की दृष्टि से निराला का नाम उल्लेखनीय है। उनकी 'अर्चना, बेला, परिमल, अनामिका आदि कविताओं में कहीं-कहीं गीतों का समावेश देखने को मिलता है। 'सरोज-स्मृति' इनका महत्वपूर्ण शोकगीत है, जो इन्होंने अपनी पुत्री की मृत्यु पर लिखा। इसके अलावा 'सन्ध्या-सुन्दरी' विधवा, भिक्षुक आदि भी इनके महत्वपूर्ण गीत हैं। पंत के काव्य में भी प्रकृति, दर्शन, अध्यात्म, राष्ट्रीयता और प्रगतिवादी भावनाओं से ओत-प्रोत अनेक गीत लिखे हैं। इनके गीतों के विपुल भंडार को देखते हुए डॉ. हजारी प्रसाद

द्विवेदी लिखते हैं – “सुमित्रानंदन पतं का संपूर्ण व्यक्तित्व गीतिमय है। मूलतः गीतिकाव्य के कवि हैं।”⁹ छायावाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा के गीतों में विस्मय, जिज्ञासा, आध्यात्मिकता, रहस्यात्मकता एवं वेदना आदि भाव मिलते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा तथा जानकी वल्लभ शास्त्री भी छायावाद के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने रहस्य-भावना प्रधान गीत प्रचुर मात्रा में लिखे हैं।

गीतिकाव्य लोकमानस का सुधा बिंदु है। उसमें व्याप्त मानव मन की अनुभूतियाँ, उसके आधार-विचार, दुख-सुख, करुणा, रुदन सभी क्रियायें उसके भावातिरेक को संगीत के साथ व्यक्त करती है। गीतिकाव्य कविता की सभी गेय विधियों का स्थूल नामकरण है, जिसका गीत या नवगीत नाम से पारंपरिक विकसित संबोधन एक विशिष्ट शैली का परिचायक माना जाता है। संसार के किसी भी काव्य साहित्य में गीतितत्व के भावोन्मेष से व्यक्ति की एकात्म अनुभूति में सुख, दुख करुणा के भावों का व्यापक मानवी संवेदन जिन रचनाओं में होता रहा है, चाहे वह चरवाहों की बोली में हो या आदि मानव को अविकसित भाषा और शब्द मंजुषा से निकले स्वरों में, चाहे किसी प्रबंध काव्य के रूप में हो या स्वतंत्र स्वर लहरियों में निकली छोटी या बड़ी पंक्तियों में अंतःकरण की अनुगूँज को वाणी में व्यक्त करती अनुभूतियों के गायन गीति ही होते हैं, जिनमें रुदन भी होता है, आह्लाद की किलकारियाँ भी होती हैं और मांसल शब्द सौंदर्य से शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध की स्वकल्पित भावधारा तो होती है। गीतिकाव्य में कवि या लेखक की स्वानुभूति या आत्मगतता की अभिव्यंजना प्रमुख तत्व है। एक ऐसी अभिव्यंजना जो कालांतर में जन चेतना में घुल-मिलकर सहज ध्वनि शब्दों में रूपांतरिक हो जाए और लोक धुन बनकर गूँज उठे, वही गीति है।

छायावादी युग के पश्चात प्रगतिवादी युग में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह ‘सुमन’ जैसे अनेक कवि उभर कर सामने आए, जिन्होंने गीतात्मकता से ओत-प्रोत कविताएँ लिखीं। इसी संदर्भ में यदि प्रयोगवादी काव्यधारा का विश्लेषण किया जाए तो अति बौद्धिकता के कारण प्रयोगवादी काव्य में गीतात्मकता का उतना निर्वाह नहीं हो पाया, परंतु गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर

भरती, केदारनाथ सिंह, भारत भूषण अग्रवाल जैसे अनेक कवि हैं, जिन्होंने मानव-जीवन के विविध पक्षों को लेकर सुंदर गीतों की सृजना की है। नई कविता तक आते-आते बौद्धिकता के प्रति अत्यधिक आग्रह के कारण व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का अवकाश कवि के पास नहीं रह गया था। छायावादी युग से ही नवगीतकार ने मानव-मन के संवेगों को नए-नए रूपों में व्यक्त किया है। “आज की संवेदना आदिकालीन, मध्ययुगीन और आधुनिक काल के रूमानी गीतों की संवेदना की तरह एक लय में नहीं फूट निकलती, बल्कि वह एक विशिष्ट मानसिक स्थिति में अपने अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती है। आज का यह भाव कविता और नवगीत दोनों में व्यक्त हो रहा है।”¹⁰

सन 1960 के आसपास का समय न केवल गीत, अपितु समग्र साहित्य तथा समूचे परिदृश्य में एक परिवर्तन का आभास देता है। साठोत्तर गीतों में अपनी जमीन से जुड़ने और अपनी जड़ों को तलाशने का उपक्रम इस आयातित दृष्टि से असहमति का स्वाभाविक परिणाम है। सन साठ से पूर्व तीन प्रकार की गीति-परंपराएँ विशेष तौर पर प्रचलन में थीं। एक ओर बच्चन, अंचल और नरेंद्र शर्मा को प्रेम-विरह परक भावभूमि के गीत थे, दूसरी ओर कवि सम्मेलनों से संबद्ध मंचीय गीत थे, जो स्तर और लोकप्रियता में तालमेल बिठाते दिखाई देते हैं। गोपाल दास नीरज, बलबीर सिंह रंग, गोपाल सिंह नेपाली, शिशुपाल सिंह शिशु, श्रीपाल सिंह क्षेम, रमानाथ अवस्थी आदि गीतकारों ने शुरू में अपनी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त किया था। लेकिन बाद में कई प्रतिभाशाली गीतकार मंचीय व्यावसायिकता के आकर्षण में खो गए। तीसरे प्रकार के गीत वे हैं, जो नई कविता से संबंधित कवियों द्वारा लिखे गए हैं। ऐसे कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजाकुमार माथुर, श्री नरेश मेहता, केदारनाथ सिंह, जगदीश गुप्त आदि उल्लेखनीय हैं। लेकिन सन 1960 के आस-पास लिख रहे युवा गीतकारों को अनुभव हुआ था कि ये तीनों प्रकार के गीत सीमित अनुभव-विश्व पर केंद्रित थे और गीत केवल व्यक्तिगत सुख-दुख, हर्ष-उल्लास की अभिव्यक्ति के योग्य समझा गया। अतः

गीत को नया या नव रूप देने का सामूहिक प्रयास देखने में आया। नवगीत का उदय गीतविधा के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत है।

राजेंद्रप्रसाद सिंह ने गीत-संकलन 'गीतांगिनी' (1958) में पहली बार 'नवगीत' की संज्ञा का प्रयोग किया था। 'नवगीत' के उत्स की तलाश में आलोचकों की दृष्टि बार-बार निराला के गीतों की ओर गई है। 'स्नेह निर्झर बह गया', 'मैं अकेला/देखता हूँ, आ रही/मेरे दिवस की सांध्य बेला', 'बांधो न नाव इस ठाँव बंधु' आदि गीतों को प्रायः नवगीत की गंगोत्री के रूप में उद्धृत किया गया है। 'नवगीत' के जन्मदाता निराला को ही माना गया है। "नवगीत, जनगीत, अतिगीत, अगीत-डॉ. सत्येंद्र शर्मा ने 'नवगीत' के विकास के विभिन्न चरणों की चर्चा करते हुए उसके तृतीय चरण (1966-1980) और चतुर्थ चरण (1981-अद्यतन) को क्रमशः 'प्रकर्ष भूमि' और 'प्रकीर्ति भूमि' नाम दिया है।"¹¹ 'नवगीत' का उत्कृष्ट अंश गत तीन दशकों में ही लिखा गया है। अपने विकास क्रम में नवगीत निरंतर अपने समय का साक्ष्य बनने की कोशिश करता है और उसका मुहावरा जनधर्मि होता गया है। गीत ने सिद्ध किया है कि अपने युग की कुरूपताओं और विसंगतियों को सृजनात्मक रचाव देने की शक्ति उसमें भरपूर है। जब रवींद्र भ्रमर कहते हैं- 'हम नए परिवेश से जुड़ गए हैं' या रमेश रंजक आग्रह करते हैं- 'इतिहास दुबारा लिखो जूझारू भाषा में' तो वे नवगीतकारों की मानसिकता में आए बदलाव को व्यक्त करते हैं। बच्चन जैसे वरिष्ठ गीतकारों के गीत-संग्रह प्रकाशित हुए, दूसरी ओर रवींद्र भ्रमर, उमाकांत मालवीय, राजेंद्र प्रसाद सिंह आदि के पहले गीत-संग्रह भी छपे। 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' में बच्चन के लोक धुनों पर आधारित गीत हैं। रवींद्र भ्रमर के गीत 'मेंहदी और महावर' तथा 'आओ खुली बयार' में नवगीत का मुहावरा पहली बार देखने को मिला। इस दशक में प्रकाशित अन्य उल्लेखनीय गीत संग्रहों में 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' रामदरश मिश्र, 'जलते शहर में' उमाशंकर तिवारी, 'गीत विहग उतरा' रमेश रंजक, 'किनारे के पेड़' मुकुट बिहारी सरोज, 'प्राणधारा' भवानी प्रसाद तिवारी, 'समय की शिल पर' शंभुनाथ सिंह आदि प्रमुख हैं। इस दशक में रचित गीतों में

प्रकृतिराग की तीक्ष्णता और प्रणयानुभूति की ताजगी खास तौर पर आकृष्ट करती है। प्रकृति के साथ कवियों-गीतकारों का सहज लगाव है। इसलिए वे कभी 'निर्दल सेमलडाल सुमन-दल लाल भरे' का बयान करते हैं तो कभी केसर भरी क्यारियों और मधुवासित फुलवारियों का स्मरण करके आर्द्र होते हैं-

“तान दिये चँदवे/हरियाली के
केसर से भर दीं रस क्यारियाँ
गुच्छों में झुला दिये फूल
मधुवासित कर दीं फुलवारियाँ
सपने लौटे हैं
वनमाली के।”¹²

इस दशक में गीतकारों ने जहाँ प्रकृति के लोकरंगों को आत्मसात कर गीत को आकर्षक बनाया है, वहीं मानवीय सर्वेदना को उपस्थिति सर्वत्र अनिवार्य-सी है। जहाँ प्रकृति-सौंदर्य सहज विद्य होने के साथ मनुष्य के राग-विराग से जुड़ा है, वहाँ गीत का सौंदर्य और प्रभाव अधिक घनीभूत हुआ है। 'वंशी और मादल' की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाण के रूप में द्रष्टव्य हैं-

“सूनी तलैया की ओट में/डुबा दिया वोट ने
तीर लगे घायल कुरंग सा/मन लगा लोटने
जामुन सी काली इन भौंहों की/छाँह में डूबे हम
जा रहे/कब से हम गा रहे।”¹³

देशव्यापी मोहभंग ने सातवें दशक के गीत को प्रभावित करना शुरू कर दिया था, लेकिन आस्था का स्वर खंडित नहीं हुआ था। जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था संघर्षों से जूझने की प्रेरणा तो देती ही है, गीतकार को स्वस्थ और सबल परम्परा से जोड़ती भी है। यह आकस्मित नहीं है कि वीरेंद्र मिश्र जैसे गीतकारों ने सूर, कबीर आदि की गीति-परंपरा से स्वयं को जोड़ा-

“सूरा मीरा कबीरा जिसे गा गये शान से
वे जिसे खींच कर ले गये थे बियाबान से
जो खिली कंटकों में बड़ी प्यार की धूप में
जिन्दगी को धरोहर वही गीत के रूप में।”¹⁴

गीत को सूर-मीरा-कबीर से जोड़ने का अर्थ है, कुंठा, संत्रास, मृत्युबोध आदि आरोपित अवधारणाओं और अजनबीपन-अकेलापन-आत्मनिर्वासन आदि

आयातित विचार-सूत्रों से मुक्ति और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव। उसके बाद के गीतों में आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक अंतर्विरोध, संघर्ष चेतना आदि प्रकृतिराग और प्रणयानुभूति का स्थान लेते दिखाई देते हैं। गीत का स्वर अधिक समाजबोधी हुआ है। अनुभूति की प्रामाणिकता के स्थान पर 'समय की प्रामाणिकता' को गीतकार अधिक महत्व देता दिखाई देता है। आर्थिक विषमता और सामाजिक अन्याय को जीवन में पग-पग पर झेलते हुए उसने यह अनुभव किया है कि सहने की भी एक सीमा है। अतः वीरेंद्र मिश्र, कुँअर बेचैन आदि ने जूझने के संकल्प को भी वाणी दी है। वीरेंद्र मिश्र ने आम आदमी के संदर्भ में लिखा है-

“उसकी आँखों में

धरती थोड़ी है, ज्यादा पानी है

रेगिस्तानों में

उसने आँधी से लड़ने की ठानी है।”¹⁵

कुँअर बेचैन इस पक्ष में हैं कि सामान्यजन के भीतर खौलते आक्रोश के तेजाब के महत्व को समझा जाए-

“शीशियों में कैद मत कीजिए जनाब

खौलता तेजाब

आज स्वागत कीजिए

उसके उफानों का।”¹⁶

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद ने सन 1975 के बाद के गीतों में स्पष्ट वैचारिक बदलाव की ओर संकेत किया है। उन्हीं के शब्दों में- “वह पहले से अधिक आम जनता के निकट आया है। बीच में आया हुआ अस्तित्वबोध तथा इसी प्रकार की क्षयी मानसिकता उससे दूर हट रही है। वह अपने अतीत और वर्तमान दोनों की पहचान कर व्यक्त कर रहा है।”¹⁷ इस क्रम में आजादी और जनतंत्र से जुड़े मोह और सपने तो टूट कर बिखरे ही हैं, विकल्प के तौर पर आये परिवर्तनों की वास्तविकता भी दबी-ढँकी नहीं रही है। इस प्रकार के बोध से संपन्न रचनाएँ वर्तमान से पलायन नहीं हैं, अपितु परंपरा से दृष्टि लेकर वे वर्तमान का समुचित विश्लेषण करने में सक्षम हैं। शंभुनाथ सिंह की निम्नलिखित पंक्तियों में ‘कोणार्क’ से प्राप्त संदेश को गीत के माध्यम से सफलतापूर्वक संप्रेषित किया गया है-

“नमक की हवाएँ टकराती हैं

अब भी कोणार्क से

गुमसुम सातों घोड़े ताक रहे

सूरज की ओर धंसी आँख स

पत्थर के बने हुए अर्क देव

हार गए सर्वशक्तिमान

महाकाल से।”¹⁸

गीतिकाव्य का कथ्य भारतीयता-बोध तक सीमित नहीं है। इन गीतों का कैनवास पर्याप्त विस्तृत है। उसमें मध्यवर्गीय सुख-दुख, प्राकृतिक सौंदर्य से लेकर जनसामान्य के जीवन-संघर्ष तक के विश्वसनीय चित्र उपलब्ध हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करते हुए शोषित-उत्पीड़ित जन समुदाय के प्रति अपनी पक्षधरता को इन गीतकारों ने मुख्यतः व्यक्त किया है। नवें दशक का गीतिकाव्य गजलों के रूप में भी रचा गया है। दुष्यंत कुमार ने गजल के माध्यम से युग की विसंगतियों का प्रतिवाद करने की शुरुआत की थी, वह युवा गीतकारों के लिए प्रेरणा बनी और कालांतर में गजल लिखने वालों की भी दिखाई देने लगी। जिन रचनाकारों ने हिंदी गजल को अपनी प्रतिभा का स्पर्श देकर हिंदी गीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनमें दुष्यंत के अतिरिक्त चंद्रसेन विराट, गोपालदास ‘नीरज’, रामदरश मिश्र, ज्ञानप्रकाश विवेक, गिरिराजशरण अग्रवाल आदि उल्लेखनीय हैं। गजलों-गीतिकाव्यों का केंद्रीय विषय ‘भूख’ और ‘रोटी’ हैं। अनेक रचनाओं में आम आदमी की नियति को रेखांकित करते हुए प्रकारांतर से यह आरोप लगाया गया है कि इतने वर्षों बाद भी व्यवस्था के पोषक और नियमक जनसाधारण को ‘रोटी’ उपलब्ध नहीं करा सके हैं। यह अकारण नहीं कि बहुत से गजलकारों ने ‘रोटी’ का सीधे-सीधे हस्तक्षेप है-

“एक रोटी सा दिखेगा पूर्णिमा का चंद्रमा

इक दफा फाकाकशीं वाली नजर से देखिए।”¹⁹

इसी गजल से मिलती-जुलती एक दूसरी गजल जहीर कुरेशी का है-

चाँद को देखा तो रोटी की याद जाग उठी

पेट की भूख से राहत मिले तो, प्यार करूँ।”²⁰

इस दशक के गजलकारों ने ‘रोटी’ के अलावा

‘सांप्रदायिक विद्वेष’ पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है। सांप्रदायिकता को राष्ट्रीय एकता-अखंडता के लिए गंभीर चुनौती मानते हुए आपसी भाईचारे और मानवीय सद्भाव को बहुत आवश्यक करार देते हैं। गोपालदास ‘नीरज’ ने आपने गीतों के माध्यम से एक नए धर्म का प्रस्ताव करते हैं-

“अब कोई मजहब ऐसा भी चलाया जाये
जिसमें इन्सान को इन्सान बनाया जाये।”²¹

इस समय के गीतों और गजलों में जो अंतर है, वह शिल्प के स्तर पर ही है। ‘कथ्य’ के स्तर पर इनमें बहुत अधिक अंतर नहीं है। यह सही है कि हिंदी गजल को लोकप्रियता अधिक मिली है, लेकिन इस दशक के गीत

अधिक स्तरीय और स्थायी महत्व रखते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि गीतों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। यद्यपि इसका प्रारंभ वेदों से होते हुए विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा जैसे महान कवियों ने गीतिकाव्य परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रीतिकाल में गीतितत्व गौण हो गया। आधुनिक काल में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग भी गीतिकाव्य के विकास की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखते। छायावाद ने निष्प्राण एवं नीरस गीत को सजीवता एवं सरसता दी। उसके उपरांत प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता एवं समकालीन कविता में गीतों का निरंतर विकास होता चला आ रहा है। □

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. काव्यशास्त्र एवं साहित्यालोचन, गीतिकाव्य उद्भव परंपरा एवं प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ
2. आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान, डॉ. मंजु गुप्ता, पृष्ठ सं. 1
3. आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य रूप विषय और शिल्प, डॉ. जीवनप्रकाश जोशी, पृष्ठ सं. 53
4. आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, डॉ. आशाकिशोर, पृष्ठ सं. 259
5. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गीतिकाव्य का शिल्पविधान, डॉ. रामसिंह अत्रि, पृष्ठ सं. 71
6. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डॉ. शकुंतला दुबे, पृष्ठ सं. 279
7. गीतिका, निराला, (भूमिका) पृष्ठ सं. 3
8. लहर, जयशंकर प्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2001, पृष्ठ सं. 25
9. आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान, डॉ. मंजु गुप्ता, पृष्ठ सं. 1
10. गीतिकाव्य का विकास, लालधर त्रिपाठी ‘प्रवासी’, पृष्ठ सं. 452
11. नवगीत संवेदना और शिल्प, डॉ. सत्येंद्र शर्मा, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, संस्करण 2019, पृष्ठ सं. 134
12. रवींद्र भ्रम के गीत, डॉ. रवींद्र भ्रमर, साहित्य भवन इलाहाबाद, संस्करण 1963, पृष्ठ सं. 37
13. वंशी और मादल, ठाकुरप्रसाद सिंह, पराग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1979, पृष्ठ सं. 67
14. मुखरित संवेदन, वीरेंद्र मिश्र, प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ सं. 120
15. हमारे लोकप्रिय गीतकार : वीरेंद्र मिश्र, शेरजंग गर्ग, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ सं. 89
16. वही पृष्ठ सं. 65
17. स्मारिका, नवगीत अर्द्धशती समारोह, 1986, पृष्ठ सं. 71
18. वही, पृष्ठ सं. 18
19. शब्दों के माध्यम से अशब्द तक, शिव ओम अम्बर, कुमारअसभा, कोलकाता, 2002, पृष्ठ सं. 58
20. एक टुकड़ा धुप, जहीर कुरेशी, प्रकाशन 1979, पृष्ठ सं. 130
21. काव्य संग्रह, गोपालदास ‘नीरज’ <https://kavitakosh.org>

नई सदी की हिंदी कहानियों में धार्मिक सौहार्द के विविध रूप



पूजा शर्मा

शोध सार :

प्रस्तुत शोध आलेख में समकालीन कहानियों में धार्मिक स्वभाव के विविध रूपों को विश्लेषित किया गया है समाज के निर्माण में धर्म का महती योगदान रहता है। भारतीय संदर्भ की बात करें तो धर्म एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता आया है। जिससे प्रतिबद्ध होकर व्यक्ति समाज में उचित अनुचित के भेद को समझने में समर्थ बन पाता है। धर्म भारतीय समाज का अभिन्न अंग है और समाज साहित्य का अभिन्न अंग है, इसलिए समाज की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। आज की कहानियां समाज से संबंधित प्रत्येक मुद्दे को प्रदर्शित करने में सहायक है वर्तमान समय में जहां धर्म विरोधी तत्वों का उल्लेख हमें साहित्य में मिलता है तो वही धर्म को केंद्र में रखकर कहानीकार अपनी सृजन शक्ति के माध्यम से धार्मिक सौहार्द, जनकल्याण और जन चेतन को स्थापित करने का प्रयास करता है। तथा धर्म संबंधित पाखंड को उजागर कर धार्मिक आदर्श की स्थापना पर बल देता है।

बीज शब्द :

धार्मिक सौहार्द, समाज, साहित्य, प्रेम विश्वास, भाईचारा

मूल आलेख :

सौहार्द शब्द से तात्पर्य स्नेह एवं सद्भावना से है। इसके साथ धार्मिक शब्द जुड़ने से इसका अर्थ और अधिक विस्तृत हो जाता है। सभी धर्मों को प्रेमपूर्वक समान दृष्टि से देखना और अहिंसा के पथ पर चलते हुए अपने धर्म के प्रति निष्ठा रखना तथा दूसरे धर्मों के प्रति आदरभाव ही धार्मिक सौहार्द कहलाता है। भारत धर्म निरपेक्ष देश है जिसके अंतर्गत धार्मिक सौहार्द तथा पारस्परिक समरसता की संपुष्ट परंपरा दृष्टिगत होती है। नई सदी की हिंदी कहानी में ऐसे दृश्यों का वर्णन मिलता है जहां एक धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म के प्रति आदर सम्मान का भाव रखता है और वहीं कुछ ऐसी कहानियां भी हैं जहां स्थिति में परिवर्तन दिखाया है। मनुष्य अपनी स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण दूसरे धर्म के प्रति घृणा की भावना से भर उठता है। कहानीकार इस मुद्दे के प्रति गहरा सरोकार दिखाते हुए समाज में धार्मिक सौहार्द को स्थापित करने के लिए कहानियों के माध्यम से जन-मानस को चेतित करने का प्रयास करता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ ने स्वांग कहानी में धार्मिक सौहार्द को गफफार खाँ के माध्यम से दिखाया है और समाज में पनपती धार्मिक घृणा को भी रेखांकित किया है। रिकशे पर बैठते ही गफफार खाँ रिकशे वाले से वर्तमान दौर में पनपती धार्मिक कट्टरता की भावना को ईंगित करते हुए कहते हैं- 'पहले से ज्यादा कट्टर हो गए हैं, आज के

शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय
भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय
राया सुचानी, (बागला) साम्बा,
जम्मू-कश्मीर - 181143
☎ 6005598964
✉ sadotrapooja146@gmail.com

लोग। पहले दो कट्टर झुंडों में दंगे हुए, मारकाट हुई, कप्पू लगा, जेले भरी, फिर सब शांत। शांति होते ही सब कुछ वैसा का वैसा। आम आदमी के दिल में दरार नहीं पड़ती थी। हिन्दू वैसे ही ताजियों में सुनहरी पन्नियां टांकते, मुसलमान कारीगर कृष्णदेव मंदिर के राधा कृष्ण के विग्रहों के लिए जरदोजी की उम्दा पौशाकें तैयार करते।¹ गफफार खाँ वर्तमान समय की तुलना पहले समय के साथ करते हुए प्रकाश डालते हैं कि पहले समय में लडाई के बाद जल्द ही स्थितियां शांत हो जाती थी अपितु वर्तमान में नफरत और एक-दूसरे धर्म के प्रति कट्टरपन बदला जा रहा है। वह अपने समय के लोगों में धार्मिक सौहार्द को दिखाते हैं जो एक दूसरे के धर्म के प्रति पूर्ण सम्मान और सद्भावना रखते थे। समाज में दो धर्मों के बीच आ रहे परिवर्तन से वह जान चुके हैं कि अब दो धर्मों के मध्य नफरतों की दीवारें खड़ी हो चुकी हैं लेकिन गफफार खाँ अपने धर्म के साथ दूसरे धर्म के प्रति भी सम्मान की भावना रखते हैं। वह रिक्शे वाले से कहते हैं - 'मुहल्ले के इकलौते शिव मंदिर का पुजारी जब से मरा है, वहां कोई चिराग भी नहीं जलाता वे चुपचाप हर शाम, अपनी नमाज के बाद मंदिर की देहरी पर उगे पीपल के नीचे चिराग जला जाते हैं। बरसों से यह नियम जारी है। मुहल्ले के लौंडे हजार बार धमका चुके हैं, पर उनका नियम नहीं टूटता।'² गफफार खाँ उस पीढ़ी से ताल्लुक रखते हैं जिनमें नफरत के बीज नहीं बोए जा सकते इसलिए उनमें अपने धर्म के साथ-साथ दूसरे धर्म के प्रति भी समन्वयता की भावना पूर्ण रूप से विद्यमान है। पंकज सुबीर ने 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ' कहानी में धार्मिक सौहार्द को लक्षित किया है। कहानी के पात्र जहीर हसन उर्फ भासा मुस्लिम होते हुए भी हिंदुओं के हर त्यौहार को खुशी-खुशी मनाते हैं। वर्तमान समय में भासा की स्थितियां परिवर्तित हो चुकी हैं उन्हें त्यौहार न मनाए जाने का दुःख है क्योंकि अब वह मुस्लिम बहुल इलाके में रहते हैं इसलिए दुःखी मन से वह अपने बीते दिनों को याद करते हुए अपने दोस्त के बेटे राहुल से कहते हैं- 'कमर ने तुम लोगों के साथ होलियों पर दीवालियों पर कितनी मस्तियाँ की हैं, रंग खेला, पटाखें छुड़ाए.....'³ भासा की बातों से स्पष्ट है कि उनमें धार्मिक सौहार्द की भावना कूट-

कूट भरी है जिसे वह अपने बच्चों तक भी ले जाते हैं। अतः दोनों कहानियों में कहानीकारों ने धार्मिक सौहार्द का बोध करवाते हुए धर्म की वर्तमान स्थिति में आए परिवर्तन के प्रति चिन्ता को भी अभिव्यक्त किया है। समाज में कट्टर लोगों की संख्या निरंतर बढ़ रही है जिसमें गफफार खाँ और जहीर हसन जैसे लोग धर्म के नाम पर फैलाई जाने वाली नफरत के प्रतिबिंबित हैं। पंकज सुबीर की कहानी 'नफीसा' में भी धार्मिक सौहार्द का बोध होता है। नफीसा का इकलौता मुस्लिम परिवार है जो हिंदुओं के मोहल्ले में रहता है। धार्मिक कट्टरता और घृणा के कारण अक्सर शहर में तनाव की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तो उस वातावरण में भी नफीसा का परिवार स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। नफीसा का एक बेटा दुबई में रहता है, वह नफीसा को दुबई आने के लिए कहता है तो नफीसा उसे कहती है 'हम अपने लोगों के बीच में हैं महफूज हैं'⁴ नफीसा के कहे वाक्य दो धर्मों के आपसी मैत्री भाव को दर्शाते हैं। नफीसा अपने परिवार की सुरक्षा के लिए आश्वस्त है। उसके छोटे बेटे जावेद में भी यह भावना लक्षित होती है। रिश्तेदार शहर में खराब होती साम्प्रदायिक परिस्थितियों के चलते उन्हें यह मोहल्ला छोड़ने के लिए जब बार-बार आग्रह करते हैं तो नफीसा का छोटा बेटा जावेद कहता है- 'हम अपने लोगों में ही तो हैं ये मकाना छोड़ना, उन लोगों पर शक करने का गुनाह करना होगा, जिन्होंने हमें अपने घर में महफूज कर आँखों में रात काटी है।'⁵ शहर में दंगाई वातावरण में भी मुस्लिम परिवार हिंदुओं के बीच रहकर अपनी सुरक्षा को लेकर चिंता मुक्त देखा जा सकता है। प्रस्तुत कहानी साम्प्रदायिकता के दौरान भी धार्मिक सौहार्द को दर्शाती है तथा दो धर्मों के प्रेम, विश्वास और सद्भावना को दिखाती है।

सत्यानारायण पटेल ने कहानी गोल टोपी में धार्मिक संकीर्णता को सौहार्द में परिवर्तित होते दिखाया है। चाय की दुकान पर मोबाइल खो जाने का सारा शक वहां बैठे दो मुस्लिम युवकों पर जाता है। वहां बैठा हर कोई मुस्लिम धर्म के प्रति शंकित दृष्टि से देखता है। मुस्लिम आतंकवाद होने के कारण हर मुस्लिम को आतंकी होने की दृष्टि से देखा जाता है। समाज में मुस्लिम धर्म के प्रति पनप रही

इस धारणा को कहानी के माध्यम से परिवर्तित होते दिखाया है। जो मुस्लिम युवक गोबाइल ले गए थे, अपने धर्म को बदनाम होने से बचाने के लिए वह मोबाइल वापिस लौटा कर सिद्ध करते हैं कि हर मुस्लिम व्यक्ति आतंकवादी नहीं होता- 'माफ करना यार भाईजान.....हमने गोल टोपी के बारे में जाने क्या-क्या सोचा। इस्लामी...आतंकी हाफिज सईद..... आईएसआई.....। तोता ने कहा अरे नहीं जी..... माफी की क्या बात। हवा ही कुछ ऐसी है। फिर हमारे कठमुल्लों ने भी दुनिया के भरोसे में कम छेद नहीं किये हैं। अदनान ने कहा। मैंने तो ये भी सोचा था कि मोबाइल फॉर्मेट कर किसी को बेच दूँगा।

अब्दुल ने कहा।

तोता मैना ने आश्चर्य से एक-दूसरे की तरफ देखा और तोता ने पूछा-फिर वापिस देने क्यों आए।

ये अदनान है न। अब्दुल ने कहा और मुस्कराता बोला ये बोला कि दुनिया में वैसे ही गोल टोपी बहुत बदनाम है, और न हो। समझ लो कि गोल टोपी की लाज की खातिर आये।'⁶

प्रस्तुत कहानी धर्म संबंधी सरोकार को दर्शाती है। कहानी दो धर्मों के बीच नफरत और घृणा को समाप्त कर मैत्री भाव को बढ़ाती है और किसी धर्म के प्रति फैली भांतियों से जागरूक रहना सिखाती है। रंग दोस्ती के कहानी में पंकज सुबीर ने धार्मिक सौहार्द की भावना को चित्रित किया है। कादिर जब तक स्कूल में था तो उसे यही लगता था कि धर्म ही सर्वोपरि है। लेकिन कॉलेज में आकर वह धर्म के कट्टरपन से बाहर निकलता है। कादिर की माँ अपने धर्म को लेकर बहुत कट्टर थी। होली की हुड़दंग पार्टी का निमंत्रण देने जब कादिर की दोस्त घर पर आती है तो अम्मी ने साफ शब्दों में मना कर दिया था कि उनके धर्म में होली खेलना कुफ्र माना जाता है इसलिए कादिर ने तबीयत खराब होने का बहाना कर दिया। अब्बा सच से परिचित थे

इसलिए जब कादिर की दोस्त घर पर मिठाई देने आती है तो अब्बा जान बूझ कर पूछते हैं - 'क्यों? आज तो तुम्हारी हुड़दंग पार्टी थी न? कैसिल हो गई क्या?'

अब्बा जी ने अचरज के साथ पूछा।

'नहीं, है न।' मनीषा न उत्तर दिया।

'तो कादिर को साथ नहीं ले जाओगे क्या?'

अब्बा जी ने पूछा।

पर उसकी तबीयत तो.....कहते-कहते स्वाति रुक गई।

'दोस्ती और खुलूस से तबीयत खराब नहीं होती बल्कि ठीक होती है। कहते हुए अब्बा जी कुछ मुस्कराए और कादिर को आवाज देकर वहां बुला लिया।

'जी अब्बा जी।' कादिर ने तीनों की तरफ देखते हुए कहा। भई ये तुम्हें लेने आए हैं हुड़दंग पार्टी के लिए जाओ।

'थैंक्यू अब्बा जी'

और हाँ इसे बाहर खड़ा करके पहले अपने जैसा बना लो, फिर ले जाना, नहीं तो होली के हुरियारे उसकी हालत सबसे ज्यादा बिगाड़ते हैं, जो सूखा नजर आता है।'⁷

प्रस्तुत कहानी में दोस्ती को एक ऐसे माध्यम के रूप में दिखाया है जो धर्म जाति आदि के भेदभाव से ऊपर है। दोस्ती सदैव दो धर्मों की नफरत और घृणा को समाप्त कर प्रेम को बढ़ाती है। प्रस्तुत कहानी इसी प्रेम और सद्भावना का बोध करवाती है।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि मानव धर्म सब धर्मों से ऊपर है। अलग-अलग धर्म से संबंध रखने के बावजूद भी दोस्ताना व्यवहार जो धर्म जाति आदि के भेदभाव से ऊपर है। दोस्ती सदैव दो धर्मों की नफरत को समाप्त कर प्रेम को बढ़ाती है। प्रस्तुत लेख इसी प्रेम को सद्भावना का बोध करवाता है। संभवतः सभी धर्मों का मूल उद्देश्य मानवता, प्रेम, करुणा, शांति का प्रयास करना है। □

संदर्भ ग्रंथ

1. मनीषा कुलश्रेष्ठ, स्वांग, (गन्धर्व गाथा), पृ.25
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, स्वांग, (गन्धर्व गाथा), पृ.26
3. पंकज सुबीर, इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ, (चौपड़े की चुड़ैले), पृ. 158
4. पंकज सुबीर, नफीसा, (महुआ घटवारिन), पृ.99
5. वही, पृ.99
6. सत्यनारायण पटेल, गोल टोपी (तीतर फांद), पृ. 70,71
7. पंकज सुबीर, रंग दोस्ती के (होली), पृ. 23,24

असम में हिंदी पत्रकारिता : एक अवलोकन



सौमित्रम्

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय आंदोलन की गतिविधियों को जानने और आंदोलन को गति देने के क्रम में असम में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत हुई। स्वाधीनता आंदोलन की जानकारी आम लोगों को देने तथा आंदोलन के प्रति लोगों को जागरूक करने में हिंदी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। लोग हिंदी समाचार-पत्र और पत्रिकाओं के जरिये ही स्वतंत्रता आंदोलन की यथास्थिति से अवगत होते थे। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में ही असम में कई समाचार-पत्र और पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। इन समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने न केवल रोजगार और पाठक पैदा किये बल्कि कई लेखक और पत्रकार भी पैदा किये। हालाँकि वे समाचार-पत्र व पत्रिकाएँ काल कवलित होती चली गयीं। उस समय समाचार-पत्र व पत्रिकाएँ प्रकाशित करने का उद्देश्य धन कमाना नहीं, बल्कि क्रांति की ज्वाला को जागृत करना था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1826 ई. में अंग्रेज कंपनी और बर्मा (म्यांमार) के राजा के बीच हुई यांडाबू संधि के बाद असम में अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ। उस समय असम में वर्तमान के मणिपुर और त्रिपुरा को छोड़कर शेष समूचा भू-खंड आता था। असम की हिंदी पत्रकारिता को काल के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है – प्रारंभिक काल और आधुनिक काल।

प्रारंभिक काल : चूँकि उस समय भी तत्कालीन असम में हिंदीभाषियों की संख्या काफी थी और अपनी भाषा में कुछ भी कहना और पढ़-सुनकर समझना आसान होता है, इसलिए हिंदी समाचार-पत्र व पत्रिकाओं की आवश्यकता महसूस की गयी। असम में हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभ 1919 ई. में हुआ। इसी वर्ष विश्वेश्वर दत्त शर्मा के संपादन में 'प्रकाश' नामक प्रथम हिंदी मासिक पत्रिका का प्रकाशन डिब्रूगढ़ से हुआ। लेकिन यह पत्रिका एक-डेढ़ वर्ष के बाद बंद हो गयी। बताया जाता है कि इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क मात्र तीन रुपये था। सन् 1934 के नवंबर महीने में डिब्रूगढ़ में असम प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन कलकत्ता मारवाड़ी समाज के अग्रणी नेता एटर्नी प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इसी अधिवेशन में पन्नालाल राजपुरोहित ने एक अखबार प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा। उक्त अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित हो गया और एक को-ऑपरेटिव सोसायटी बनायी गयी। इसके बाद कोष एकत्रित करके मशीन वगैरह कलकत्ता से मँगायी गयी और 1939 ई. में पन्नालाल राजपुरोहित (पारीक) के संपादन में 'नव जागृति' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकली। यह पत्रिका डिब्रूगढ़ से प्रकाशित होती थी, जो करीब एक-डेढ़ वर्ष में ही बंद हो गयी। मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष रह चुके डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' के निर्देशन में पीएच. डी. शोधकर्ता राम प्रसाद प्रधान के 'छगनलाल जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक शोध ग्रंथ के अनुसार कमल नारायण देव और

वरिष्ठ पत्रकार, गुवाहाटी
☎ 8638291082
✉ soumitramguwahati@gmail.com

चक्रेश्वर भट्टाचार्य के संपादकत्व में 1946 में जयंती (असमिया मासिक) का पुनः प्रकाशन हुआ। यद्यपि यह असमिया भाषा की पत्रिका थी, लेकिन इसके प्रारंभिक अधिकांश अंक द्विभाषी अर्थात् असमिया और हिंदी में ही प्रकाशित हुए। इस पत्रिका में असमिया भाषा के साथ-साथ हिंदी में असमिया साहित्यकार के संबंध में कम-से-कम एक परिचयात्मक लेख अवश्य होता था। बीसवीं शताब्दी के 50वें दशक में असम में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन काफी तेजी से हुआ। सन् 1947 में विश्वनाथ गुप्त ने तिनसुकिया से साप्ताहिक 'अकेला' का प्रकाशन शुरू किया। इसका पहला अंक एक सितंबर, 1947 को तिनसुकिया से निकला। हालाँकि इस साप्ताहिक पत्रिका के प्रकाशन की शुरुआत सन् 1942 में ही हुई थी और उस समय यह कलकत्ता से प्रकाशित होती थी। लेकिन सन् 1947 में इसका प्रकाशन तिनसुकिया से शुरू किया गया। इसके संस्थापक संपादक विश्वनाथ गुप्ता थे। 3 जनवरी, 1987 को उनके आकस्मिक निधन के बाद उनके पुत्र प्रकाशचंद्र गुप्ता ने इसके संपादन का भार संभाला। लेकिन दुर्भाग्यवश 21 अप्रैल, 1998 को प्रकाशचंद्र गुप्ता का भी निधन हो गया। उसके बाद प्रकाशचंद्र गुप्ता के पुत्र बिरजूचंद्र गुप्ता इसके संपादक बने। इस प्रकार श्री गुप्ता परिवार की तीसरी पीढ़ी इस साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन कर रही है। यह पत्रिका 50 वर्ष पूरे कर चुकी है और 1997 इसका स्वर्ण जयंती वर्ष था। लेकिन इसके तत्कालीन संपादक प्रकाशचंद्र गुप्ता के बीमार रहने की वजह से स्वर्ण जयंती नहीं मनायी गयी। इस वर्ष जिला प्रशासन के सौजन्य से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर इस साप्ताहिक पत्रिका को सम्मानित किया गया। स्वर्ण जयंती 2001 में मनायी गयी। इस कार्यक्रम में असम के मुख्यमंत्री तरुण गोगोई, असम साहित्य सभा के अध्यक्ष होमेन बरगोहाई सहित अनेक बुद्धिजीवी उपस्थित थे। असम की यह हिंदी साप्ताहिक पत्रिका अपने प्रकाशन काल से लेकर अब तक निर्बाध गति से प्रकाशित हो रही है। सन् 1948 में शंकर लाल शर्मा (भातरा) का साप्ताहिक 'शंखनाद' गुवाहाटी से प्रकाशित हुआ और वह भी बंद हो गया। सन् 1950 में शिलांग से साप्ताहिक 'जागरण' शुरू हुआ। इसके संपादक पंडित राम स्वरूप शर्मा थे और इसका प्रबंधन सुरेंद्रनाथ गुप्त

संभाल रहे थे। बाद में वह भी बंद हो गया। इसके बाद छगनलाल जैन ने गुवाहाटी से 'पूर्व ज्योति' मासिक प्रकाशित किया। इसका प्रथम अंक मार्च, 1950 में निकला। यह मासिक पत्रिका आगे चलकर 1957 में साप्ताहिक पत्रिका के रूप में रूपांतरित हो गयी। इसके संस्थापक संपादक देवेन्द्र नाथ 'प्रशांत' थे और इन्हें दैनिक जयहिन्द, मासिक राष्ट्रभाषा, अर्द्ध साप्ताहिक चेतना तथा मासिक युगारंभ आदि समाचार-पत्र, पत्रिकाओं के संपादन का अनुभव था। बताया जाता है कि वे मध्य प्रदेश के रहने वाले थे। यह समाचार-पत्र काफी समय तक गुवाहाटी से ही नियमित रूप से प्रकाशित होता रहा। लेकिन 1976 में इमरजेंसी के दौरान प्रेस सेंसरशिप के चलते किसी समाचार को लेकर दिल्ली के तीस हजारी कोर्ट से समन आ गया। इस दौरान छगनलाल जैन बीमार और उम्रदराज होने के कारण कोर्ट का चक्कर लगाने में असमर्थ थे। इसलिए उन्होंने इसे बंद कर देना ही उचित समझा और यह साप्ताहिक हमेशा-हमेशा के लिए बंद हो गया। सन् 1950 के आस-पास कमलेश जी ने गुवाहाटी से साप्ताहिक 'राजदूत' का प्रकाशन शुरू किया। यह साप्ताहिक मात्र आठ अंकों के बाद ही बंद हो गया। सन् 1950 में ही असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से गुवाहाटी से रजनीकांत चक्रवर्ती के संपादन में द्विभाषिक 'राष्ट्र सेवक' त्रैमासिक मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुई। बाद में इसे मासिक पत्रिका के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। रजनीकांत चक्रवर्ती के बाद छगनलाल जैन ने इसके संपादन का कार्यभार संभाला। संप्रति यह पत्रिका द्विमासिक के रूप में प्रकाशित हो रही है। ध्यातव्य है कि भाषिक एवं सांस्कृतिक समन्वय की इस पत्रिका को 1987 में इंटरनेशनल आर्ट एंड कल्चरल सोसायटी की ओर से हिंदीतर भाषी अंचल से प्रकाशित हिंदी पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ घोषित कर पुरस्कृत किया गया। इसी दौरान गुवाहाटी से ही साप्ताहिक 'मेरी कलम' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके संपादक हीरालाल सेठी और संचालकद्वय जी. एस. मधुप व पीतांबर निर्भीक थे। बाद में ब्रजकिशोर सिंह 'ब्रजेश' ने इसके संपादन का कार्यभार संभाला। लेकिन अन्य पत्र-पत्रिकाओं की तरह यह साप्ताहिक भी बंद हो गया। इसी क्रम में विश्वनाथ उपाध्याय ने परमानंद साह के सहयोग से साप्ताहिक 'आज' (संभवतः

‘आज का संसार’) निकाला। इसका प्रकाशन शिलांग से होता था। पर यह भी दीर्घजीवी नहीं हो सका और बंद हो गया। वहीं नवाब सिंह ‘रघुवंशी’ ने तिनसुकिया से मासिक पत्रिका ‘नवीन समाज’ का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्रिका ने भले ही एक-दो अंक के बाद ही दम तोड़ दिया, लेकिन यह काफी उत्कृष्ट पत्रिका थी और इसका मूल्यांकन तत्कालीन राष्ट्रीय पत्रिका ‘धर्मयुग’ से किया जाता था। इन्होंने तिनसुकिया से ही ‘रणभेरी’ प्रकाशित किया, जिसके प्रकाशक एवं संपादक स्वयं नवाब सिंह ‘रघुवंशी’ थे।

इतने समाचार-पत्र और पत्रिकाओं के बंद होने के बावजूद असम के लोगों के मन में राष्ट्रहित और जन जागरण की भावना दिनोदिन प्रबल होती गयी। यही कारण था कि यहाँ समय-समय पर नये-नये हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन जारी रहा और लोग जबर्दस्त जज्बे के साथ पत्र-पत्रिकाओं को निकालने में जुटे रहे। यही वजह थी कि इसके बाद इन्द्रशेखर मिश्र ने गुवाहाटी से ‘आपकी आवाज’ नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्रिका पाक्षिक थी, जो कुछ दिनों के बाद बंद हो गयी। शंकरलाल खरे का ‘अभियान’ भी मात्र एक ही अंक निकल पाया। इसके बाद उमाशंकर मिश्र ने ‘लोक संदेश’ निकाला। यह पाक्षिक पत्रिका थी। संभवतः यही पाक्षिक पत्रिका आगे चलकर ‘देशहित’ (साप्ताहिक) के रूप में निकली। इसी दौरान शुकदेव भाई ने प्रो. हीरालाल तिवारी, ब्रज किशोर सिंह ‘ब्रजेश’ और पीतांबर ‘निर्भीक’ के संपादन में ‘मजदूर’ नामक साप्ताहिक निकाला। लेकिन इसने भी कई सप्ताह निकलने के बाद दम तोड़ दिया। सन् 1959 में निर्मल बेरीवाल तथा निरुपमा के संपादन में डिब्रूगढ़ से ‘दीप’ नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके बाद पुष्परज जैन ‘कठिन’ ने ‘प्रभात’ नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन तिनसुकिया से शुरू किया। बाद में बंद होने के पश्चात् पुनः गुवाहाटी से इसका प्रकाशन शुरू किया गया। लेकिन आगे चलकर वह भी बंद हो गयी। कांतेश्वर उपाध्याय की ‘असम भूमि’ साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन 1 मई, 1971 को हुआ। 15 अगस्त, 1977 को भुवनेश्वर प्रसाद सिंह ‘आजाद’ ने भी तिनसुकिया से ‘पूर्व गंधा’ नामक पाक्षिक पत्रिका निकाली थी। इतना ही नहीं, 13 अप्रैल, 1976 से श्रीमती लावण्य गोगोई ने

‘असम ज्योति’ नामक एक पाक्षिक पत्रिका निकाली थी, जो तीन भाषाओं हिंदी, असमिया और राजस्थानी में निकलती थी। इसका पहला अंक ‘बहू विशेषांक’ था। जनवरी, 1978 से ओंकार शर्मा के संपादन में साप्ताहिक ‘जागृति’ का गुवाहाटी से प्रकाशन शुरू हुआ। यह लंबे समय तक नियमित रूप से प्रकाशित होता रहा। सन् 1982 में शंभु प्रसाद शर्मा ने तिनसुकिया से ‘रजनीगंधा’ निकाला। लेकिन रजिस्ट्रेशन नहीं मिलने के कारण बाद में इसका नाम ‘रजनीगंधा भारतीय’ रखा गया। यहाँ उल्लेखनीय है कि असम का पहला हिंदी दैनिक ‘लोकमान्य’ 28 अप्रैल, 1963 को पांडु (गुवाहाटी), कलकत्ता और नागपुर से एक साथ निकलता था। इसके पांडु (गुवाहाटी) संस्करण के संपादक रमाशंकर त्रिपाठी और प्रबंध संपादक भास्कर शर्मा थे। यह दैनिक समाचार-पत्र लगभग दो वर्षों तक निकलकर बंद हो गया। इस दौर में इसके अलावे अन्य कई पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हो पाया है।

आधुनिक काल : यांडाबू संधि के समय असम का जितना क्षेत्रफल था, उसमें से अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय तथा नगालैंड राज्यों के बँटवारे के बाद शेष जितना क्षेत्रफल बचा, संप्रति उतने क्षेत्रफल में ही असम रह गया है। असम के लोग जितनी ही शांत प्रवृत्ति के हैं, यह प्रदेश उतना ही अशांत रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यहाँ जबर्दस्त आंदोलन हुए, जिन्हें भाषा आंदोलन और छात्र आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इसके चलते आर्थिक विकास के मामले में असम काफी पिछड़ गया। लेकिन 1985 में राज्य में सत्ता परिवर्तन के बाद लोगों को काफी सुकून मिला और लोगों को आभास हुआ कि अब असम का दिन दूना रात चौगुना विकास होगा, जो एकदम गलत साबित हुआ। क्योंकि उसके बाद स्थानीय विभिन्न आतंकवादी संगठनों ने अपनी जड़ें जमा लीं और एक बार फिर असम जलने लगा। इन आंदोलनों और आतंकवाद के दौरान असम में रह रहे हिन्दीभाषियों (हिंदीभाषी प्रदेशों के लोगों) को काफी नुकसान हुआ। इस दौरान बहुसंख्यक हिंदीभाषी खास तौर से निम्नवर्गीय और मध्यम निम्नवर्गीय लोगों को असम छोड़कर जाना पड़ा। हालाँकि धनाढ्य और पूँजीपति हिंदीभाषियों पर भी काफी दबाव बढ़ा,

लेकिन अपनी वृहत् संपत्ति को तत्काल सलटाने में उनके सामने कई समस्याएँ थीं। इसलिए रातोंरात या फिर हठात् असम छोड़ना उनके लिए काफी मुश्किल था। समस्या यह भी थी कि राज्य सरकार तक सभी हिंदीभाषी अपनी समस्याएँ लेकर पहुँच नहीं पाते थे और दिल्ली दरबार तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए इनके पास कोई उचित माध्यम नहीं था। इन्हीं तरह की कई समस्याओं और सामाजिक झंझावातों के चलते असम में एक सशक्त हिंदी अखबार की अत्यंत आवश्यकता महसूस की जाने लगी। आखिरकार काफी सोच-विचार और संघर्षों के बाद 1989 में गुवाहाटी से तीन हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ।

सन् 1989 में असम की हिंदी पत्रकारिता में जबर्दस्त सुनामी आया और इस वर्ष पूर्वोत्तर के प्रवेश द्वार गुवाहाटी से तीन हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसमें सबसे पहले 16 मई, 1989 को **पूर्वांचल प्रहरी** हिंदी दैनिक का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके प्रधान संपादक विनोदानंद ठाकुर और कार्यकारी संपादक कृष्ण मोहन अग्रवाल थे। लेकिन कुछ दिनों बाद ही विनोदानंद ठाकुर और कृष्ण मोहन अग्रवाल के अखबार छोड़ने के बाद प्रबंध निदेशक जी. एल. अग्रवाला ने प्रधान संपादक का पदभार संभाला तथा सत्यानंद पाठक कार्यकारी संपादक बने। वहीं 19 मई, 1989 से **सेंटिनल** हिंदी दैनिक समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके प्रधान संपादक राधिका मोहन भागवती और कार्यकारी संपादक मुकेश कुमार थे। तकरीबन दो वर्ष के बाद मुकेश कुमार ने नौकरी छोड़ दी और चंद्रेश्वर ने कार्यकारी संपादक का पदभार संभाला। आगे चलकर चंद्रेश्वर ने भी नौकरी छोड़ दी और समय-समय पर संपादक बदलते रहे। इस समाचार-पत्र को पहले वर्ष में ही मातृश्री पुरस्कार मिला। वहीं 14 सितंबर, 1989 को **उत्तर काल** नामक एक अन्य हिंदी दैनिक समाचार-पत्र गुवाहाटी से निकला। इसके प्रधान संपादक गोवर्धन प्रसाद अटल और कार्यकारी संपादक रामाशंकर राय थे। लेकिन कुछ वर्षों के बाद यह हिंदी दैनिक समाचार-पत्र हमेशा के लिए बंद हो गया। सन् 1990 में जी. एल. पब्लिकेशंस लि. से **‘सप्तसेतु’** साप्ताहिक का प्रकाशन विनोद रिंगानिया के संपादकत्व में प्रारंभ हुआ। लेकिन यह पहले वर्ष में ही दम तोड़ दिया।

वहीं 1992 में राष्ट्रभाषा प्रचार मंच, नलबाड़ी द्वारा **‘मंच भारती’** नामक वार्षिक द्विभाषी (हिंदी-असमिया) पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम संपादक किशन कुमार जालेवाल थे। अब तक इसके 27 अंक प्रकाशित हो चुके हैं और 18 अंकों का संपादन गोविंद भागवती ने किया है। इसी क्रम में 12 मई, 1994 को विनोद रिंगानिया के संपादन में साप्ताहिक **‘पूरब’** का प्रकाशन गुवाहाटी से हुआ, जो 51 अंकों के बाद बंद हो गया।

सन् 1989 के बाद 2005 में एक बार पुनः असम की हिंदी पत्रकारिता में बहुत बड़ी क्रांति आयी और एक साथ दो हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों का प्रकाशन गुवाहाटी से शुरू हुआ। इस दौरान 18 अप्रैल, 2005 को गुवाहाटी से **‘दैनिक पूर्वोदय’** निकला, जिसके संपादक सत्यानंद पाठक और कार्यकारी संपादक रवि शंकर रवि थे। आगे चलकर सत्यानंद पाठक के निधन के बाद रवि शंकर रवि संपादक और राजकुमार शर्मा कार्यकारी संपादक बने। इसी तरह 1 मई, 2005 को **‘प्रातः खबर’** नामक एक अन्य हिंदी दैनिक भी गुवाहाटी से प्रकाशित हुआ, जिसके संपादक अनिल कुमार राय और कार्यकारी संपादक ध्रुव कुमार सिंह थे। बाद में अनिल कुमार राय ने नौकरी छोड़ दी तो ध्रुव कुमार सिंह संपादक बने। बाद में ध्रुव कुमार सिंह का निधन हो गया तो परमेश्वर सिंह संपादक बने। इस वर्ष भी पत्रकारिता के क्षेत्र में कई युवा आगे आये। इसी क्रम में 25 फरवरी, 2016 को गुवाहाटी से **‘निष्पक्ष समाचार ज्योति’** निकलना शुरू हुआ, जिसके संपादक प्रमोद तिवाड़ी थे। इसका प्रकाशन बनारस, देहरादून, लखनऊ, दिल्ली, भोपाल तथा गुवाहाटी से होता था। लेकिन कोविड-19 महामारी के दौरान यह अखबार काल के गाल में समा गया। वहीं 1 सितंबर, 2019 को राकेश शर्मा के संपादन में गुवाहाटी से **‘विकसित भारत समाचार’** नामक हिंदी दैनिक प्रकाशित हुआ। यह शिमला, जम्मू और गुवाहाटी से प्रकाशित होता है। इसी वर्ष बिरजू चंद्र गुप्ता के संपादन में तिनसुकिया से 17 दिसंबर, 2019 को **‘दैनिक अकेला’** प्रकाशित हुआ। ये वही बिरजू चंद्र गुप्ता हैं, जो तिनसुकिया से प्रकाशित साप्ताहिक अकेला के संपादक हैं। इसी क्रम में 16 जनवरी, 2026 से गुवाहाटी से **‘नवभारत’** नामक दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। यह समाचार-पत्र छत्तीसगढ़, ओडिशा

तथा गुवाहाटी से प्रकाशित होता है। इसके गुवाहाटी संस्करण के प्रधान संपादक समीर माहेश्वरी तथा संपादक राजीव कुमार सिंघी हैं। इसके साथ ही इसी वर्ष इसी दिन ‘जन-जन विचार’ नामक साप्ताहिक प्रकाशित हुआ, जो त्रिभाषा (हिंदी, असमिया एवं अंग्रेजी) में प्रकाशित होती है। इसके संपादक धनेश्वर चौधरी हैं। इसके अलावे भी समय-समय पर कई छोटे-मोटे पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनका उल्लेख नहीं हो पाया है। इसके साथ ही विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों, सरकारी संस्थानों एवं अन्य संगठनों द्वारा समय-समय पर प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं और स्मारिकाओं की सूची भी काफी लंबी है, जिसका उल्लेख यहाँ नहीं हो पाया है।

सन् 1989 से 2019 तक यानि 30 वर्षों में समय-समय पर असम से आठ हिंदी दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित हुए, जिनमें से छः अविराम गति से चल रहे हैं। चूँकि सभी अखबार के प्रबंधन घाटे का रोना रोते हैं तो फिर दिनोदिन नये-नये अखबार क्यों प्रकाशित हो रहे हैं और इन अखबारों के विपन्न पत्रकारों की स्थिति आखिर कब और कैसे सुधरेगी, यह शोध का एक महत्वपूर्ण विषय है।

असम की परिसीमा में दो उपत्यकाएँ हैं – ब्रह्मपुत्र घाटी और बराक घाटी। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में बराक घाटी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बराक घाटी के सिलचर से 1969 में अशोक वर्मा के संपादकत्व में ‘वसंत’ नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। लेकिन उक्त नाम से रजिस्ट्रेशन नहीं हो पाने के कारण मात्र तीन अंक प्रकाशित होने के पश्चात् उक्त पत्रिका को ‘बालार्क’ नाम से निकाला गया। वहीं रचनाकार और पाठकों की कमी की वजह से आगे चलकर उसे अर्द्धवार्षिक कर दिया गया। बाद में वार्षिक और वर्तमान में ‘बालार्क’ पत्रिका अनियतकालीन प्रकाशित हो रही है। वहीं 11 अप्रैल,

1998 से सिलचर से ही ‘प्रेरणा भारती’ नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जो आगे चलकर साप्ताहिक और फिर दैनिक समाचार-पत्र के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रेरणा भारती दैनिक समाचार-पत्र के रूप में आज भी अपनी गति से प्रकाशित हो रहा है। इसे बराक घाटी से प्रकाशित होने वाला प्रथम हिंदी दैनिक माना जाना चाहिए। हालाँकि ‘प्रभात पूर्व’ साप्ताहिक पत्रिका युगल किशोर त्रिपाठी के संपादन में निकली थी। एक अन्य हिंदी साप्ताहिक ‘बराक भूमि’ (संभवतः) सिलचर के रंगपुर से प्रकाशित होती थी, जिसके संपादकद्वय अजय भट्टाचार्य एवं प्रेम शंकर चौबे थे। वहीं ‘बराक अस्मिता’ नामक त्रैमासिक पत्रिका वंदिता तिवारी राय के संपादन में शुरू हुई थी। लक्ष्मी निवास कलवार के संपादन में ‘चाय भूमि’ के कई अंक करीमगंज जिला (वर्तमान श्रीभूमि) के कटलीचेरा से प्रकाशित हुए। लेकिन इन पत्रिकाओं के प्रकाशन वर्ष की जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसके अलावे बराक घाटी से भी विभिन्न स्कूल-कॉलेजों तथा सरकारी संस्थानों व विभिन्न संस्थाओं से स्मारिका निकलती रही है, जिसे समाहित नहीं किया जा सका है।

इस प्रकार यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि असम में हिंदी पत्रकारिता के सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं। इन सौ वर्षों में असम की हिंदी पत्रकारिता ने कई आयाम स्थापित किये हैं। लेकिन इसको लेकर सरकारी या गैर-सरकारी तौर पर किसी तरह का कोई कार्यक्रम आयोजित नहीं होना काफी दुःखद है। संप्रति सम्पूर्ण असम में हिंदी समाचार-पत्रों का प्रकाशन निर्बाध गति से प्रवाहमान है। ये समाचार-पत्र हिंदीभाषी क्षेत्रों से निकलने वाले किसी भी समाचार-पत्र से कम महत्व नहीं रखते। अहिंदीभाषी क्षेत्र पूर्वोत्तरीय प्रांत असम से इतनी व्यापक मात्रा में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अपने-आप में एक सुखद आश्चर्य का विषय है। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. पूर्वांचलीय राज्यों के साहित्यकारों का हिंदी को योगदान : डॉ. हरeram पाठक
2. कहानी की होली : चंद्र भूषण शर्मा
3. कई फुटकल आलेख

অসমীয়া ধ্ৰুপদী ভাষাৰ ইতিহাস : প্ৰেক্ষিত মাধৱ কন্দলি



ড° মঞ্জু দাস

অৱতৰণিকা :

‘ধ্ৰুপদী’ শব্দটো তৎসম ‘ধ্ৰুপদ’ শব্দৰ বিশেষণবাচক ৰূপ। বিশেষ্যবাচক ‘ধ্ৰুপদ’ শব্দৰ মূল হৈছে ‘ধ্ৰু’, যাৰ অৰ্থ দৃঢ়, স্থিৰ, স্থায়ী, শাস্ত্ৰত ইত্যাদি। অসমীয়া ‘ধ্ৰুপদী’ শব্দৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ ‘Classical’। ইয়াৰ অৰ্থ কোনো এক বিষয়ত সৰ্বোচ্চ আৰ্হিস্বৰূপ, প্ৰগাঢ় ঐতিহ্যবাহী সম্পদ বিশেষ। ধ্ৰুপদী শব্দই মূলতঃ প্ৰাচীন, চিৰন্তন, শ্ৰেষ্ঠ, ঐতিহাসিক আৰু সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যক সূচায়।

ভাৰতীয় ভাষাৰ প্ৰেক্ষাপটত ‘ধ্ৰুপদী’ ভাষা হৈছে এনে এক ভাষা, যাৰ চহকী ঐতিহ্য আৰু ঐতিহাসিক তাৎপৰ্য আছে। ইয়াৰ লগতে স্বতন্ত্ৰ সাহিত্যিক পৰম্পৰা, প্ৰাচীন সাহিত্যৰ কথিত আৰু লিখিত সমল থকা হ’ব লাগিব।

ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদান কৰা কৰ্তৃত্ববাহী অনুষ্ঠানটো হৈছে ভাৰত চৰকাৰৰ সাংস্কৃতিক মন্ত্ৰণালয়। এই অনুষ্ঠানটোৱে ২০০৪ চনৰ ৫ ফেব্ৰুৱাৰীত কেন্দ্ৰীয় সাংস্কৃতিক মন্ত্ৰী চন্দ্ৰেশ কুমাৰী কটোচে ৰাজ্য সভাত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ আধাৰ নীতি ঘোষণা কৰিছিল। সেই নীতিৰ আধাৰতে ২০০৪ চনৰ ১৭ ছেপ্তেম্বৰত তামিল ভাষাক প্ৰথমবাৰৰ বাবে ভাৰতৰ ধ্ৰুপদী ভাষাৰ আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি প্ৰদান কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত ২০০৫ চনত সংস্কৃত, ২০০৮ ত তেলেগু, ২০১৩ ত মালায়ালম আৰু ২০১৪ ত উৰিয়া ভাষাই মৰ্যাদা লাভ কৰে। শেহতীয়াকৈ ২০২৪ চনৰ ৩ অক্টোবৰত মাৰাঠী, পালি, প্ৰাকৃত আৰু বাংলা ভাষাৰ লগতে অসমীয়া ভাষাকো ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদান কৰে। ফলস্বৰূপে অসমীয়া ভাষাই সাহিত্যিক আৰু সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰত আন্তৰ্জাতিক স্বীকৃতি লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়।

অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ প্ৰাচীনত্বৰ ঐতিহাসিক প্ৰেক্ষাপট মন কৰিবলগীয়া। তেনে এক প্ৰেক্ষাপটত সাহিত্যৰ পথাৰখনত কৰ্ষণ কৰি সোণোৱালী শইচ সিঁচি অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ সুদৃঢ় ভেটি নিৰ্মাণ কৰোতা চতুৰ্দশ শতিকাৰ কবি মাধৱ কন্দলি অৱদান অপৰিসীম। কন্দলিয়ে পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে বাণ্মিকী ৰামায়ণ অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ কৰিছিল; যি উত্তৰ ভাৰতৰ ভাষাসমূহৰ ভিতৰত প্ৰথম ৰামায়ণৰ অনুবাদ। এই অনুবাদে অসমীয়া কবিতাক এক স্বকীয় গতি আৰু সুনিৰ্দিষ্ট শৈলী প্ৰদান কৰে। ফলস্বৰূপে অসমীয়া কাব্য সাহিত্যই এক সুউচ্চ সাহিত্যিক মানদণ্ড লাভ কৰিলে। কন্দলি অনুদিত ‘সপ্তকাণ্ড ৰামায়ণ’য়ে অসমীয়া ভাষাৰ এক স্বতন্ত্ৰ আৰু সমৃদ্ধ সাহিত্যিক ঐতিহ্য গঢ়ি তুলিলে; যিটো ধ্ৰুপদী ভাষাৰ এক অন্যতম বৈশিষ্ট্য। পৰৱৰ্তী শংকৰী যুগৰ অন্যতম হোতা মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে মাধৱ কন্দলিক ‘অপ্ৰমাদী আদি কবি’ আখ্যা দি কন্দলিৰ সাহিত্য প্ৰতিভাক স্বীকৃতি দি গৈছে। কন্দলিৰ এই ঐতিহাসিক অৱদানেই অসমীয়া ভাষাক ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদানৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় প্ৰাচীন সাহিত্যিক সমলৰ এক শক্তিশালী ভিত্তি প্ৰদান কৰিছে।

সহযোগী অধ্যাপক
দমদমা মহাবিদ্যালয়
কুলহাটী, কামৰূপ
☎ ৭০৮৬৭৪৮৮১৯
✉ md6808112@gmail.com

বিষয়ৰ উদ্দেশ্য আৰু লক্ষ্য :

ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতিয়ে সাহিত্যিক ঐতিহ্য আৰু অসমীয়াৰ ঐতিহাসিক তাৎপৰ্যক স্বীকাৰ কৰে। ভাষাটোৰ সন্মান আৰু সাহিত্য-সংস্কৃতি আৰু ভাষিক অধ্যয়নৰ প্ৰতি নতুন আগ্ৰহ বৃদ্ধি কৰে। ই গৱেষণা, শিক্ষা আৰু সাংস্কৃতিক পদক্ষেপৰ বাবে পুজি আৰু সম্পদৰ ৰূপত চৰকাৰী সমৰ্থনৰ পথ প্ৰশস্ত কৰি তুলিছে। সামগ্ৰিকভাৱে, ধ্ৰুপদী মৰ্যাদাই অসমীয়া ভাষাৰ অবিৰত বিকাশ আৰু সজীৱতাৰ বাবে এক উল্লেখযোগ্য অনুঘটক হিচাপে কাম কৰিব।

আজিৰ পৰা প্ৰায় ছশ বছৰতকৈ অধিক কাল আগতে মাধৱ কন্দলিয়ে অসমীয়া ভাষাত ৰামায়ণ মহাকাব্য ৰচনা কৰাতো আছিল এক বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ ঐতিহাসিক ঘটনা। সেয়েহে কন্দলি ৰামায়ণৰ অধ্যয়ন আৰু বিচাৰৰ ক্ষেত্ৰতো সম্প্ৰতি বিজ্ঞানসন্মত দৃষ্টিভঙ্গীৰ বিশেষ প্ৰয়োজন আছে। তেনে এক চিন্তা-চৰ্চাৰে নৱ-প্ৰজন্মক উদ্ধুদ্ধ কৰাৰ লক্ষ্যৰে আমাৰ এই ক্ষুদ্ৰ প্ৰয়াস। অসমীয়া ধ্ৰুপদী ভাষাৰ ইতিহাস চৰ্চাত মাধৱ কন্দলিৰ অৱদান সম্বন্ধে এক বিশ্লেষণাত্মক আলোচনাৰ মাধ্যমেৰে বিষয়টো উপস্থাপন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে।

অসমীয়া সাহিত্যত ৰামায়ণ বা ৰাম কথাৰ পৰম্পৰা :

ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰান্তৰ দৰে অসমত ৰামায়ণ কাহিনী বা ৰাম কথা অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰা চলি আহিছে। লোকগীত, মন্ত্ৰ আৰু জনজাতীয় ভাষাত ৰাম কথাৰ প্ৰচলন থকাৰ পৰা ইয়াৰ প্ৰাচীনতাৰ অনুমান কৰিব পাৰি। সমাজ বিজ্ঞানীসকলৰ মতে, মন্ত্ৰই হ'ল মানুহৰ প্ৰাচীনতম সাহিত্য কৃতি। এই মন্ত্ৰসমূহত ৰামায়ণৰ কাহিনী, ছবি, চৰিত্ৰ আদিৰ চিত্ৰণৰ পৰা অসমত ৰামায়ণ পৰম্পৰাৰ প্ৰাচীনতা নিৰ্ণয় কৰিব পৰা যায়। উদ্ধাৰ হোৱা নিদৰ্শনৰ পৰা দেখা যায় যে, ৰাম বিষয়ক কথাৰ উল্লেখ পোন প্ৰথমে 'কালিকা পুৰাণ' গ্ৰন্থখনত পোৱা যায়। দশম-একাদশ শতিকামানত ৰচিত এই কালিকা পুৰাণত ৰাম সীতাৰ জন্ম, বিবাহ, ৰাম-ৰাৱণৰ যুদ্ধ আৰু ৰামৰ বিজয় কামনাৰে ব্ৰহ্মাৰ দুৰ্গাপূজাৰ আয়োজনৰ কথাও উল্লেখ আছে। অসমীয়া আৰু বাংলা ভাষাৰ উমৈহতীয়া নিদৰ্শন 'চৰ্যাপদ' আৰু অসমীয়া জনসমাজত প্ৰচলিত 'ডাকৰ বচন'তো ৰামৰ কথা নাই যদিও ৰাৱণৰ বাণিজ্যৰ দেশ হিচাপে লংকাৰ উল্লেখ লক্ষণীয়। ঠিক তেনেদৰে অসমীয়া লোক জীৱনত ৰামায়ণক লৈ কিমান যে আখ্যান, কাহিনী, গীত, পদ, ফকৰা-যোজনা প্ৰচলিত হৈ আছে, তাৰ লেখ-জোখ দিব পৰা নাযায়। দেখা যায় যে, অসমৰ সমাজ জীৱনৰ ওপৰতো ৰামায়ণ মহাকাব্যই

অতীজৰে পৰা প্ৰভাৱান্বিত কৰি আহিছে। ফলস্বৰূপে অসমীয়া সাহিত্যও ৰাম কথাকে সমৃদ্ধ হৈ পৰিছে। সেয়েহে সুদূৰ চতুৰ্দশ শতিকাতো মাধৱ কন্দলীয়ে সেই সময়ৰ অসম অঞ্চলৰ সংযোগী ভাষা অসমীয়াত ৰামায়ণ ৰচনা কৰা সম্ভৱপৰ হৈ উঠিছিল। মাধৱ কন্দলিয়ে অসমীয়া লিখিত ৰামায়ণী সাহিত্যৰ আদি কবি।

মাধৱ কন্দলি :

মাধৱ কন্দলি প্ৰাক শংকৰী যুগৰ এগৰাকী সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ কবি আৰু পুৰণি অসমীয়া সাহিত্যকাশৰ উজ্বল ভোটাটোৱা। মাধৱ কন্দলিৰ কাল আৰু জন্মস্থান সম্পৰ্কে সঠিকভাৱে একো জনা নাযায়। আনকি তেওঁৰ সাহিত্য কৃতিৰ বিষয়েও সুস্পষ্ট পৰিচয় পোৱা হোৱা নাই। তেওঁ অসমীয়া ভাষাত বাণ্মিকী ৰামায়ণ ৰচনা কৰিছে আৰু 'দেৱজিৎ' নামৰ আন এখন গ্ৰন্থও ৰচনা কৰিছিল বুলি জনা যায়। সম্পূৰ্ণ অলৌকিকতা সম্পন্ন গ্ৰন্থ 'দেৱজিৎ'খনক অসমীয়া কেইগৰাকীমান পণ্ডিতে অন্য এজন মাধৱ কন্দলিৰ ৰচনা বুলিহে ক'ব বিচাৰে।

মাধৱ কন্দলিয়ে নিজে 'সপ্তকাণ্ড ৰামায়ণ পদবন্ধে নিবন্ধিলোঁ' (লংকা কাণ্ড, ৬৭১০) বুলি পৰিচয় দি গৈছে যদিও, বৰ্তমান প্ৰচলিত অসমীয়া ৰামায়ণৰ 'আদিকাণ্ড' শ্ৰীশ্ৰীমাধৱদেৱৰ আৰু 'উত্তৰাকাণ্ড' শ্ৰীশ্ৰীশংকৰদেৱৰ ৰচনা। কন্দলিয়ে নিজেই -

‘কবিৰাজ কন্দলি যে আমাকেসে বুলিৱয়

কৰিলোহো সৰ্বজনবোধে।

ৰামায়ণ সুপয়াৰ শ্ৰীমহামাণিক্য যে

বৰাহ ৰাজাৰ অনুবোধে।।

- (লংকা কাণ্ড, ৬৭১০)

- বুলি দিয়া আত্ম পৰিচয়ৰ পৰা তেওঁক বৰাহ ৰজা মহামাণিক্যৰ সমকালীন বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। তেওঁ যে মহামাণিক্য ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতা লাভ কৰিছিল সেই কথাও সহজে অনুমেয়।

ইতিমধ্যে অনুসন্ধিৎসু পণ্ডিত, সমালোচকসকলে মাধৱ কন্দলি আৰু মহামাণিক্যৰ সম্বন্ধৰ বিষয়ে ভালেমান আলোচনা আগবঢ়াইছে। মাধৱ কন্দলি ৰামায়ণৰ প্ৰথম সম্পাদক মাধৱ চন্দ্ৰ বৰদলৈয়ে (মাধৱ কন্দলি ৰামায়ণ, পাতনি) কৈছে - বৰাহী বুলি পৰিচয় দিয়া কছাৰী ৰাজবংশই খৃষ্টীয় ১২ শ শতিকাৰ পৰা ১৪ শ শতিকাৰ ভিতৰত জয়ন্তপুৰ, বৰ্তমান নগাওঁ জিলালৈকে বিস্তৃত ৰাজ্যত ৰাজত্ব কৰিছিল। গতিকে মহামাণিক্য এই বৰাহী ৰাজবংশৰেই ৰজা

আৰু তেওঁৰ ৰাজত্ব কাল আনুমানিক ১৪ শ শতিকাৰ আদিভাগ। পণ্ডিত হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে ‘হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ ৰচনাৱলী’ৰ মাধৱ কন্দলি শিতানত কৰা আলোচনা মৰ্মে, মহামাণিক্য ১৪ শ শতিকাৰ মধ্যভাগৰ ৰজা। ড° বাণীকান্ত কাকতিৰ ভাষাতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা (A.F.O)মাধৱ কন্দলিৰ ৰামায়ণ খৃষ্টীয় ১৪ শ শতিকাৰ ৰচনা। গতিকে মাধৱ কন্দলিৰ পৃষ্ঠপোষক জয়ন্তাপুৰৰ কছাৰী ৰজা মহামাণিক্যৰ ৰাজত্ব কাল ১৪ শ শতিকা। কন্দলি বৰ্তমান নগাওঁ জিলাই সামৰি লোৱা মধ্য-অসমৰ লোক আছিল। কনকলাল বৰুৱাই (Early History of Kamrup, ch-XV) কৈছে যে, খৃষ্টীয় চতুৰ্দশ শতিকাৰ শেষৰ ফালে মাধৱ কন্দলিয়ে ৰামায়ণ ৰচনা কৰিছিল। সেই শতিকাত নগাওঁ অঞ্চলৰ কপিলী উপত্যকাত সম্ভৱতঃ বৰাহী ৰজাই ৰাজত্ব কৰিছিল আৰু তেওঁৰ ৰাজত্বকালতে মাধৱ কন্দলিয়ে ৰামায়ণ ৰচনা কৰিছিল। ড° সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই (অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিবৃত্ত) মহামাণিক্য হেৰম্ব ঠালৰ এজন ৰজা হোৱাটো সম্ভৱ, যদিও একে নামৰে বা উপাধিৰে ত্ৰিপুৰা ৰজা এজনো সেই সময়ত আছিল বুলি মত পোষণ কৰিছে।

মাধৱ কন্দলিৰ সময় বিচাৰ প্ৰসঙ্গত আন এক তথ্য হ’ল - শংকৰদেৱে জীৱনৰ ভাটী বয়সত ৰচনা কৰা ৰামায়ণৰ উত্তৰাকাণ্ডত ‘পূৰ্বকবি অপ্ৰমাদী’ আদিৰে মাধৱ কন্দলিৰ প্ৰতি যি বিশেষ শ্ৰদ্ধা জ্ঞাপন কৰিছে, তাৰ মাজেদি শংকৰদেৱৰ মানস দৃষ্টিত মাধৱ কন্দলি এগৰাকী অপ্ৰমাদী ৰামায়ণৰ আদি কবি আছিল বুলি জনা যায়।

মাধৱ কন্দলিৰ উদ্ভৱকাল সম্পৰ্কে পণ্ডিতসকলে আগবঢ়োৱা বিভিন্ন মন্তব্যৰ ভেটিত এই কথা নিশ্চিতভাৱে ক’ব পৰা যায় যে, চতুৰ্দশ শতিকাই কবিগৰাকীৰ কাব্য ৰচনাৰ সময় আৰু তেওঁৰ পৃষ্ঠপোষক ৰজা মহামাণিক্য সমকালীন অসমৰ এগৰাকী বিদ্যানুৰাগী আৰু ৰামায়ণ প্ৰেমী ৰজা আছিল। জনশ্ৰুতি, ভৌগলিক পৰিস্থিতি আদিৰ ফালৰ পৰা মাধৱ কন্দলি নগাওঁ অঞ্চলৰে লোক আছিল। মাধৱ চন্দ্ৰ বৰদলৈয়েও তেওঁৰ সম্পাদিত ৰামায়ণৰ পাতনিত মাধৱ কন্দলিৰ জন্ম স্থান নগাওঁৰ আলি পুখুৰী বুলি উল্লেখ কৰিছে।

ৰামায়ণ :

উত্তৰ ভাৰতীয় প্ৰাক্তীয় ভাষাসমূহলৈ অনুদিত ৰামায়ণৰ ভিতৰত মাধৱ কন্দলিৰ ৰামায়ণখনেই প্ৰাচীনতম। ইয়াৰ ঐতিহাসিক মূল্য অবিস্মৰণীয়। মাধৱ কন্দলি ৰামায়ণৰ অন্যতম প্ৰধান বিশেষত্ব হৈছে, কন্দলিয়ে আক্ষৰিক অনুবাদ খুব কমকৈ কৰিছে। মূল কাহিনী তেওঁ বাণ্মিকী ৰামায়ণৰ

পৰা গ্ৰহণ কৰি নিজস্ব ৰুচি আৰু অনুভূতি অনুসৰি সমকালীন অসমীয়া সমাজৰ উপযোগীকৈ ৰামায়ণৰ পদসমূহ কৰিছে। তেওঁৰ ৰামায়ণৰ মূল ৰীতি আছিল ‘লম্বা পৰিহৰি সাৰোধুতে’। এই ৰীতি তেওঁ সযত্নে ৰক্ষা কৰিছে যদিও ঠাই বিশেষে ‘ক’তো নিজ ক’তো লম্বা কথা অনুসাৰে’ (কিষ্কিন্ধ্যা কাণ্ড, ৩৯৯৩) বুলি কৈ স্বকীয় সংযোজনেৰে সৃজনশীল প্ৰতিভাৰ স্বাক্ষৰ দাঙি ধৰিছে।

কবিয়ে কিষ্কিন্ধ্যা কাণ্ডৰ সামৰণিত তেওঁৰ ৰামায়ণৰ ৰচনা ৰীতিৰ সুন্দৰ আৰু স্পষ্টভাৱে উল্লেখ কৰিছে।

‘বাণ্মিকী ৰচিলা শাস্ত্ৰ গদ্য-পদ্য ছন্দে।

তাহাক বিচাৰ আমি কৰিয়া প্ৰবন্ধে।।

আপুনাৰ বুদ্ধি অৰ্থ যিমত বুঝিলো।

সংক্ষেপ কৰিয়া তাক পদ বিৰচিলো।।

সমস্ত ৰসক কোনে বুঝিবাক পাৰে।

পথীসব উৰই যেন পথা অনুসাৰে।।

কবিসব নিবন্ধয় লোক ব্যৱহাৰে।

ক’তো নিজ ক’তো লম্বা কথা অনুসাৰে।।

দেৱবাণী নুহি ইটো লৌকিকহে কথা।

এতেকে ইহাৰ দোষ নলৈবা সৰ্বথা।।’

কবিৰ উল্লিখিত কথাখিনিৰ পৰা এই কথা স্পষ্ট যে, কন্দলিয়ে ৰামায়ণ ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত বাণ্মিকী ৰামায়ণৰ শ্লোকৰ আক্ষৰিক অনুবাদ আৰু ঠাই বিশেষে ভাবানুবাদৰ আশ্ৰয় লৈছে। অৱশ্যে তেওঁ আক্ষৰিক অনুবাদতকৈ ভাবানুবাদৰ ওপৰত অধিক গুৰুত্বাৰোপ কৰা দেখা যায়।

কন্দলি এগৰাকী জাতীয় চেতনাৰে উদ্বুদ্ধ সমাজ সচেতন কবি আছিল। তেওঁৰ মুখ্য উদ্দেশ্য আছিল লোক সমাজৰ ৰুচিৰ অনুকূলে ৰামায়ণ ৰচনা কৰা। সেয়েহে তেওঁ মূলৰ ভালেমান বৰ্ণনা পৰিহাৰ কৰিছে, ভালেমান বৰ্ণনা চমুৱাইছে আৰু ঠায়ে ঠায়ে নিজস্ব কথাও সংযোগ কৰিছে। কবিৰ সুদক্ষ হাতৰ পৰশত তেওঁৰ ৰামায়ণক মৌলিক সদৃশ ৰচনাৰ শাৰীলৈ উত্তোলিত কৰাত সহায়তা কৰিছে।

প্ৰাচীনতম অসমীয়া লিখিত কাব্যসাহিত্যৰ নিদৰ্শন স্বৰূপ ৰামায়ণত প্ৰয়োগ কৰা ভাষা সহজবোধ্য আৰু আবেদনক্ষম। ভাষা হৈছে ভাৱ প্ৰকাশৰ প্ৰসূতি, জননী। ভাষাক আওকান কৰি সাহিত্যই তাৰ স্বকীয় ৰূপ লাভ কৰিব নোৱাৰে। কবি সাহিত্যিকসকলে তেওঁলোকৰ নিৰ্মিত ভাষাৰ যথার্থ প্ৰয়োগত গুৰুত্বাৰোপ কৰি সৃজনশীল মানসিকতাৰে ভাষা-ৰীতিক সুসংহত আৰু সুনিৰ্দিষ্ট ৰূপ দিয়াৰ চেষ্টা কৰে। ফলত, কাব্য-সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ ভাষা

প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত যুগে যুগে একো একোটা বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ ধাৰাৰ সৃষ্টি হোৱা দেখা যায়। চতুৰ্দশ শতিকাত আদি কবি মাধৱ কন্দলি প্ৰমুখ্যে পাঁচগৰাকী বিশিষ্ট কবিয়ে কাব্য ৰচনাৰ জৰিয়তে এক বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ কাব্য-ভাষা পৰম্পৰা গঢ়ি থৈ গৈছে। কবি কন্দলিৰ ৰামায়ণৰ ভাষাই সেই বৈশিষ্ট্যই বহন কৰিছে।

কন্দলিয়ে ‘সৰ্বজনবোধে’ ৰামায়ণ অনুবাদ কৰিছিল। সেয়েহে তেওঁ সমসাময়িক অসমীয়া মানুহৰ ভাষাক কাব্যিকতা সানি ৰামায়ণত প্ৰয়োগ কৰিছিল। তেওঁৰ ৰামায়ণৰ ভাষাৰ আধাৰ আছিল লোকজীৱনৰ মুখৰ ভাষা আৰু লোকগীত, সাধুকথা, ফকৰা-যোজনা, জতুৱা ঠাচ আদিৰ ভাষা। সম্ভৱতঃ মৌখিক লোকগীত আদিৰ ভাষাৰ অনকৰণতেই অন্তিমিলযুক্ত পয়াৰ, বুমুৰী, ত্ৰিপদী, দুলডী, ছবি আদি ছন্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছিল। পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিৰ স্পষ্ট উপলব্ধিৰ কাৰণে তেওঁ উপমাৰ পিছত উপমা মালাৰ দৰে ব্যৱহাৰ কৰিছে। তেওঁ অযোধ্যাকাণ্ডত দশৰথ আৰু ৰামবিহীন বিষাদভৰা অযোধ্যাৰ ছবি উপমাৰ সহায়ত অনুভূতিপূৰ্ণ কৰি তুলিছে।

স্বৰ্গতো অধিক কৰি যাৰ কীৰ্তি গৈল।

হেনপুৰী যেহেন শ্ৰাশান শাল ভৈল।।

অযোধ্যা নদীত ভৈলা দশৰথ জল।

কৈকেয়ী ৰবিজালে শুফিল সকল।।

লোকজীৱনৰ পৰা বুটলি অনা আৰু মূল সংস্কৃতৰ পৰা অনুবাদ কৰা ভালেমান উপমা আদি অলংকাৰে কন্দলিৰ ৰামায়ণ নিৰুপমা কৰি ৰাখিছে। তেওঁ লোকজীৱনৰ মুখৰ পৰা বুটলি অনা বিশেষণ আদিও সু-শিল্পীৰ দৃষ্টিৰে প্ৰয়োগ কৰিব পাৰিছে। ৰামৰ শোকত অধীৰ ভৰতে মাকক এনেদৰে গালি দিছে -

শুফিণী নাগিনী নিকাৰুণী সংহাৰিণী।

নিদয়িনী ৰাক্ষসিনী বাঘিনী দাৰুণী।।

(অযোধ্যাকাণ্ড, ২২৭৬)

অসমীয়া কাব্য-সাহিত্যত ছন্দ, অলংকাৰ, জতুৱা ঠাচ, ফকৰা-যোজনা আদি সকলো যথা নিৰ্দিষ্ট ইতিহাসৰ আৰম্ভণি কবি কন্দলি কৃত ৰামায়ণ। গতিকে মাধৱ কন্দলি অসমীয়া কাব্যিক ভাষাৰো স্থপতি।

ৰস সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰতো কন্দলিৰ প্ৰতিভা অতুলনীয়। স্থান আৰু পৰিৱেশ ভেদে কবিয়ে বীৰ, হাস্য, কৰুণ, বীভৎস আদি ৰসৰ সৃষ্টিত মৌলিকতা লক্ষণীয়। বিশেষভাৱে যুদ্ধৰ

বৰ্ণনাসমূহত বীৰ ৰস; ৰাক্ষসৰ কাৰ্যৰ বৰ্ণনাত হাস্যৰস; ৰাম-সীতাৰ বিচ্ছেদৰ বিভিন্ন পৰিস্থিতিত কৰুণ ৰস আৰু ৰাক্ষস-ৰাক্ষসীৰ বৰ্ণনাত বীভৎস আৰু ভয়ানক ৰসৰ সমাবেশ ঘটাইছে। আনহাতে দিব্য বস্তু আৰু ‘বত্ৰিশ অলংকাৰ’ পিন্ধি নিজকে অতি ৰূপৱতী সাজি কুঁজীয়ে ভৰতৰ পটেশ্বৰী হোৱাৰ ভৰসা কৰাৰ বৰ্ণনা অতি হাস্য ৰসাত্মক। কিন্তু ভৰতৰ আদেশত শত্ৰুগ্নই নানান শাস্তি দি প্ৰেম প্ৰাৰ্থিনী কুঁজীক নগুৰ-নাগতি কৰা দৃশ্যই হাঁহিৰ ঠাইত ক্ৰমে কাৰুণ্যত পৰিণত হয়। এনে ধৰণৰ হাস্য-কৰুণ ৰসাত্মক দৃশ্যৰ ৰূপায়ণত মাধৱ কন্দলিৰ প্ৰতিভাৰ মৌলিকতা লক্ষণীয়।

পৰিৱেশ আৰু লৌকিকতা সৃষ্টিও কন্দলি ৰামায়ণৰ অন্যতম বিশেষত্ব। ৰামায়ণৰ নানান ঠাইত কম-বেছি পৰিমাণে এই বিশেষত্ব দেখিবলৈ পোৱা যায়। হনুমানে লংকালৈ গৈ যি দেখিলে আৰু শুনিলে, তাৰ বৰ্ণনা অসমৰ প্ৰকৃতিক পৰিৱেশৰ অন্তৰ্গত। তাৰ উপৰিও মাধৱ কন্দলিৰ ৰামায়ণ প্ৰধানতঃ লৌকিকতা সম্পন্ন; সেই কথা তেওঁ ‘দেৱবাণী নুহি ইটো লৌকিক হে কথা’ বুলি উল্লেখ কৰি গৈছে। কন্দলি ৰামায়ণৰ ঠায়ে ঠায়ে যি অলৌকিকতাৰ আভাস পোৱা যায়, সি শ্ৰেণী সমাজৰ প্ৰভাৱ আৰু বিশেষকৈ বৈষ্ণৱ যুগৰ প্ৰভাৱ বুলিব পাৰি। মুঠতে প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যকে ধৰি পৰিৱেশৰ কথা চিত্ৰণৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁ সমকালীন অসমৰ কথা মনলৈ আনিছিল। তেওঁ সমকালীন অসমীয়া কৃষিভিত্তিক সমাজৰ প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰিছে। অসমৰ সৰহভাগ লোকেই কৃষি কৰ্ম কৰি জীৱন ধাৰণ কৰিছিল। সেইখন সমাজত নাট, ভাট, তেলী, তাঁতী, কমাৰ, সোণৰী, কঁহাৰ, বনিয়া, বাঢ়ৈ, চমাৰ, ধোৱা, কুমাৰ আদি বৃত্তিধাৰী জাতি থকাৰ উল্লেখ বিভিন্ন প্ৰসঙ্গত পোৱা যায়। ৰামায়ণখনত বিষ্ণু পূজা, শিৱ পূজা, শক্তি পূজা আদিৰ উল্লেখনে তদানীন্তন সমাজৰ ধৰ্মীয় দিশটোৰ উমান পোৱা যায়। মানুহৰ জন্ম, বিবাহ আৰু মৃত্যুৰ লগত জড়িত অনুষ্ঠানৰো সঘন উল্লেখ পোৱা যায়। ৰজা দশৰথৰ মৃত্যুৰ পিছত অস্ত্যোষ্টি ক্ৰিয়াৰ প্ৰসংগত দিয়া বৰ্ণনা যেন অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত অস্ত্যোষ্টি ক্ৰিয়াৰ স্বৰূপকে দাঙি ধৰিছে। শুভ কৰ্ম বা যাত্ৰাৰ প্ৰাকক্ষণত জ্যেষ্ঠজনক, পিতৃ-মাতৃক নাইবা ইষ্ট দেৱতাক সেৱা জনোৱা অসমীয়া লোক সমাজত প্ৰচলিত ৰীতি আদিৰো আভাস কন্দলি ৰামায়ণত পোৱা যায়। কবিয়ে চৰিত্ৰসমূহৰ চিত্ৰণতো লোক ৰচিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখিছে। প্ৰায়বোৰ চৰিত্ৰই অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ নিখুঁত আৰু স্পষ্ট পৰিচয় দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। চৰিত্ৰসমূহৰ

মুখত লোক ৰুচিৰ অনুকূল পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰিবলৈ লোক ভাষাৰ প্ৰয়োগ মন কৰিবলগীয়া। কবি কন্দলিৰ ৰামায়ণ তদানীন্তন অসমৰ সমাজ জীৱনৰ এখনি জীৱন্ত দলিল স্বৰূপ।

উপসংহাৰ :

মাধৱ কন্দলিয়ে ‘ৰামায়ণ’ গ্ৰন্থ ৰচনাৰে অসমীয়া ভাষাৰ মাধ্যমত সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষকে প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে। তেৱেই পোন প্ৰথম বাৰৰ বাবে অসমক ভাৰতৰ লগত অংগাংগীভাৱে জড়িত কৰিলে। কন্দলি ৰামায়ণৰ ই এক ঐতিহাসিক কীৰ্তি। কন্দলিৰ ৰামায়ণ সেই যুগৰ বৃহত্তম গ্ৰন্থই নহয়, সমগ্ৰ পুৰণি সাহিত্যৰ ভিতৰতে গুণগত বৈশিষ্ট্যৰ ফালৰ পৰাও কীৰ্তিস্তম্ব স্বৰূপ। ইয়াৰ কাব্যিক, সাংস্কৃতিক আৰু ঐতিহাসিক বিশেষ মূল্য কেৱল অসমীয়া সাহিত্যতে নিৰূপিত নহয়, ভাৰতীয় সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ ইতিহাসতো এই কাব্যৰ স্থান প্ৰসাৰিত। চতুৰ্দশ শতিকাতে ৰচিত ৰামায়ণ গ্ৰন্থই অসমীয়া সাহিত্য, অসমীয়া জাতিৰ গৌৰৱময় প্ৰাচীনত্বৰ ঘোষণা কৰি ছয় শ বছৰৰো অধিক পূৰ্বৰ অসমীয়া ভাষাৰ চমকপ্ৰদ সমৃদ্ধি আৰু সুৰ্গে প্ৰকাশ ক্ষমতা দেখুৱাই গৈছে। ই অতীত অসমৰ দাপোন স্বৰূপ আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীৰ ভৱিষ্যত উন্নতি সূচক সুস্পষ্ট চিহ্ন।

সিদ্ধান্ত :

ওপৰৰ আলোচনাৰ অন্তত লক্ষণীয় কথা কেইটা হ’ল -

১) চতুৰ্দশ শতিকাত মাধৱ কন্দলিয়ে অসমীয়া ভাষাত ৰামায়ণ মহাকাব্য ৰচনা কৰি অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ সুদৃঢ় ভেটি নিৰ্মাণ কৰি থৈ গৈছে।

২) কবি কন্দলিয়ে ৰামায়ণ ৰচনাৰ যোগেদি নিজৰ কল্পনাশীল সৃজনী প্ৰতিভাৰ পৰিচয় দিয়াৰ লগতে অসমৰ জাতীয় জীৱনত এক অভিনৱ সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাৰ সূচনা কৰি থৈ গৈছে।

৩) কবিয়ে ৰামায়ণৰ কাহিনীৰ লগত অসমীয়া লোকসমাজক একত্ৰীকৰণ কৰাত সম্পূৰ্ণ সফলতা লাভ কৰিছে।

৪) হৃদ, অলংকাৰ আৰু ৰস সৃষ্টিত সিদ্ধহস্ত কন্দলিয়ে অসমীয়া কাব্যৰ স্থপতি ৰূপটোক যি অভিনৱত্ব দি গ’ল, সি তেওঁৰ অসাধাৰণ কাব্যিক প্ৰতিভাৰে স্বাক্ষৰ। সেয়েহে পৰৱৰ্তী কবি সাহিত্যিকসকলে তেওঁৰ দ্বাৰা অনুপ্ৰাণিত হোৱাটো বিশেষ মনকৰিবলগীয়া।

৫) কন্দলিয়ে তেওঁৰ সৃজনশীল প্ৰতিভাৰে অসমীয়া ভাষাৰ অন্তৰ্নিহিত শক্তিৰ উন্মেষ ঘটাই উৎকৰ্ষ সাধন কৰি যি ঐশ্বৰ্য্য অসমীয়াক দি থৈ গ’ল, সি অসমীয়া ভাষা সাহিত্য জগতত অতুলনীয়।

৬) মাধৱ কন্দলিৰ ‘ৰামায়ণ’ সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ এক উৎকৃষ্ট দলিল স্বৰূপ। সেয়েহে ধ্ৰুপদী অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাসত মাধৱ কন্দলিৰ অৱদান এক শক্তিশালী ভেটি।

ভৱিষ্যত অধ্যয়নৰ প্ৰাসংগিকতা :

বৰ্তমানলৈকে মাধৱ কন্দলিৰ বিষয়ে যথোচিত আলোচনা বিলোচনা হৈছে। কিন্তু যি সামাজিক পটভূমিত তেওঁ ‘ৰামায়ণ’ কাব্য ৰচনা কৰিছিল তাৰ বিজ্ঞান সন্মত মূল্যায়নৰ আৱশ্যক আছে বুলি অনুভৱ কৰা যায়। □

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১) কন্দলি, মাধৱ : সংস্কৃত ৰামায়ণ, অনন্ত হাজৰিকা, বনলতা, গুৱাহাটী, পুনৰ মুদ্ৰণ, ২০০৫
- ২) চুতীয়া, ফেলী : অসমীয়া ভাষাৰ ধ্ৰুপদী ইতিহাস, পূৰ্বায়ন প্ৰকাশন, ১ম প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০২৫
- ৩) ভট্টাচাৰ্য, বসন্ত কুমাৰ : মাধৱ কন্দলিৰ ৰামায়ণ (সুন্দৰা কাণ্ড) এটি সমীক্ষা, সমন্বয় গ্ৰন্থালয়, নলবাৰী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৬
- ৪) শৰ্মা, শৰ্মা : মাধৱ কন্দলিৰ ৰামায়ণ, জাৰ্ণাল এম্পাৰিয়াম, নলবাৰী, পৰিৱৰ্তিত ৪ৰ্থ সংস্কৰণ ২০০১
- ৫) শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ : ৰামায়ণৰ ইতিবৃত্ত, অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৮৪
- ৬) শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ : অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্ৰিন্টিং এণ্ড পাব্লিচিং কোং, গুৱাহাটী, প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৮১

সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' চুটিগল্পত কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগ



ড° মনালিছা বৰা

সংক্ষিপ্তসাৰ :

কোনো এক নিৰ্দিষ্ট ভূখণ্ডত ব্যৱহৃত কোনো এটা ভাষালৈ লক্ষ্য কৰিলে সেই ভাষাটোৰ অন্তৰ্গত কেইবাটাও উপভাষা দেখিবলৈ পোৱা যায়। ভাষাটোৰ সমৃদ্ধিত সেই আঞ্চলিক ৰূপ বা উপভাষাবোৰৰ এক বিশেষ গুৰুত্ব আছে। ভাষাৰ অন্তৰ্গত এই উপভাষাবোৰ সাধাৰণতে সৰ্বসাধাৰণৰ মাজত কথিত ৰূপত প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। উল্লেখযোগ্য যে উপভাষাবোৰ যে অকল কথিত ৰূপতে বৰ্তি থাকে এনে নহয়; কেতিয়াবা লিখিত সাহিত্যতো ইয়াৰ প্ৰয়োগ হ'ব পাৰে। অসমীয়া সাহিত্যত বিভিন্ন সাহিত্যিকে তেওঁলোকৰ সাহিত্যৰ মাজত ভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপ বা লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। সাহিত্যত আঞ্চলিক ৰূপ ব্যৱহাৰ কৰা সেই সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত এগৰাকী অন্যতম সাহিত্যিক তথা গল্পকাৰ হ'ল সৌৰভ কুমাৰ চলিহা। চলিহাৰ চুটিগল্পসমূহৰ ভিতৰত এটা ব্যতিক্ৰমী চুটিগল্প হ'ল 'হাঁহিচম্পা' যিটো চুটিগল্প কামৰূপী উপভাষাত ৰচিত। গল্পটো ব্যতিক্ৰম এই কাৰণেই যে গল্পটোত তেওঁ কেৱল সংলাপৰ ক্ষেত্ৰতে উপভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰা নাই, গোটেই গল্পটোৱেই কামৰূপী উপভাষাত ৰচনা কৰিছে।

অসমৰ নামনি অঞ্চলৰ উপভাষাবোৰৰ ভিতৰত এটা উল্লেখযোগ্য উপভাষা হ'ল কামৰূপী উপভাষা। এই উপভাষাটোৰ ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব আৰু শব্দতত্ত্ব— এই তিনিও দিশতে এনে কিছুমান সুকীয়া বৈশিষ্ট্য আছে যিবোৰে এই উপভাষাটোক মান্যভাষাৰ পৰা পৃথক কৰি অসমৰ এটা উল্লেখযোগ্য উপভাষাকপে পৰিচয় প্ৰদান কৰিছে। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ কামৰূপী উপভাষাত ৰচিত এই 'হাঁহিচম্পা' গল্পটোৱে কামৰূপী উপভাষাৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দতাত্ত্বিক— এই তিনিও দিশৰে বিভিন্ন বৈশিষ্ট্য বহন কৰিছে। ধ্বনিতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যৰ ভিতৰত উচ্চ স্বৰধ্বনিৰ প্ৰাধান্য, দুটা আ-ধ্বনিৰ ওচৰা-ওচৰিকৈ ব্যৱহাৰ, আ-স্বৰৰ ঠাইত আ-স্বৰৰ প্ৰয়োগ, অপিনিহিতিৰ প্ৰয়োগ, ঐ-ধ্বনিৰ ঠাইত এ-ধ্বনিৰ প্ৰয়োগ— আদি বৈশিষ্ট্য দেখিবলৈ পোৱা যায়। সেইদৰে ৰূপতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যৰ ভিতৰত বহুবচনৰ প্ৰত্যয়, নিৰ্দিষ্টতাৰচক প্ৰত্যয়, সৰ্বনাম, ক্ৰিয়াৰ নঞৰ্থক ৰূপ, ক্ৰিয়াকৰূপ, পৰসৰ্গ, কাৰক বিভক্তি— আদি বৈশিষ্ট্যত স্বকীয়ত্ব মনকৰিবলগীয়া। গতিকে আমাৰ এই আলোচনা পত্ৰখনত চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ বৈশিষ্ট্যসমূহ কেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব। পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' গল্পটোৰ পৰা কামৰূপী উপভাষাৰ তথ্যসমূহ সংগ্ৰহ কৰি, সেইবোৰ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে বিশ্লেষণ কৰি এই গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

সহযোগী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
শুৱালকুছি বৃন্দাম মাধৱ সত্ৰাধিকাৰ
মহাবিদ্যালয়
☎ ৯৩৬৫৭৮২৩২১
✉ monalisaborah17@gmail.com

বীজ শব্দ :

উপভাষা, সৌৰভ কুমাৰ চলিহা, কামৰূপী উপভাষা, হাঁহিচম্পা, ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব আদি।

প্ৰস্তাৱনা :

উপভাষা হ'ল কোনো এটা ভাষাৰ অন্তৰ্গত আঞ্চলিক ৰূপ। কোনো এটা ভাষা যেতিয়া বিস্তৃত অঞ্চলত বিয়পি পৰে তেতিয়া অঞ্চল বিশেষে কিছুমান সুকীয়া সুকীয়া ভাষা ৰূপ গঢ় লৈ উঠে। অঞ্চল বিশেষে গঢ় লৈ উঠা ভাষাৰ এই সুকীয়া ৰূপবোৰেই হ'ল উপভাষা। অৰ্থাৎ কোনো এক নিৰ্দিষ্ট ভৌগোলিক পৰিমণ্ডলত ব্যৱহৃত কোনো এটা ভাষালৈ লক্ষ্য কৰিলে এটা অঞ্চলৰ ভাষা আৰু আন এটা অঞ্চলৰ ভাষাৰ মাজত ধ্বনি, ৰূপ, শব্দ আৰু বাক্যগঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজত নানা পৰিৱৰ্তন পৰিলক্ষিত হয়। ভাষাৰ এনে সুকীয়া ৰূপবোৰেই হ'ল উপভাষা। বিভিন্ন কাৰণত এই উপভাষাবোৰ গঢ় লৈ উঠে। অৰ্থাৎ প্ৰাকৃতিক, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, ধৰ্মীয়, সাংস্কৃতিক ইত্যাদি বিভিন্ন কাৰণত উপভাষাৰ সৃষ্টি হয় যদিও প্ৰধানতঃ মানুহৰ মাজত আহ-যাহ বা যোগাযোগৰ অভাৱেই হ'ল উপভাষা সৃষ্টিৰ মূল কাৰণ।

শদিয়াৰ পৰা ধুবুৰীলৈকে সমগ্ৰ অসমভূমিত অসমীয়া ভাষা প্ৰচলিত হ'লেও অসমৰ সকলো ঠাইতে ভাষাটো সমৰূপী নহয়। অসমৰ অঞ্চল বিশেষে কিছুমান আঞ্চলিক ভাষা ৰূপ গঢ় লৈ উঠা দেখিবলৈ পোৱা যায়। গ্ৰীয়াৰ্ছন, বাণীকাস্ত কাকতি, উপেন্দ্ৰনাথ গোস্বামীকে ধৰি ভাষাবিদসকলে অসমীয়া ভাষাৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ৰূপ বা উপভাষাৰ কথা আলোচনা কৰিছে। ভাষাবিদ বাণীকাস্ত কাকতিয়ে অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাক পূব অসমৰ উপভাষা আৰু পশ্চিম অসমৰ উপভাষা— এই দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে।^১ ভাষাবিদ গোলোকচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে পূব অসমৰ উপভাষা আৰু পশ্চিম অসমৰ উপভাষাৰ মাজত মধ্য অসমৰ উপভাষা এটিক নিৰ্দেশ কৰি অসমৰ তিনিটা উপভাষাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে।^২ আকৌ ভাষাবিদ উপেন্দ্ৰনাথ গোস্বামীয়ে অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাক পূব অঞ্চল বা উজনিৰ উপভাষা আৰু পশ্চিম অঞ্চল বা নামনিৰ উপভাষা—এই দুটা প্ৰধান ভাগত বিভক্ত কৰি নামনি অসমৰ উপভাষাক কামৰূপী উপভাষা আৰু গোৱালপৰীয়া উপভাষা— এই দুটা উপভাগত বিভক্ত কৰিছে।^৩ অৰ্থাৎ পূবৰ পিনৰ উজনিৰ উপভাষা আৰু পশ্চিমৰ পিনৰ গোৱালপৰীয়া উপভাষাৰ মাজত আছে কামৰূপী উপভাষা।

ভাষাবিদ ৰমেশ পাঠকেও অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাক উজনি, কামৰূপী আৰু গোৱালপৰীয়া— এই তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিছে।^৪ এইদৰে অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাক বিভিন্ন পণ্ডিতে বিভিন্ন ভাগত বিভক্ত কৰিছে। উল্লেখযোগ্য যে, কামৰূপী আৰু গোৱালপৰীয়া উপভাষা হ'ল নামনি অসমৰ দুটা প্ৰধান উপভাষা। ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দতাত্ত্বিক— এই তিনিও দিশতে এই দুয়োটা উপভাষা নিজস্ব বৈশিষ্ট্যৰে গঢ় লৈ উঠিছে যাৰ বাবে এই দুটা উপভাষাৰ লগত মান্য অসমীয়া ভাষাৰ যথেষ্ট পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়।

বিষয়ৰ পৰিচয় :

কোনো ভাষাৰ অন্তৰ্গত উপভাষাবোৰ সাধাৰণতে কথিত ৰূপত বৰ্তি থাকে। কথিত ৰূপ বা উপভাষাটো মানুহৰ মুখে মুখে প্ৰচলিত আৰু অনানুষ্ঠানিক বা ঘৰুৱা কাৰ্যত সাধাৰণতে ইয়াক ব্যৱহাৰ কৰা হয়। আনহাতে ভাষাৰ অন্তৰ্গত উপভাষাবোৰৰ মাজত যিটো উপভাষাই মান্য ভাষাৰ মৰ্যাদা লাভ কৰে, সেই মান্য ভাষাটোৰ দ্বাৰা সাহিত্য আদি সৃষ্টি কৰা হয়, সকলো আনুষ্ঠানিক কাৰ্য সম্পাদন কৰা হয়। কিন্তু মনকৰিবলগীয়া কথা এই যে কেৱল মান্য ভাষা বা ভাষাৰ লিখিত ৰূপৰ যোগেদিহে যে সাহিত্য আদি সৃষ্টি হয় এনে নহয়; কেতিয়াবা সাহিত্যৰ মাজত ভাষাৰ কথিত ৰূপ বা উপভাষা প্ৰয়োগৰ প্ৰয়োজনীয়তাও আহি পৰে। সেই উদ্দেশ্যে বিভিন্ন সাহিত্যকে সাহিত্যৰ মাজত ভাষাৰ কথিত ৰূপ বা উপভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। অসমীয়া সাহিত্যত গুণাভিৰাম বৰুৱা, অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰী, লঞীনাথ বেজবৰুৱা, চৈয়দ আব্দুল মালিক, শীলভদ্ৰ, সৌৰভ কুমাৰ চলিহা, মামনি ৰয়ছম গোস্বামীকে প্ৰমুখ্য কৰি আধুনিক বিভিন্ন কবি-সাহিত্যকে তেওঁলোকৰ সাহিত্যৰ মাজত অসমৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ভাষাৰূপ বা উপভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়।

আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত এগৰাকী অন্যতম সাহিত্যিক হ'ল সৌৰভ কুমাৰ চলিহা। সৌৰভ কুমাৰ চলিহা ছদ্মনামেৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত খ্যাতি লাভ কৰা এইগৰাকী সাহিত্যিকৰ প্ৰকৃত নাম হ'ল—সুৰেন্দ্ৰ নাথ মেধি। আধুনিক গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত তেওঁ এজন অতি শক্তিশালী আৰু ব্যতিক্ৰমী গল্পকাৰ। প্ৰচাৰ বিমুখ এইগৰাকী গল্পকাৰে সম্পূৰ্ণ নতুন এক নিজস্ব শৈলীৰে গল্প ৰচনা কৰি অসমীয়া গল্প সাহিত্যক এক অভিনৱ মাত্ৰা প্ৰদান কৰে। 'অশান্ত ইলেকট্ৰন',

‘গোলাম’, ‘এহাত ডাবা’, ‘দুপৰীয়া আৰু অন্যান্য গল্প’, ‘ছয় দশকৰ গল্প’, ‘জন্মদিন আৰু অন্যান্য গল্প’, ‘জোনবিৰি’, ‘নৱজন্ম’ আদি বহুকেইখন গল্প সংকলন ৰচনা কৰা সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ এটা অন্যতম উল্লেখযোগ্য চুটিগল্প হ’ল ‘হাঁহিচম্পা’। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘এহাত ডাবা’ গল্পপুথিৰ অন্তৰ্গত ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটো এই কাৰণেই গুৰুত্বপূৰ্ণ যে গল্পটো কামৰূপী উপভাষাত ৰচিত। গল্পটোত চলিহাই যে অকল সংলাপৰ ক্ষেত্ৰতহে কামৰূপী উপভাষা প্ৰয়োগ কৰিছে এনে নহয়; তেওঁ গোটেই গল্পটোৱেই কামৰূপী উপভাষাত ৰচনা কৰিছে। গতিকে অসমীয়া গল্প সাহিত্যত সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ এই গল্পটোৰ এক বিশেষ মূল্য আছে। সেয়ে সৌৰভ কুমাৰ চলিহাই ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ কিদৰে প্ৰয়োগ কৰিছে তাক ফঁহিয়াই চাবৰ বাবেই ‘সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ চুটিগল্পত কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগ’ শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা পত্ৰখনৰ বাবে বাছি লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য :

ভাষাৰ লিখিত বা মান্য ৰূপৰ লগে লগে কেতিয়াবা কেতিয়াবা সাহিত্যিকসকলে কথিত ৰূপৰ প্ৰয়োগ ঘটোৱাটো এটা অন্যতম মনকৰিবলগীয়া বিশেষত্ব। সাহিত্যত ভাষাৰ কথিত ৰূপ বা উপভাষাৰ যথাযথ প্ৰয়োগে দৰ্শক-পাঠকৰ আগত পৰিৱেশ-পৰিস্থিতি তথা চৰিত্ৰ একোটা বাস্তৱসন্মত আৰু বিশ্বাসযোগ্যভাৱে তুলি ধৰে আৰু সাহিত্যৰ ৰসাস্বাদনত পাঠকক যথেষ্ট পৰিমাণে সহায় কৰে। তদুপৰি ভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপ বা উপভাষা সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰতো ই এক বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। সাহিত্যত আঞ্চলিক ৰূপ বা উপভাষাৰ প্ৰয়োগে ভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপৰ অধ্যয়নৰ প্ৰতিও আমাক আগ্ৰহী কৰি তোলে। গতিকে উপভাষাৰ প্ৰয়োগে সাহিত্যক কেনেদৰে ৰসসমৃদ্ধ কৰে, চৰিত্ৰ একোটাৰ কেনেদৰে জীৱন্ত কৰি তোলে আৰু ভাষিক ক্ষেত্ৰত এখন ঠাইৰ আঞ্চলিক বা স্থানীয় বৈশিষ্ট্য সংৰক্ষণত কেনেদৰে সহায় কৰে সেই দিশসমূহ আলোচনা কৰাই হ’ল আমাৰ আলোচনা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

সৌৰভকুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত উপভাষাৰ প্ৰয়োগ কেনেদৰে ঘটিছে সেই কথা বিশ্লেষণ কৰাই হ’ল আমাৰ আলোচনা পত্ৰখনৰ মূল বিষয়বস্তু। সেয়েহে সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ কেৱল ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোতেই আমাৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ সীমাবদ্ধ থাকিব।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু উৎস :

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে প্ৰধানকৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। পত্ৰখনৰ প্ৰধান উৎস হিচাপে ‘সৌৰভ কুমাৰ চলিহা ৰচনাৱলী’ৰ অন্তৰ্গত ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটো লোৱা হৈছে আৰু উপভাষা সম্পৰ্কীয় আন কেইখনমান গ্ৰন্থক আলোচনা পত্ৰখনৰ গৌণ উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে। মূল উৎসৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰি সেই তথ্যসমূহ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে আমাৰ এই পত্ৰখনত বৰ্ণনা কৰা হ’ব।

মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

সৌৰভ কুমাৰ চলিহা এগৰাকী সমাজ সচেতন আৰু ব্যতিক্ৰমী গল্পকাৰ। তেওঁৰ চুটিগল্পসমূহৰ ভিতৰত ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটো এটা অন্যতম চুটিগল্প। অৰ্থাৎ গল্পটোৰ এটা মন কৰিবলগীয়া দিশ হ’ল ইয়াৰ ভাষা। এই গল্পটো নামনি অসমৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ উপভাষা কামৰূপী উপভাষাত ৰচিত। ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোৰ ভাষালৈ চালে দেখা যায় সৌৰভ কুমাৰ চলিহাই গোটেই গল্পটোৱেই কামৰূপী উপভাষাত ৰচনা কৰিছে যাৰ বাবে গল্পটোৰ মাজেৰে কামৰূপী উপভাষাৰ ভালেখিনি বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হৈছে। কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগে তেওঁৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোক আন গল্পসমূহৰ তুলনাত এক বিশেষ আয়তন প্ৰদান কৰিছে। তদুপৰি আঞ্চলিক উপভাষাৰ প্ৰয়োগৰ জৰিয়তে গল্পকাৰে গল্পটোত বৰ্ণিত চৰিত্ৰকেইটোক জীৱন্তৰূপে পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাবোৰৰ ভিতৰত নামনি অসমত প্ৰচলিত কামৰূপী এটা প্ৰধান উপভাষা। কামৰূপী উপভাষাৰ কেইবাটাও আঞ্চলিক ৰূপ আছে। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ এই আঞ্চলিক ৰূপৰ নিদৰ্শন বা বৈশিষ্ট্যসমূহ বৰ সুন্দৰভাৱে ফুটি উঠিছে। কামৰূপী উপভাষাৰ এই বৈশিষ্ট্যসমূহ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দতাত্ত্বিক— এই তিনি দিশৰ পৰা আলোচনা কৰিব পাৰি। তলত সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যসমূহ কেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে তাক আলোচনা কৰা হ’ল—

ধ্বনিতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য :

সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপৰ ভালেমান ধ্বনিতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য পোৱা যায়। এই বৈশিষ্ট্যবোৰ এনেধৰণৰ—

(ক) উচ্চ স্বৰধ্বনিৰ প্ৰাধান্য : উচ্চ স্বৰধ্বনিৰ ব্যৱহাৰ কামৰূপী উপভাষাৰ এক অন্যতম বৈশিষ্ট্য। অৰ্থাৎ মান্য অসমীয়াৰ নিম্ন স্বৰধ্বনিৰ ঠাইত কামৰূপী উপভাষাত উচ্চ স্বৰধ্বনিৰ প্ৰাধান্য দেখিবলৈ পোৱা যায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত এই বৈশিষ্ট্যটো পোৱা যায়। যেনে— সৰুতি, দিলু, গেলু, হলি, কলি, লগতি, হাততি, চবৰি, চবপিনি, য’তি-ত’তি, হলিকি, দিছি, পাৰ্লি, ইপিনি, সিপিনি, হৈছি, গেলি, নাপলু, ভাব্ছিলু, চকুই ইত্যাদি শব্দৰ প্ৰয়োগ পোৱা যায় যিবোৰ শব্দত নিম্ন স্বৰধ্বনিৰ ঠাইত উচ্চ স্বৰধ্বনিৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে। দুটামান বাক্যত প্ৰয়োগৰ নিদৰ্শন দিয়া হ’ল—

(ক) কলি কি হ’ব, মই আহি দেখো, যি ভাব্ছিলু সেটোই,
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) ...আৰ দেৰি কইৰ্বা নালগে, সোনকালে লেঠাটো মাৰি দিবা পাইৰ্লি চবৰি চবপিনি ভাল হ’ব (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(গ) এনকে আপীটো মেধিহানৰ ঘৰতি ডাহাৰ হ’বা ধইৰ্বলাক
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) ...আকৌ খিলিক্-খিলিক্ হাঁইহুছি, আৰ ইপিনিৰ পৰা সিপিনি দাউৰ্ছি
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬৩)

(খ) দুটা আ-স্বৰনিৰ ওচৰা-ওচৰিকৈ ব্যৱহাৰ : কামৰূপী উপভাষাত এটা শব্দতে দুটা আ-স্বৰ ওচৰা-ওচৰিকৈ ব্যৱহাৰ হয় যিটো মান্য অসমীয়াত দেখা পোৱা নাযায়। ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত দুটা আ-স্বৰ একেলগে প্ৰয়োগ হোৱাৰ উদাহৰণ পোৱা যায়। যেনে— লাগাই, পাৰা, চাবা, খাবা, লাগা, থাকা, চাকা, মানাব, যাবা ইত্যাদি। ইহঁতৰ বাক্যত প্ৰয়োগ এনেধৰণৰ—

(ক) ... হাঁহিচম্পাক চাবা—মাজৰ বেৰাখান ভাঙি দিলাক
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(খ) এনকে-এনকে হাঁহিচম্পা পঢ়াশালিক যাবা পাৰা হ’ল
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(গ) এদিন চাকা ডুবাব পৰত গোটাই আকাশ ক’লা কৰি আইনছি
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঘ) সেহুনাৰ লগে লগে হাঁহি হাঁহি আমিও জিকাৰ খাবা লাগা হওঁ
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(গ) আ-স্বৰৰ ঠাইত আ-স্বৰৰ প্ৰয়োগ : কামৰূপী উপভাষাৰ কোনো কোনো শব্দত মান্য অসমীয়াৰ অ-স্বৰৰ ঠাইত আ-স্বৰৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত এনে শব্দৰ যথেষ্ট প্ৰয়োগ

পোৱা যায়। নিদৰ্শন স্বৰূপে— কিয়া, কোমাল, কবাই, দিবাই, পুৰাণি, থিয়া, পোহাৰ, আহাই, নামাই, বাধাই, চিঞৰা, নাকয়, গতাই, চিৰাদিন ইত্যাদি। এনে শব্দ দুটামানৰ বাক্যত প্ৰয়োগৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰা হ’ল—

(ক) তাৰ পাছত ইকৰাৰ ফাঁকেদি মোৰ বিছনাত এক মোকৰা পোহাৰ আহিল
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(খ) ... উৰালৰ শব্দতে সি আহাই ক’বা নৰে।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(গ) মোৰ মূৰটো আকৌ বিহবা ধইৰ্বলাক, সিহঁত দুটাই চিঞৰা চিঞৰা হেন কৰি কিবা কথা কৈছি, মই ধইৰ্বা ন’ৰলু।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঘ) ... ভাকুককুক খেলই, ঘাইচুৰা খেলই আৰ লগৰ আপীগিলানে বলে নৰ্লি তাইক চল চাই কেৎকুতি দি হাৰ মানাব চায় (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) ঐ-স্বৰনিৰ ঠাইত ঐ-স্বৰনিৰ প্ৰয়োগ : কামৰূপী উপভাষাৰ আন এটা বৈশিষ্ট্য হ’ল মান্য অসমীয়াৰ ঐ-স্বৰনিৰ ঠাইত ঐ-স্বৰনিৰ প্ৰয়োগ। চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত দুই-এটা এনে উদাহৰণ পোৱা যায়। যেনে— গেইছিল (গৈছিল), গেইছে (গৈছে) আদি।

(ঙ) অপিনিহিতিৰ প্ৰয়োগ : কামৰূপী উপভাষাৰ এটা অন্যতম বিশেষত্ব হ’ল অপিনিহিতিৰ প্ৰয়োগ। কামৰূপী উপভাষাত য’তেই সম্ভৱ হয় তাতেই অপিনিহিতি হোৱা দেখা যায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত অপিনিহিতিৰ যথেষ্ট উদাহৰণ পোৱা যায়। যেনে— কইৰ্বা, মাইৰ্বা, মোকৰা, শুইনলাক, কোমৰা, থাইম্বা, বাইজ্বা, দুইল্বা, তুইল্বা, আইহুলিনা, কাইন্বা, বাইচুৰা, আইন্বা, উইঠলাক ইত্যাদি।

(ক) এদিন চহৰৰ পিঞ্চিপালবাবুৰ ঘৰত চাউল বাছি দি আহি দেখোঁ, খিলিক্-খিলিক্ কইৰ্বা এৰি ছলিটো ঢাৰিত শুই-শুই কাইন্বা ধইৰ্ছি, বাপেকে কাষতে লাং খাই পৰি আছে।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) ...তাইও আৰ য’তি-ত’তি লৰি-চলি নুফৰে— ঘৰৰ চালত উঠি কোমৰা পাৰবাও নায়ই, ঘৰৰ কাম কৰে।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(গ) আইহুলিনা পোনেই দিগদাৰ কইৰ্বা।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) চম্পা গাভৰু হৈছি, উৰালৰ ঘটম্-ঘতম্ৰ লগে-লগে তাইৰ গোটাই দেহটো দুইল্বা ধইৰ্ছি
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

ৰূপতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য :

ৰূপতাত্ত্বিক দিশতো কামৰূপী উপভাষাৰ কিছুমান নিজস্ব বৈশিষ্ট্য আছে। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপৰ ভালেমান ৰূপতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য পোৱা যায়। এই বৈশিষ্ট্যবোৰ এনেধৰণৰ—

(ক) **বহুবচনৰ প্ৰত্যয় :** কামৰূপী উপভাষাত বহুবচন বুজাবলৈ যিবোৰ প্ৰত্যয় ব্যৱহাৰ কৰা হয় সেই প্ৰত্যয়বোৰ মান্য অসমীয়াতকৈ কিছু সুকীয়া হোৱা দেখা যায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত গিলা, গিলান, হানা, মখা আদি বহুবচন বুজোৱা প্ৰত্যয়ৰ প্ৰয়োগ পোৱা যায়। নিদৰ্শন স্বৰূপে— মানুহগিলা, ছলিগিলা, ইমানগিলান, এইগিলান, আপীগিলান, গাম্‌চাগিলান, গৰুগিলান, মেধিহানা, তাহনা, সেহনা, কুসুমহানা, খৰিগিলান, গোটাইমখাই, সেইগিলান ইত্যাদি। ইয়াৰে দুটামানৰ বাক্যত প্ৰয়োগৰ উদাহৰণ এনেধৰণৰ—

(ক) ... গাম্‌চাগিলান চিলাই তাৰে সৰু-সৰু মেখলা কইৰ্বা লাগাত পৰিল (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(খ) আৰু ছলিগিলাখানৰ কথাতো আৰ কবাইনাল্গে (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(গ) ... তাইও আৰ কান্দি-কান্দি দাউৰি আহি “মাই, মই কুসুমহানাৰ লগত নেখলু— চৰে মোক বেইমানি কৰি এমান কেৎকুতি দিবা ধৰে”— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) ... নাই, তাহনাই ক’ত মোৰ কথা শুনে, (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(ঙ) ... আৰু কাম-কাজৰ মাজে-মাজে গোটাইমখাই একবাৰ-একবাৰ হাঁহিচম্পাক চাই গেলি—

(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(খ) **নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় :** কামৰূপী উপভাষাৰ স্থানীয় ৰূপবোৰত এনে কিছুমান নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় পোৱা যায় যিবোৰ মান্য অসমীয়াৰ লগত নিমিলে। অৱশ্যে এই ৰূপসমূহ সুকীয়া হ’লেও ইহঁতৰ অৰ্থগত ভিন্নতা দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত মান্য অসমীয়াৰ লগত নিমিলা এনে নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয়ৰ প্ৰয়োগ পোৱা যায়। যেনে— কাপোৰখান, ঘৰখান, বিয়াখান, জপনাখান, আঙুলটো, আপীটো, টুকুৰা, একফোটা ইত্যাদি। বাক্যত প্ৰয়োগৰ নিদৰ্শন হ’ল—

(ক) ... আপীটোৰ মুখত একফোটা হাঁহি নাই। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) ... বাপেকৰ মুখখানো আন্ধাৰ হৈ থাকে। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(গ) ... আমাৰ একেলগে এখান গিৰিহি হেনেই হৈ পৰিল... (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) ... কিন্তু তাৰে আধাটুকুৰা নতুন ৰায়তক দি দিলাক, কেণ্টপাৰাৰ গোবিন মেধিক। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(গ) **সৰ্বনাম :** কামৰূপী উপভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা সৰ্বনামবোৰো মান্য অসমীয়াতকৈ কিছু পৃথক হোৱা দেখা যায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা যথেষ্ট সংখ্যক সৰ্বনাম শব্দ দেখিবলৈ পোৱা যায়। নিদৰ্শন স্বৰূপে— এনকে এনকে, এমান, কেমান, কেন্‌বা, কাবা, সেনে, কুনি, যতি-ততি, তেইত্তা, এথেন, যেথেন, কেথেন, তেথেন, সেনকে ইত্যাদি। দুটামান এনে সৰ্বনামৰ বাক্যত প্ৰয়োগৰ নিদৰ্শন দিয়া হ’ল—

(ক) খেতিৰ আধি দি কোনোপধ্যে চইলছিল, এথেন খেতি-বাতি আৰ কইৰ্বা কুনি? (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(খ) পিয়নাথৰ মাকে কয়, এ বাপু, হৈছি দে এ, আৰ কেমান বাইহুৰে-বাইহুৰে পাটি কৰি থাইকবি, এথেন পঢ়া-শুনাটোকে শেষ কৰ, নক’বা যদি মোৰ লগতি থাক (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(গ) মোৰ একেটা আপী, তাইৰ এমান আমাজিমান মুখ, চাই-চাই মোৰ মনটো কেন্‌বা লাগি যায়, (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(ঘ) ... আৰ তোৰ আপীৰদৰে আপীনো তাক যতি-ততি কুনি দিবা যাব— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঘ) **ক্ৰিয়াৰ নঞৰ্থক ৰূপ :** ক্ৰিয়াৰ নঞৰ্থক ৰূপৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰতো কামৰূপী উপভাষা মান্য অসমীয়াতকৈ কিছু পৃথক হোৱা দেখা যায়। অৰ্থাৎ মান্য অসমীয়া ভাষাত নঞৰ্থক অৰ্থ প্ৰকাশ কৰিবলৈ ধাতুৰ আগত ‘ন’ উপসৰ্গ সংযোগ কৰা হয় আৰু ধাতুৰ প্ৰথম স্বৰ অনুযায়ী ই সমীভূত হয়। কিন্তু কামৰূপী উপভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপত ধাতুৰ প্ৰথম স্বৰ অনুযায়ী ‘ন’ উপসৰ্গ প্ৰায়েই সমীভূত হয় যদিও কেতিয়াবা কেতিয়াবা সমীভূত হোৱা দেখা নাযায়। মান্য অসমীয়াত ধাতুৰ প্ৰথম স্বৰ অনুযায়ী ‘ন’ উপসৰ্গ সমীভূত হোৱাৰ যি প্ৰক্ৰিয়া সেই প্ৰক্ৰিয়া কামৰূপী উপভাষাত মাজে মাজে পোৱা নাযায়। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত এনেকুৱা সমীভূত নোহোৱা নঞৰ্থক ৰূপৰ প্ৰয়োগ যথেষ্ট পোৱা যায়। যেনে— নৰু, নাহয়, নেখলো, নাজই, নৰো, নেদলি, নৰি, নৰে, নাকই ইত্যাদি। নঞৰ্থক ক্ৰিয়া

দুটামানৰ বাক্যত প্ৰয়োগ এনেধৰণৰ—

(ক) কবাই নৰু, কিয়া এই বয়সতে হাটফেল কইৰুবা
লাগাত পৰিল। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(খ) ... আধা আন্ধাৰত মুখখন মইনুবা নৰি।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(গ) ... তাইৰচোন আৰ তেনেহলি জীৱনত সুখ-শান্তি
হবাৰ নাহয়... (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) সি বোলে এইবাৰ একেবাৰে ঘৰ বুলি আইহুছি,
যাত্ৰাপাটিটো ভাঙি গৈছি, সি আৰ বাইহৰু নায়ই, ঘৰতে
থাইকুৰ (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঙ) ক্ৰিয়াৰূপ : কামৰূপী উপভাষাৰ ক্ৰিয়াৰূপবোৰো
মান্য অসমীয়াতকৈ কিছু পৃথক। চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’
গল্পটোত প্ৰয়োগ হোৱা এনে কিছুমান ক্ৰিয়াৰূপৰ নিদৰ্শন
হ’ল— দিলাক, খালাক, ধইৰলাক, নিলাক, খুইজলাক,
উইঠলাক, গুইজলাক, মইৰলাক, পালাক, দেয়, গেল,
গুইনলাক, আইনলাক, খেললাক ইত্যাদি। বাক্যত ইহঁত
দুটামানৰ প্ৰয়োগ এনেধৰণৰ—

(ক) আপীটেই আকৌ খিলিকৈ হাঁহি দিলাক।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) এনকে মানুহৰ মুখে মুখে তাইৰ নাম হাঁহিচম্পাই
হৈ গেল। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(গ) আমাৰ দুই বুঢ়ীৰ এডাল-দুডালকে চুলি বগা হ’ব
ধইৰলাক, ... গাৰ ছাল সোতৰা-সোতৰি হবা ধইৰলাক
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) কাণত কেৰু গুইজলাক, বেণী গুঁথি দিবা লাগা
হ’ল, দেখাক দেখি শব্দ মহাজনৰ দোকানৰ পৰা ৰঙা-নীলা
ফিটাও আনি দিবা লাগা হ’ল— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(চ) পৰসৰ্গ : কামৰূপী উপভাষাত কিছুমান পৰসৰ্গ
সুকীয়া ৰূপত প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। অৰ্থাৎ মান্য
অসমীয়াৰ ‘পৰা’ পৰসৰ্গৰ ঠাইত কামৰূপী উপভাষাত
‘পেৰে’ পৰসৰ্গ প্ৰয়োগ কৰা হয়। যেনে—
গোহালিৰপেৰে। সেইদৰে ‘নে’ পৰসৰ্গৰ ঠাইত ‘না’-ৰ
প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। আকৌ কেতিয়াবা ‘পৰা’ পৰসৰ্গৰ
ঠাইত ‘থাকি’ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। বাক্যৰ নিদৰ্শন
এনেধৰণৰ—

(ক) আপীৰ বাপেক ছৰামুৰা লাগাই গোহালিৰ পেৰে
দাউৰি আহিল, (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) আমাৰ আৰ কিবা চকু কাণ নাইনা।
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(গ) সিদিনাৰ থাকি মোৰ সন্দেহ হ’বা ধইৰলাক
(হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঘ) ... হঁয়ে, এটা ঘৰ জোঁৱাই নো নাপাম না
বিচৰিলি? (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(ছ) কাৰক বিভক্তি : কাৰক বিভক্তি প্ৰয়োগৰ
ক্ষেত্ৰতো কামৰূপী উপভাষাত কিছুমান সুকীয়া বিশেষত্ব
আছে। কামৰূপী উপভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা কিছুমান কাৰক
বিভক্তি মান্য অসমীয়াৰ লগত নিমিলে। বিশেষকৈ নিমিত্ত
কাৰকৰ বিভক্তিৰ কথা ক’ব পাৰি। মান্য অসমীয়াৰ নিমিত্ত
কাৰকত চতুৰ্থী ‘লৈ’ বিভক্তি যোগ হয়। কিন্তু তাৰ পৰিৱৰ্তে
কামৰূপী উপভাষাৰ স্থানীয় ৰূপসমূহত বহুক্ষেত্ৰত
অধিকৰণ কাৰকৰ সপ্তমী বিভক্তি ‘-ত’ আৰু কৰ্ম কাৰকৰ
দ্বিতীয়া বিভক্তি ‘-ক’ৰ প্ৰয়োগ পোৱা যায়।^৬ কেতিয়াবা
‘কক’ বা ‘ক’ত’ প্ৰয়োগ হোৱাও দেখা যায়। সৌৰভ কুমাৰ
চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত কামৰূপী উপভাষাৰ এই
বৈশিষ্ট্যটো দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে— চহৰক, ঘৰত,
ঘৰক, পথাৰক, বাজক, ক’ক ইত্যাদি। বাক্যত ইহঁতৰ প্ৰয়োগ
এনেধৰণৰ—

(ক) পিয়নাথ কেথেন ঘৰত আছে, কেথেন বাজক
যায় আমি আৰ গম নাপাও। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(খ) বাপেক পথাৰক গেলি মই আপীটোক মিঠাতেল
সানি চোতালতে ঢাৰি এখনত ঘুমাই থৈ ঘৰৰ কাম-কাজ
কৰোঁ। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(গ) মাজে মাজে যাত্ৰাপাটিৰ পৰা পিয়নাথ ঘৰক
আহে। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) ই ক’কনো গেল? (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

শব্দতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য :

ধ্বনিতত্ত্ব আৰু ৰূপতত্ত্বৰ দৰে শব্দতত্ত্বৰ ক্ষেত্ৰতো
কামৰূপী উপভাষাৰ কিছুমান সুকীয়া বিশেষত্ব দেখা যায়,
যিবোৰে মান্য ভাষাৰ পৰা কামৰূপী উপভাষাক এক পৃথক
ৰূপ প্ৰদান কৰিছে। কামৰূপী উপভাষাত ব্যৱহৃত
শব্দবোৰলৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে কিছুমান শব্দৰ
প্ৰয়োগ কামৰূপী উপভাষাত একেবাৰে সুকীয়া। অৰ্থাৎ,
মান্য ভাষাত প্ৰয়োগ নোহোৱা কিছুমান সুকীয়া শব্দৰ ব্যৱহাৰ
কামৰূপী উপভাষাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। সৌৰভ কুমাৰ
চলিহাৰ ‘হাঁহিচম্পা’ গল্পটোত ব্যৱহৃত এনে কিছুমান শব্দৰ
নিদৰ্শন হ’ল— আপী, তবু, চলি, মহৰী, মাই, আমাজিমান,
আঙুল, বাপু, ঘুমা, তিৰি-চলি, ঠোঁগা, ঘেমেক, বইহান,
বৰী, চলি-পলি, চোকৰা, মৰমোহোৱা, ডাহাৰ, দাউৰা-দাউৰি,

কেংকুতি, তাৰাতাৰি, চেংৰা ছলি, ছাড়ি ইত্যাদি। দুটামান এনে শব্দৰ বাক্যত প্ৰয়োগ দেখুওৱা হ'ল—

(ক) মই কওঁ, আপী ডাহাৰ হলি নো কি কইৰ্বা পাৰ, দিবাই লাগব দে। (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

(খ) হে পিয়নাথৰ মাক, চম্পাকে নো তোৰ বৰী নকৰাহু কিয়া— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(গ) মাকে আকৌ দাবী দেয়, হে-হে মৰম্নেহোৱা, এ গাথি খাব এ— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬১)

(ঘ) এথেনে গটে আন্ধাৰ কৰি বইহান আইহু, চাউলখিনি শেষ কইৰ্বা লাগে— (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬২)

(ঙ) এনতে এদিন মহৰীৰ তলত তাইৰ গাত মহ এটা পৰিল (হাঁহিচম্পা, পৃ. ১৬০)

উপসংহাৰ :

পৰিশেষত ক'ব পাৰি যে সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' গল্পটো কামৰূপী উপভাষাত ৰচিত এটা উল্লেখযোগ্য চুটিগল্প। গ্ৰাম্য জীৱনৰ পটভূমিত ৰচিত এটি

সাধাৰণ গল্প হ'লেও গল্পটো ব্যতিক্ৰম। গল্পটোত হাঁহিচম্পাৰ জীৱনৰ কথা বৰ্ণিত হৈছে। সৌৰভ কুমাৰ চলিহাই গল্পটোত এটি সাধাৰণ পৰিঘটনাক অৰ্থবহ আৰু ব্যঞ্জনাময় কৰি তোলাত সফল হৈছে। কাহিনীতকৈও গল্পটোৰ বিশেষত্ব এই যে চলিহাই গোটেই গল্পটোৱেই কামৰূপী উপভাষাত ৰচনা কৰিছে। কামৰূপী উপভাষাৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দতাত্ত্বিক নিদৰ্শনসমূহ গল্পটোৰ মাজেৰে সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগে গল্পটোৰ চৰিত্ৰকেইটাক পাঠকৰ অধিক ওচৰ চপাই নিয়াৰ লগতে সমাজ-জীৱনৰ বাস্তৱ ছবিখনো নিখুঁতভাৱে দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। গতিকে কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগে সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' গল্পটোক এক বিশেষ আয়তন প্ৰদান কৰাৰ লগতে আঞ্চলিক ভাষা বা উপভাষাতো যে ইমান ৰসসমৃদ্ধ গল্প ৰচনা হ'ব পাৰে চলিহাৰ 'হাঁহিচম্পা' গল্পটোৱে তাকেই প্ৰমাণ কৰে। □

পাদটীকা :

১। Kakati, Banikanta : Assamese, Its Formation and Development, P. 18

২। Goswami, Golockchandra : Structure of Assamese, P. 11

৩। গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ : অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ, পৃ. ৮৯

৪। পাঠক, ৰমেশ : অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাস, পৃ. ১৩১

৫। ভৰালী, বিভা : কামৰূপী উপভাষা : এটি অধ্যয়ন, পৃ. ১১৩

প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থপঞ্জী :

অসমীয়া :

গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ : অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ, মণি-মাণিক প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, পঞ্চম প্ৰকাশ, ২০১৫

দাস, শোণিত বিজয় আৰু

বায়ন, মুনীন

পাঠক, ৰমেশ

ফুকন পাটগিৰি, দীপ্তি (সম্পা.)

ভৰালী, বিভা

: সৌৰভ কুমাৰ চলিহা ৰচনাৱলী, কথা পাব্লিকেশ্বনছ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৮

: অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাস, অশোক বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, নৱম প্ৰকাশ, ২০১৪

: অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষা, বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০০৭

: কামৰূপী উপভাষা : এটি অধ্যয়ন, প্ৰকাশক : বৈকুণ্ঠ ৰাজবংশী, প্ৰাগজ্যোতিষ মহাবিদ্যালয়, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৪

ইংৰাজী :

Goswami, Golockchandra : Structure of Assamese, Department of Publication, Gauhati University, First Edition, 1982

Goswami, Upendranath : A Study on kamrupi : A Dialect of Assamese, Department of Historical and Antiquarian Studies, Gauhati, 1970

Kakati, Banikanta : Assamese, Its Formation and Development, LBS Publications, Gauhati, Fifth Edition, 1995

আৱাহন যুগ, নাৰী জাগৰণ আৰু ৰমা দাশৰ গল্প

সংক্ষিপ্তসাৰ :



ড° অজিত কলিতা

‘আৱাহন যুগ’ (১৯২৯-৪০)ৰ সময়ছোৱা অসমৰ লগতে সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষৰ বাবে নাৰী জাগৰণৰ সময়। পাশ্চাত্য সমাজ-সভ্যতাৰ প্ৰভাৱত গঢ়ি উঠা এই নাৰী জাগৰণে সমকালীন সাহিত্য-জগতক প্ৰভুতভাৱে প্ৰভাৱিত কৰিছিল। অসমীয়া সাহিত্য জগততো এইছোৱা সময়ত পৰম্পৰাগত নাৰীৰ সলনি এক নতুন আৰু মুক্ত নাৰীৰ ভাবনা দাঙি ধৰা হৈছে। ‘আৱাহন’ যুগৰ অন্যতম গল্পকাৰ ৰমা দাশৰ গল্পসমূহত ‘মুক্ত নাৰী’ৰ ধাৰণা কিদৰে দাঙি ধৰা হৈছে, - সেই দিশটো আমাৰ গৱেষণা-পত্ৰত বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ’ব। অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত বৰ্ণনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ কৰা হ’ব।

০.০০ : অৱতৰণিকা :

‘মুক্ত নাৰী’ৰ ধাৰণাটো নাৰী স্বাধীনতা আৰু অধিকাৰৰ লগত সংপৃক্ত। গতিকে, ‘মুক্ত নাৰী’ৰ ধাৰণাটো বিচাৰ কৰি চোৱাৰ প্ৰসংগত ভাৰতবৰ্ষ আৰু পাশ্চাত্যত নাৰী স্বাধীনতাৰ পৃষ্ঠভূমি বিচাৰ কৰি চোৱাৰ আৱশ্যকতা অনুভৱ কৰা যায়। বৈদিক যুগত নাৰীসকলে পুৰুষৰ সমানেই শিক্ষাৰ অধিকাৰ লাভ কৰিছিল। অৱশ্যে বৰ্ণভেদে শিক্ষাৰ অধিকাৰৰ ৰক্ষণশীল ব্যৱস্থা পাছৰ যুগৰহে সৃষ্টি বুলি কোৱা হয়। ‘প্ৰাচীন ভাৰতীয় নাৰীৰ উচ্চশিক্ষা’ প্ৰবন্ধত শ্যামাপ্ৰসাদ চক্ৰৱৰ্তীয়ে লিখিছে, - “অথৰ্ব বেদত আছে- ব্ৰথচিৰ্যেন কন্যা যুৱানং বিন্দতে পতিম।” কন্যাই ব্ৰথচিৰ্যৰ দ্বাৰা যুৱা পতি পায়। এই ব্ৰথচিৰ্যৰ অৰ্থ ইন্দ্ৰিয় সংযমেৰে বিদ্যাভ্যাস বিশেষকৈ ব্ৰথ-বিদ্যাৰ অভ্যাস। এই কথাখাৰ শ্ৰুতি, স্মৃতি, মহাভাৰত আদি আলোচনা কৰিলে পোৱা যায়। তিবোতা আৰু পুৰুষৰ ব্ৰথচিৰ্য বেলেগ বুলি তাতো উল্লেখ নাই। ঋগ্বেদত দেখা যায় স্ত্ৰী-পুৰুষে মিলিজুলি যজ্ঞ সম্পাদন কৰিছে। অকল সেয়ে নহয়, বিশ্বাবা আদি কেইজনমান তিবোতাই মন্ত্ৰদ্রষ্টা ঋষি আছিল, ঋত্বিকৰ কাম নিৰ্বাহ কৰিছিল।”^১ শিক্ষাৰ অধিকাৰৰ দৰেই বিবাহৰ ক্ষেত্ৰতো নাৰীৰ স্বাধীনতা অক্ষুণ্ণ আছিল। স্বয়ম্বৰ ব্যৱস্থাই সেই কথাৰ ইংগিত দাঙি ধৰে। “সংহিতা যুগত — কুমাৰী স্বতন্ত্ৰা আছিল আৰু যদৃচ্ছা পুৰুষ সংগ লাভ কৰিছিল। কুমাৰীৰ গৰ্ভধাৰণ সমাজত দোষণীয় বুলি গণ্য হোৱা নাছিল।... সংহিতা যুগত — ঋতুস্নানৰ পৰা যোজ্ঞ দিনৰ ভিতৰতহে স্বামীৰ বাহিৰে অন্য পুৰুষৰ লগত সংসৰ্গ কৰিলে অধৰ্ম হয়। যোজ্ঞ দিনৰ পাছত সংসৰ্গ কৰিলে অধৰ্ম নহয়।”^২ মহাভাৰতীয় যুগৰ মন্ত্ৰদ্রষ্টা ঋষি পৰাশৰৰ লগত সত্যৱতীৰ যৌন সংসৰ্গৰ ঘটনাই প্ৰাক্ বিবাহকালীন সম্পৰ্কৰ ক্ষেত্ৰতো নাৰীৰ অবাধ স্বাধীনতাৰ কথাকে দাঙি ধৰে বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। মহাভাৰতৰ বনপৰ্বত কোৱা হৈছে- অবিবাহিতা ৰমণী সকলে যাকে ইচ্ছা তাকে কামনা কৰিব পাৰে বুলিয়ে তেওঁলোক ‘কন্যা’ বোলা হয়।^৩ অৱশ্যে কুমাৰী কুন্তীৰ মাতৃত্বৰ ঘটনাটোৱে সামাজিক বাধা-নিষেধ বা সামাজিক কৰ্তৃত্ব

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
পূব কামৰূপ মহাবিদ্যালয়
বাইহাটা চাৰিআলি, কামৰূপ (অসম)
☎ ৯৮৫৯০১৪৯৮২
✉ kalitaajit9@gmail.com

উত্থানৰ ইংগিতো দাঙি ধৰে। সন্তান জন্ম দিবলৈ অক্ষম পাণ্ডুৰ পত্নী কুন্তীয়ে 'বৰ' লাভৰ যোগেদি সন্তান জন্ম দিয়া তথা অম্বিকা আৰু অম্বালিকাৰ সৈতে পৰপুৰুষ ব্যাসদেৱৰ যৌন সংসৰ্গত সন্তান জন্ম দিয়াৰ ঘটনাই বিবাহিতা নাৰীৰ মাতৃত্ব লাভৰ অধিকাৰৰ কথালৈ যিদৰে আঙুলিয়ায়, তেনেদৰে নাৰীৰ ওপৰত বংশ আৰু পতিৰ কৰ্তৃত্বৰ কথালৈও সমানেই মনত পেলায়। গতিকে দেখা যায়, প্ৰাচীন ভাৰতৰ নাৰীয়ে কিছুমান অধিকাৰ লাভ কৰিলেও বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত তেওঁলোক ধৰ্মীয়, সামাজিক বা বংশগত কৰ্তৃত্বৰ অধীন আছিল। চীনদেশত নাৰীৰ বন্ধন সম্পৰ্কে মাও-জে-ডুঙ-এ কোৱা কথাখিনি ভাৰতীয় নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতো সমানেই প্ৰযোজ্য। "মাওৱে লিখিছিল- ১) চীনদেশত মানুহ তিনিবিধ কৰ্তৃপক্ষৰ (বা প্ৰভুৰ) অধীন। এই কৰ্তৃপক্ষসমূহ হ'ল (১) ৰাষ্ট্ৰ ব্যৱস্থা (ৰাজনৈতিক কৰ্তৃত্ব); এই ব্যৱস্থা ৰাষ্ট্ৰীয়, প্ৰাদেশিক, জিলা আৰু নগৰ চৰকাৰবোৰকো ধৰা হয়; (২) বংশ ব্যৱস্থা (বংশৰ কৰ্তৃত্ব); এই ব্যৱস্থাত কেন্দ্ৰীয় আৰু শাখাত বিভক্ত পৌৰাণিক মন্দিৰসমূহৰ উপৰি গৃহপতিৰ কৰ্তৃত্ব অন্তৰ্ভুক্ত হয়; আৰু (৩) দেৱতা আৰু ভূত-প্ৰেতাদিৰে গঠিত ধৰ্মীয় ব্যৱস্থা (ধৰ্মীয় কৰ্তৃত্ব); ...। নাৰীৰ ওপৰত আৰু এটি কৰ্তৃপক্ষ আছে; ই হ'ল পুৰুষ সমাজ। নাৰীৰ ওপৰত স্বামীয়ে কৰ্তৃত্ব স্থাপন কৰে। গতিকে নাৰী চাৰিবিধ কৰ্তৃপক্ষৰ অধীন। এই চাৰিবিধ কৰ্তৃত্ব হ'ল ৰাজনৈতিক, বংশগত, ধৰ্মীয় আৰু স্বামীজনিত কৰ্তৃত্ব।"^৪

'মুক্ত নাৰী' অৰ্থাৎ সকলো প্ৰকাৰৰ বন্ধনৰ পৰাই মুক্ত স্ত্ৰীৰ আদৰ্শ সৃষ্টি হৈছে আধুনিক পাশ্চাত্য জগতত। এইক্ষেত্ৰত ডেকাৰ্ট [(১৫৯৬-১৬৫০) 'Discourse on Method' আৰু 'Meditations'] আৰু জ'ন ল'কৰ [(১৬৩২-১৭০৪) 'Essay Concerning Human Understanding'] ব্যক্তিবাদী চিন্তাৰ উন্মেষে নাৰী স্বাধীনতাৰ বাট কাটি দিয়ে। কঁডৰ্চে ১৭৯০ চনত 'Admission of women to full citizenship' গ্ৰন্থৰ যোগেদি আৰু মেৰী উইলষ্টোন ক্ৰাফ্টে ১৭৯২ চনত 'A vindication of the Rights of woman' গ্ৰন্থৰ যোগেদি ব্যক্তিবাদী নাৰীবাদৰ সূচনা কৰে। তেওঁলোকে বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱায় যে নাৰীও পুৰুষৰ দৰেই মানৱসত্তাহে (Human being), স্ত্ৰী সত্তা বা যৌন সত্তা নহয় (Sexual emotional being); বৰং যুক্তিবাদী মানৱ সত্তাহে (Rational human being)। পাছত চিমোন ডি বোভোৱাই

তেওঁৰ 'The second sex' (১৯৪৯) গ্ৰন্থখনৰ যোগেদি অস্তিত্ববাদৰ নিৰংকুশ ব্যক্তি স্বাধীনতাৰ ভিত্তিত বিবাহ প্ৰথাৰ বিলুপ্তি ঘটাই পুৰুষৰ সংগত নাৰীক স্বাধীনভাৱে জীয়াই থাকিবলৈ 'মৌল নাৰীবাদী' (Radical feminism) ভাবনাৰ সূচনা কৰে। মুঠৰ ওপৰত নাৰীক সকলো বন্ধনৰ পৰা মুক্তি দি অবাধ স্বাধীনতাৰে পুৰুষৰ সমানে অধিকাৰ ভোগ কৰি জীয়াই থাকিবলৈ নাৰীবাদত মত দাঙি ধৰে।

মাক্সবাদী ধাৰণাৰ নৈৰাজ্যিক অৱস্থাত (Anarchic State) এখন সমাজবাদী সমাজত ব্যক্তিয়ে (পুৰুষ আৰু নাৰী) নিজৰ কামৰ সামাজিক পৰিণতি সম্পৰ্কে সচেতন হোৱাৰ ফলত কোনোধৰণৰ আনুষ্ঠানিক, পৰম্পৰাগত বা সামাজিক বাধা-নিষেধৰ প্ৰয়োজন নাথাকে। এইক্ষেত্ৰত মাক্সবাদীসকলে বিবাহ প্ৰথা সংগৰ প্ৰয়োজনত অব্যাহত ৰাখি ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ বিলুপ্তি ঘটাই সমাজত পুৰুষ আৰু নাৰীৰ সমান অধিকাৰৰ কথাৰে 'সমাজবাদী নাৰীবাদ'ৰ ধাৰণা থিয় কৰাইছে।

বিখ্যাত মনোবিজ্ঞানী ছিগমুণ্ড ফ্ৰয়েডে ১৯০১ চনত 'The Interpretation of Dream' গ্ৰন্থৰ যোগেদি ব্যক্তিৰ মনৰ অৱদমিত 'যৌন ক্ষুধা'ৰ ব্যাখ্যাৰে সামাজিক বাধা-নিষেধে ব্যক্তিৰ বিকাশত কিদৰে বাধা সৃষ্টি কৰিছে তাৰ ব্যাখ্যা আগবঢ়ায়। তেনেদৰে ৰুছোৱে 'The Social Contract' (১৭৬২) আৰু এমিল ('Emile', ১৭৬২) আদি গ্ৰন্থৰ যোগেদি সাম্য, স্বাধীনতা আৰু ভ্ৰাতৃত্বৰ বাণীৰে নতুন জ্ঞানৰ চকু মুকলি কৰি দিয়ে।

সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ জগতখনত জৰ্জ বাৰ্ণাৰ্ড শ্ব', ইবছেল আদি বাস্তৱবাদী লেখকসকলে সামাজিক ব্যৱস্থা, ৰীতি-নীতিয়ে ব্যক্তিৰ স্বাধীনতা কিদৰে খৰ্ব কৰে, তাক সূত্ৰেভাৱে বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱায়। ৰোমাণ্টিক সাহিত্যতো মানৱ মুক্তিৰ বাণীকে দাঙি ধৰিছে। এই প্ৰসংগত শ্যেলীৰ ভাবনালৈ আঙুলিয়াব পাৰি,- "মানুহে সৃষ্টি কৰা নিয়ম-কানুনে আমাৰ স্বাভাৱিক ভাব-অনুভূতিবোৰ চেপি ৰাখিব খোজে। কি যে যুক্তিহীন ব্যৱস্থা! ধুনীয়া কাৰোবাক দেখিলে অন্তৰখন থৌকি-বাথৌ হুইয়েইহু কাৰোবাক ভাল পোৱা বা নোপোৱাটো জানো মানুহৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ ভিতৰত? কিন্তু প্ৰেমৰ মূল কথা হ'ল উন্মুক্ততা, আৰু ইয়াক বাধ্য বাধকতাৰ মাজত ৰাখিব খুজিলে ই মৰহি যায়। পৰৰ আজ্ঞাধীনতা, ঈৰ্ষা আৰু ভয়ৰ লগত ই জীণ যাব নোৱাৰে। প্ৰেমৰ স্ফুৰণৰ বাবে লাগে একান্ত বিশ্বাস আৰু সীমাহীন স্বাধীনতা। বিবাহ হ'ল

এক বন্দীশাল ...।

সামাজিক ৰীতি-নীতি ...

চিৰন্তন কালৰ সন্দৰ্ভত আমাৰ এই কুৰি শতিকাতো এটা ক্ষুদ্ৰ মুহূৰ্ত মাথোন। এই খণ্ডেকীয়া মুহূৰ্তটোত সামাজিক ৰীতি-নীতিৰ অৰ্থই বা কি হ'ব পাৰে।”^৫

এনেবোৰ মতবাদ আৰু চিন্তা-ভাবনাই পাশ্চাত্য সমাজত সমাজৰ সকলো বন্ধনৰ পৰা মুক্ত এক নতুন নাৰীৰ ধাৰণাৰ জন্ম দিয়ে।

১০০ : ৰমা দাশ আৰু সমকালীন সমাজ :

‘আৱাহন যুগ’ (১৯২৯-৪০)ৰ সময়ছোৱাত সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষৰ লগতে অসমতো ব্যাপক ৰূপত নাৰী জাগৰণে গা কৰি উঠিছিল। ইতিমধ্যে গঢ় লৈ উঠা ‘ভাৰত মহিলা পৰিষদ’ (১৯০৪), ভাৰত স্ত্ৰী মহামণ্ডল (১৯১০), সৰ্বভাৰতীয় মহিলা এচোচিয়েশ্যন (১৯১৭), ডিব্ৰুগড় মহিলা সমিতি (১৯১৫), নগাঁও মহিলা সমিতি (১৯১৭), অসম মহিলা সমিতি (১৯২৬), আদি প্ৰতিষ্ঠানসমূহে নাৰী শিক্ষা আৰু নাৰী স্বাধীনতাৰ বাবে ব্যাপক আন্দোলন গঢ়ি তুলিছিল। নিৰুপমা বৰগোঁহাঞিয়ে ‘অভিযাত্ৰী’ উপন্যাসত দেখুৱাইছে- চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে কিদৰে কথা আৰু কৰ্মেৰে অসমত নাৰী জাগৰণক অনন্য মাত্ৰা দান কৰিছিল। তেনেদৰে ‘বংগীয় মহানাবী সন্মেলন’ৰ অধিবেশনসমূহৰ বক্তৃতা তথা প্ৰস্তাৱসমূহতো পাশ্চাত্যৰ সুৰতেই নাৰীৰ বিদ্ৰোহী মনোভাৱ ফুটি উঠিছিল। এই প্ৰসংগত ৰমণী কান্ত দেৱশৰ্মাই ‘ভাৰতীয় নাৰী- প্ৰগতি আৰু স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ দিক্ নিৰ্ণয়’ প্ৰবন্ধত কৈছে, “বঙ্গীয় মহানাবী সন্মেলন” প্ৰভৃতিত বক্তৃতা আৰু প্ৰস্তাৱ আদিত পুৰুষৰ বিৰুদ্ধে নাৰীৰ বিদ্ৰোহ পাশ্চাত্য ৰীতি অনুসাৰে চলাবৰ উদ্যোগ দেখা যায়। এই সন্মেলনৰ কাৰ্য্য-কলাপলৈ মন দি চালে পুৰুষৰ ওপৰত নাৰীৰ অনাস্থাৰ ভাবটো চকুত নপৰাকৈ নাথাকে।”^৬

‘আৱাহন’ আলোচনীৰ পাতত অসমত নাৰী জাগৰণ সম্পৰ্কে যথেষ্ট বাদ-প্ৰতিবাদ চলা দেখা যায়। এই ক্ষেত্ৰত অপূৰ্ব চন্দ্ৰ বৰদলৈৰ ‘পাশ্চাত্য তিৰোতাৰ শিক্ষা সম্পৰ্কে দু-আষাৰ মান’, গুৰুপ্ৰসাদ দাসৰ ‘নাৰীৰ উচ্চশিক্ষা’, শ্যামাপ্ৰসাদ চক্ৰৱৰ্তীৰ ‘প্ৰাচীন ভাৰতীয় নাৰীৰ উচ্চ-শিক্ষা’, ৰমণী কান্ত দেৱশৰ্মাৰ ‘ভাৰতীয় নাৰী- প্ৰগতি আৰু স্ত্ৰী শিক্ষাৰ দিক্ নিৰ্ণয়’, স্বৰ্ণলতা শইকীয়াৰ ‘নৱযুগৰ নাৰী

জাগৰণ’ আদি প্ৰবন্ধসমূহৰ কথা ক’ব পাৰি।

অসমত নাৰী প্ৰগতিৰ এনে জাগৰণৰ সপক্ষে থিয় হৈ বিপ্লৱী নাৰীসকলক উদ্বুদ্ধ কৰি এচাম পুৰুষেও সাহিত্য ৰচনাৰ যোগেদি সমাজ সংস্কাৰৰ পোষকতা কৰিছিল। আনহাতে, আন এচাম সাহিত্যিকে এনে নাৰী স্বাধীনতাক সমৰ্থন নকৰি তাৰ বিষয় পৰিণতি সম্পৰ্কে অনুভৱ ব্যক্ত কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে, ১৯২৮ চনত প্ৰকাশিত দণ্ডিনাথ কলিতাৰ ‘সাধনা’ উপন্যাসৰ নায়ক দীনবন্ধু আৰু নায়িকা প্ৰভাৰ কথা-বাৰ্তালৈ আঙুলিয়াব পাৰি- “দীনবন্ধুৱে লিখিছিল : স্ত্ৰী শিক্ষাৰ অভাৱত যে বহুতো অনৰ্থ ঘটিছে, তাত কোনো সন্দেহ নাই। যদিও স্ত্ৰী শিক্ষা বিস্তাৰৰ নিমিত্তে মোৰ একান্ত আগ্ৰহ আছে, তথাপি বিজাতীয় আদৰ্শত শিক্ষা দিয়াত মোৰ মত নাই। মই দেখি আহিছোঁ- তেনে আদৰ্শত শিক্ষা পোৱা ছোৱালীৰ সৰহভাগেই বিলাস-বাসনাত উটি ৰমণীৰ স্বাভাৱিক কৰ্তব্যৰ সীমা পাৰ হৈ লোকা-লোকত প্ৰৱেশ কৰে।”^৭ উক্ত উপন্যাসৰ নায়িকা প্ৰভাৰ আদি ৰূপ চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু নায়ক দীনবন্ধুৰ আদি ৰূপ দণ্ডিনাথ কলিতা বুলি মন্তব্য প্ৰকাশ কৰি ড° গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাই কৈছে, “এই শতাব্দীৰ বিশৰ অৰ্থাৎ তৃতীয় দশকতে অসমীয়া তিৰোতাৰ মনত নাৰীবাদ সম্পৰ্কে ওলুপা চিন্তা আৰু চেতনাৰ ই এক ভাল উদাহৰণ।”^৮

মুক্ত নাৰীৰ অবাধ স্বাধীনতাক এচামে বিশৃংখলতা বা উচ্ছৃংখলতাৰ নামান্তৰ বুলি বিৰূপ সমালোচনাও কৰা দেখা যায়। ‘সাধনা’ উপন্যাসত দীনবন্ধুৱে কৈছে, “তুমি বিলাতৰ কথা কৈছ, কিন্তু তাৰ অশিক্ষিত নাইবা অসংযত দলৰ স্বাধীনতাৰ পৰা কি কুফল ফলিছে তাক জানানে? উদঙীয়া গৰুৰ স্বাধীনতাৰ নিচিনা স্বাধীনতা এই দলৰ ভিতৰত আছে আৰু তাৰ লগৰীয়া পাপ-ব্যভিচাৰৰ বিষাক্ত ফলেই বিলাতত অসংখ্য জাৰজাশ্ৰম সৃষ্টি কৰিছে। আমাৰ পুণ্যভূমি ভাৰতক এনে পাপ পুৰীত পৰিণত কৰিবলৈ কোনো বিজ্ঞলোকে ইচ্ছা কৰিব নোৱাৰে।”^৯

তেনেদৰে, ৰমণী কান্ত দেৱ শৰ্মাই কৈছে, “... যি ধৰ্মই মনুষ্যত্ব ধাৰণ কৰে, সেই ধৰ্মক নিঃসঙ্কোচে পৰিত্যাগ কৰি ভাৰতীয় নৰ-নাৰী আজি অধঃপতনৰ শেষ সীমাত উপনীত হৈছে। ... আধুনিক শিক্ষিতা নাৰীৰ অন্তৰত সতী, সীতা, সাবিত্ৰীৰ পুত চৰিত্ৰ কথাই আজি সাঁচ বহুৱাব নোৱাৰে। এই শিথিল ধৰ্মভাৱ বা নাস্তিকতাৰ কাৰণে ভাৰতীয় শিক্ষিতা নাৰীয়ে সতীত্ব, বিবাহ, মাতৃত্ব প্ৰভৃতিলৈ আগবঢ়ৰে শ্ৰদ্ধা

দেখুৱাব নোৱাৰাত পৰিছে। এই অৱস্থাৰ চৰম পৰিণতি অতি ভয়াবহ। ই হৈছে পশ্চিমীয়া বিলাসিনী নাৰীৰ আৱিৰ্ভাৱৰ সূচনা। ফ্ৰান্স আদি দেশত আজি নাৰীয়ে যি পথত চলিছে, সেই পথত চলিলে ভাৰতীয় নাৰী হ'ব-

“নহ মাতা, নহ বধু, সুন্দৰী ৰূপসী

.....নন্দনবাসিনী উৰ্বশী”^{১০}

মন কৰিবলগীয়া কথা যে অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ চকু দিলে দেখা যায়, — সেই সময়ছোৱাত অসমত নাৰীৰ অৱস্থা বৰ উন্নত নাছিল। ১৯৩৩ চনত ব্ৰজনাথ শৰ্মাৰ নেতৃত্বত সহ অভিনয়ৰ সূচনা হৈছিল। ১৯৩৫ চনত সহ অভিনয়েৰে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ ‘জয়মতী’ বোলছবিৰে মুক্তি লাভ কৰে। কিন্তু নামভূমিকাত অভিনয় কৰা আইদেউ সন্দিকৈৰ জীৱন পাছলৈ কেনেদৰে দুৰ্বিষহ হৈ পৰিছিল, তাৰ বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়োজন ইয়াত নাই। তেনেদৰে, নাৰীয়ে পুৰুষ বন্ধুৰ সৈতে মুকলিমুৰীয়াভাৱে সময় কটোৱাৰ কথা সেই সময়ৰ অসমত ভাবিব নোৱাৰা কথা। এই প্ৰসঙ্গত পাশ্চাত্য নাৰীৰ মনোভাৱ ব্যক্ত কৰি অপূৰ্ব চন্দ্ৰ বৰদলৈয়ে তেওঁৰ ‘পাশ্চাত্য তিৰোতাৰ শিক্ষা সম্পৰ্কে দু-আষাৰ মান’ প্ৰবন্ধত কৈছে, “... তিৰোতাই স্বাধীন চিন্তা, স্বাধীন ভাব ৰোপণ কৰিবলৈ হ'লে, মুনিহৰ পৰা শিক্ষা ল'ব লাগিব। এই শিক্ষা পাবলৈ কেৱল নিজৰ স্বামীৰ পৰাই পাব নোৱাৰি, কাৰণ প্ৰত্যেকটো মুনিহ গাই-গোটা হিচাপে (Indivisually) উন্নত নহয়। সেই কাৰণেই মুনিহ বন্ধুৰ দৰকাৰ।”^{১১}

গতিকে, এনেকুৱা এক সামাজিক, বৌদ্ধিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিৱেশৰ পৰিমণ্ডলতেই ৰমা দাশৰ মানসিক ভাবনাৰ জগতখন গঢ় লৈ উঠিছিল। ৰমা দাশ আছিল এগৰাকী উচ্চ শিক্ষিত ব্যক্তি। ১৯৩০ চনৰ পৰা ১৯৩৩ চনলৈ কলিকতাৰ প্ৰেচিডেন্সি কলেজত স্নাতক মহলাত অধ্যয়ন কৰাৰ বাবদ তেওঁ কলিকতীয়া সমাজখন ওচৰৰ পৰা চাবলৈ সুযোগ পাইছিল। বংগদেশৰ সমাজ ব্যৱস্থাত ঘটা বৌদ্ধিক আৰু সাংস্কৃতিক নৱজাগৰণৰ কথা সৰ্বজনবিদিত। ‘ইয়ং বেংগল ছ'ছাইটি’ৰ বৈপ্লৱিক কৰ্মই সমাজত বন্ধনৰ বিপৰীতে স্বাধীন চিন্তাৰ প্ৰেৰণা দান কৰিছিল। ৰাজা ৰামমোহন ৰায়, ঈশ্বৰচন্দ্ৰ বিদ্যাসাগৰ প্ৰমুখ্যে সমাজ সংস্কাৰকসকলৰ সমাজ চেতনাই কলিকতাক বৌদ্ধিক দিশৰ পৰা ইতিমধ্যে আধুনিক চিন্তা-চৰ্চাৰ অভিকেন্দ্ৰ কৰি তুলিছিল। তদুপৰি ই আছিল পূব ভাৰতৰ উচ্চ শিক্ষাৰো ঘাই কেন্দ্ৰ। গতিকে, পাশ্চাত্য চিন্তা-চৰ্চাৰে কলিকতা

ৰক্ষণশীলতাৰ পৰা আধুনিক বৃত্তৰ পৰিধিত ভৰি থৈছিলহি। এনে এক সামাজিক-বৌদ্ধিক পৰিমণ্ডলত ৰমা দাশে অভিজ্ঞতা লাভ কৰিছিল। সেয়েহে সমকালীন অন্যান্য অসমীয়া সাহিত্যিকৰ দৰেই ৰমা দাশৰ গল্পতো মুক্ত নাৰীৰ ধাৰণা প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়।

২০০ : ৰমা দাশৰ গল্পত মুক্ত নাৰী : ৰমা দাশৰ বৌদ্ধিক আৰু আনুভূতিক জগতখনত উক্ত ঘটনাসমূহৰ গভীৰ প্ৰভাৱৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়াৰ প্ৰতিচ্ছবি গল্পসমূহৰ যোগেদি প্ৰতিফলিত হৈছে। ইয়াৰ ভিতৰত দাশৰ গল্পত শ্যেলী, ৰুছো আৰু ফ্ৰয়েডৰ প্ৰভাৱ হৈছে সৰ্বাত্মক। কিন্তু এই প্ৰভাৱ তেওঁ গল্পসমূহত নিৰপেক্ষভাৱে আৰু শিল্পসন্মত ভাৱে দাঙি ধৰাৰ পোষকতা কৰিছিল- “আৰ্ট বা সাহিত্যৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হ'ল, জীৱনৰ সত্যনিষ্ঠ আৰু সংযত প্ৰতিচ্ছবি এখনিৰ মাজেৰে, চিৰন্তন সত্য এটি আমাৰ আগত নিৰপেক্ষভাৱে দাঙি ধৰি ৰসাবেগেৰে মনটো কিছু সময়ৰ কাৰণে অসীমৰ মাজলৈ টানি নিয়া। তাকে কৰিবলৈ হ'লে প্ৰত্যেক শিল্পীকেই লাগে, সুদূৰপ্ৰসাৰী, সীমাহীন প্ৰখৰ এটি দূৰ দৃষ্টি, তেজোদীপ্ত বলিষ্ঠ কল্পনা, অনুধাৱন কৰিব পৰা সুশ্ৰেণী, সকলো পছ বা গোষ্ঠী বহিৰ্ভূত উদাৰ মনোভাৱ, আৰু সৰ্বোপৰি পৃথিৱীৰ সকলোৰে সৈতে সকলো অৱস্থাতে অঙ্গঙ্গী সন্মত স্থাপন কৰিব পৰা স্নেহ সিদ্ধ এখনি অতি বহল অন্তঃকৰণ।”^{১২}

ৰমা দাশে তেওঁৰ এই দৃষ্টিভঙ্গী সাহিত্যত বজাই ৰাখিবলৈ সক্ষম হৈছে। ব্যক্তিবাদী নাৰীবাদ, মৌল নাৰীবাদ নাইবা ফ্ৰয়েডে বা মাৰ্ক্সীয় ধাৰণাৰ সমাজবাদী নাৰীবাদৰ মুক্তিৰ ধাৰণা- কোনোটোৱে দাশৰ গল্পত এককভাৱে ফুটি উঠা নাই। দাশে গল্পসমূহৰ যোগেদি কেৱল ‘মুক্ত নাৰী’ৰ ধাৰণাটোহে দাঙি ধৰিছে। মৌল নাৰীবাদৰ দৰে ক'তো তেখেতে বিবাহত আৱদ্ধ নোহোৱাকৈ পুৰুষৰ সৈতে নাৰীক স্বাধীনভাৱে জীয়াই থাকিবলৈ উদ্বুদ্ধ কৰা নাই। তেনেদৰে সমাজবাদী নাৰীবাদৰ দৰে ৰাষ্ট্ৰৰ অধীনত ল'ৰা-ছোৱালীক গোটাই পুৰুষৰ সৈতে সমান অধিকাৰ ভোগৰ প্ৰতিও আগ্ৰহ প্ৰকাশ কৰা নাই। কেৱল ফ্ৰয়েডীয় মনস্তত্ত্বৰ আধাৰত ব্যক্তিৰ অন্তৰৰ কামনা-বাসনা, প্ৰেম, বিবাহ, যৌনতা আদিক দোহাই দি ব্যক্তিক নিজৰ ওচৰত দায়বদ্ধ হৈ মুক্তভাৱে জীয়াই থাকিবলৈ প্ৰেৰণা দিছে। অৱশ্যে ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’ গল্পটিত নায়ক জয়ন্তৰ ভাবনাৰ যোগেদি বিবাহ, প্ৰেম আদি সকলো বন্ধনৰ উদ্ধৃত থাকি জীয়াই থকাৰ যি বাণী প্ৰচাৰ কৰিছে, তাৰ যোগেদি আওপকীয়াকৈ পৰিয়াল ব্যৱস্থাৰ প্ৰতিও

অনাস্থাৰ ভাবে প্ৰকাশ পোৱা যেন ধাৰণা হয়। অৱশ্যে পৰিয়াল ব্যৱস্থাৰ প্ৰতি অনাস্থাৰ ভাব নাৰী চৰিত্ৰসমূহৰ যোগেদি ফুটি উঠা নাই। তেওঁৰ গল্পৰ নাৰী চৰিত্ৰসমূহে এফালে যৌন স্বাধীনতা বিচাৰি অবৈধ সম্পৰ্ক গঢ়ি তুলিছে, আনফালে বিবাহ বন্ধনৰ পৰা আঁতৰি নাহি পৰিয়াল ব্যৱস্থাও অস্বীকাৰ কৰা নাই। দাশৰ সমকালীন সময়ছোৱাত অসমত পুৰুষ-নাৰীৰ অৱস্থা ইমান মুক্ত নাছিল। তথাপি অসমৰে অন্তৰ্গত শ্বিলঙৰ মাতৃপ্ৰধান আৰু মুকলিমুৰীয়া পৰিৱেশৰ পটভূমিত নাইবা আধুনিক জীৱনৰ স্পন্দন থকা কলিকতা মহানগৰীৰ পটভূমিত প্ৰায়বোৰ গল্প ৰচনা কৰা হৈছে।

দাশৰ গল্পত হৃদয়ৰ কামনা-বাসনা বা ছেপ্প-প্ৰধান বিষয় হৈ মূৰ্ত হৈ উঠিছে। ‘জীৱনৰ এৰাতি’, ‘জাহ্নবী’, ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’, ‘ৰুদ্ধ যৌৱন’, আদি গল্পসমূহলৈ চালেই এই কথাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়। যুৱক-যুৱতীয়ে সমাজ বা পৰিয়ালৰ অলক্ষিতে লুকাই চুৰকৈ শাৰীৰিক মিলনত প্ৰবৃত্ত হোৱাৰ পৰা আদি কৰি যুৱা বা শ্ৰেষ্ঠ বয়সলৈকে বিবাহিত পুৰুষ-নাৰীয়ে গোপনে অভিসাৰত মত্ত হৈছে। এনেবোৰ চিত্ৰণেৰে দাশে ভাৰতীয় সমাজৰ সংস্কাৰ আৰু ৰীতি-নীতিত আৱদ্ধ বন্ধনযুক্ত জীৱনৰ ছবিৰ বিপৰীতে পাশ্চাত্যৰ মুক্ত আৰু নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতাৰ ছবি অংকন কৰা দেখা যায়। ‘ৰুদ্ধ যৌৱন’ গল্পত নায়িকাই কৈছে, – “আজি সি তাতেই মোক প্ৰথমে সাৱটি ধৰি বুকুৰ মাজলৈ টানি নি চুমা এটি খাইছিল। উস্তু কি তপত, উতলা সেই চুমাৰ পৰশলু এতিয়াও যেন মোৰ শৰীৰৰ সিৰাই সিৰাই তাৰ পোৰণি জ্বলি আছে।” (মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃষ্ঠা- ১৫)

‘জীৱনৰ এৰাতি’ গল্পত বিবাহিতা স্নেহই নিজ মুখে স্বীকাৰ কৰিছে, – “কমল দাহু গোটেই জীৱনতে মই, এই একে প্ৰাণৰ দুৰ্বলতা অনুভৱ কৰি আহিছোঁ। সমুখত কামনাৰ সন্তোষৰ আশাৰ আগত, মই সদায় আত্মবিস্মৃত হৈ, বিহুল হৈ পৰোঁ। মোৰ সেই প্ৰাণৰ অবুজ উখল-মাখলক সংসাৰৰ কোনো নীতি বা সমাজৰ শাসনে বান্ধি ৰাখিব নোৱাৰে। ধৰ্ম, বিবেক, শিক্ষা মই সকলোকে বুজোঁ, কিন্তু তাতোকৈ বুজোঁ মোৰ অন্তৰৰ ভিতৰত থকা, চিৰ ক্ষুধাতুৰ চিৰ অন্তৰত সেই প্ৰবৃত্তিটোক।” (মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃষ্ঠা- ২৯)

এনেবোৰ সংলাপেৰে দাশে আচলতে প্ৰশ্ন তুলিছে— ব্যক্তি আচলতে কাৰ ওচৰত দায়বদ্ধ— নিজৰ ওচৰত নে সমাজৰ সংস্কাৰ, ৰীতি-নীতিৰ ওচৰত! ভাৰতীয় সমাজ

ব্যৱস্থাত ইন্দ্ৰিয় সংযমত গুৰুত্ব দি বিষয়-বাসনাক অৱদমিত কৰাত জোৰ দিয়া হয়। কিন্তু অন্তৰৰ আদিম প্ৰবৃত্তিৰ দাবীৰ প্ৰতি পাশ্চাত্য সমাজৰ চিন্তা-চেতনাক ভাবি চোৱাৰ অৱকাশ ইয়াত ফুটি উঠিছে। ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাত সতীত্বৰ আদৰ্শৰে যি সতী- সাধৱী নাৰীৰ ধাৰণা দাঙি ধৰা হৈছে, ইয়াত তাৰ সম্পূৰ্ণ বিপৰীত নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতাৰে একপ্ৰকাৰ নতুন আৰু ‘মুক্ত নাৰী’ৰ ভাবনা প্ৰকাশ কৰা হৈছে। সমাজৰ সকলো সংস্কাৰ, ৰীতি-নীতিৰ পৰা মুক্ত হৈ কৃত্ৰিমতাৰে জীৱন যাপন কৰাৰ সলনি সামাজিক প্ৰভাৱলৈ আওকাণ কৰি এক স্বাভাৱিক আৰু স্বাধীন জীৱন কটোৱাৰ চিত্ৰ স্নেহ, জয়ন্ত, চিত্ৰা, বন্দনা, জাহ্নবী আদি চৰিত্ৰসমূহৰ যোগেদি ফুটি উঠিছে। আচলতে ৰমা দাশৰ সাহিত্য চৰ্চাৰ সময়ছোৱাত অসমীয়া সমাজখন বাস্তৱত ইমান আধুনিক হোৱা নাছিল। ৰক্ষণশীল সমাজৰ বিৰুদ্ধে ই আছিল ৰমা দাশৰ একপ্ৰকাৰ বিদ্ৰোহ।

দাশৰ সময়ছোৱাত অসমীয়া সাহিত্যত ৰোমাণ্টিকতাবাদৰ ঢল উঠিছিল। নৱন্যাসবাদৰ প্ৰেমৰ গুণানুকীৰ্ত্তন গল্প-সাহিত্যত বিভিন্ন অভিব্যক্তিৰে প্ৰকাশ হ’বলৈ ধৰিছিল। ফ্ৰয়েডৰ প্ৰভাৱত প্ৰেম আৰু যৌনতা একপ্ৰকাৰ একাকাৰ হৈ পৰিছিল। লগ্নীধৰ শৰ্মাৰ ‘ব্যৰ্থতাৰ দান’ গল্পত লিলিয়ে ললিতক নিজৰ শোৱনি কঠালৈ আমন্ত্ৰণ কৰা কাৰ্যই অসমীয়া সাহিত্যত ‘মুক্ত’ আৰু নতুন নাৰীৰ ধাৰণা দাঙি ধৰে। দাশৰ গল্পত ই আৰু বেছি বিস্তৃতভাৱে অংকিত হয়। ‘জীৱনৰ এৰাতি’ গল্পটিত আছে, – “নাৰী সাঁচকৈয়ে দুবিধ। এবিধ গৃহিণী, আনবিধ হ’ল প্ৰেমিকা। প্ৰথম বিধে বিয়া-বাৰু কৰাই নিজৰ স্বামীকে লৈ, ঘৰ-গৃহবাস কৰি তাতেই পৰিতৃপ্ত হৈ থাকিব পাৰে। কিন্তু আনবিধে নিজৰ অভিব্যক্তি মতে স্বামী পালেও কেতিয়াও বিভিন্ন ৰুচি বা মৰমৰ আশ্বাদ নোলোৱাকৈ জীৱনত পৰিতৃপ্তি নাপায়। প্ৰথম বিধৰ প্ৰাণটো স্থিতিমান শিলৰ প্ৰাণৰ দৰেই স্থিৰ আৰু স্থিতিময়। সি একেডোখৰ ঠাইতে থাকি, একোডোখৰ ঠাইৰে বা-বতাহ লৈ তাকেই আঁকোৱালি ধৰি, চিৰদিনে একেদৰে সন্তুষ্ট থাকিব পাৰে। কিন্তু ই বিধৰ প্ৰাণটো মুক্তধাৰা নদীৰ প্ৰাণৰ দৰেই গতিময়, ছন্দময়, ৰসময়। তাক কেতিয়াও একে ঠাইতে বান্ধি বা আবদ্ধ কৰি ৰাখিব নোৱাৰি বা ৰাখিলেও সি আত্মতৃপ্তি নাপায়। তেনেহ’লে প্ৰশ্ন উঠিব পাৰে নাৰীৰ প্ৰকৃত সত্তাৰ লগত সতীত্ব কথাষাৰৰ সম্বন্ধ ক’ত? তাৰ একমাত্ৰ সহজ উত্তৰ হ’ল এয়ে যে সতীত্ব বস্তুটো সকলো নাৰীৰে স্বভাৱজ ধৰ্ম নহয়। ই এটা সামাজিক

আদৰ্শহে মাথোন। গতিকে, আন বহুতো আদৰ্শ স্বভাৱ-ধৰ্মৰ আগত পৰাস্ত হোৱাৰ দৰে, এই সতীত্ব আদৰ্শৰো সময়ে সময়ে ব্যতিক্ৰম ঘটে। যি নাৰী স্বভাৱধৰ্ম মতেই ঘৈণী, একানুৱৰ্তিনী, তেওঁ কোনো ব্যতিক্ৰম নোহোৱাকৈ, অতি সহজতে সতী-সাধীৰূপে আজীৱন তৃপ্তিৰে জীৱন কটাব পাৰে। কিন্তু যি নাৰী স্বভাৱধৰ্ম মতেই অন্তৰেৰে প্ৰেমিকা, তেওঁ হাজাৰ সতীত্বৰ আদৰ্শত উদ্বুদ্ধ হ'লেও আজীৱন সেই একে প্ৰেমিকাই বৈ যায়। কিয়নো সংসাৰৰ আন সকলো সৃষ্টি জীৱৰ দৰেই, পুৰুষ আৰু নাৰীও, সদায় অন্তৰৰ বন্ধমূল প্ৰবৃত্তিৰ দাস মাথোন।” (জীৱনৰ এৰাতি, পৃষ্ঠা- ২৬)

‘জাহ্নবী’ গল্পটিত কৈছে,- “তোমাৰ জাহ্নবী প্ৰকৃত জাহ্নবীৰ দৰে ই সঁচাকৈয়ে মুক্ত-ধাৰা।” (জাহ্নবী, পৃঃ- ৭১) গতিকে দেখা যায়, বাস্তৱ জীৱনত সংস্কাৰৰ বশৱৰ্তী হৈ আপাতঃ পৰিশীলিত জীৱন কটোৱাৰ অন্তৰালত ফল্গুধাৰাৰ দৰে বৈ থকা জৈৱিক ক্ষুধাৰ কথা অভিনয়েৰে লুকাই ৰখা জীৱন-যাত্ৰাৰ বিৰুদ্ধে ৰখা দাশে বিদ্ৰোহ কৰি ব্যক্তি আৰু সমাজ জীৱনৰ এটি স্পৰ্শকাতৰ আৰু গভীৰ সমস্যাৰ ছবি তেওঁৰ গল্পসমূহত দাঙি ধৰিছে। অৱদমিত ইচ্ছা, কামনা-বাসনাৰে এক ভণ্ডামিৰ তথা বন্ধনযুক্ত জীৱন-যাপন কৰাৰ বিৰুদ্ধে ই এক মুকলি বিদ্ৰোহ। এই বিদ্ৰোহত যেন তেওঁৰ চৰিত্ৰসমূহে আগভাগ লৈছে। ‘ৰুদ্ধ যৌৱন’ গল্পত নায়িকাই কৈছে, “তুমি যদি সঁচাকৈ মোক মাতা, মই আজিয়েই এই পিঞ্জৰাৰ শিকলি ছিঙি তোমাৰ লগত ওলাই যাব পাৰোঁ। কিয়নো দাসত্বৰ শৃঙ্খলৰ বন্ধনত মোৰ শৰীৰ, মন, সকলো তেনেই তিতা হৈ উঠিছে। ... টাব’ৰ ফুলৰ দৰে মই বন্ধ আকাশৰ তলত উপজিছিলোঁ, সেয়ে মই সদায় সেই অৱস্থাতেই সন্তুষ্ট থাকিব লাগিব। ওলুন্ধাৰে পৰা মোৰ যেতিয়া পাখি দুখন বন্ধা, মই এতিয়া উৰিবলৈ কেনেকৈ উৰিব পাৰিম বা মোক কোনে উৰাই লৈ যাব?”

ব্যক্তি স্বাধীনতাৰ এই দুৰ্বাৰ আকাংক্ষাই বন্ধনযুক্ত জীৱনৰ বিপৰীতে মুক্তিৰ আকাংক্ষাৰ ছবি মনলৈ লৈ আহে। প্ৰকৃত অৰ্থনৈতিক স্বাধীনতা অবিহনে যে স্বাধীনতা আৰু মুক্তি নাই, সেই কথাও উক্ত বক্তব্যৰ পৰা ফটফটীয়াকৈ ওলাই পৰে। সৰুতেই মাক-বাপেকক হেৰুওৱা নায়িকাই জীৱন যাত্ৰাৰ বাবে অইনৰ ঘৰত আশ্ৰিতা হৈছে। গতিকে, অৰ্থনৈতিক দুৰাৱস্থাই তাইৰ মুক্তিৰ প্ৰধান হেঙাৰ।

‘অতীত’ গল্পটিত বিবাহিতা দীপ্তিয়ে ঠগ্-প্ৰবঞ্চনাৰে জীৱনটো অভিনয়েৰে আগবঢ়াই নিব নোৱাৰি পূৰ্বৰ

প্ৰেমিকৰ ওচৰত স্বীকাৰ কৰিছে, - “প্ৰাণৰ মুকুলদা মোৰ, দিন যায়, ৰাতি আহে। কিন্তু নাই মোৰ সুখ, নাই মোৰ শান্তি। যদি অকণমানো তুমি মোৰ প্ৰাণৰ বেথা বুজিলাহেঁতেন। মিছা সুখৰ ভাও দিয়াটো যে জীৱনত কিমান কষ্টকৰ, কিন্তু তাকে অকল দিনে ৰাতিয়ে মই দিব লাগিছোঁ।” ((মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃঃ- ২১) ভাৰতীয় সমাজত বিবাহৰ পাছত পৰকীয়া বা অন্য পুৰুষ-নাৰী প্ৰেমত পৰা নিষিদ্ধ অৰ্থাৎ সমাজবিৰুদ্ধ। ভাগৱতত ‘কৃষ্ণ আৰু ৰাধা’ৰ প্ৰেম কাহিনীৰ চিত্ৰ আছে যদিও সেয়া অইন ধৰণেহে ব্যাখ্যা কৰা হৈছে। অৱশ্যে জয়দেৱ, বিদ্যাপতি, চণ্ডীদাস আদি কবিসকলৰ গীতি-কবিতাত বৰ্ষামুখৰ ৰাতি অভিসাৰৰ বাবে ওলাই যোৱা ৰাধাৰ দুৰ্বাৰ সাহসৰ ছবিৰে সমাজবিৰুদ্ধ এখন পৰকীয়া প্ৰেমৰ ছবি অংকন কৰা হৈছে। বিবাহৰ পাছত উদ্ভৱ হোৱা প্ৰেমৰ চিত্ৰনেৰে ‘বিবাহ আৰু প্ৰেম’ৰ সমস্যা ‘অচল টকা’ গল্পটিত ডাক্তৰ এম. পি. বৰুৱা, মিনি এণ্ডৰুজ আৰু লতিকাৰ যোগেদি দাঙি ধৰা হৈছে,- প্ৰেমিক মিনি আৰু ডাক্তৰৰ কথোপকথনৰ যোগেদি— “প্ৰেম আৰু বৈবাহিক সম্বন্ধ দুটা সদায় পৰস্পৰ বিভিন্ন বস্তু; যদিও আমি সকলো সময়তে ভুলকৈ আৰু বলেৰে দুয়োটোকে একে ঠাইতে আবদ্ধ কৰি ৰাখিব খোজোঁ। লতিকাৰ স্বামীৰ বেলিকা যদি দুয়োটি ইমান সহজতে আৰু কোনো বিবাদ নোহোৱাকৈ বিভিন্ন হৈ পৰিছে, তেনেহ’লে তেওঁৰ প্ৰকৃত কৰ্তব্য হ’ব, সিহঁত দুয়োটোকে সেইদৰে সদায় কোনো অন্যায় নকৰাকৈ বিভিন্ন কৰি ৰখা।” (মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃষ্ঠা : ৯৮)

ডাক্তৰ : ...কিন্তু সেইটো যে সম্পূৰ্ণ অসম্ভৱ মিনি। কল্পনাত হ’লেও বাস্তৱত একোটি মন্দিৰত কেতিয়াও দুখনি একে প্ৰতিমাৰ পূজা সম্ভৱপৰ নহয়।

মিনি : “... গৃহিনী বুলি যাৰ লগত আপোনাৰ সম্বন্ধ তাৰ স্থান অকল আপোনাৰ গৃহৰ মাজত। কিন্তু মৰমৰ অধিষ্ঠাত্ৰী আপোনাৰ কি দেৱী, কি বন্ধু, তাৰ পূজাৰ কোনো নিৰ্দিষ্ট স্থান নাই - আপোনাৰ অন্তৰৰ অসীম অনন্ত মৰমৰ সকলো কেন্দ্ৰতে তেওঁ বিয়পি থাকিব।” (মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃষ্ঠা- ৯৪)

উক্ত কথোপকথনত ৰমা দাশৰ জীৱন-দৰ্শন নিহিত হৈ থকা বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। ‘প্ৰেম আৰু যৌনতা’ সম্পৰ্কে সমাজত থকা নৈতিকতা, মূল্যবোধ আদিক আকৌ এবাৰ দ-কৈ চিন্তা কৰি চাবলৈ পাঠকক ই চিন্তাৰ খোৰাক যোগায়। নাৰীবাদৰ বিভিন্ন তত্ত্বত ‘যৌনতা আৰু বিবাহ’ৰ

ক্ষেত্ৰত নাৰীৰ মুক্ত স্বাধীনতাৰ কথা ব্যক্ত কৰা হৈছে। তেনে চিন্তা ভাবনাৰ দ্বাৰাও ৰমা দাশৰ গল্প কিছু পৰিমাণে প্ৰভাৱান্বিত হোৱা বুলি অনুমান হয়। ৰক্ষণশীল সমাজত বসবাস কৰিও ধৰ্ম, নৈতিকতা, পাপ-পুণ্যৰ ধাৰণাৰ পৰা মুক্ত হৈ স্নেহ, অঞ্জলি আদিয়ে এক মুক্ত জীৱন কটাবলৈ আগবাঢ়ি গৈছে। এই ‘নতুন নাৰী’ ফ্ৰয়েডীয় আৰু নাৰীবাদী ভাবনাৰ বাতাবৰণত গঢ় লৈ উঠা বুলি ক’ব পাৰি। অৱশ্যে পাপ-পুণ্য, নৈতিকতা, বিবেক দংশন আদিৰ চিত্ৰনও দাসৰ গল্পত প্ৰতিফলিত হৈছে। ‘ৰেলৰ ৰোমাঞ্চ’ গল্পটিত আছে,- “কোনে কয় পৃথিৱীতে পাপীৰ নৰক যন্ত্ৰণা নহয় বুলি।” (মুনীন্দ্ৰনাথ বৰুৱা (সঙ্কলন) ৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃঃ - ৫) যেন ইচ্ছা কৰিয়েই জগতত ট্ৰেজেডিবোৰ ঘটাবলৈ কোনো কুটিল নিয়তিয়ে সদায় অসময়ত আহি আমাৰ পৰিচয়ৰ দৌত্য কৰে। (‘অচল টকা’ পৃষ্ঠা - ৯৫)

মিনিয়ৈ ডাক্তৰ আৰু পত্নীৰ আচল পৰিচয় লাভ কৰি ডাক্তৰৰ জীৱনৰ পৰা প্ৰেমিকা হিচাপে আঁতৰি গৈছে। এনে দৃশ্য থাকিলেও ৰমা দাশৰ গল্পৰ ‘মূল সুৰ’ কিন্তু সেইটো নহয়, মূল সুৰ প্ৰতিবাদৰ সুৰ। এনে প্ৰতিবাদী সুৰ ফুটি উঠিছে ‘অচল টকা’ গল্পৰ ডাক্তৰৰ বক্তব্যত, - “বিবাহ-স্বত্ব এনে এটা সীমাহীন অনিৰ্দিষ্ট স্বত্ব যে তাৰ দোহাই দি, বিবাহিত পত্নীয়ে স্বামীৰ ওপৰত বাস্তৱ, কাল্পনিক ‘সৰ্বস্বত্বকে’ দাবী কৰে। তাৰ এধানিষ্ঠামানো আন কাকো ক’তো এৰি দিবলৈ সন্মত নহয়।” (বৰ্ষা যেতিয়া নামে, পৃষ্ঠা- ৯৯)

বিদ্ৰোহ বা প্ৰতিবাদৰ সুৰৰ যোগেদি এখন মুক্ত সমাজ গঢ়াৰ কথা ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’ গল্পত নায়ক চৰিত্ৰ জয়ন্তই অনুভৱ কৰিছে। আচলতে ‘জয়ন্ত’ চৰিত্ৰ যেনিবা ৰমা দাশৰে প্ৰতিভা। পাশ্চাত্যৰ চিন্তাজগতৰ দুই বিদ্ৰোহী ‘ৰুছো’ আৰু ‘শ্যেলী’ৰ প্ৰভাৱ ইয়াত প্ৰত্যক্ষভাৱে পৰিছে,- “জয়ন্তই ভাবি গ’ল, মানুহ সঁচাকৈয়ে এদিন সৃষ্টিৰ আদিম প্ৰভাৱত, সমুদ্ৰ বক্ষৰ পৰা আপোনা-আপুনি উদ্ভেলি উঠা টোবোৰৰ দৰে চিৰমুক্ত, চিৰস্বাধীন, চিৰ-নিষ্কলঙ্ক হৈ উপজিছিল। কিন্তু আজি সি নিজে নিজেই দেহৰ সকলো অঙ্গতে পৰাধীনতাৰ গধুৰ লোৰ শিকলি আঁৰি লৈছে। মানুহৰ যিপিনেই চোৱা আজি সেইপিনেই মাথোন শিক্ষাৰ, সভ্যতাৰ, সংস্কাৰৰ, নৈতিকতাৰ, লৌকিকতাৰ ওখ ওখ আকাশলগুৱী নিৰ্মম বাধাৰ প্ৰাচীৰ। আৰু সেই সকলোবোৰেৰে নিষ্ঠুৰ নিষ্পেষণত তাৰ আজি সজীৱ আত্মাটোৰ প্ৰায় মৃত্যুৰ উপক্ৰম হৈছে। জয়ন্তই যিমানেই মানুহৰ সেই অতীতৰ হেৰোৱা নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতাৰ কথা বেছিকৈ

... সি তাৰ প্ৰতিটো খোজতে সেই অহৈতুকী বাধাৰ প্ৰাচীৰবোৰ ভাঙি-ছিঙি চুৰমাৰ কৰি, আকৌ সেই মানৱ সভ্যতাৰ প্ৰথম প্ৰভাৱত মানৱ শিশুটোৰ যুগলৈ একেবাৰে আগুৱাই যাবলৈ বিচাৰিলে।” (বৰ্ষা যেতিয়া নামে, পৃষ্ঠা- ১৩১)

“সি ক’ব নোৱৰাকৈয়ে প্ৰাণৰ উচ্ছ্বাসত তাৰ অতি প্ৰিয় শ্যেলীৰ ‘ৰেষ্ট উইণ্ড’টো..... আবৃত্তি কৰি গাই পেলায়। ... সি যেন নিজেই এই ধুমুহা। এই ধুমুহাৰেই বুকুত লুকাই থকা বিদ্ৰোহৰ সেই জ্বলন্ত প্ৰাণটো। সিও যেন নিজেই এদিন এই ধুমুহাৰ দৰে ধৰণীৰ সকলো বাধা-বন্ধন, নিৰ্যাতন নিষ্পেষণ ভাঙি-ছিঙি চুৰমাৰ কৰি উৰুৱাই লৈ যাব। আৰু তাৰ সম্পূৰ্ণ নতুন মানৱৰ সম্পূৰ্ণ নতুন এখনি পৃথিৱী গঢ়ি তুলিব। (বৰ্ষা যেতিয়া নামে, পৃষ্ঠা- ১৪২)

আচলতে এই কথাখিনিতে ৰমা দাশৰ জীৱন দৰ্শন নিহিত হৈ আছে। বাহ্যিক দৃষ্টিত প্ৰেম আৰু যৌনতাৰ ছবি থাকিলেও তাৰ অন্তৰালত বিদ্ৰোহৰে এখন চিৰমুক্ত, নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতাৰ নতুন পৃথিৱী গঢ়ি তোলাটোৱে দাশৰ গল্পৰ মূল ভাব আৰু মূল লক্ষ্য। বহু সমালোচকে দাশৰ গল্পত সামাজিক দায়বদ্ধতাৰ অভাৱ দেখিলেও আৰু নিম্নমানৰ বুলি আপত্তি কৰিলেও আমাৰ বোধেৰে সেই ধাৰণা বিপৰীত যেনহে লাগে। আধুনিক পাশ্চাত্য জগতত গঢ়ি উঠা নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতা, চিৰ-মুক্তি, চিৰ-স্বাধীনতা, প্ৰেম-বিবাহ-যৌনতাৰ সমস্যা আদি বিবিধ ধাৰণাৰে ৰক্ষণশীল সমাজখনক যুক্তিৰে চালি-জাৰি চাবলৈ চিন্তাৰ খোৰাক যোগাই গৈছে। ব্যক্তিৰ হৃদয়ৰ গোপন দিশটোৰ কিছুমান শাস্ত্ৰত প্ৰশ্ন দাঙি ধৰি দাশে এক নতুন ধাৰাৰ গল্প অসমীয়া সাহিত্যলৈ আগবঢ়াই লেখৰ কাম কৰি থৈ গৈছে।

৩০০ : সামৰণি :

হোমেন বৰগোহাঞিয়ে ৰমা দাশক অসমীয়া চুটিগল্পৰ দহজন শ্ৰেষ্ঠ গল্পকাৰৰ ভিতৰত স্থান দিব বিচাৰে। আচলতে ‘আৱাহন’ যুগৰ গল্পলেখকসকলৰ পৰম্পৰাৰ পৰা আঁতৰি আহি এক নতুন ধাৰাৰ গল্প ৰচনাৰে দাশে অসমীয়া গল্প জগতত স্বকীয় আৰু একক স্থান লাভ কৰিবৰ যোগ্য। প্ৰেম, বিবাহ আৰু যৌনতাৰ প্ৰসঙ্গেৰে প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্যৰ চিন্তা-চৰ্চাৰ দ্বন্দ্বৰ যোগেদি ভাৰতীয় বা অসমীয়া সমাজত নিৰঙ্কুশ স্বাধীনতা, চিৰ-মুক্তি আৰু সামাজিক বন্ধনৰ সমস্যাৰ চিত্ৰণেৰে এক শাস্ত্ৰত সমস্যাৰ চিত্ৰ অংকন কৰিছে। স্বাধীনতাৰ এনে সমস্যাৰ চিত্ৰণ ভালেকেইটা শতিকা জুৰি বৌদ্ধিক জগতত চলি আহিছে। সেয়ে, ৰমা দাশৰ গল্প সময়ৰ লগে লগে অচল নহৈ যথেষ্ট প্ৰাসংগিক হৈ থাকিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। □

প্ৰসঙ্গ টোকা :

- ১। পৰমানন্দ মজুমদাৰ (সম্পাদনা), আৱাহন, ভাদ, ১৮৫৩ শক, পৃষ্ঠা- ১৩০৫-১৩০৬
- ২। ত্ৰৈলোক্য মোহন নাথ, ক্ষেত্ৰজ পুত্ৰ কুমাৰী মাতৃ, পৃষ্ঠা- ১
- ৩। ত্ৰৈলোক্য মোহন নাথ, ক্ষেত্ৰজ পুত্ৰ কুমাৰী মাতৃ, পৃষ্ঠা- ১
- ৪। (ড° বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ 'আমাৰ সমান্ত আৰু নাৰী প্ৰবন্ধ, পৃষ্ঠা- ২৯৬-৯৭; দীপালী ভট্টাচাৰ্য্য বৰুৱা আৰু জুৰি ভট্টাচাৰ্য্য (সম্পাদনা) বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ আলোক সন্ধানী প্ৰবন্ধ সংকলন)
- ৫। (ড° প্ৰফুল্ল কটকী (অনুবাদ) : এৰিয়েল, আদ্ৰে মৰোৱা, পৃষ্ঠা- ১১
- ৬। পৰমানন্দ মজুমদাৰ (সম্পাদনা), আৱাহন, তৃতীয় বছৰ, ১১ শ সংখ্যা, পৃষ্ঠা- ১৩০১
- ৭। দণ্ডিনাথ কলিতা, সাধনা, পৃষ্ঠা- ৩৬
- ৮। গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মা, নাৰীবাদ আৰু অসমীয়া উপন্যাস, পৃষ্ঠা- ৩৮
- ৯। দণ্ডিনাথ কলিতা, সাধনা, পৃষ্ঠা- ১০৪
- ১০। (ভাৰতীয় নাৰী-প্ৰগতি আৰু স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ দিক্ নিৰ্ণয়, আৱাহন, ভাদ, ১৮৫৪ শক, পৃষ্ঠা-১৩০৩)
- ১১। পৰমানন্দ মজুমদাৰ (সম্পাদনা), আৱাহন, মাঘ, ১৮৫৪ শক, পৃষ্ঠা- ৪৫০
- ১২। বৰমা দাশ, মোৰ সাহিত্যিক জীৱনৰ বিষয়ে যৎকিঞ্চিৎ, পৃষ্ঠা- ৩৭৭

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১। নাথ, ত্ৰৈলোক্য মোহন : ক্ষেত্ৰজ পুত্ৰ কুমাৰী মাতৃ, পাহি প্ৰকাশ, গান্ধীবস্তী, গুৱাহাটী-৩, প্ৰথম প্ৰকাশ ১৯৮৯।
 - ২। বৰুৱা, মুনীন্দ্ৰ নাথ (সঙ্ক) : বৰমা দাশৰ গল্প সমগ্ৰ, গুৱাহাটী, ষ্টুডেণ্টছ ষ্টোৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ - ২০০০।
 - ৩। বৰুৱা, দীপালী ভট্টাচাৰ্য্য আৰু জুৰি ভট্টাচাৰ্য্য (সম্পাদনা) : বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ আলোক সন্ধানী প্ৰবন্ধ সংকলন ড° বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্য সোঁৱৰণী ন্যাস, নৱগ্ৰহ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ- ২০১৪।
 - ৪। মজুমদাৰ পৰমানন্দ : আৱাহন (১ম পৰা অষ্টম খণ্ডলৈ) অসম প্ৰকাশৰ পৰিষদ, গুৱাহাটী।
-

অৰুণোদই আলোচনীত বিজ্ঞান চৰ্চা : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন



ড° ভাস্কৰজিৎ বৰা

সংক্ষিপ্তসাৰ :

প্ৰাচীন কালৰ পৰাই অসমত বিজ্ঞান চৰ্চাৰ এক পৰম্পৰা প্ৰচলিত আছিল। ডাকৰ বচনসমূহতো বিজ্ঞান চৰ্চাৰ তথ্য পোৱা যায়। ১৮৪৬ চনত খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ প্ৰচেষ্টাত প্ৰকাশ হোৱা অৰুণোদই আলোচনীখনে অসম তথা অসমীয়াৰ জীৱনলৈ নতুন সুৰ কঢ়িয়াই আনিলে। সাহিত্য বা দেশ-বিদেশৰ খবৰৰ লগতে অৰুণোদই আলোচনীৰ পাতত আলোচনা হ'ল বিজ্ঞান চৰ্চা। ১৮৪৬ চনৰ জানুৱাৰী মাহৰ সংখ্যাত 'হেকলা পৰ্বতৰ তপত জোন ওলোআৰ কথা' শীৰ্ষক প্ৰথমটো বিজ্ঞান বিষয়ক লেখা পোৱা যায়। পৰৱৰ্তী সংখ্যাসমূহত বিজ্ঞান বিষয়ক বিভিন্ন লেখা অৰুণোদইৰ পাতত সন্নিৱিষ্ট হ'ল। অৰুণোদই আলোচনীৰ জড়িয়তে বিজ্ঞান চৰ্চাৰ যি সূচনা হ'ল অৰ্থাৎ তাৰ ফলশ্ৰুতিতেই একবিংশ শতিকাত অসমীয়া বিজ্ঞান চৰ্চাই এক সুকীয়া মাত্ৰা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনিত অৰুণোদই আলোচনীখনত প্ৰকাশিত বিজ্ঞান বিষয়ক লেখাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজশব্দ :

বিজ্ঞান, অৰুণোদই, মিছনেৰী।

০.১ আৰম্ভণি :

অসমত বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা প্ৰাচীন কালৰ পৰা চলি আহিছে। এইক্ষেত্ৰত ডাকৰ বচনত উল্লেখ থকা কিছুমান পদৰ উল্লেখ কৰিব পাৰি। প্ৰাচীন অসমত ৰচিত বিভিন্ন ব্যৱহাৰিক পুথিসমূহো বিজ্ঞান চৰ্চাৰ বাটকটীয়া আছিল। ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ বাবে অহা মিছনেৰীসকলৰ প্ৰচেষ্টাত ১৮৪৬ চনত প্ৰকাশিত অৰুণোদই কাকতত অন্যান্য লেখাৰ সমান্তৰালভাৱে বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় বহু প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পাইছিল। এই প্ৰবন্ধসমূহৰ জড়িয়তে অসমৰ মানুহক দেশ-বিদেশৰ বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা আৰু নতুন উদ্ভাৱনাৰ বিষয়ে সন্তোদ দিবলৈ সক্ষম হৈছিল। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনিত অৰুণোদই কাকতত প্ৰকাশিত বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় লেখাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

গৱেষণা পত্ৰখনৰ জড়িয়তে অৰুণোদই কাকতত কেনেধৰণৰ বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় প্ৰবন্ধসমূহ প্ৰকাশ হৈছিল তাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাই মূল উদ্দেশ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু উৎস :

গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলত বৰ্ণনামূলক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে আৰু মুখ্য উৎস হিচাপে ড° পৰমানন্দ মহন্তৰ 'প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য' আৰু গৌণ উৎস হিচাপে মহেশ্বৰ নেওগ সম্পাদিত 'অৰুণোদই' আৰু এই বিষয়ত আলোচনা কৰা বিভিন্ন গ্ৰন্থ-প্ৰবন্ধাদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
এল টি কে মহাবিদ্যালয়, আজাদ
উত্তৰ লখিমপুৰ- ৭৮৭০৩১
☎ ৯৩৬৫১৭৭২৬২
✉ bjbora82@gmail.com

০.৪ বিষয়ৰ পৰিচয় :

অৰুণোদই আলোচনী/কাকতখনৰ সংখ্যাত বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে বিভিন্ন লেখা প্ৰকাশ হৈছিল। ১৮৪৬ চনৰ জানুৱাৰী মাহত প্ৰকাশিত ‘হেকলা পৰ্বতৰ তপত জোন ওলোআৰ কথা’ শীৰ্ষক আলোচনাত আইচলেণ্ডৰ উত্তৰ সাগৰৰ মাজত থকা হেকলা পৰ্বতৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এই পৰ্বতৰ পৰা সময়ে সময়ে জ্বালামুখী ওলায় আৰু সেইবোৰ তললৈ নামি আহি নদীত পৰাৰ ফলত গৰম সহ্য কৰিব নোৱাৰি মাছবোৰৰ মৃত্যু হোৱাৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে—

‘১৭৭২ ইং সঁকৰ পৰা ৭৩ বছৰ জুই ওলোৱা নাই, কিন্তু জোআ বছৰৰ ১ চেপ্তেম্বৰত বৰ ভুইকঁপ আৰু ভূমিৰ গাজনি হল, পাচ দিনা অতি ভয়ংকৰ গৰ্জনেৰে সৈতে পৰ্বতত দুই বাট ফুটিল, তাৰ পৰা লাভা অৰ্থাৎ তপত জোল ওলাই দুয়ো সুঁতি সাগৰলৈ বৈ গ’ল।’

১৮৪৬ চনৰ ফেব্ৰুৱাৰী মাহত ‘মানুহ আৰু জন্তুবিলাকৰ মাজত জি ভেদ হই তাৰে কিছু কথা’ নামেৰে এটা লেখা প্ৰকাশ পায়। এই লেখাটোত মানুহ আৰু জন্তুবিলাকৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে। মানুহ জ্ঞানী কাৰণ মানুহে বিবেচনা কৰিব পাৰে। কিন্তু জন্তুবিলাকৰ স্বাভাৱিক গুণ আছে যাৰ জড়িয়তে সিহঁতে সকলো কৰিব পাৰে। কিন্তু মানুহে আনৰ সহায় নলৈ নিজে একো কৰিব নোৱাৰে—

‘প্ৰধান বেলেগ গুণ এই, মানুহৰ বিবেচনা কৰিব পৰা গিয়ান আছে, কিন্তু জন্তুৰ হলে স্বাভাৱিক গুণ মাথোন আছে, পছ, পখি আৰু অসভ্য অগিয়ানি মানুহ এটা তল প্ৰথম ভেদ দেখা; মানুহটক হাল অস্ত্ৰ সস্ত্ৰ আদি নানা সঁজুলি লাগে; কিন্তু তাৰ চাৰিওফালে থকা জন্তুসকলক এনে সঁজুলি নলগা আছে’^১ এই আলোচনাটোত পশু-পক্ষীবোৰে কেনেদৰে নিজৰ জীৱন চৰ্যা পৰিচালিত কৰে তাৰ বিৱৰণ দাঙি ধৰিছে।

এই বৰ্ষৰে একে সংখ্যাতে ‘গ্ৰহৰ বিৱৰণ’ নামৰ আলোচনাটোত সৌৰজগতখনৰ বৰ্ণনা কৰিছে। সূৰ্যক কেন্দ্ৰ কৰি গ্ৰহবোৰে কেনেদৰে পৰিদক্ষণ কৰে, গ্ৰহসমূহৰ সূৰ্যৰ পৰা কিমান দূৰত অৱস্থান কৰে সেইবিষয়ে বিস্তৃতভাৱে দাঙি ধৰিছে—

‘আমাৰ ওচৰত থকা জি তৰাই সূৰ্যক ঘূৰি জাই, সেইবোৰ গ্ৰহ বোলে। কোন তৰা গ্ৰহ হই, তাক জানিবৰ নিমিত্তে বেলিএ বেলিএ চালে ঠিক পাই, গ্ৰহ হই যদি, তাৰ ঠাই লৰে, অন্য তৰা হলে ঠাই নৰলে। গ্ৰহ ৭ টা মাথোন আছে; বুধ সুকুৰ, ভূগোল, মঙ্গল, ব্ৰিহস্পতি, শনি, হস্যেল। এই সকলো গ্ৰহে সূৰ্যক ঘূৰি জোআ পথ ওপৰৰ নকচাত লিখা আছে। মাজত থাকে সূৰ্য।’^২

অৰুণোদই আলোচনীখনৰ ১৮৪৬ চনৰ মাৰ্চ মাহৰ সংখ্যাটোত ‘আমেৰিকা প্ৰথমে দৰ্শন হোআৰ কথা’ প্ৰকাশ পায়। এই প্ৰবন্ধটোত চুম্বকৰ আৱিষ্কাৰ আৰু কলমবাছে কেনেদৰে আমেৰিকা আৱিষ্কাৰ কৰিছিল তাৰ বিষয়ে দাঙি ধৰিছে। চুম্বকৰ গুণ সম্পৰ্কে এনেদৰে বৰ্ণনা কৰিছে—

‘তাক কোনো লোৰে সৈতে ঘঁহিলে, সেই লোৰ ঘঁহা আগ উত্তৰ কেন্দ্ৰলৈ অৰ্থাৎ উত্তৰ ভাগে সদায় থাকে।’^৩

এই চুম্বক আৱিষ্কাৰ হোৱাৰ পাছত মানুহে সাগৰত দিশ নিৰ্ণয় কৰিব পৰা হ’ল। সেই সময়ত জোনোআ চহৰত কলম্বাছনামৰ এজন ব্যক্তি আছিল। পতুৰ্গীজ আৰু ইউৰোপৰ মাজত যাতায়াতৰ বাবে নাৱৰ ব্যৱহাৰ আছিল। সেই নাওবোৰত অহাযোৱা কৰোঁতে কলম্বাছৰ যথেষ্ট জ্ঞান হৈছিল। সেই সময়ত মানুহবোৰে এটা কথা জানিছিল যে ইউৰোপৰ পৰা পশ্চিমে গলে ভাৰতবৰ্ষ পায়। এদিন ইউৰোপৰ সাগৰত বেত আৰু কাঠ উঠি অহা কলম্বাছে দেখা পালে। তেওঁ সেই বিষয়ে অনুসন্ধান কৰিবলৈ ধৰিলে। তেওঁ প্ৰথমে পতুৰ্গালৰ ৰজাৰ সহায় বিচাৰিলে। ৰজাই সহায় কৰিবলৈ সন্মত নোহোৱাত সেই বিষয়ত সহায় বিচাৰিবলৈ ভায়েকক ইংলেণ্ডলৈ পঠাই দিলে। কিন্তু তাৰ পৰাও একো সহায় নাপালে। তাৰ পিছত ইষ্ট্পানিয়াৰ ৰজাৰ সহায় বিচাৰিও তেওঁ বিমুখ হ’ল। পৰৱৰ্তী সময়ত ইষ্ট্পানিয়াৰ ৰাণীয়ে সন্মতি প্ৰকাশ কৰিলে আৰু অলংকাৰ, টকা আনি দিলে। কলম্বাছে সেই টকাৰে তিনিখন জাহাজ কিনিলে। ১৪৯২ চনৰ আগষ্ট মাহত তেওঁ যাত্ৰা কৰিলে। সাগৰৰ মাজেৰে গৈ থাকোতে লগৰীয়াবোৰে এই যাত্ৰা বন্ধ কৰিবলৈ কলে। কিন্তু সেই সময়তে কলম্বাছে সাগৰৰ ওপৰত ওপঙি থকা নতুন ফল আৰু কিছুমান চিঙা বেত পালে। পৰৱৰ্তী সময়ত ১২ অক্টোবৰত তেওঁলোকে এটা উপদ্বীপ পালে। সেই উপদ্বীপটো গছ-বনেৰে ভৰপূৰ আছিল। সেই উপদ্বীপটো দেখি মানুহবোৰে আনন্দত নাচিবলৈ ধৰিলে। সেই উপদ্বীপৰ পৰা নামি সৰু নাৱত উঠি কলম্বাছে এখন নতুন দেশত ভৰি দিলে—

‘তাৰ পৰে জাহাজৰ পৰা নামি, সৰু নাৱতে উঠি গান আৰু জন্তু সৈতে তাল বজাওতে বজাওতে, সিবিলাকে তিৰৰ ওচৰলৈ গল আৰু কলম্বাছে জি নবিন দেস দেখিলে, তাৰ ওপৰত তেঁৱেই প্ৰথমে ভৰি দিলে।’^৪

সেই নতুন দেশত ভৰি থৈয়েই সকলোৱে ইষ্ট্পানিয়াৰ ৰজাৰ চিহ্নযুক্ত খুটি পুতিলে। তেওঁলোকক দেখি সেই দেশৰ মানুহবিলাক কাষ চাপি আহিল। অস্ত্ৰ শস্ত্ৰ দেখি সেই

মানুহবোৰ আচৰিত হ'ল। নতুন দেশৰ মানুহবিলাক ইউৰোপৰ পৰা যোৱা দাঁড়ি থকা মানুহবোৰ দেখি আচৰিত হ'ল। তেওঁলোকে ভাবিলে সেইসকল সূৰ্যৰ সন্তান। আৰু কলম্বাছৰ লগত যোৱা মানুহবোৰেও দেখিলে এই নতুন দেশৰ মানুহবোৰৰ দাড়ি নাই, গাৰ চাল কোমল তামৰ দৰে বৰণ আৰু মানুহবোৰ উলংগ আছিল।

১৮৪৬ চনৰ এপ্ৰিল মাহত 'প্ৰিথিবিৰ বিবৰণ-ভূগোলৰ পশ্চিম ফালৰ নক্চা' শীৰ্ষক প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পায়। এই প্ৰবন্ধটোত পৃথিৱীখনক এটা বৰাব টেঙাৰ লগত তুলনা কৰিছে। চাৰিওদিশে থকা দেশসমূহ, দুই মেৰু, দ্ৰাঘিমাংশ আদিৰ বিৱৰণ দাঙি ধৰিছে।

১৮৫৩ চনৰ আগষ্ট মাহত প্ৰকাশ পায় 'বৰখুনৰ আখ্যান' শীৰ্ষক প্ৰবন্ধ। এই প্ৰবন্ধটোত কলিকতাৰ এজন চাহাবে বিদ্যালয়ৰ ছাত্ৰসকলৰ লগত শ্ৰেণীকোঠাৰ এক কথোপকথন দাঙি ধৰিছে। পানী কেনেদৰে ভাপ হৈ মেঘ হয় আৰু মেঘৰ পৰা কেনেদৰে বৰখুন হয় সেই বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে।

১৮৪৬ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত 'বৰখুনৰ কথা' শীৰ্ষক অন্য এটা প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পায়। ইয়াত ধনিৰাম আৰু দিনুৰাম নামৰ দুজন লোকৰ কথোপকথনৰ জৰিয়তে বৰখুন কেনেদৰে হয় তাৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এদিন ধনিৰামে ৰ'দত ফুৰিবলৈ যাওঁতে গৰমত বৰ কষ্ট অনুভৱ কৰিলে। সেয়েহে তেওঁ আহি দিনুৰামক কলে যে এই সূৰ্যই মানুহক উপকাৰৰ সলনি অপকাৰহে কৰে। সেই কথা শুনি দিনুৰামে ধনিৰামক বুজাই দিলে যে ৰ'দৰ তাপত পানী বাষ্প হৈ ডাৱৰৰ পৰা কেনেদৰে বৰখুন হয়, বৰখুনৰ পানীৰ পৰাই কেনেদৰে নদী হয়।

১৮৪৭ চনৰ জানুৱাৰী মাহত 'নতুন গ্ৰহ দেখা পোআৰ কথা' শীৰ্ষক এটি প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পায়। প্ৰবন্ধটোত সূৰ্যৰ পৰা আঁতৰত থকা এটা গ্ৰহৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এই প্ৰসংগত উল্লেখ কৰিছে যে ফ্ৰান্সৰ লেবেৰি নামৰ এজন জ্যোতিষীৰ সূৰ্যৰ পৰা বহু দূৰত এটি গ্ৰহে অৱস্থান কৰিছে। লেবেৰীয়ে বাৰ্লিনৰ অন্য এগৰাকী জ্যোতিষী ডক্টৰ গালক দূৰবীণেৰে নিৰীক্ষণ কৰিবলৈ ক'লে। কাৰণ ডাঃ গালক দূৰবীণটো অতি উন্নত। গালে নিৰীক্ষণৰ অন্তত সিদ্ধান্ত দিলে যে আকাশত দেখা সেইটো তৰা নহয়, প্ৰকৃততে এটা নতুন গ্ৰহ। ইয়াৰ বৰ্ণনা এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে—

'সেই গ্ৰহৰ বহল জোখ ৫০,০০০ মাইল, প্ৰিথিবিখনতকৈ ২৫০ আৰ্হে সগুন ডাঙ্গৰ, সূৰ্যৰ পৰা ৩,১২,৫০,০০,০০০ মাইলৰ পৰা আঁতৰ, তাৰ গতি ক্ৰমে

২১৭ বছৰৰ সূৰ্যক এবেলি ঘূৰে। অতি দূৰৈ দেখি তৰাৰ নিচিনা সৰু জেন দেখা জাই... তাৰ নাম এতিয়া দিয়া নহ'ল।'

১৮৪৭ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত 'প্ৰিথিবিৰ আকৰ্ষনৰ বিসহতে দুইজনৰ কথোপকথন' শীৰ্ষক আলোচনাত গোপাল আৰু কালিদাস নামৰ দুজন ব্যক্তিৰ কথোপকথনৰ মাজেৰে নিউটন প্ৰসংগৰ পৃথিৱীৰ মধ্যাকৰ্ষণ শক্তিৰ বৰ্ণনা কৰিছে।

১৮৪৯ চনৰ ফেব্ৰুৱাৰী মাহত 'চন্দ্ৰ সূৰ্যৰ গ্ৰহণ লগা কথা' প্ৰকাশ পায়। ইয়াত ১৮৪৯ চনৰ ফেব্ৰুৱাৰী মাহত হ'বলগা সূৰ্য গ্ৰহণৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে। পৃথিৱীৰ কোন কোন দেশত এই গ্ৰহণ দেখা যাব। গ্ৰহণৰ সময় আৰু কিমান সময়লৈকে এই গ্ৰহণ থাকিব তাৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এই বৰ্ষৰে নৱেম্বৰ মাহত 'নানা সম্ভাৰ' নামৰ আন এটি বিজ্ঞান বিষয়ক প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ হয়। এই প্ৰবন্ধটোত পৃথিৱীৰ ভৌগোলিক বাতাবৰণৰ কথা উল্লেখ কৰাৰ লগতে পৃথিৱীৰ আকৃতি, পৰিধি, বিভিন্ন ঠাইত বসবাস কৰা জীৱ-জন্তু, বিভিন্ন দেশৰ মানুহৰ জীৱন ধাৰণ প্ৰণালী সম্পৰ্কে বহুলভাৱে বৰ্ণনা কৰিছে।

১৮৫১ চনৰ ছেপ্টেম্বৰ মাহৰ সংখ্যাত 'কুট অংকৰ গণনা' শীৰ্ষক প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পায়। ইয়াত কিছুমান অংক সোধা হৈছে আৰু তাৰ উত্তৰসমূহো সন্নিবিষ্ট কৰা হৈছে। এই সংখ্যাত সন্নিবিষ্ট 'ঘূৰণীয়া মাটিৰ হিচাব' প্ৰবন্ধটিত ঘূৰণীয়া মাটিৰ হিচাপ কেনেদৰে কৰিব পাৰি তাৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে।

১৮৫২ চনৰ অক্টোবৰ মাহত প্ৰকাশ পোৱা 'আকৰ্ষন আৰু তাপৰ বিসই' শীৰ্ষক আলোচনাটোত পৃথিৱীৰ আকৰ্ষণ আৰু তাপৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। আকৰ্ষণৰ কথাত পৃথিৱীৰ ইটোৱে-সিটোৱে কেনেদৰে টানি থাকে আৰু তাপৰ কথাত উল্লেখ কৰিছে যে যদি তাপ নাথাকিলেহেঁতেন আকৰ্ষণৰ বাবে পৃথিৱীখন লোহাৰতকৈও কঠিন হৈ পৰিলেহেঁতেন।

১৮৫৩ চনৰ এপ্ৰিল মাহৰ সংখ্যাত 'বায়ুৰ গধুৰ পৰিমাণ কৰা জোখৰ যন্ত্ৰৰ কথা' প্ৰকাশ পায়। ইয়াত টেলিস্ক'প আৱিষ্কাৰৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে। এই টেলিস্ক'পৰ সহায়ত দূৰৈৰ বস্তু চাব পাৰি। সেই বিষয়েও উল্লেখ কৰিছে। মিজলবাৰ্গ নগৰত এজন চাচমা নিৰ্মাণ কৰা লোক আছিল। তেওঁৰ পুত্ৰই এদিন দুটা আঙুলিত দুডোখৰে কাঁচ লৈ কেতিয়াবা আগলৈ আৰু পাছলৈ অনা নিয়া কৰি আছিল। হঠাতে সি ঘৰৰ ওপৰত থকা কুকুৰাৰ মূৰ্তিটো অতি সুন্দৰ ৰূপত দেখা পালে। সি দেউতাকক কথোটো কোৱাত দেউতাকেও সেইটো দেখা পালে আৰু কাচ দুটকুৰা এনেদৰে স্থাপন কৰিলে যে তাৰ পৰা ওচৰ আৰু দূৰৈৰ বস্তু দেখিব

পাৰি। পৰৱৰ্তী সময়ত 'গেলিলিঅ' কেনেদৰে টেলিস্ক'প আৱিষ্কাৰ কৰিলে সেই বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে—

‘...আৰু তক্ষানি দেশৰ গালিলিয় নামৰ এজন বিদ্যাবন্তে এই কথা সুনি, সেই ৰূপে জন্তু নিৰ্মাণ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। পাচে তেওঁ এটা ডাংগৰ দিঘল চুংগাৰ দুই মুখত দো ডোখৰ কাঁচ সুমাই এক দূৰৈলৈ দেখা যন্তু নিৰ্মাণ কৰিলে।’^১

১৮৫৪ চনৰ মে’ মাহৰ সংখ্যাত ‘চকুৰ বিৱৰণ’ প্ৰকাশ পায়। ইয়াত মানুহৰ চকুৰ বিষয়ে ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে। মানুহৰ চকুযুক্ত থকা বিভিন্ন উপাদানসমূহৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এই বৰ্ষৰে মে’ মাহৰ সংখ্যাত ‘জুৰাও গিয়ানি লোকলৈ নিবেদন’ শীৰ্ষক অন্য এটি প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পায়। এই প্ৰবন্ধটোত কিছুমান বিজ্ঞানমূলক ৮ টা প্ৰশ্নৰ উত্তৰ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। চৰাইয়ে গাৰ তাপত কণী উমনি দি পোৱালি জগায়, কিন্তু জুইৰ তাপত কিয় কণীৰ পৰা পোৱালি নজগে, বৰষুণ কেই প্ৰকাৰৰ, গৰু আৰু মানুহক ঈশ্বৰে সৃষ্টি কৰিলে কিন্তু মানুহক জ্ঞান দিলে, গৰু কিয় অজ্ঞানী হ’ল? এনেধৰণৰ আঠটা প্ৰশ্নৰ অৱতাৰণা কৰিছে। পৰৱৰ্তী ছেপ্টেম্বৰ

মাহৰ সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা ‘তাপ মাপক জন্তু’ত থৰ্মমিটাৰে কেনেদৰে তাপ জুখিব পাৰি, থৰ্মমিটাৰৰ কেনেদৰে নিৰ্মাণ কৰা হৈছিল সেই বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে।

১৮৫৫ চনৰ নৱেম্বৰ মাহত ‘আকাশত থকা গ্ৰহবিলাকৰ কথা’ প্ৰকাশ পায়। ইয়াত এজন শিক্ষক আৰু ছাত্ৰৰ কথোপকথনৰ মাজেৰে আকাশত থকা তৰাবোৰৰ আকাৰ, সূৰ্যৰ আকাৰ, পৃথিৱীৰ পৰা সূৰ্যৰ দূৰত্ব আদিকে ধৰি বিভিন্ন বিষয় আলোচনা কৰিছে।

১৮৬০ চনৰ আগষ্ট মাহত ‘শনি গ্ৰহৰ বিৱৰণ’ প্ৰকাশ পায়। আলোচনাটোত শনি গ্ৰহৰ বিষয়ে প্ৰথমে এনেদৰে

উল্লেখ কৰিছে—

‘শনিগ্ৰহ আন সকলো গ্ৰহতকৈ দুৰ্বিনৰ দ্বাৰায় দেখিবলৈ অতি সুন্দৰ আৰু বৰ বিভূষিত, কিয়নো এই গ্ৰহ মেৰায় চাৰিওফালে আঙ্গঠীৰ নিচিনা কটি বন্ধনী আছে, সি অতি সুন্দৰ আৰু কান্তিমন্ত প্ৰকাশিত।’^২

প্ৰবন্ধটোত উল্লেখ আছে যে শনিগ্ৰহে ২৯ বছৰ ৬ মাহত এবাৰকৈ সূৰ্যক প্ৰদক্ষিণ কৰে, সূৰ্যৰ পৰা শনিগ্ৰহৰ দূৰত্ব ১০০,০০০,০০০ মাইল আৰু পৃথিৱীতকৈ শনিগ্ৰহ ৮৫০ গুণমান ডাঙৰ। তাৰ মধ্যৰেখা ৭৯,০০০ মাইল দীঘল। কিন্তু পৃথিৱীত শনিগ্ৰহ ডাঙৰ যদিও গধুৰ নহয়। শনিগ্ৰহৰ ৮ টা উপচন্দ্ৰ আছে আৰু সূৰ্যৰ ৰশ্মি পৃথিৱীতকৈ শনি গ্ৰহত ৯০ গুণ কম। এই বৰ্ষৰে আগষ্ট মাহত ‘চন্দ্ৰৰ বিৱৰণ’ নামৰ আন এটি বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় লেখা প্ৰকাশ পায়। প্ৰবন্ধটোত চন্দ্ৰৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে উল্লেখ কৰিছে যে গুৰু প্ৰতিপদৰ পৰা অমাবস্যাৰলৈ ১৯ দিন, ১২ ঘণ্টা, ৪৪ মিনিট, ৩ ছেকেণ্ড সময় লাগে। ইয়াকে চান্দ্র মাহ বোলে। চন্দ্ৰই ২৭ নক্ষত্ৰত গতি কৰিবলৈ ২৭ দিন ৭ ঘণ্টা ৪০ মিনিট সময়ৰ প্ৰয়োজন। এই সময়ক এক নাক্ষত্ৰিক মাহ বোলে। ইয়াৰ লগতে জ্যোতিষীসকলে চন্দ্ৰৰ গমন পথক কেনেদৰে ভাগ কৰিছে, চন্দ্ৰৰ দূৰত্ব সম্পৰ্কত বিস্তৃতভাৱে উল্লেখ কৰিছে।

০.৫ উপসংহাৰ :

অৰুণোদয়ে অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্যক চহকী কৰিছে। অৰুণোদয়ৰ পাততে আনুষ্ঠানিকভাৱে বিজ্ঞান চৰ্চা আৰম্ভ হয় বুলিব পাৰি। প্ৰকাশিত প্ৰতিটো প্ৰবন্ধৰে বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা বিৰাজমান। এই প্ৰকাশিত এই বিজ্ঞান লেখাসমূহে সেই সময়ত অসমৰ মানুহক নতুন চিন্তা চেতনাৰ ভাৱনা গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছিল। □

পাদটীকা :

- ১। প্ৰাক স্বাধীনতা কালৰ অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য, পৃঃ ৩৮
- ২। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ১৫
- ৩। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ১৬
- ৪। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ৩৪
- ৫। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ৩৩
- ৬। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ১৮
- ৭। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ৫
- ৮। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃঃ ২৯

প্ৰসংগ গ্ৰন্থ :

- ১। মহন্ত, পৰমানন্দ (সম্পা.) : প্ৰাক স্বাধীনতা কালত অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ডিচেম্বৰ, ২০২৬
- ২। নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.) : অৰুণোদয়, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ছেপ্টেম্বৰ, ১৯৮৩
- ৩। শৰ্মা, হেমন্ত কুমাৰ : অসমীয়া সাহিত্যত দৃষ্টিপাত, বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯ সংখ্যক সংস্কৰণ, নৱেম্বৰ, ২০২১

আকাশবাণীৰ সংগীত শিল্পীৰূপে ভূপেন হাজৰিকা : এটি বিশ্লেষণ



চয়নিকা সভাপণ্ডিত

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
কাৰ্বি আংলং, ডিফু (অসম)-৭৮২৪৬২
(সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
বিমলা প্ৰসাদ চলিহা মহাবিদ্যালয়, নগৰবেৰা)
☎ ৯১০১০৩৪০০৯
✉ chayanikasp009@gmail.com



ড° কুসুম্বৰ বৰুৱা

মুৰব্বী, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
কাৰ্বি আংলং, ডিফু (অসম)-৭৮২৪৬২
☎ ৯৪৩৫২০৮৪৯৮

সংক্ষিপ্তসৰ :

গণসংযোগৰ মাধ্যম সমূহৰ ভিতৰত ৰেডিঅ' অন্যতম। অসমীয়া সংগীত(লোকগীতৰ পৰা আৰম্ভ কৰি আধুনিক গীতলৈকে) জনপ্ৰিয় কৰি তোলাত ৰেডিঅ'ৰ ভূমিকা অনস্বীকাৰ্য। আকাশবাণীৰ সংগীত শিল্পীৰূপে ভূপেন হাজৰিকাৰ আছে এক সুকীয়া পৰিচয়। আকাশবাণীৰ যোগেদি প্ৰচাৰিত অসমীয়া সংগীতৰ ইতিহাসক ভূপেন হাজৰিকাই অগবঢ়োৱা অৱদানে বিশেষ মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, সংগীত পৰিচালক, গায়ক হিচাপে ভাৰতবৰ্ষত জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা এই ব্যক্তিজনে ১৯৪৮ চনত স্থাপন হোৱা অসমৰ প্ৰথমটো অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ-‘গুৱাহাটী শ্বিলং’ লৈ অগবঢ়োৱা অৱদান অপৰিসীম। অনাতাঁৰযোগে প্ৰচাৰ হোৱা সংগীত, কথিকা, নাটক, সংগীতালেখ্য- এই প্ৰত্যেকটো দিশতে তেওঁৰ দখল মনকৰিবলগীয়া। অসমীয়া আধুনিক গীতৰ জনপ্ৰিয়কৰণত ভূপেন হাজৰিকাৰ ভূমিকা আৰু অৱদান কেনেধৰণৰ আছিল এই পত্ৰখনত সেই বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা হ’ব।

বীজ শব্দ :

আকাশবাণী, ভূপেন হাজৰিকা, অনাতাঁৰ গীত, আধুনিক অসমীয়া সংগীত।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

সংগীত সাধনাৰ অন্য এক নাম। সংগীতে সুনিৰ্দিষ্ট ধ্বনি তথা শব্দ-সুৰৰ সংযোগত মানুহৰ আবেগ তথা অনুভূতি প্ৰকাশ কৰে। এই সংগীতৰ সুৰ জনসাধাৰণৰ কাষ চপাই নিয়াত গণমাধ্যমৰ ভূমিকা মনকৰিবলগীয়া। এই মাধ্যমসমূহৰ ভিতৰত বেতাঁৰ যন্ত্ৰ হৈছে অন্যতম। নব্বৈ দশকৰ আৰম্ভণিতে ভাৰতবৰ্ষত স্থাপন হোৱা এই মাধ্যমটোৱে এক নতুন জাগৰণ সৃষ্টি কৰিছিল। এই জাগৰণে অসমত পোখা মেলে ১৯৪৮ চনত। অসমত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ স্থাপন হোৱাৰ আগতে ভাৰতবৰ্ষত মুঠ ছটা কেন্দ্ৰ আছিল- দিল্লী, কলিকতা, বোম্বাই(এতিয়া মুম্বাই), মাদ্ৰাছ, পেছোৱাৰ আৰু ত্ৰিছিনাপল্লী (দাস, পৃ-১২)। এই কেন্দ্ৰসমূহৰ ভিতৰত কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ যোগে অসমীয়া ভাষাত অনুষ্ঠান প্ৰচাৰৰ সুবিধা প্ৰদান কৰা হয়। প্ৰথম অৱস্থাত কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা অসমীয়া অনুষ্ঠানৰ সময় আছিল মাত্ৰ দহ মিনিট। এই দহ মিনিটৰ সময়ছোৱাত কেৱল এটি বিৱৰণি অনুষ্ঠানহে প্ৰচাৰ কৰা হৈছিল। সেই সময়খিনিত ভাৰতবৰ্ষ পৰাধীন হৈ আছিল। সেয়েহে তেওঁলোকৰ পৰামৰ্শ অনুসৰি চৰকাৰী কাৰ্যসূচী, বাৰ্তাসমূহ ভাৰতবৰ্ষৰ চোকে-কোণে প্ৰচাৰ হোৱাৰ সুবিধাৰ্থে কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ যোগে অসমীয়া ভাষাত বিৱৰণি অনুষ্ঠানৰ অনুমতি প্ৰদান কৰিছিল। পৰবৰ্তী সময়ত এই অনুষ্ঠানটো দহ মিনিটৰ পৰা আধাঘণ্টা সময়লৈ বৃদ্ধি পালে। আধাঘণ্টা সময়লৈ বৃদ্ধি পোৱা অসমীয়া অনুষ্ঠানটোত বা-বাতৰিৰ লগতে অসমৰ সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ দিশসমূহ ৰাইজৰ মাজলৈ নিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছিল।

সেই অনুষ্ঠানটিত প্ৰচাৰ হোৱা কাৰ্যসূচী সমূহৰ ভিতৰত আটাইতকৈ জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰা অনুষ্ঠান হৈছে- সংগীতৰ অনুষ্ঠানটি। অনাতাঁৰ অনুষ্ঠানসমূহ শুনিবলৈ ৰাইজে ঘৰে ঘৰে ৰেডিঅ' ক্ৰয় কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। প্ৰথম অৱস্থাত কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰই গ্ৰাম'ফোন ৰেকৰ্ডৰ গীতসমূহ অসমীয়া অনুষ্ঠানত প্ৰচাৰ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। গ্ৰাম'ফোন ৰেকৰ্ডৰ জনপ্ৰিয় গীতসমূহৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য আছিল ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত। পৰবৰ্তী সময়ত অৰ্থাৎ ১৯৪৩ চনত কলিকতাৰ অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ শিল্পী নিৰ্বাচন বাবে বাছনি পৰীক্ষাৰ আয়োজন কৰা হয়। সেই বাছনি পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ হোৱা দুজন ব্যক্তি হৈছে- বেলা মুখাৰ্জী (প্ৰথম) আৰু দিলীপ শৰ্মা (দ্বিতীয়) (দাস, পৃ-৯)। মাত্ৰ দুজন শিল্পীয়ে আৰম্ভ হোৱা এই যাত্ৰাই বৰ্তমান ৭৫ বছৰতকৈও অধিক সময় অতিক্ৰম কৰিলে। অসমত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ স্থাপন হোৱা সময়ৰ পৰা বৰ্তমানলৈকে মাধ্যমটোক সাফল্যমণ্ডিত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বহুতো অভিজ্ঞ ব্যক্তিৰ অপৰিসীম কষ্ট আৰু ত্যাগৰ কাহিনী অন্তৰ্ভুক্ত হৈ আছে। সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত এজন ব্যক্তিক অসমীয়া শ্ৰোতাই আৰু কেন্দ্ৰটোয়ে কেতিয়াও পাহৰিব নোৱাৰে। সেই ব্যক্তিজন হৈছে ভূপেন হাজৰিকা।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

‘আকাশবাণীৰ সংগীত শিল্পীৰূপে ভূপেন হাজৰিকাঃ এটি বিশ্লেষণ’ শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ আঁৰত কেইটামান নিৰ্দিষ্ট উদ্দেশ্য নিহিত হৈ আছে। সেয়া হৈছে-

- অসমীয়া অনাতাঁৰ গীতৰ এটি পৰিচয় আগবঢ়োৱা।
- অসমীয়া অনাতাঁৰ আধুনিক গীতৰ প্ৰচাৰ, প্ৰসাৰ তথা জনপ্ৰিয়কৰণত ভূপেন হাজৰিকাৰ ভূমিকা বিচাৰ কৰা।
- ভূপেন হাজৰিকাৰ অনাতাঁৰ গীতৰ নান্দনিক দিশ সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

অসমত অনাতাঁৰ সংগীতৰ যাত্ৰাক এক অন্যন্য মাত্ৰা দিয়াত অসমৰ গণ্য মান্য ব্যক্তিসকলে আজিকোপতি যৎপৰোনাশ্ৰি চেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে। এই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত ভূপেন হাজৰিকা অন্যতম। তেওঁৰ অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰলৈ যি অৱদান সেই সম্পৰ্কে এখন গৱেষণা পত্ৰত গোটেইখিনি অন্তৰ্ভুক্ত কৰি শেষ কৰিব নোৱাৰি। সেয়েহে অসমত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ সময়ত তেখেতে অসমীয়া সংগীতৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ আগবঢ়োৱা যি অৱদান, সেই পৰিসৰতে আবদ্ধ থাকিম।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

‘আকাশবাণীৰ সংগীত শিল্পীৰূপে ভূপেন হাজৰিকাঃ এটি বিশ্লেষণ’ শীৰ্ষক বিষয়টোৰ সম্পৰ্কত তথ্য সংগ্ৰহ কৰোঁতে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন কৰা হৈছে। প্ৰাপ্ত তথ্য সমূহ বিশ্লেষণ কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু ঐতিহাসিক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

১.০ বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ :

১.০১ ভূপেন হাজৰিকাৰ এটি চমু পৰিচয় :

অদ্বিতীয় কণ্ঠ আৰু গায়নশৈলীৰে অসমীয়া ৰাইজৰ মাজত প্ৰতিষ্ঠিত এইজন ব্যক্তিৰ জন্ম হয় ১৯২৬ চনৰ চেপ্তেম্বৰ ৮ মাহত নীলকান্ত হাজৰিকা গৃহত আৰু শান্তিপ্ৰিয়া হাজৰিকা ঔৰষত। তেওঁ সাতজন ককাই-ভাই আৰু তিনিগৰাকী বাইভনীৰ মাজত আটাইতকৈ ডাঙৰ। পিতৃ নীলকান্ত হাজৰিকা পেছাত এজন স্কুলৰ উপপৰিদৰ্শক আছিল। পৰবৰ্তী সময়ত ছাব ডেপুটি কালেক্ট পদলৈ পদোন্নতি হয়। ভূপেন হাজৰিকাই স্কুলীয়া জীৱন আৰম্ভ কৰে গুৱাহাটী ভৰলুমুখত অৱস্থিত সোণাৰাম স্কুলত। পৰবৰ্তী সময়ত কলেজিয়েট স্কুলৰ ছাত্ৰ হিচাপে অধ্যয়ন কৰে। পিতৃৰ চাকৰি সূত্ৰে পৰিয়ালটো অসমৰ ইমূৰৰ পৰা সিমূৰলৈ ঘূৰি ফুৰিব লগাত পৰিছিল। তেনেদৰে ভূপেন হাজৰিকা তেজপুৰৰো ছাত্ৰ হয়। ১৯৪০ চনত তেওঁ মেট্ৰিক পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ হয়। তাৰপিছত তেওঁ কটনত নামভৰ্তি কৰে। কটন কলেজৰ পৰা আই-এ পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ হৈ কাশী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা ৰাজনীতি বিষয়ত ১৯৪৪চনত স্নাতক আৰু ১৯৪৬ চনত স্নাতকোত্তৰ ডিগ্ৰী লাভ কৰে। ভূপেন হাজৰিকাই সৰুৰে পৰা সংগীতৰ পৰিৱেশৰ মাজতে ডাঙৰ দীঘল হৈছিল। এই সময়ছোৱাতে তেওঁ লৰোঁনাথ বেজবৰুৱা, জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা, বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ দৰে ব্যক্তিসকলৰ সংস্পৰ্শলৈ আহে। মাত্ৰ দহ বছৰ বয়সতে তেওঁ গ্ৰামোফোন ৰেকৰ্ডত গীত পৰিৱেশন কৰি ভূয়সী প্ৰশংসা বুটলিবলৈ সক্ষম হয়। তাৰ লগতে ভূপেন হাজৰিকা কলেজীয়া শিক্ষাৰ সময়ৰে পৰা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ সৈতে জড়িত হৈ পৰে।

১.০২ আকাশবাণী কেন্দ্ৰ আৰু ভূপেন হাজৰিকা :

অসমত আকাশবাণী কেন্দ্ৰ স্থাপন হয় ১৯৪৮ চনৰ ১ জুলাইত। সেই সময়ত অসমত দুটা কেন্দ্ৰ স্থাপন কৰা হৈছিল- এটা শ্বিলং আনটো গুৱাহাটী। তেতিয়া অসমৰ ৰাজধানী আছিল শ্বিলং আৰু আনহাতে অসমৰ সাংস্কৃতিক ৰাজধানী আছিল গুৱাহাটী। সেয়েহে অসমৰ ৰেডিঅ’

কেন্দ্ৰটোৱে যুটীয়া নাম পালে- ‘শিলং-গুৱাহাটী কেন্দ্ৰ’। শিলঙৰ কেন্দ্ৰটো মুকলি কৰিছিল সেই সময়ৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী গোপীনাথ বৰদলৈয়ে আনহাতে গুৱাহাটীৰ কেন্দ্ৰটো মুকলি কৰিছিল সেই সময়ৰ অসমৰ প্ৰচাৰ বিভাগৰ মন্ত্ৰী মৌলানা মহম্মদ তৈয়বুল্লাই। গুৱাহাটী কেন্দ্ৰটোৰ অধ্যক্ষ বা নিৰ্দেশিকা হিচাপে নিয়োগ কৰা হ’ল মেহেৰা মাছানীক। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰটো মুকলি কৰাৰ দিনটোত বিশেষ কিছুমান অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰা হৈছিল। সেই অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত আছিল- ভূপেন হাজৰিকাৰ সংগীতালৈখ্য ‘অসমীৰ মাত’ আৰু দয়াল চন্দ্ৰ সূত্ৰধাৰৰ ‘বৰগীত’। অসমৰ সংগীতক অসমীয়া ৰাইজৰ মাজলৈ নি প্ৰচাৰ, প্ৰসাৰ আৰু সংৰক্ষণ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত যিকেইজন লোকে সেই সময়ছোৱাত আহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল, সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত- উৰেইদুল লতিফ বৰুৱা, পুৰুষোত্তম দাস, ভূপেন হাজৰিকা, ফণী তালুকদাৰ, বীৰেন ফুকন অন্যতম। এইখিনিতে এটা কথা মনকৰিবলগীয়া যে আকাশবাণী কেন্দ্ৰটোৰ যোগে যিমান অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ কৰা হৈছিল, সেই অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত ৬০ শতাংশই আছিল সংগীতৰ অনুষ্ঠান। অনাতাঁৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা সংগীতৰ অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত- বন্দনা, সুৰৰ শৰাই, এই মাহৰ শিল্পী আৰু গীতিমালিকা অন্যতম। অনুষ্ঠানসমূহৰ পৰাই অসমীয়া ৰাইজে ভক্তিমূলক গীত, লোকগীত, দেশপ্ৰেমমূলক গীত, আধুনিক গীত আদিৰ সোৱাদ লবলৈ আৰম্ভ কৰে। ইয়াৰ উপৰিও দুয়োটা কেন্দ্ৰতে নাটক, বক্তৃতা অনুষ্ঠান, বিজ্ঞান আলোচনীৰ অনুষ্ঠান, পৰিয়াল কল্যাণ অনুষ্ঠান, সাক্ষাৎকাৰ, কথিকা আদি কৰি নানান ধৰণৰ অনুষ্ঠানৰ প্ৰচাৰ আৰম্ভ কৰা হ’ল। আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰ আৰু ভূপেন হাজৰিকাৰ সম্পৰ্ক অতি ঘনিষ্ঠ। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰযোগে প্ৰচাৰ হোৱা অসমীয়া অনুষ্ঠানত আৰম্ভণিৰ কালছোৱাৰে পৰা ভূপেন হাজৰিকাই সংগীতৰ ক্ষেত্ৰখনত সংগীতশিল্পীৰূপে অৱদান আগবঢ়াই আহিছে। কলেজীয়া ছাত্ৰ হিচাপে অধ্যয়নতঃ ভূপেন হাজৰিকাই কলিকতাৰ এইচ.এম.ভি(হিচ মাষ্টাৰ ভইছ)নামৰ গ্ৰামোফোন ৰেকৰ্ডত গীত পৰিৱেশন কৰি ৰাইজৰ সমাদৰ বুটলিবলৈ সক্ষম হৈছিল। অসমৰ সংগীত শিল্পীসকলে কলিকতাৰ এইচ.এম.ভি (হিচ মাষ্টাৰ ভইছ)ত গ্ৰামোফোন ৰেকৰ্ডত গীতত বাণীবদ্ধ কৰিব পৰাটো সহজ নাছিল। ভূপেন হাজৰিকাই দহ বছৰ বয়ষতে এই সুবিধা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। এই সম্পৰ্কে দিলীপ কুমাৰ দত্তই এদেৰে মন্তব্য দিয়ে-

“১৯৩৬ চনত অসম সাহিত্য সভাৰ সংগীত সম্মিলনীত তেওঁ বিষ্ণু প্ৰসাদ ৰাভা আৰু আন আন শিল্পীৰ স’তে ৰাভাই লিখা আৰু সুৰ দিয়া ‘সুৰৰ দেউলৰে ৰূপৰে শিকলি ভাঙি সমবেত গীত পৰিৱেশন কৰে। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত পৰিৱেশনৰ পাৰদৰ্শিতা দেখি জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই গ্ৰাম’ফোন ৰেকৰ্ডত বাণীবদ্ধ কৰিবলৈ ওলোৱা নাটত গীত গাবলৈ শিশু ভূপেনক নিৰ্বাচিত কৰে। শোণিত কুঁৱৰী নাটত ‘সুৰৰ দেউলৰে ৰূপৰে শিকলি ভাঙি’ গীতটি দহবছৰীয়া শিশু ভূপেনৰ কণ্ঠত বাণীবদ্ধ কৰে। আমি জনাত ৰেকৰ্ডত বাণীবদ্ধ হোৱা ভূপেন হাজৰিকাৰ এইটোৱেই প্ৰথম গীত।”

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণু ৰাভাৰ দৰে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ পূজাৰীসকলে ভূপেন হাজৰিকাৰ প্ৰতিভাক শিশু অৱস্থাতে চিনি পাইছিল। লাহে লাহে সময় বাগৰি গ’ল, শিশু ভূপেন ডাঙৰ হ’ল। তেওঁৰ প্ৰতিভাৰ উমান পোৱা ব্যক্তিসকলে কলিকতাৰ অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰলৈ নিমন্ত্ৰণ কৰি জনালে। সেই সময়ত কলিকতালৈ অহা প্ৰতিভাশালী অসমীয়া ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ অসমীয়া অনুষ্ঠান পৰিচালনা কৰা ব্যক্তিসকলে এক সুন্দৰ প্লেটফৰ্মৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। তাতে সকলোৱে নিজা প্ৰতিভাসমূহ বিকাশ কৰে। এই সুযোগৰ অধিকাৰী হয় ভূপেন হাজৰিকা। আধাঘণ্টাৰ বাবে প্ৰচাৰ হোৱা অসমীয়া অনুষ্ঠানটিত কথিকা, গীত, বিৱৰণী, বাতৰি আদি প্ৰচাৰ কৰা হৈছিল। সেই সময়ছোৱাত কথিকা অনুষ্ঠানৰ দায়িত্বত আছিল বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য, ফণী তালুকদাৰ, নৰেশ ৰাজখোৱা আৰু সংগীতৰ অনুষ্ঠানৰ দায়িত্বত আছিল ভূপেন হাজৰিকা আৰু পৰাগধৰ চলিহা। অসমৰ গুণী-জ্ঞানী ব্যক্তিসকলে এই প্ৰচেষ্টাতে এখন ৰেডিঅ’ ফ’ৰাম খুলি লৈ প্ৰতিভাশালী ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক ৰেডিঅ’ৰ সৈতে পোনপটীয়াকৈ যোগাযোগ কৰাৰ সুবিধা প্ৰদান কৰিছিল(দাস, পৃ-১৮)। এনেদৰে ১৯৪৮ চনৰ ৩০ জুনলৈকে কলিকতাৰ অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ যোগে অসমীয়া অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ হৈ থাকে। ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰিলে। দ্বিখণ্ডিত ৰূপত পোৱা ভাৰতবৰ্ষক লৈ ভাৰতীয় লোকে অসন্তুষ্টি প্ৰকাশৰ পৰা বাট মুকলি নহওঁতে ১৯৪৮ চনৰ ৩০ জানুৱাৰীত মহাত্মা গান্ধীৰ মৃত্যুয়ে সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষক জোকাৰি থৈ যায়। ১৯৪৮ চনৰ ৩০ জুনলৈকে যিহেতু কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ যোগে অসমীয়া অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ হৈ আছিল, সেয়েহে গান্ধীজীৰ মৃত্যুৰ বা-বাতৰিৰ লগতে সংগীতৰ অনুষ্ঠানো কেন্দ্ৰটোত প্ৰচাৰ হ’বলৈ ধৰিলে। সেই

সময়ছোৱাত কলিকতা অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ সংগীতৰ অনুষ্ঠানৰ দায়িত্বত থকা ভূপেন হাজৰিকাই দুটি অসমীয়া গীত ৰাইজক উপহাৰ দিলে। সেই ক্ষেত্ৰত আকাশবাণী কলিকতা কেন্দ্ৰত কৰ্মৰত পুৰুষোত্তম দাসে ভূপেন হাজৰিকাক গীত ৰচনা আৰু পৰিৱেশন কৰাত যথেষ্ট হেচাঁ প্ৰয়োগ কৰিছিল। তাৰ ফলশ্ৰুতিতে হাজৰিকাৰ কলমেৰে নিগৰি আহিল গীত।

তাৰে প্ৰথমটো হৈছে-

তেৰশ চৌৱল্লৰ মাথৰে মাহতে
ষোল্লৰে বিয়লি বেলা,
পৃথিৱীৰ শিৰতে ব্ৰজপাত পৰিলে
বাপুজী ক'লৈনো গ'লা।

(দাস, পৃ-৪১)

দ্বিতীয়টো গীত-

মহাত্মাই হাসি কোলে ৰাম ৰহিম
বান্ধ ৰাম ৰহিম,
একেলগে একে সঙ্গ ৰান্ধৰ পাতিম
হায় হায় ৰাম ৰহিম
হায় হায় ৰাম ৰহিম।

(দাস, পৃ- ৪১)

এইদুয়োটা গীতৰ যোগে ভূপেন হাজৰিকাই ভাৰতবৰ্ষত মহাত্মা গান্ধীৰ স্থান, দেশপ্ৰেম আৰু ভাৰতীয়ৰ প্ৰতি গান্ধীজীৰ সংবেদনশীল মনোভাৱ প্ৰকাশ কৰিছে। গান্ধীজীয়ে ভাৰতবৰ্ষত থকা প্ৰত্যেকজন ব্যক্তিক সমদৃষ্টিৰে চাইছিল। হিন্দু-মুছলমানৰ মাজত বিভেদ হোৱাটো তেওঁ কেতিয়াও বিচৰা নাছিল। দুয়োটা গীততে ভূপেন হাজৰিকাই মহাত্মা গান্ধীৰ নিজা দৃষ্টিভংগীক ৰাইজৰ মাজলৈ লৈ যোৱাৰ চেষ্টা কৰিছিল। ভূপেন হাজৰিকা এই ক্ষেত্ৰত সফল হৈছে।

এনেদৰে পূৰ্ণগতিত আকাশবাণী কলিকতা কেন্দ্ৰৰ যোগে অসমীয়া অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ হৈ আহিল। তেনেতে সময় আহিল নতুন অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ স্থাপনৰ সুখবৰ। কেন্দ্ৰ চৰকাৰে ভাৰতবৰ্ষৰ বিশেষ কিছুমান ঠাইত আকাশবাণী কেন্দ্ৰ স্থাপন কৰাৰ সিদ্ধান্ত ল'লে। সেই ঠাইসমূহৰ ভিতৰত অসম অন্তৰ্ভুক্ত হ'ল। কলিকতাত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰত অসমীয়া অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ কৰা ব্যক্তিসকলৰ মাজত আনন্দৰ পৰিৱেশে বিৰাজ কৰিলে। খবৰটো প্ৰাকশ হোৱাৰ কিছুদিনৰ পিছত কলিকতা কেন্দ্ৰত কৰ্মৰত অসমীয়া কেইজনমান ব্যক্তিক অসমত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ স্থাপনৰ যো-যা চলাবলৈ বুলি অসমলৈ পঠিওৱা হয়। সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত উৰেইদুল লতিফ বৰুৱা আৰু পুৰুষোত্তম দাস অন্যতম। অসমলৈ

আহি তেওঁলোকে এচাম নতুন প্ৰতিভাশালী যুৱকৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰিলে। সেই সময়ত তেওঁলোকে কেইজনমান বিশেষ ব্যক্তিক নিয়োগ কৰিলে। সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত ভূপেন হাজৰিকা হৈছে অন্যতম।

১৯৪৮ চনতেই উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত 'অল ইণ্ডিয়া ৰেডিঅ'ৰ দুটা শাখা একেলগে আৰম্ভ হৈছিল। এটা শ্বিলঙত আৰু আনটো গুৱাহাটীত। গুৱাহাটীত কমিছনাৰৰ পুৰণি বঙলাটো ভাঙি-ছিঙি লৰালৰিকৈ ষ্টুডিঅ'টো কৰিছিল আৰু শ্বিলঙত এম.এল.এ হোষ্টেলৰে কোনোবা এটা ঘৰত কৰা হ'ল। সেই সময়তে অল ইণ্ডিয়া ৰেডিঅ'ত তেওঁ এটা চাকৰি পালে 'প্ৰোগ্ৰেম এছিষ্টেণ্ট' হিচাপে (হাজৰিকা, পৃ- ৭০)।

গুৱাহাটী অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ নিচেই চালুকীয়া অৱস্থাৰ পৰা ভূপেন হাজৰিকাই কাম কৰাৰ সুযোগ পাইছিল। প্ৰথম অৱস্থাত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰত কৰ্মৰত হৈ থকা বিষয়ববীয়াসকলে সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'ব লগাত পৰিছিল। তাৰ ভিতৰত এটা প্ৰধান সমস্যা হৈছে- শিল্পী তথা কলা-কুশলীৰ অভাৱ। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ বিভিন্ন সৰু-বৰ ঠাইসমূহলৈ বিষয়ববীয়াসকল নিজে গৈ শিল্পী বিচৰাত লাগিল। শিল্পী-তথা কলা-কুশলী বিচাৰোঁতে তেওঁলোক বিভিন্ন অভিজ্ঞতা হৈছিল। এই ক্ষেত্ৰত নিজৰ অভিজ্ঞতা সম্পৰ্কে ভূপেন হাজৰিকাই এনেদৰে কয়-

“অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰটোৰ কাৰণে আমি প্ৰথম অৱস্থাত শিল্পীৰ অভাৱত বৰ কষ্ট কৰিবলগা হৈছিল। সেই সময়ত কেন্দ্ৰটোৰ ডাইৰেক্টৰ আছিল উৰেইদুল লতিফ বৰুৱা। আমি শিল্পী বিচাৰি অতি বিলাসী এখন আমেৰিকান কাৰ লৈ সেই সময়ত উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ প্ৰায়বোৰ ঠাইলৈ যাব লগা হৈছিল। অসমীয়া আৰু জনগোষ্ঠীয় শিল্পী বিচাৰি ফুৰিছিলোঁ।”

সেই সময়ত অসমত দুটা ঠাইত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ স্থাপন হৈ আছিল। এটা শ্বিলঙত আৰু আনটো গুৱাহাটীত। ১৯৭২ চনৰ জানুৱাৰী মাহলৈকে অসমৰ ৰাজধানী আছিল শ্বিলং। সেই বছৰতে শ্বিলং আৰু গুৱাহাটী পৃথক পৃথক ৰাজ্য হৈ পৰে। আমাৰ আলোচনাৰ বিষয়টো সেই ঘটনাৰ বহু আগৰ।

সেই সময়ত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ দুটা অসমীয়া সংগীতৰ অনুষ্ঠানে বিশেষ জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিছিল। প্ৰথম অৱস্থাত যিহেতু অনুষ্ঠানসমূহ সংৰক্ষণ কৰাৰ ব্যৱস্থা নাছিল, সেয়েহে সকলো অনুষ্ঠান পোনপটীয়াকৈ প্ৰচাৰ কৰা হৈছিল। এটা অনুষ্ঠান যদি প্ৰচাৰ কৰা হয় গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ পৰা অন্যটো অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ হয় শ্বিলং কেন্দ্ৰ পৰা। এনেদৰে শ্বিলং-

গুৱাহাটী কেন্দ্ৰত প্ৰচাৰ হোৱা সংগীতৰ অনুষ্ঠানৰ যোগসূত্ৰই ভূপেন হাজৰিকাৰ জীৱনলৈ লৈ আহিছিল প্ৰথম প্ৰেমৰ শিহৰণ। শ্বিলং কেন্দ্ৰৰ পৰা গীত পৰিৱেশন কৰা এগৰাকী গাভৰুৰ সৈতে ভূপেন হাজৰিকাৰ প্ৰেম আৰম্ভণি হয়। এই সম্পৰ্কে সেই সময়ৰ কেন্দ্ৰ সঞ্চালক মেহুৰা মাছনীয়ে কয়-
“বহুতো আৰ্টিষ্টে প্ৰেম কৰা দেখিছে, কিন্তু দুটা ৰেডিঅ’ ষ্টেচনৰ পৰা গানেৰে প্ৰেম কৰা দেখা নাই।”^৩

অৱশ্যে তেওঁৰ প্ৰেমে পূৰ্ণতা নাপালে। সেই সময়ত দুখন বেলেগ বেলেগ ঠাইৰ মানুহে ইজনে সিজনক নেদেখাকৈ প্ৰেম কৰাটো সহজ কথা নাছিল। আধৰুৱা প্ৰেমৰ বেদনাক তেওঁ এটি গীতৰ মাজেৰে শ্ৰোতাক এনেদৰে প্ৰকাশ কৰিছে -

কাৰ আকাশৰ ৰামধেনুখনি
ক’তে বা লুকায়
কাৰ সপোনৰ ফুলনিখন
মৰহি শুকায়ে।
জীৱনৰে লুইতত নাও মেলি দে
আশাৰ তুলি লৈ পাল
একোকে নেপালে পায়ো হেৰুৱালে
নিছিগে মায়াৰে জাল
হায় হায় হায়

উৰি গুছি গ’ল লুইতপৰীয়া
চাকৈ-চকোৱা হাল
অকলশৰীয়া নিশাটি জনাই
ৰ’বনো ক’ত বাট চাই
নিশা এন্ধাৰত পঁজাতে চিঞৰি
উষাটি বলিয়া হ’ল
ওলাই জোনৰ হাঁহিটি দেখি
উষাকো পাহৰি গ’ল।
মানৱী জলধিত পুৱাতে উঠিলে
জনমত কোলাহ’ল
নিমাতী গধূলি আহিলে কুঁৱলী
মৰণৰে মহাকাল।

(হাজৰিকা, পৃ- ৭৭)

১৯৪৮ চনৰ পৰা ১৯৪৯ চনৰ চেপ্তেম্বৰ মাহলৈকে তেওঁ অসমৰ অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰলৈ যথেষ্ট অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে।

অনাতাঁৰ সাংস্কৃতিক জগতত এই সংগীত শিল্পীজনৰ কেইবাটাও পৰিচয় আছে বা আমি পাওঁ। সেই সমূহৰ ভিতৰত- কণ্ঠশিল্পী, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, সংগীত প্ৰযোজক আদি। অসম তথা দেশ-বিদেশৰ আলোচনী, বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠানৰ পৰা প্ৰকাশিত বাতৰি কাকত আদিত বহুসংখ্যক গীত প্ৰকাশিত হৈছে। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা সংগীত জগতখনত তেওঁৰ এই দিশসমূহ কেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে, সেই বিষয়ে আলোচনাৰ অৱকাশ নোহোৱা নহয়।

১.০৩ আকাশবাণীৰ গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, কণ্ঠশিল্পী, সংগীত প্ৰযোজক ভূপেন হাজৰিকা :

অনাতাঁৰ সাংস্কৃতিক জগতত এই সংগীত শিল্পীজনৰ কেইবাটাও পৰিচয় আমি পাওঁ। সেই সমূহৰ ভিতৰত- কণ্ঠশিল্পী, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, সংগীত প্ৰযোজক আদি। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা সংগীত জগতখনত তেওঁৰ এই দিশসমূহ কেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে, সেই বিষয়ে আলোচনাৰ অৱকাশ নোহোৱা নহয়। ভূপেন হাজৰিকাই তেওঁৰ যাযাবৰী জীৱনকালত অসমীয়া অনাতাঁৰ সংগীত জগতখনলৈ নিত্য নতুন সৃষ্টি কৰি থৈ গ’ল। এনেকুৱা বহু সৃষ্টি তেওঁ কৰি থৈ গৈছে, যিসমূহৰ মাজেৰে তেওঁৰ জীৱনৰ বিন্দু বিন্দু অভিজ্ঞতাসমূহক কলমৰ চিয়াঁহীৰে শব্দ, সুৰ, কণ্ঠত পাওঁ। তেওঁ অনাতাঁৰযোগে প্ৰচাৰ হোৱা গদ্যসমূহত এক স্বকীয় ভাষাশৈলী আছে। তেওঁৰ গীতৰ বিষয়বস্তুসমূহক কলাত্মকভাৱে উপস্থাপন কৰি জনসাধাৰণক এক নতুন দিগন্তৰ সূচনা কৰাত গুৰুত্ব দিয়ে। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ সৈতে তেওঁ প্ৰতিষ্ঠাৰ সময়ৰে পৰা মৃত্যু পৰ্যন্ত জৰিত হৈ থাকে। এই সময়ছোৱাত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰলৈ নিজস্ব প্ৰকাশ ভংগীৰে যিসমূহ গীত অসমৰ ৰাইষক দি থৈ গ’ল, তাৰে কেইটামান উল্লেখযোগ্য গীত তলত আলোচনাৰ লগতে আগবঢ়োৱা হ’ল-

১) বাণীবদ্ধ হোৱাৰ সময়- ২.০৪.১৯৭৯

অনুষ্ঠান- সুৰৰ শৰাই

কণ্ঠ- ভূপেন হাজৰিকা

সুৰ- ভূপেন হাজৰিকা

গীতিকাৰ-ভূপেন হাজৰিকা

সংগীত প্ৰযোজনা- ভূপেন হাজৰিকা

স্থায়ী-তুমি বিয়াৰ নিশাৰ শয়ন পাটিত এপাহি
ৰজনীগন্ধা

তোমাৰ মূল্য এনিশাৰ

পিছৰ দিনা সূৰ্য উঠাৰ পিছৰ বাহী শয্যাত
 তুমি মূল্যহীন হাৰ।
 অন্তৰা-তুমি ফুলিছিলি আশাৰে বহুত আঁচনিকে লৈ
 গন্ধ বিহীন কোঠাতে তুমি সুৰভি বিলাবলৈ
 মালীয়ে তোমাক ছিঙাৰ পিছত কিয় কৰা হাহাকাৰ।
 সঞ্চয়ী - ফুলসজ্জাৰ পাটগাভৰুৱে তোমাৰেই সজালে
 কইনা দৰাই ক'ত আলফুলে তোমাকেই পৰশিলে
 পিছে পুৱাতে তোমাক সাৰি-পুচি দেখোঁ
 নিবিচাৰে এটি বাৰ
 তুমি বিয়াৰ নিশা শয়ন পাটীৰ এপাহি বজনী
 গন্ধা.....

(সংগ্ৰহ- আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ পুথিভঁৰাল,
 ২০২৫ চন)

এই গীতটিত ভূপেন হাজৰিকাই নাৰী জীৱনৰ বাস্তৱ
 ৰূপটোক বিয়াৰ ফুলসজ্জাৰ নিশাৰ বজনীগন্ধা নামৰ এপাহ
 ফুলৰ সৈতে তুলনা কৰা হৈছে। এগাৰকী নাৰীয়ে অজস্র
 সপোন লৈ বিয়া হৈ এখন ঘৰলৈ আহে। সমাজৰ বীৰি-
 নীতি সকলো মানি ধুনীয়াকৈ সজাই-পৰাই অনা কইনাজনী
 সময় অতিবাহিত হোৱাৰ লগে লগে গুৰুত্বও কমি আহিবলৈ
 ধৰে। জীৱনটো কঠিন বাস্তৱক নতুন কইনা এগৰাকীয়ে
 মানি লৈ ওৰেতো জীৱন এনেদৰেই অবিবাহিত কৰে।
 বজনীগন্ধাৰো মূল্য সেই কইনাগৰাকীৰ জীৱনৰ দৰে।
 ফুলসজ্জাৰ নিশাৰ পিছত মৰহি ফুলপাহক আদৰ কোনেও
 নিদিয়ে।

২) অনুষ্ঠান-গীতিমালিকা

কণ্ঠ-ভূপেন হাজৰিকা

গীতিকাৰ-ভূপেন হাজৰিকা

বাণীবদ্ধ সময়-০২-১১-১৯৭৯

স্থায়ী- মহাবাহু ব্ৰথাপুত্ৰ মহামলিনৰ তীৰ্থ

ক'ত যুগ ধৰি আহিছে প্ৰকাশী

সময়ৰ অৰ্থ

অন্তৰা- সুদূৰ কান্ধা কুঞ্জৰে পৰা বাৰভূঞা আহিছিলে

সেই বংশতে শংকৰদেউ ইয়াতেই জনমিল

মৰুৰ দেশৰে আজান ফকীৰে মধুৰ জিকিৰ ৰচিলে

দিগ্ভীৰ-দিলোৱৰে আহি হস্তীপুথি আঁকিলে

পঞ্চদশীৰ টেগ বাহাদুৰে ধৰমৰ সেতু গঢ়িলে

সময়ৰ দেখুৱালে ক'ত প্ৰকাশ স্বতঃস্ফূৰ্ত

(সংগ্ৰহ- আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ পুথিভঁৰাল,

২০২৫ চন)

এই গীতটিত কণ্ঠশিল্পী ভূপেন হাজৰিকাই অসমৰ
 তিনিখন বিশেষ ছবি দাঙি ধৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে- ঐতিহাসিক
 মিলন, সাংস্কৃতিক সমন্বয় আৰু ধৰ্মীয় সংহতি। জাতি, ধৰ্ম,
 বৰ্ণ, সংস্কৃতিৰ মিলনভূমি অসমক এই গীতটিত বৰ্ণনা
 কৰিবলৈ বিচাৰিছে আৰু এই ক্ষেত্ৰত তেওঁ সফল হৈছে।

৩) অনুষ্ঠান- গীতিমালিকা

কণ্ঠ-ভূপেন হাজৰিকা

গীতিকাৰ-ভূপেন হাজৰিকা

বাণীবদ্ধ সময়-০২-১১-১৯৭৯

স্থায়ী- বহাগ মাথোঁ এটি নহয়

নহয় বহাগ এটি মাহ

অসমীয়া জাতিৰ ই অয়ুস ৰেখা

গণ জীৱনৰ ই সাহ

অন্তৰা- বহাগ মাথোঁ বিহতলী নহয়

নহয় ই নিশা ফুলা ফুল

বহাগেই আনি দিয়ে সমদল গতি

নেওচি জাতি কুল

ই প্ৰভেদক কৰেহি নাশ

গীতিকাৰ ভূপেন হাজৰিকাই এই গীতটিত বহাগ মাহক
 এটা সাধাৰণ ঋতু হিচাপে অভিহিত কৰা নাই। বহাগক
 অসমীয়া জাতিৰ জীৱনৰেখা আৰু কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ সমন্বয়ৰ
 প্ৰতীক বুলি অভিহিত কৰিছে। গুৱাহাটী অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ
 যোগে প্ৰচাৰ হোৱা গীতসমূহৰ ভিতৰত ই এটি কালজয়ী
 গীত।

১.০৪ ভূপেন হাজৰিকাৰ অনাতাঁৰ গীতত নান্দনিক মূল্য :

আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা ভূপেন
 হাজৰিকাৰ প্ৰত্যেকটো অনাতাঁৰ গীতৰে মাদকতা সুকীয়া।
 ভাৱ, ভাষা, শব্দবাছনি, সুৰ এই দিশৰে পৰা তেওঁৰ গীতসমূহ
 প্ৰভাৱশালী। তেওঁৰ অনাতাঁৰযোগে প্ৰচাৰ হোৱা গীতসমূহ
 কেৱল মনোৰঞ্জনৰ আহিলা আছিল তেনে নহয়। ইয়াৰ
 যোগে প্ৰকাশিত হৈছিল অসমীয়া সমাজ জীৱন আৰু মানৱ
 জীৱনৰ এক বাস্তৱ প্ৰতিফলন। তেওঁৰ সৃষ্টিৰ আৰম্ভ বক্তব্য
 আছিল মানৱতাবাদী, বিশ্বজনীন আৰু সমন্বয়ৰ মনোভাব
 গঢ়ি তুলি। ভূপেন হাজৰিকাই অনাতাঁৰ গীতত অসমৰ
 সংস্কৃতি, পৰম্পৰা এই দিশসমূহকো স্থান দিয়াৰ যত্ন কৰে।
 তেওঁৰ কণ্ঠই অসমীয়াৰ পৰিচয়।

ভাৱ- আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰ
 হোৱা ভূপেন হাজৰিকাৰ অনাতাঁৰ গীতসমূহৰ কিছুগীত
 তেওঁ সমসাময়িক সংঘাত, কিছু গীত লুইতৰ পাৰৰ ঐতিহ্য

আৰু সমন্বয়ক আৰু কিছু গীত লুইতৰ পাৰৰ অনাগত সুন্দৰ
ভৱিষ্যতৰ আগাজনি দিছে। ইয়াৰ উপৰিও তেওঁ অসমীয়া
জাতিক জাতীয় চেতনাৰে উদ্ধুদ্ধ কৰিবলৈ কিছুমান
দেশপ্ৰেমমূলক গীতো লিখি, গাই মানুহক এখন
সৰ্বাংগসুন্দৰ অসম গঢ়াৰ সপোন দেখিছিল। অনাতাঁৰ যোগে
প্ৰচাৰ হোৱা গীতসমূহত তাৰ উদাহৰণ দেখা পোৱা যায়-

কণ্ঠ- ভূপেন হাজৰিকা

কথা- ভূপেন হাজৰিকা

সংগীত ব্যৱস্থাপনা- ভূপেন হাজৰিকা

স্থায়ী-অগ্নিজুগৰ ফিৰিঙটি মই

নতুন অসম গঢ়িম

নতুন অসম গঢ়িম

সৰ্বহাৰাৰ সৰ্বস্ব পুনৰ ফিৰাই আনিম

নতুন অসম গঢ়িম

নতুন অসম গঢ়িম

অন্তৰা- নকঙ্কালৰ অস্ত্ৰ সাজি

শোষণকাৰীক বধিম

সৰ্বহাৰাৰ সৰ্বস্ব

পুনৰ ফিৰাই আনিম

নতুন অসম গঢ়িম

নতুন অসম গঢ়িম।

তেওঁৰ প্ৰত্যেকটো গীততে এটা নতুন বাৰ্তা থাকে।
সেই বাৰ্তাই অসমীয়া ৰাইজৰ মনত মানবতাবোধৰ শক্তি
উদয় কৰে আৰু দেশপ্ৰেম জগাই তুলে।

বিষয়বস্তু :

আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা
ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ বিষয়বস্তু অত্যন্ত বৈচিত্ৰময়।
তেওঁৰ গীতত মানবতাবাদ, সামাজিক সমস্যা, দেশপ্ৰেম
আৰু জাতীয় চেতনা, প্ৰকৃতি চিত্ৰ, শ্ৰমজীৱী মানুহৰ চিত্ৰ,
লোকসংস্কৃতি আৰু ঐতিহ্যৰ গভীৰ প্ৰকাশ দেখা পোৱা
যায়। সেইসমূহৰ ভিতৰত অসমৰ প্ৰধান নদী ব্ৰখপুত্ৰক
বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা গীতৰ সংখ্যা সৰহ।
সেইসমূহৰ ভিতৰত অনাতাঁৰ শ্ৰোতাসকলৰ শুনি ভালপোৱা
এটি প্ৰিয় গীত হ'ল-

গীতিকাৰ- ভূপেন হাজৰিকা

কণ্ঠ-ভূপেন হাজৰিকা

সুৰ-ভূপেন হাজৰিকা

অনুষ্ঠান- আধুনিক গীত

স্থায়ী- আজি ব্ৰখপুত্ৰ হ'ল বহিমান

মনৰ দিগন্তত ধোৱা উৰে

আকাশত পপীয়া তৰা উৰে

পদে পদে কৰে কাক অপমান

স্থায়ী- এই বহি নহয় শ্যামলীবৰণ

বহি ত্ৰেণধাৰিত লক্ষ্য মনৰ

পুঞ্জীভূত নোপোৱাৰ বেদনা

আগ্নেয়গিৰি সমান

বিষ্ণু প্ৰসাদ ৰাভা, জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু
ভূপেন হাজৰিকা এই তিনিজন ব্যক্তিৰ গীতত মহাবাহু
ব্ৰখপুত্ৰই যিমানখিনি স্থান পাইছে বা দিছে, সেই স্থান অন্য
শিল্পী তথা কলা-কুশলীয়ে দিব পৰা নাই। এই গীতটিত
ভূপেন হাজৰিকাই ব্ৰখপুত্ৰৰ হেঙুল বৰণৰ সৌন্দৰ্যৰ কথা
উল্লেখ কৰাৰ লগতে তেওঁ লুইতৰ সমস্যাৱলী সম্পৰ্কেও
অৱগত কৰিছে। বিদ্যুৎ বেগেৰে অহা ব্ৰখপুত্ৰৰ বিধ্বংসী
ৰূপটোৱেও গীতিকাৰজনক আকৰ্ষণ নকৰাকৈ থকা নাই।
এই গীতটিত ব্ৰখপুত্ৰৰ বহিমান অৰ্থাৎ জ্বলি উঠা ব্ৰখপুত্ৰৰ
কথা কে জনসাধাৰণৰ পুঞ্জীভূত ক্ষোভৰ লগতে অধিকাৰৰ
বাবে চলোৱা সংগ্ৰামৰ কথা ব্যক্ত কৰিব বিচাৰিছে।

শব্দবাহু নি :

ভাষা মানুহৰ ভাৱ প্ৰকাশৰ মাধ্যম। ভাষাৰ একক
শব্দক ভূপেন হাজৰিকাই এক শক্তিশালী গণমাধ্যম হিচাপে
ব্যৱহাৰ কৰি তেওঁৰ গীতসমূহত সৰ্বসাধাৰণ লোকৰ সুখ-
দুখ, হাঁহি-কান্দোৰ ছবি ফুটাই তুলিবলৈ যত্ন কৰিছিল।
সাৰ্বজনীন আৰু জনমুখী ভাষাৰে বিশ্বমৈত্ৰীৰ ভাৱ প্ৰকাশ
কৰাৰ লগতে তেওঁ সামাজিক ন্যায়ৰ আৰু মানৱতাবাদৰ
বহি প্ৰকাশ কৰাৰ চেষ্টা কৰে। তেওঁ শব্দ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত
যথেষ্ট সচেতন আছিল। শব্দসমূহ আছিল- মুক্ত আৰু
নিৰ্ভীক। তেওঁৰ তেনেধৰণৰ এটি গীতসমূহৰ ভিতৰত এই
গীতটি হৈছে অন্যতম-

কঁপি উঠে কিয় তাজমহল

কঁপি উঠে কিয় তাজমহল

তাজমহল... তাজমহল

তাজমহল... তাজমহল...

তাজমহল... (সংগ্ৰহ- আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰ)

এই গীতটিতৰ শব্দ আৰু অৰ্থ এই তিনিওটা দিশৰ
পৰাই যথেষ্ট প্ৰভাৱশালী আৰু হৃদয়স্পৰ্শী।

গাঁথনিক দিশ- গীতসমূহত সাধাৰণতে কেইবাটাও স্তৰ
আমি দেখিবলৈ পাবোঁ। স্থায়ী, অন্তৰা, সঞ্চাৰী আৰু আভোগ।
আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা ভূপেন

হাজৰিকাৰ গীতসমূহত আভোগৰ অংশ থকা গীতৰ সংখ্যা কম। তেওঁৰ সৰহসংখ্যক গীতত স্থায়ী, অন্তৰা আৰু সঞ্চাৰী এই তিনিটা অংশৰে সমাপ্ত হয়। স্থায়ী হৈছে গীতৰ একেবাৰে প্ৰথম অংশ। অন্তৰা বুলি গীতৰ স্থায়ীৰ পিছৰ অংশক বুজা যায়। অন্তৰা অংশতে গীতটিৰ মূল বিষয়বস্তু বা সুৰৰ প্ৰকাশ ঘটে আৰু ইয়াৰ পিছৰ অংশত অৰ্থাৎ সঞ্চাৰী অংশত গীতটিৰ নতুনত্ব আনি স্থায়ী অংশ পুনৰ পৰিৱেশন কৰি শেষ কৰা হয়। আকাশবাণী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰ হোৱা ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহত এই তিনিটা অংশৰে গীত পোৱা যায়।

২.০০ উপসংহাৰ :

প্ৰথম অৱস্থাত শ্বিলং আৰু তাৰ এমাহৰ পিছতে গুৱাহাটী কেন্দ্ৰৰ সৈতে প্ৰোগ্ৰেম এচিষ্টেণ্ট হিচাপে কৰ্মৰত এই ব্যক্তিজনে ১৯৪৯ চনৰ চেপ্তেম্বৰ মাহত অধ্যয়নৰ বাবে

অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ পৰা চাকৰিত অব্যাহতি দি আমেৰিকালৈ উৰা মাৰে। ভূপেন হাজৰিকাই তেওঁৰ অদ্বিতীয় কণ্ঠেৰে ৰেডিঅ'ৰ সহস্ৰ স্ৰোতাক মোহচ্ছন্ন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। তেওঁ গায়ক, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, সংগীত পৰিচালকৰূপে অসমীয়া সংগীতক আগুৱাই নিছিল, যাৰ বাবে আকাশবাণী কেন্দ্ৰৰ যোগে প্ৰচাৰিত সংগীতৰ জগতখনত অদ্বিতীয় হৈ থাকিব। তেওঁৰ গীতসমূহ জনপ্ৰিয় হোৱাৰ কেইটামান বিশেষ কাৰণ আছে, সেইদিশসমূহ হৈছে—একক কণ্ঠ, ভাৱৰ সৈতে সামঞ্জস্য হোৱাকৈ উপস্থাপন, অসমৰ লোকসংস্কৃতিক দিশ-লোকভাষা, গ্ৰাম্যজীৱন, সাধাৰণ জনতাৰ প্ৰতি মৰম-ভালপোৱা আকাশবাণীৰ আৰম্ভণিৰ কালছোৱাত জনপ্ৰিয় হোৱাত অবিহণা যোগাইছে। তেওঁৰ এটা সুকীয়া স্থান আকাশবাণী যোগে প্ৰচাৰ হোৱা গীতত চিৰদিনৰ বাবে ৰৈ যাব। গীতত থৈ গৈছে। □

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

১। দত্ত, দিলীপ কুমাৰ, ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ, পৃ-১

২। হাজৰিকা, ভূপেন, মই এটি যাযাবৰ, পৃ-৭৪

৩। হাজৰিকা, ভূপেন, মই এটি যাযাবৰ, পৃ-৭৬

গ্ৰন্থপঞ্জী :

দত্ত, দিলীপ কুমাৰ। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ। গুৱাহাটীঃ বনলতা, ২০১৪

দাস, সূৰ্য। অসমত আকাশবাণীৰ ইতিহাস। গুৱাহাটীঃ অসম বুক ট্ৰাষ্ট, ২০২২

মজুমদাৰ, পৰমানন্দ। ভূপেন হাজৰিকা গীতৰ পৰা আমাৰ প্ৰতিনিধিলৈ। গুৱাহাটীঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১২

হাজৰিকা, ভূপেন। মই এটি যাযাবৰ। গুৱাহাটীঃ এছ. এইছ. শৈক্ষিক ন্যাস, ২০২২

হাজৰিকা, ভূপেন। প্ৰসঙ্গঃ সুন্দৰৰ। গুৱাহাটীঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০০৫

‘শৰ কটা মানুহ’ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মনপা জনজাতিৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ ছবি : এক অধ্যয়ন



অমূল্য ৰাভা

সংক্ষিপ্তসৰ :

সমাজ এখন সুচাৰুৰূপে পৰিচালিত হ’বলৈ কিছুমান নীতি-নিয়ম, আচাৰ-ব্যৱহাৰ সেই সমাজৰ লোকে পালন কৰিবলগীয়া হয়। এই ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আদিৰ জৰিয়তে সমাজখনৰ বহুকেইটা দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটে। অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যলৈ ভিন্ন সময়ত অৱদান আগবঢ়োৱা জন-জাতীয়মূলৰ ঔপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত য়েছে দৰজে ঠংচি অন্যতম। তেখেতৰ উপন্যাসৰাজিৰ মাজেৰে প্ৰধানকৈ অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজখন প্ৰতিফলিত হৈছে। তেওঁলোকৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ সৈতে জড়িত পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বণ, সামাজিক সংস্কাৰ, ধৰ্মীয় লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস আদি উপন্যাসসমূহৰ মাজেৰে সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। য়েছে দৰজে ঠংচিৰ ‘শৰ কটা মানুহ’ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন দিশৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। ঘাইকৈ মনপা জনজাতিৰ সমাজখনত মৃতদেহ সংকাৰক লৈ কেনেধৰণৰ বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে তাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে উপন্যাসখনৰ মাজত। তাৰ উপৰি মনপা জনজাতিৰ সমাজখনত লোকউৎসৱ, বিবাহ, জন্ম, খাদ্যাভ্যাস আৰু ভ্ৰমণক কেন্দ্ৰ কৰি কেনেধৰণৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ প্ৰচলন হৈ আহিছে সেই সম্পৰ্কে এই আলোচনাৰ পৰা প্ৰকাশ ঘটিব।

বীজ শব্দ :

শৰ কটা মানুহ, মনপা জনজাতি, লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাস আদি।

অৱতৰণিকা :

বিষয়ৰ পৰিচয় :

অসমীয়া সাহিত্যত উপন্যাসৰ জন্মৰ পাছৰে পৰা ভিন্ন বিষয়বস্তু আৰু ভাৱধাৰাৰে উপন্যাস সৃষ্টি হৈ আহিছে। সামাজিক, ৰাজনৈতিক, জীৱনীমূলক, বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ জীৱন আধাৰিত আদি বিভিন্ন ধাৰাৰে উপন্যাস ৰচিত হৈ আহিছে। অসম তথা উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় সমাজসমূহক বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ ঊনবিংশ শতিকাৰ পৰাই উপন্যাস ৰচনাৰ পৰম্পৰা এটি গঢ় লৈ উঠিছে। অসমৰ মিচিং, কাৰ্বি, বড়ো, নগাসকলৰ সমাজ জীৱনৰ লগতে অৰুণাচলৰ কেইবাটাও জনগোষ্ঠীৰ সমাজ জীৱনক আধাৰ কৰি ঔপন্যাসিকসকলে বহুকেইখন উপন্যাস ৰচনা কৰিছে। অৰুণাচলৰ প্ৰধান জনজাতিসকলৰ ভিতৰত মনপাসকল অন্যতম। অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজখনক কেন্দ্ৰ কৰি উপন্যাস ৰচনা কৰা ঔপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত য়েছে দৰজে ঠংচি অন্যতম। তেখেতে সাহিত্যিক জীৱন আৰম্ভ কৰে ‘জোনবাই’ নামৰ কবিতাৰ জৰিয়তে। কবিতা আৰু নাটক লিখি সাহিত্যিক জীৱন আৰম্ভ কৰা য়েছে দৰজে

সহকাৰী শিক্ষক, অসমীয়া বিভাগ
বৰজুৰি, বোকাখাত
গোলাঘাট, অসম - ৭৮৫৬১২
☎ ৮৬৩৮২৮৯৭৭৫
✉ amulyarabha52578@gmail.com

ঠংচিয়ে পৰৱৰ্তী সময়ত ঔপন্যাসিক হিচাপেহে অধিক খ্যাতি লাভ কৰে। তেওঁ কেইবাখনো মূল্যবান উপন্যাস ৰচনা কৰি অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনক চহকী কৰিছে। তাৰ ভিতৰত-লিংগিক, চনম, মই পুনৰ জন্ম ল'ম, মৌন গুঁঠ মুখৰ হৃদয়, মিছিং, শৰ কটা মানুহ আদি। তেখেতে মৌন গুঁঠ মুখৰ হৃদয় উপন্যাসৰ বাবে সাহিত্য অকাদেমী বঁটা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়।

শৰ কটা মানুহ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ মাজত প্ৰচলিত লোকজীৱনৰ অলৌকিক কিস্কদন্তি, লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাস আদিৰ লগতে গ্ৰামীণ সমাজৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে। মানৱ জীৱনৰ সৈতে জড়িত হোৱাৰ হেতুকে সাধাৰণ লোকজীৱনৰ বিভিন্ন সমস্যা, পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, লোকজীৱনৰ মাজত প্ৰচলিত উৎসৱ-অনুষ্ঠান, পূজা-পাতল আদিৰ প্ৰভাৱ তেওঁলোকৰ সাহিত্যৰ মাজেৰেও প্ৰকাশ ঘটে। মনপা জনজাতিৰ লোকসকল ঘাইকৈ কৃষিভিত্তিক, লগতে তেওঁলোকৰ জীৱন ধাৰাও সহজ-সৰল। তেওঁলোকৰ সমাজখনত বিবাহ, উৎসৱ-পাৰ্ৱণ, শৰ সৎকাৰ কৰা ৰীতি-নীতিৰ ক্ষেত্ৰত থকা বিভিন্ন লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ ছবিখন উপন্যাসখনৰ মাজেৰে কেনেদৰে চিত্ৰিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

‘শৰ কটা মানুহ’ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মনপা জনজাতিৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ ছবি : এক অধ্যয়ন -শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা কৰিবলৈ লোৱাৰ অন্তৰালত কিছুমান উদ্দেশ্য নিহিত হৈ আছে সেই সমূহ তলত দিয়াধৰণৰ-

ক) উপন্যাসখনৰ মাজেৰে মনপা জনজাতিৰ শৰ সৎকাৰ কৰা পৰম্পৰাসমূহৰ বিষয়ে অৱগত কৰা।

খ) উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজ জীৱন সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

গ) অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ পৰম্পৰাগত লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাস সম্পৰ্কে স্পষ্ট আভাস দাঙি ধৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

সমাজভেদে ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আৰু লোকবিশ্বাস ভিন্ন হয়। সাধাৰণতে জন্মৰ পৰা মৃত্যুলৈকে

মানুহে বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰিবলগীয়া হয়। তাৰ উপৰি উৎসৱ-পাৰ্ৱণ, পূজা-পাতল আদিতো বিভিন্ন ৰীতি-নীতিৰ লগতে লোকাচাৰ পালন কৰিবলগীয়া হয়। জনজাতীয় সমাজত সাধাৰণতে ইয়াৰ প্ৰভাৱ অধিক। অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজখনেও বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাস মানি বিভিন্ন কৰ্ম সম্পাদন কৰি আহিছে। তাৰ ভিতৰত-জন্ম, মৃত্যু, উৎসৱ-পাৰ্ৱণ আদিয়েই প্ৰধান। পৰম্পৰা অনুসৰি এই লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসসমূহ পালনৰ ক্ষেত্ৰত কিছু পৃথকতা পৰিলক্ষিত হয়। গতিকে মনপা জনজাতিৰ সমাজখনে অতীতৰ পৰা পালন কৰি অহা বিভিন্ন লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

‘শৰ কটা মানুহ’ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মনপা জনজাতিৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ ছবি : এক অধ্যয়ন -শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। তদুপৰি তথ্য আহৰণৰ উৎস হিচাপে মূল উপন্যাসখনকে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১.০ বিষয়ৰ আলোচনা :

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চল বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠী আৰু বিচিত্ৰ সংস্কৃতিৰে ভৰপূৰ। উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ এখন প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশেৰে পৰিপূৰ্ণ ৰাজ্য হৈছে অৰুণাচল প্ৰদেশ। অৰুণাচল প্ৰদেশ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰে পৰিপূৰ্ণ এখন ৰাজ্য। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ এটি প্ৰধান জনগোষ্ঠী হৈছে মনপাসকল। সেই মনপাসকলৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতিৰ বিচিত্ৰ প্ৰকাশ ঘটিছে য়েছে দৰজে ঠংচিৰ শৰ কটা মানুহ উপন্যাসৰ মাজেৰে। মনপাসকলৰ মাজত থকা নিয়ম অনুসৰি তেওঁলোকে মৃত ব্যক্তিৰ শৰ দেহ এশ আঠ টুকুৰা কৰি কাটি নদীত উটুৱাই দিয়াৰ যি প্ৰথা প্ৰচলিত আছে তাৰ আধাৰতে এই উপন্যাসখনৰ পটভূমি গঢ় লৈ উঠিছে। ঔপন্যাসিকে অৰুণাচলৰ টাৱাঙত কৰ্মৰত হৈ থাকোঁতেই তেখেতে সেই দৃশ্য প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ সৌভাগ্য হৈছিল বুলি তেওঁ উপন্যাসখনৰ পাতনিতে উল্লেখ কৰিছে। অৱশ্যে উপন্যাসখনৰ পটভূমি উৰিষ্যাৰ মৃতকৰ শৰ সৎকাৰ কৰা হ'লেও মনপা জনজাতিৰ বিভিন্ন দিশ উপন্যাসখনত সামৰি লোৱা হৈছে। দৰাচলতে মনপা জনজাতিৰ বিভিন্ন দিশ উপন্যাসখনত সামৰি লোৱা হৈছে। মনপাসকলৰ সমাজৰ

প্ৰতিটো দিশেই ইয়াত প্ৰতিফলিত হৈছে।

উপন্যাসখনৰ মূল নায়ক দ্যাৰগে নৰবু ওৰফে আও থাম্পা। মনপা ভাষাত ‘আও’ মানে মাসা, বাক্য আৰু ‘থাম্পা’ মানে শৰ কটা মানুহ। ঘৈণীয়েক গুইচেংমু আৰু তাৰ আঁকৰী ছোৱালীক লৈয়েই সিহঁতৰ জীৱন। দ্যাৰগে নৰবুৰ ঘৰ গাঁৱৰ পৰা ভালেখিনি আঁতৰত, থামনাং অৰ্থাৎ শৰ কটা ঠাইৰ পাৰত বাঁহেৰে নিৰ্মিত আৰু সৰু জুপুৰীটো তাকো হাউলি পৰো পৰো অৱস্থা। অন্যান্য জনগোষ্ঠীৰ দৰেই মনপাসকলৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ বিভিন্ন ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বণ, খাদ্য, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, ধৰ্মীয় পৰম্পৰা এক বৈশিষ্ট্যৰে পুষ্ট। উপন্যাসখনৰ পটভূমি গঢ় লৈ উঠিছে মনপা জনজাতিৰ শৰ সৎকাৰ কৰা প্ৰথাৰ কেন্দ্ৰ কৰি। তেওঁলোকৰ মাজত বিশ্বাস আছে যে, জীয়াই থাকোঁতে ইজনে সিজনক বিভিন্ন ধৰণেৰে সহায় সহযোগ কৰে, ঠিক তেনেদৰে মৃত্যুৰ পিছতো যেন তেওঁলোকৰ মৃতদেহটো আনৰ উপকাৰ হয়, সেই লক্ষ্যৰে মৰাশটো এশ আঠ টুকুৰা কৰি কাটি নদীত উটুৱাই দি মাছ বা অন্যান্য প্ৰাণীৰ যাতে উপকাৰ হয়। এই কাম কৰা ব্যক্তিক মনপা সমাজত থাম্পা বুলি কোৱা হয়। ঘটনাক্ৰমত পৰি থাম্পাই শৰ কটা কাৰ্যকে বৃত্তি হিচাপে ল’লেও মনপা সমাজত বিশ্বাস আছে যে, মৰাশ কটা এটা বহুত পুণ্যৰ কাম। একোটা মৰাশ কটাৰ পুণ্য এবাৰ তীৰ্থ কৰি অহা পুণ্যৰ সমান। পৰম্পৰাগতভাৱে মনপা জনজাতিসকলৰ সমাজত মানি আহিছে যে, মৃত্যুৰ পাছত মৃতদেহটো টুকুৰা-টুকুৰাকৈ কাটি নৈত উটুৱাই নিদিলে আত্মাই সদগতি নাপায়। তেওঁলোকৰ সমাজত থাম্পাই মৃতদেহ কটাৰো নিয়ম আছে। পুৰুষ মহিলা ভেদে সুকীয়াকৈ মৃতদেহ সৎকাৰ কৰাৰ নিয়মো বেলেগ বেলেগ। মৃতদেহটো এশ আঠ ভাগত জুখি মাখি কাটি নৈত উটুৱাই দিয়া হয়। এশ আঠ টুকুৰা কৰাৰ সলনি হিচাপত ভুল কৰি কম বা বেছিকৈ কাটিলে মৃতকৰ আত্মাই স্বৰ্গলৈ যাব নোৱাৰে বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। এই সম্পৰ্কে উপন্যাসখনত বৰ্ণিত হৈছে এনেদৰে-

“মই এজন থাম্পা হয়। মৰা শ কটা মানুহ। তহঁতৰে শ কটা মানুহ। মোৰ হাতৰ পৰা তহঁতৰ নিস্তাৰ নাই। তহঁতক কাটিবৰ বাবে মই মোৰ দাখন ধাৰ কৰি থৈছোঁ। এশ আঠ টুকুৰা কৰাৰ সলনি এশ দুই টুকুৰা, নব্বৈ টুকুৰা বা মাত্ৰ চাৰি-পাঁচ টুকুৰা কৰিহে কাটিম যাতে তহঁতৰ আত্মা স্বৰ্গলৈ যাব নোৱাৰে।” (ঠংচি ১)

লোকবিশ্বাস অনুসৰি শৰ কটাটো যে, পুণ্যৰ কাম সেই কথা উপন্যাসখনত উল্লেখ পোৱা যায় এনেদৰে-

“মৃতকৰ শৰ কাটি নদীত পেলোৱাটো পুণ্যৰ কাম। পুণ্য কামৰ বাবে দাম লোৱাটো উচিত নহয়। গতিকে দ্যাৰগেনৰবুৱে কাৰো পৰা একো নোখোজে।” (ঠংচি ৯৪)

মনপাসকলৰ সমাজত এনেদৰে শৰ কটা প্ৰথাটো ধৰ্মীয় বিশ্বাস। থাম্পাসকলে এই কামৰ বাবদ কোনো ধৰণৰ মাননি দাবী নকৰে। তেওঁলোকে এই কামটোক পুণ্যৰ কাম বুলিয়েই বিশ্বাস কৰি লয়।

মনপাসকলৰ শৰ কটা প্ৰথাৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাসৰ উপৰিও উপন্যাসখনত আন বহুতো লোকবিশ্বাসৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। মনপাসকল সাধাৰণতে বৌদ্ধ ধৰ্মাৱলম্বী লোক। আন আন জনজাতিৰ দৰে মনপাসকলৰ মাজতো মংগল চোৱা প্ৰথা এক লোকবিশ্বাস হিচাপে উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে দেখিবলৈ পোৱা যায়। তেওঁলোকে লামাসকলৰ হতুৱাই মংগল চোৱাই বিভিন্ন কামৰ বাবে আগবাঢ়ে। সেই কথা উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“তাৰ ওপৰত এতিয়া লামাসকলৰ মংগল চাই দিয়া ভৱিষ্যতবাণীয়ে তীৰ্থৰ জীয়াই থকাৰ হাবিয়াসটোকে শেষ কৰি দিলে। দ্যাৰগেই এতিয়াও লামাসকলে মৌ চাই দিয়া ভৱিষ্যতবাণীৰ কথা গম পোৱা নাই। তাইৰ পৰাহে দেউতাক লেকিয়ে কথাটো লুকাব নোৱাৰি সকলো কথা চকুপানী টুকি টুকি কৈ দিলে। অকল এজন লামাই কোৱা কথা নহয়; যি লামাৰ তাতেই গৈছে, মংগল চোৱাইছে সকলোৱে একমুখে একে কথাই কৈছে।” (ঠংচি ৯৪)

মনপাসকলৰ তীৰ্থভ্ৰমণ সম্পৰ্কেও উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। বাংগাংজং নামৰ তীৰ্থস্থানখন মনপাসকলৰ এক পৱিত্ৰ তীৰ্থস্থান। তেওঁলোকৰ এই তীৰ্থস্থানখনৰ লগত বহুতো লোকবিশ্বাস জড়িত হৈ আছে।

“চেলা পাহাৰৰ ওচৰতে অৱস্থিত বাংগাংজং নাচ বা তীৰ্থস্থানখন। প্ৰবাদমতে পৃথিৱীত যেতিয়া প্ৰলয় হৈছিল, এই ঠাইতেই দেৱ-দেৱীসকলে আশ্ৰয় লৈছিল আৰু পৃথিৱীখন আকৌ নতুনকৈ সৃষ্টি কৰিছিল। তীৰ্থস্থানখনৰ ভিতৰত সোমোৱাৰ পাছত তীৰ্থযাত্ৰীসকলে পৱিত্ৰ মনেৰে বিভিন্ন স্থান পৰিভ্ৰমণ কৰি নিজৰ পাপ মোচন কৰাৰ যত্ন কৰিব লাগে। পিঁয়াজ, নহৰু, মূলা, মাংস আদি তাত খোৱা দূৰৰে কথা, সেই বিলাক বস্তু ঘৰত খায়ো যাব নালাগে।”

(ঠংচি ৩৮)

মনপা জনজাতিৰ সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন ধৰণৰ অসং তথা গালি-গালাজও উপন্যাসখনত চিত্ৰিত হৈছে। দ্যাৰগে মদৰ নিচাত ৰাস্তাৰে যাওঁতে নানান কথাকে আনক গালি পাৰি যোৱা উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা যায় এনেদৰে-

“গাহৰি বিলাক, লোকৰ উচিষ্ট চেলেকাহঁত, মৰাৰ পাছতহে তহঁতক ক’ত লৈ যায় মই চাম।... মোক তহঁতে কি ভাবিছ হা? কি ভাবিছ? মই তহঁতৰ দৰে কুকুৰ নেকি? পাইখানা প্ৰস্ৰাৱত লেটি-পেটি হৈ থকা গাহৰি নেকি? গাহৰি মাংস খোৱা নীচ নেকি? মোৰ দৰে এজন উচ্চ বংশজাত মানুহক তহঁতে কিয় ঘৃণা কৰিব লাগে? কিয় মোক ঘৰৰ বাৰাণ্ডাত ৰাখিব লাগে? মই তহঁতৰ ঘৰৰ ভিতৰত সোমালে মই কি তহঁতৰ খোৱা পাত্ৰ চুৱা কৰিম নেকি? তহঁতৰ মাইকী বিলাকো এদিন তহঁতে মোৰ হাতত গতাবই লাগিব। লেংটা কৰি তেতিয়া মই চাই লম সিহঁতকো। মোক বাৰাণ্ডাত বহি আৰাক খুৱায়। মোক সিহঁতে ঘিণ কৰে। এদিন নহয় এদিন সিহঁত মোৰ হাতত পৰিবই পৰিব। চাই লম মই তেতিয়া, ভালদৰে চাই লম। চাই থাকিবি।”(ঠংচি ৯)

ল’ৰা ছোৱালী জন্ম হোৱাৰ পাছত কোষ্ঠী চাই নামাকৰণ কৰা প্ৰথা মনপা সমাজতো প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায় উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে। দ্যাৰগে কোষ্ঠী চাবলৈ যোৱাৰ কথা উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“ঠিক আছে বাৰু। আজি লামাৰ তালৈ ময়েই যাম। ছোৱালীজনীৰ কেষ্ঠাৰ চাবলৈ দিম। লামাক যাচিবলৈ মোক দুবটল আৰাক, খাটা এটা আৰু শস্যৰ টোপোলা এটা বান্ধি দে।”(ঠংচি ৪৪)

মনপাসকলৰ মাজত মোমায়েক বা পেহীয়েকৰ ল’ৰা-ছোৱালীৰ মাজত বিবাহক প্ৰাধান্য দিয়া হয়। সেই বাবে বাল্যকালৰ পৰাই ৰিজোন্সাই তাইৰ ভাবি স্বামীৰূপে আও থাম্পাক ভাবি লৈছিল। আও থাম্পাক পেহীয়েকে কোৱা এই কথাষাৰত এই কথাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়।

“পেহীয়েকে লগ পালেই তাক কৈছিল, দ্যাৰগে বোপাই তই হেনো আজি ৰিজোন্সাই হাতত ধৰি জোৰকৈ মুচৰি দিলি। বেচেৰী হাতৰ বিষত আজি কেঁকাই আছে। তইনো তাইক এনেদৰে সদায় মাৰপিত, সদায় অত্যাচাৰ কৰি থাকিব লাগেনে? ময়েই তাইক কৈছিলো ডাঙৰ হ’লে তাই তোৰ লগত বিয়াত বহিব লাগিব বুলি। আমাৰ নিয়ম

মতে তইহে তাইক বিয়া কৰিব লাগে।”(ঠংচি ২৩)

মনপাসকলৰ মাজতো তিব্বতীসকলৰ দৰে বহুপতি বা বহুপত্নীৰ প্ৰথা প্ৰচলিত আছে। উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন ঠাইত এই কথাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়।

মনপাসকলৰ বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ উল্লেখ উপন্যাসখনত পোৱা যায়। উপন্যাসখনত উল্লেখ কৰা মনপাসকলৰ উৎসৱ-পাৰ্বণৰ ভিতৰত টোৰগ্যা আৰু লোচেৰ উৎসৱৰ বিস্তৃত বিৱৰণ পোৱা গৈছে। প্ৰকৃতিৰ মনোমোহা পৰিৱেশৰ মাজত টোৰগ্যা উৎসৱ পালন কৰা হয়। উৎসৱৰ সময়ত মেলাত মনপা ডেকা-গাভৰুৰ হৃদয়ৰ আদান-প্ৰদান হয়। মাজং খেলা-খেলি ভাগ্য নিৰ্ণয় কৰা, একেলগে মিলি চাংচাং আৰু আৰাক খোৱা আদি কাৰ্যই যেন টোৰগ্যা উৎসৱৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ।

“দূৰ দূৰ পাহাৰৰ খুটি বিলাকৰ পৰা নামি আহিব যাক আৰু ভেড়াৰ দল আৰু সিহঁতৰ ডিঙিৰ টিলিঙাত বাজি উঠিব টিং টিং সংগীত ৰোড ড্ৰেনড্ৰেন গছ বিলাকত থোপা-থোপে ৰঙা ফুল ফুলি উঠিব আৰু তেতিয়াই টাৱাং গোম্পাত আৰম্ভ হ’ব টোৰগ্যাৰ উৎসৱ। টোৰগ্যা উৎসৱত আপা পাকুৰ নৃত্য চাবলৈ, গেলং সকলৰ বিভিন্ন মুখানৃত্য চাবৰ বাবে, ৰিমপোচেৰ লগত ডাঙৰ ডাঙৰ লামাসকলৰ দ্বাৰা সম্পাদিত তান্ত্ৰিক যজ্ঞ চাবলৈ, জালিং ৰোদিং বজাই লামাসকলে কৰা শোভাযাত্ৰা চাবলৈ, ৰিমপোচেৰ পৰা উৎসৱৰ শেষ দিনা ৰাং ল’বলৈ, গোম্পাৰ চৌহদত মানুহৰ ভিৰ ভৰি পৰিব। গোম্পাৰ চৌহদৰ বাহিৰত মেলা বহিব। নিঙচাংলা, ব্লেটিং আদি পাহাৰ পাৰ কৰি অহা ভূটীয়া, চেলা পাৰ কৰি অহা দিৰাং মনপা, চোকচুম, দাকপানাং, পাংচেন আদি অঞ্চলৰ পৰা সমবেত হোৱা অসংখ্য মানুহে সেই মেলাত কিনা-বেচা কৰিব। হৃদয়ৰ ভাৱ বিনিময় কৰিব, একেলগে বহি বাংচাং আৰা খাব, মতা মানুহে মাজাং খেলি ভাগ্যৰ পৰিৱৰ্তনত যোগ দিব আৰু গাভৰু ছোৱালীবিলাকে ধুনীয়া ধুনীয়া ফুলবছা টোদুং পিন্ধি আপা পাকুৰ কাৰণে নিজৰ হৃদয় উজাৰি দিব।”(ঠংচি ৯৬)

টোৰগ্যা উৎসৱৰ পাছতে পৰম্পৰাগত ভাৱে লোচেৰ উৎসৱ পালন কৰা হয়। লোচেৰ মনপাসকলৰ প্ৰধান উৎসৱ বুলিব পাৰি। এই উৎসৱ পোন্ধৰ পৰা ত্ৰিশ দিন ধৰি উদযাপন কৰা হয়। মনপাসকলে বৰ উলহ-মালহেৰে আপোন উৎসৱ লোচেৰ পালন কৰে। সেই কথা উপন্যাসখনত বৰ্ণিত হৈছে এনেদৰে-

“টোৰগ্যাৰ আৰেগ, আপা পাকুৰ প্ৰতি থকা মোহ, দেহৰ পৰা মচ খাই যোৱাৰ আগতে আকৌ আহি পাব সকলোৰে আপোন, অতিকৈ চেনেহৰ নতুন বছৰৰ লোচৰ উৎসৱ। পোন্ধৰ-ত্ৰিশ দিন চলা আনন্দোৎসৱ। গাঁৱে-গাঁৱে, ঘৰে চলা লোচৰ মহোৎসৱ।” (ঠংচি ৯৭)

মনপাসকলৰ সমাজত টোৰগ্যা আৰু লোচৰ উপৰিও উপন্যাসখনত দালাই লামাৰ ভাৰত ভ্ৰমণৰ সময়ত আয়োজন কৰা বৌদ্ধধৰ্মৰ তান্ত্ৰিক পূজা কালচক্ৰ মহোৎসৱৰ কথাও প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা গৈছে। এই কালচক্ৰ মহোৎসৱত দালাই লামাৰ লগত অহা সন্যাসিনী নোৰলজোম আনে চাংগেৰ হাতৰ স্পৰ্শ মূৰত লৈ ৰাং অৰ্থাৎ আশীৰ্বাদ লাভ কৰিবলৈ হেজাৰ হেজাৰ ভক্তৰ মাজত ঠেলা-হেঁচা লগাৰ কথা উপন্যাসখনত উল্লেখ পোৱা যায়। এই মহোৎসৱত যিকোনো এটা বদ্ অভ্যাস ত্যাগ কৰিব লাগে। এই বিষয়ে উপন্যাসখনত পোৱা যায় এনেদৰে-

“কালচক্ৰ পূজাৰ সময়ত ভক্তগণে নিজৰ গাতে থকা তিনিটা বদগুণ বা অভ্যাস ত্যাগ কৰা উচিত। সেই বদ অভ্যাসসমূহ হ’ল- মদ ধপাত আদিৰ সেৱন, মাছ-মাংস ভোজন আৰু জুৱাৰ খেলৰ প্ৰতি আসক্তি। তদুপৰি এই পূজাৰ সময়ত বয়সস্থ যিসকল লোকে আগৰ পৰা হাতত মালা আৰু মনে চোকৰ (হাতেৰে ঘূৰাই থকা ধৰ্মচক্ৰ) তুলি লোৱা নাই, তেওঁলোকে মালা জপিবলৈ আৰু মনে চোকৰ ঘূৰাবলৈ আৰম্ভ কৰিব লাগে।” (ঠংচি ১২৪)

অন্যান্য জনজাতিৰ দৰে মনপাসকলেও কোনো ধৰ্মীয় মঠ মন্দিৰ আদিৰ নিৰ্মাণ কাৰ্য সম্পূৰ্ণ হ’লে পৰম্পৰাগতভাৱে পূজা পাতি শুভাৰম্ভ কৰে আৰু ধৰ্মবাণী পাঠ কৰে।

“মনে চোৰেতেন নিৰ্মাণ কাৰ্য সম্পূৰ্ণ হোৱা উপলক্ষে পতা পূজাত যোগদান কৰিবলৈ আৰু আনে চাংগে নোৰলজোমৰ ধৰ্মবাণী শুনি তীজৰ আশিষ ৰাং ল’বৰ বাবে থাম্পানাং আজি লোকে লোকাৰণ্য হৈ পৰিছে।” (ঠংচি ১৬৬)

মনপা জনজাতিৰ লোকসকলৰ মাজত বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ খাদ্যৰ প্ৰচলন আছে। তাৰ উপৰি বিভিন্ন উৎসৱ-পাৰ্বণত তেওঁলোকৰ মাজত পৰম্পৰাগত পানীয় আৰাকৰ প্ৰচলন চলি আহিছে। উপন্যাসখনত তেওঁলোকৰ খাদ্যাভ্যাসৰ কথা উল্লেখ আছে এনেদৰে-

“লোচৰত খাবৰ কাৰণে গোটেই বছৰ ধৰি সাঁচি ৰখা ভালতকৈ ভাল খাদ্য-সম্ভাৰ উলিয়াব মানুহ বিলাকে, যাকৰ ঘিউত বিবিধ সুস্বাদু খাপচে তৈয়াৰ কৰিব, নতুন নতুন কাপোৰ, জোতা, টুপী কিনিব বা চিলাব আৰু নতুন বছৰৰ প্ৰথম কুকুৰাৰ ডাক দিয়াৰ লগে লগে বিছনা এৰি নিজৰ নিজৰ ঘৰৰ দুৱাৰ বন্ধ কৰি গোটেই পৰিয়ালৰ মানুহবিলাকে যাকৰ শুকান মাংস, বিবিধ শস্য দি বন্ধা সুস্বাদু থুকপা খাব, ঘিউত কণী দি গৰম কৰা আৰাক খাব, দিনটো ইটো-সিটো খাই থাকিব। দ্বিতীয় দিনা নিজৰ সম্বন্ধীয় মানুহৰ ঘৰে-ঘৰে খাপচে আৰু আৰাকৰ চুঙাবিলাক পোৱাব, সম্বন্ধীয় মানুহবিলাকে মিলি ভোজ ভাত খাব, তৃতীয় দিনাৰ পৰা গাঁৱৰ ওচৰ চুবুৰীয়া গাঁৱৰ সকলোৱে মিলি ভোজ ভাত খাব, আলহী খাব, নাচ-গান কৰিব, মদ খাই খাই নিচাত ইজনে-সিজনক গালি-গালাজ কৰিব। বাটত চলং পলংকৈ ফুৰিব আৰু বেছি নিচা হ’লে বাটতে ৰাতিটো পৰি থাকি নিচা শেষ হ’লে উঠি ঘৰলৈ বুলি বা কাৰোবাৰ ঘৰত পুনৰ আলহী খাবৰ বাবে গুচি যাব।” (ঠংচি ৯৭) এইদৰে মনপাসকলৰ খাদ্যসম্ভাৰৰ দিশটো উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে।

উপসংহাৰ :

সমাজভেদে ব্যক্তিৰ আচাৰ-ব্যৱহাৰ, ৰীতি-নীতি, লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাস ভিন্ন হোৱা দেখা যায়। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ মনপা জনজাতিৰ সমাজখনতো এনে কিছুমান ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ বা লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাসৰ প্ৰচলন আছে যিবোৰে তেওঁলোকৰ সমাজখনক প্ৰতিফলিত কৰাত ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। তেওঁলোকৰ সমাজখনত প্ৰচলিত তেনে এটি লোকবিশ্বাস হৈছে শৱ কটা কাৰ্য। এই শৱ কটা কাৰ্যৰ সৈতে জড়িত হৈ আছে তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত বিশ্বাসসমূহ। এজন লোকৰ মৃত্যু হোৱাৰ পাছৰে পৰা তেওঁৰ লগত জড়িত হৈ পৰা ভিন্ন ক্ৰিয়া কৰ্ম উপন্যাসখনত উপন্যাসিকে দাঙি ধৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে মনপাসকলৰ শৱ সৎকাৰ, বিবাহ সম্বন্ধীয় লোকাচাৰ, জন্মৰ লগত জড়িত লোকাচাৰৰ উপৰি উৎসৱ-পাৰ্বণ, খাদ্যাভ্যাস আদিৰ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন তথ্য উপন্যাসখনৰ পৰা লাভ কৰিব পাৰি। □

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

ঠংচি, য়েছে দৰজে। শৰ কটা মানুহ। বনলতা, ২০২০, পৃ. ১।

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯৪

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯৪

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৩৮

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৪

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ২৩

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯৬

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯৭

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১২৪

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১৬৬

উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯৭

সহায়ক গ্ৰন্থ পঞ্জী :

ঠংচি, য়েছে দৰজে। শৰ কটা মানুহ। গুৱাহাটীঃ বনলতা, ২০২০।

ঠাকুৰ, নগেন। সম্পা.। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটীঃ জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৮।

দাস, অমলচন্দ্ৰ। সম্পা.। অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা। গুৱাহাটীঃ বনলতা, ২০২১।

নাথ, ভনিতা। সম্পা.। আধুনিক অসমীয়া উপন্যাস ভানুমতীৰ পৰা সাম্প্ৰতিকলৈ। গুৱাহাটীঃ পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, ২০২৫।

অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত বিভিন্ন ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰ তুলনামূলক বিচাৰ



ৰশ্মিতা বৰা

সংক্ষিপ্তসাৰ :

কোনো জাতিৰ সাহিত্য আৰু সংস্কৃতি হৈছে জাতিটোৰ পৰিচয়। সাহিত্যই লিখিত ৰূপত অনুভূতি আৰু চিন্তা প্ৰকাশ কৰে। আনহাতে সংস্কৃতিয়ে সমাজৰ জীৱনধাৰা, নৃত্য-গীত, সাজ-পাৰ আৰু পৰম্পৰাক দাঙি ধৰে। গতিকে সাহিত্য আৰু সংস্কৃতিৰ জৰিয়তে এটা জাতি তথা এখন সমাজৰ পৰিচয় প্ৰকাশ পায়। অতীজৰে পৰা মানুহৰ মুখে মুখে চলি অহা বিভিন্ন গীত-মাত, কথা আদিবোৰ সংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা। গতিকে মানুহৰ মুখে মুখে অতীজৰে পৰা প্ৰচলিত হৈ অহা বিভিন্ন লোকগীত, লোককথাই হৈছে লোকসাহিত্য, যি সংস্কৃতিৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অংশ। লোকসাহিত্যই কাহিনী, গীত, প্ৰবাদ আদিৰ জৰিয়তে কোনো এটা সম্প্ৰদায়ৰ মৌখিক পৰম্পৰা, বিশ্বাস আৰু মূল্যবোধক সংৰক্ষণ কৰে। অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসকাৰসকলে সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে চৰ্চা কৰোঁতে লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসকো আলোচনালৈ আনিছে। লগতে লোকসাহিত্যসমূহক বিষয়বস্তুৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বিভিন্ন শ্ৰেণীত ভাগ কৰি তাৰ বিশ্লেষণে আগবঢ়াইছে। *অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত বিভিন্ন ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰ তুলনামূলক বিচাৰ* শীৰ্ষক আলোচনাত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসক ইতিহাসকাসকলে কিদৰে বিচাৰ কৰিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব। প্ৰধানকৈ দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী, ডিম্বেশ্বৰ নেওগ, সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, মহেশ্বৰ নেওগৰ সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী আৰু আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থাৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (প্ৰথম খণ্ড)ৰ আধাৰত এই আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব। বিশ্লেষণাত্মক আৰু তুলনামূলক পদ্ধতিৰে বিষয়টো আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

অসমীয়া, সাহিত্য, ইতিহাস, বুৰঞ্জী, লোকসাহিত্য, লোকগীত।

বিষয়ৰ পৰিচয় :

অসম, অৰুণাচল প্ৰদেশ, মেঘালয়, নাগালেণ্ড, মণিপুৰ, মিজোৰাম আৰু ত্ৰিপুৰা এই আঠখন ৰাজ্যৰে গঠিত উত্তৰ-পূব ভাৰতত বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠী, ভাষা আৰু ধৰ্মৰ লোকে বসবাস কৰে। এই আটাইবোৰে এক অনন্য সাংস্কৃতিক সংহতি প্ৰদান কৰিছে। প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশ, ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি এই আটাইবোৰ দিশৰ পৰাই উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ এখন চহকী ৰাজ্য হৈছে অসম। অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মিলনভূমি। অসমৰ প্ৰধান ভাষা অসমীয়া ভাষা উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ এক প্ৰধান সংযোগী ভাষা। বিভিন্ন ভাষা-ভাষী, জাতি-জনগোষ্ঠীৰে গঠিত অসমীয়া জাতিৰ সংস্কৃতি অতি বিশাল আৰু বৈচিত্ৰ্যময়। অসমীয়া সাহিত্যৰ মাজত এই আটাইবোৰ দিশেই অন্তৰ্ভুক্ত হৈ থাকে। গতিকে অসমীয়া সাহিত্যৰ মাজত সংস্কৃতিৰো বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হয়।

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়
যোৰহাট- ৭৮৫০১১

📞 ৯১০১৬৪৮৩৩৮

✉ rashmitabora1998@gmail.com

মানুহে সমাজ পাতি বসবাস কৰিবলৈ লোৱাৰ পাছৰে পৰা বিভিন্ন পৰিস্থিতিত কিছুমান ৰীতি-নীতি, আইন, আচৰণ, বিশ্বাস-অবিশ্বাস, পৰম্পৰা আদি মানি চলিবলৈ শিকে। মানুহে যিবোৰ আচৰণ আৰু কৰ্মৰ যোগেদি নিজৰ বুদ্ধি, চিন্তা আৰু মনোবৃত্তিৰ উৎকৰ্ষ সাধন কৰে সেয়ে সংস্কৃতি। সংস্কৃতি হৈছে একোখন সমাজৰ সামগ্ৰিক জীৱন নিৰ্বাহৰ এক পদ্ধতি। অন্যহাতে অতীজৰে পৰা মানুহৰে মুখে মুখে চলি অহা বিভিন্ন গীত-মাত, কথা আদিবোৰ সংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা। সাহিত্যৰ মাজেদি সমাজৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হয়। ইয়াৰ লগত সংস্কৃতিৰ বিবিধ দিশো জড়িত হৈ থাকে। সাহিত্য আৰু সংস্কৃতি হৈছে জ্ঞান, বিশ্বাস, কলা, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আৰু বৌদ্ধিক প্ৰকাশৰ সামগ্ৰিক ৰূপ।

ইংৰাজী 'Folk' শব্দটোৰ অসমীয়া ৰূপান্তৰ হৈছে 'লোক'। এই 'লোক' শব্দই সাধাৰণতে মানুহৰ এটা গোট বা সম্প্ৰদায়ক বুজায়। ইয়াৰ উপৰি 'লোক' শব্দই এটা নিৰ্দিষ্ট সম্প্ৰদায়ৰ ভিতৰত প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্ম ধৰি চলি অহা পৰম্পৰাগত সংস্কৃতি, সংগীত বা শিল্পক সামৰি লয়। গতিকে সাধাৰণ মানুহৰ মাজত চলি অহা পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি আৰু বিশ্বাস প্ৰায়ে এটা নিৰ্দিষ্ট পৰিৱেশৰ সৈতে জড়িত হৈ থাকে আৰু ইয়েই হৈছে লোকসংস্কৃতি (Folk Culture)। আনহাতে লোকসাহিত্যই (Folk Literature) সংস্কৃতিৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভঁৰাল হিচাপে কাম কৰে। অৰ্থাৎ লোকসাহিত্য হৈছে সংস্কৃতিৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অংশ। মানুহৰ মুখে মুখে অতীজৰে পৰা প্ৰচলিত হৈ অহা বিভিন্ন লোকগীত আৰু লোককথাই হৈছে লোকসাহিত্য। গতিকে লোকসাহিত্যই কাহিনী, গীত, প্ৰবাদ আদিৰ জৰিয়তে কোনো এটা সম্প্ৰদায়ৰ মৌখিক পৰম্পৰা, বিশ্বাস আৰু মূল্যবোধক সংৰক্ষণ কৰে। ইয়াৰ উপৰি এই লোকসাহিত্যসমূহ মৌখিকভাৱে এটা প্ৰজন্মৰ পৰা আন এটা প্ৰজন্মলৈ প্ৰসাৰিত। মানুহৰ মুখে মুখে প্ৰচলিত হৈ অহা লোকসাহিত্যসমূহ সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে লিখিত ৰূপত সংৰক্ষিত হৈছে। বিশেষকৈ বিভিন্নজন লেখক আৰু ইতিহাসকাৰে এই লোকসাহিত্যসমূহ সংগ্ৰহ কৰি লিখিত ৰূপত প্ৰকাশ কৰিছে। লগতে লোকসাহিত্যসমূহক বিষয়বস্তুৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বিভিন্ন শ্ৰেণীত ভাগ কৰি তাৰ বিশ্লেষণো আগবঢ়াইছে।

প্ৰাক্-স্বাধীনতা আৰু স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত বিভিন্নজন ইতিহাসকাৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ চৰ্চা কৰিছে। ইতিহাসকাৰসকলে অসমীয়া লোকসাহিত্যকো

আলোচনাৰ মাজলৈ আনিছে। প্ৰধানকৈ লোকসাহিত্যৰ বৈশিষ্ট্য, শ্ৰেণীবিভাজন আৰু বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ লোকসাহিত্যৰ বিশ্লেষণ দাঙি ধৰিছে। প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে চৰ্চা কৰাসকলৰ ভিতৰত আছিল দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী আৰু ডিম্বেশ্বৰ নেওগ। আনহাতে স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কাল অৰ্থাৎ উত্তৰ ঔপনিৱেশিক পৰ্বত প্ৰধানকৈ সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, মহেশ্বৰ নেওগৰ সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী আৰু বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা সম্পাদিত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)ত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত বিভিন্ন ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভংগীৰ তুলনামূলক বিচাৰ শীৰ্ষক আলোচনাত এই ইতিহাসকাৰসকলে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে কিদৰে চৰ্চা কৰিছে সেই বিষয়ে আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

বিষয়টো অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য এনেধৰণৰ—

(১) সাহিত্যৰ ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিৰে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস বিচাৰ কৰা।

(২) লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভংগীৰ তুলনামূলক বিচাৰ কৰা।

সাহিত্যৰ ইতিহাসকাৰসকলে অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে চৰ্চা কৰিছে। তেওঁলোকে কেনেধৰণে লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসক বিচাৰ কৰিছে সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰাতে বিষয়টোৰ গুৰুত্ব আছে।

পৰিসৰ :

দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাৰ অসমীয়া ভাষা আৰু সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী সম্পাদিত অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকি, ডিম্বেশ্বৰ নেওগৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত ভূমুকি, অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, New Light on History of Asamiya Literature আৰু নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিবৃত্ত আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, মহেশ্বৰ নেওগৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা আৰু আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থাৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা সম্পাদিত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)ক অধ্যয়নৰ পৰিসৰত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

বিষয়টো আলোচনা কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু তুলনামূলক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

তথ্য আহৰণৰ উৎস :

মুখ্য উৎস হিচাপে নিৰ্বাচিত ইতিহাসকাৰসকলৰ ইতিহাসচৰ্চা বিষয়ক গ্ৰন্থসমূহ আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়ৰ লগত সম্পৰ্কিত অন্যান্য গ্ৰন্থ আৰু প্ৰবন্ধৰ সহায় লোৱা হৈছে।

বিষয়ৰ বিশ্লেষণ :

বিভিন্নজন ইতিহাসকাৰৰ দৃষ্টিৰে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস বিচাৰ :

দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা—

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসচৰ্চা কৰা এজন ইতিহাসকাৰ হ'ল দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা। তেওঁৰ *অসমীয়া ভাষা আৰু সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (১৯১১) গ্ৰন্থখনতে প্ৰথমবাৰৰ বাবে অসমীয়া ভাষা আৰু সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ আলোচনাত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ প্ৰসংগ আনিছে। তেওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসক তিনিটা যুগত ভাগ কৰিছে—

- (১) আদি যুগ
- (২) মাজৰ বা উন্নতিৰ যুগ আৰু
- (৩) বৰ্তমান যুগ।

তেওঁ লোকসাহিত্যক 'আদি যুগ'ৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে।

হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী—

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ আন এক সংকলন হৈছে হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী সম্পাদিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকি*। তেওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসক ৬ টা যুগত ভাগ কৰিছে—

- (১) গীতি যুগ
- (২) মন্ত্ৰ আৰু ভণিতা যুগ
- (৩) প্ৰাক্ বৈষ্ণৱ যুগ
- (৪) বৈষ্ণৱ যুগ
- (৫) বিস্তাৰ যুগ
- (৬) বৰ্তমান যুগ

সাতটা খণ্ডত বিভক্ত *অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকি*ৰ প্ৰথম খণ্ডত 'গীতি যুগ', 'মন্ত্ৰ আৰু ভণিতা যুগ' আৰু 'প্ৰাক্-বৈষ্ণৱ যুগ'ৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে 'গীতি যুগ'ৰ সময়সীমা ৬০০ ৰ পৰা খ্ৰীষ্টাব্দ ৮০০ লৈকে আৰু 'মন্ত্ৰ আৰু ভণিতা যুগ'ৰ সময়সীমা খ্ৰীষ্টাব্দ ৮০০ ৰ পৰা খ্ৰীষ্টাব্দ ১২০০ লৈকে নিৰ্ধাৰণ কৰিছে।

তেওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ এই প্ৰথম দুটা যুগতে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে।

ডিম্বেশ্বৰ নেওগ —

প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালত অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে চৰ্চা কৰা আন এজন ব্যক্তি হ'ল ডিম্বেশ্বৰ নেওগ। ডিম্বেশ্বৰ নেওগৰ *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী*ত ভূমুকি (১৯৪০) গ্ৰন্থখনত 'আদি যুগ'ৰ পৰা ১৯৪০ চনলৈকে সামৰি সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। তেওঁ ৮০০ ৰ পৰা ১২০০ খ্ৰীষ্টাব্দলৈকে এই সময়ছোৱাক অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ 'আদি যুগ' হিচাপে চিহ্নিত কৰিছে। ডিম্বেশ্বৰ নেওগে ৰচনা কৰা আন এখন সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (১৯৫৭) গ্ৰন্থতো অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ 'আদি যুগ' (৬০০- ১১০০ খ্ৰীঃ)ৰ আলোচনাত অসমীয়া লোক সাহিত্যৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। তেওঁৰ আন দুখন সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী *New Light on History of Asamiya Literature* (১৯৬৪) আৰু *নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (১৯৬৪) গ্ৰন্থখনত 'আদি-মধ্যযুগৰ অসমীয়া সাহিত্য' সম্পৰ্কীয় আলোচনাত লোকসাহিত্যৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা —

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসচৰ্চা কৰা আন এজন ইতিহাসকাৰ হৈছে সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা। তেওঁ ১৯৫৯ চনত *অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিবৃত্ত* গ্ৰন্থ প্ৰণয়ন কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত গ্ৰন্থখন সংশোধন আৰু পৰিৱৰ্তন কৰি *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত* নামেৰে ১৯৮১ চনত প্ৰকাশ কৰে। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসক বিভিন্ন যুগত ভাগ কৰিছে। কিন্তু লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে তেওঁ সুকীয়াকৈ আলোচনা কৰিছে। তেওঁ অসমীয়া লোকসাহিত্যক তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিছে —

- (১) লোকগীত
- (২) যোজনা-ফকৰা আৰু প্ৰবচন
- (৩) সাধুকথা

লোকসাহিত্য ৰচনাৰ সময় নিৰূপণ কৰিব নোৱাৰি। সেয়ে সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লোকসাহিত্যক 'যুগনিৰপেক্ষ সাহিত্য' বুলি অভিহিত কৰিছে। বুৰঞ্জীখনৰ দ্বিতীয় অধ্যায়ত 'যুগনিৰপেক্ষ মৌখিক সাহিত্য' হিচাপে লোকসাহিত্যৰ আলোচনা আগবঢ়াইছে। কিন্তু ডাকৰ বচন আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্যক 'উদ্ভৱ বা আদি যুগ' (খ্ৰীঃ ৯৫০-১৩০০)ৰ সাহিত্য হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। বুৰঞ্জীখনৰ তৃতীয় অধ্যায়ত

এই সম্পর্কে আলোচনা কৰিছে।

মহেশ্বৰ নেওগ —

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসচৰ্চা কৰা আন এজন ইতিহাসকাৰ হৈছে মহেশ্বৰ নেওগ। তেওঁ *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা* (১৯৬২) গ্ৰন্থখনত অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসক ৫ টা যুগত ভাগ কৰিছে। কিন্তু লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে ইতিহাসকাৰে সুকীয়াকৈ আলোচনা কৰিছে। মহেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া লোকসাহিত্যক ৫ টা ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে—

(১) গীতি-সাহিত্য

(২) সাধুকথা

(৩) মন্ত্ৰ

(৪) প্ৰবচন, ফকৰা-যোজনা আৰু সাঁথৰ

(৫) ডাকৰ বচন

তেওঁ বুৰঞ্জীখনৰ ‘লোক-গীতি আৰু লোক-কথা’ শীৰ্ষক দ্বিতীয় অধ্যায়ত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা কৰিছে।

বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা সম্পাদিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (প্ৰথম খণ্ড) —

আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থাৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা সম্পাদিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (প্ৰথম খণ্ড) গ্ৰন্থত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা কৰিছে। লোকসাহিত্য পুৰুষাণুৱমে মানুহৰ মুখে মুখে চলি আহিছে আৰু ইয়াৰ সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিব নোৱাৰি। লগতে ইয়াত কোনো লেখকৰ নাম পোৱা নাযায়। সেয়ে এই বুৰঞ্জীত লোকসাহিত্যক ‘যুগ নিৰপেক্ষ সাহিত্য’ হিচাপেই বিচাৰ কৰিছে। এই আলোচনাত লেখকে লোকসাহিত্যক কেইটামান ভাগত ভাগ কৰিছে —^১

(১) জাতিগত শ্ৰেণীবিভাজন (ethnic Genres)

(২) তাত্ত্বিকভাৱে কৰা শ্ৰেণীবিভাজন (Analytical Categories)

(৩) আঞ্চলিক শ্ৰেণীবিভাজন (Regional Classifications)

(৪) প্ৰকাৰ্যাত্মক শ্ৰেণী বিভাজন (Functional Categories)

(৫) বিষয়বস্তুগত শ্ৰেণী বিভাজন (Thematic Classifications)

লেখকে বুৰঞ্জীখনৰ ‘মৌখিক সাহিত্য’ শীৰ্ষক অধ্যায়ত কেৱল তাত্ত্বিকভাৱে কৰা শ্ৰেণীবিভাজনৰ বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা দাঙি ধৰিছে। ইয়াত প্ৰধানকৈ অসমীয়া লোকগীতৰ আলোচনা কৰিছে।

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসকাৰসকলে সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ চৰ্চা কৰোঁতে লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়েও আলোচনা কৰিছে। কাৰণ এইসমূহে সাহিত্যৰ ইতিহাসৰে এটা অংশ। লোকসাহিত্যৰ কোনো নিৰ্দিষ্ট লেখক নাই আৰু ইয়াত সাধাৰণ গ্ৰামীণ জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবি ফুটি উঠে। এইসমূহে সমাজৰ বহু পুৰণি সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য বহন কৰি আহিছে। লোকসাহিত্য ৰচনাৰ সময়সীমা ক’ব নোৱাৰি। সেয়ে কোনো কোনো ইতিহাসকাৰে সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ যুগ বিভাজন কৰোঁতে লোকসাহিত্যক কোনো যুগত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা নাই।

লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে বিভিন্ন ইতিহাসকাৰৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰ তুলনামূলক বিচাৰ :

দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই অসমীয়া ভাষা আৰম্ভ হোৱাৰে পৰা শঙ্কৰদেৱৰ জন্মলৈকে এই সময়ছোৱাক অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ ‘আদি যুগ’ হিচাপে চিহ্নিত কৰিছে। ইতিহাসকাৰে লোকসাহিত্যৰ সুকীয়া শ্ৰেণীবিভাজন কৰা নাই। লগতে লোকসাহিত্য কি বা ইয়াৰ বৈশিষ্ট্যৰ দিশতো কোনো আলোকপাত কৰা নাই। তেওঁ কেৱল ‘আদি যুগ’ৰ ভিতৰত সাঁথৰ আৰু ডাকৰ বচনৰ আলোচনা কৰিছে। লোকসাহিত্যসমূহ কেতিয়াৰ ৰচনা সেয়া নিৰূপণ কৰিব নোৱাৰি। কিন্তু ইতিহাসকাৰে অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাপ্তিৰ বিষয়ে ক’বলৈ গৈ অসমীয়া লোকসাহিত্য সাঁথৰৰ প্ৰসংগ অৱতাৰণা কৰি সেই সময়ছোৱাৰ ভাষাৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰিছে। সেই সময়ছোৱাত অসমীয়া ভাষা ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাৰ উপৰি গোটেই কামৰূপ অৰ্থাৎ ‘পূৰ্ববঙ্গ, বংপুৰ, দীনাজপুৰ, কোচবিহাৰ আদি কৰি অসমৰ সকলো ঠাইতে চলিছিল।’ দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই ‘বংপুৰ, দীনাজপুৰ আদিৰ দুটা এটা সাঁথৰ আৰু শব্দই এই কথাৰ জলজলীয়া প্ৰমাণ দিয়ে’ বুলি উল্লেখ কৰিছে।^২

ইতিহাসকাৰে ডাকৰ জন্ম আৰু ডাক-চৰিত্ৰৰ পুথিৰ সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিছে। তেওঁৰ মতে ডাকৰ বচন বা ডাক-চৰিত্ৰৰ পুথি ‘আদি যুগ’ত লিখা হৈছিল। ইয়াৰ উপৰি ডাক-চৰিত্ৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰথম পদ্য পুথি বুলি উল্লেখ কৰিছে।^৩ ইংৰাজী ষষ্ঠ শতাব্দীৰ ভিতৰত বৰপেটাৰ ওচৰৰ লেহিডঙ্গা গাঁৱত ডাকৰ জন্ম আৰু এই সম্পৰ্কে সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত ইতিহাসকাৰে লিখিছে। সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীখনত ইতিহাসকাৰে ডাকৰ জন্মৰ এক বৃত্তান্ত দাঙি ধৰিছে। ইয়াৰ উপৰি ডাকৰ মৰণ সম্পৰ্কে ডাক-চৰিত্ৰ পুথিত কিদৰে আছে সেয়াও তুলি ধৰিছে। ডাক-চৰিত্ৰ পুথিৰ বৰ্ণনাৰ

ওপৰত ভিত্তি কৰি দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই খৃষ্টাব্দৰ ষষ্ঠ শতিকাত অসমত ডাকৰ বচন ৰচিত হৈছিল বুলি সিদ্ধান্ত দিছে। (পৃ. ৫০) নেপালত ডাকৰ বচন ওলোৱা প্ৰসংগতো ইতিহাসকাৰে মত প্ৰকাশ কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি অসমৰ ডাকৰ পুথি বঙ্গদেশত পালেও ডাকৰ বচনৰ ভাষা অসমীয়াহে। ইয়াৰ ভাষা বঙালী হ'ব নোৱাৰে বুলি ইতিহাসকাৰে মন্তব্য কৰিছে। এই বিষয়ত ইতিহাসকাৰে লিখিছে এইদৰে—

নেপালত ডাকাৰ্ণব অৰ্থাৎ ডাকৰ বচন ওলোৱাত এইটো প্ৰমাণ হয় যে, এসময়ত অসমৰ জ্ঞান বিদ্যাই নেপাল আদি কৰি হিমালয় অঞ্চলৰ পৰ্বতীয়া ঠাইবোৰো জুৰি আছিল। কিন্তু বৰ দুখৰ বিষয় যে জনচেৰেক বঙ্গ পণ্ডিতে অসমৰ ডাকক “বঙ্গৰ চক্ৰেটিছ” বুলি চিনাকি দিছে, আৰু তাৰ লগে লগে ডাকৰ জন্মৰ কাল ষষ্ঠ শতাব্দীৰ পৰা তুলি নি প্ৰায় ৮০০ খৃষ্টাব্দৰ পৰা ১২০০ খৃষ্টাব্দৰ ভিতৰত পেলাইছে। (পৃ. ৫২)

ডাকৰ বচনৰ পৰা বাস্তৱ জীৱনৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় অনেক জ্ঞান পাব পাৰি। ৰাজনীতি প্ৰকৰণ, ৰক্ষণ প্ৰকৰণ, গৃহীনি-লক্ষণ, পৰিত্যাগ-কথন, কৃষি-লক্ষণ, বৃষ-লক্ষণ, জ্যোতিষ-প্ৰকৰণ, বৰ্ষা-লক্ষণ আদি বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ ডাকৰ বচন আছে। কিন্তু ইতিহাসকাৰে বুৰঞ্জীখনত এনে বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ ডাকৰ-বচনৰ আলোচনা কৰা নাই। কেৱল ডাকৰ জন্ম বৃত্তান্ত আৰু সময়সীমাৰ দিশতহে বেছি গুৰুত্ব দি ডাকৰ বচনৰ আলোচনা তাতেই সামৰিছে।

আনহাতে বুৰঞ্জীখনৰ ‘বৰ্তমান যুগ’ৰ আলোচনাত ৰাতি-খোৱা সম্প্ৰদায়ৰ গীত, বিহু নাম আৰু বিয়ানামৰ আলোচনা কৰিছে। ৰাতি-খোৱা সম্প্ৰদায়ৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে আৰম্ভণিতে উল্লেখ কৰিছে। এই সম্প্ৰদায়ৰ গীতবোৰক ‘চিয়া’ গীত বোলে। বুৰঞ্জীখনত ‘চিয়া’ গীতৰ আৰ্হি স্বৰূপ কেইটামান গীতৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰিছে। এই গীতবোৰত শঙ্কৰদেৱ, মাধৱদেৱ, শূকদেৱ আদি মহাপুৰুষসকলৰ ভণিতা পোৱা যায় যদিও এই গীতবোৰ তেওঁলোকে ৰচনা কৰা গীত নহয় বুলি দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই মত প্ৰকাশ কৰিছে। (পৃ. ৩১৭) বিহুনামৰ আলোচনাত বিহুনামক ‘আসামৰ আটাইতকৈ পুৰণি অনাৰ্য সুৰৰ গীত’ বুলি অভিহিত কৰিছে। (পৃ. ৩১৭) ইতিহাসকাৰে বিহুনামবোৰক ‘গৰখীয়া গীত’ বুলি উল্লেখ কৰিছে আৰু বিহুনামৰ আলোচনাত ‘বিহুনাম’ আৰু ‘গৰখীয়া গীত’ দুয়োটা অভিধাই ব্যৱহাৰ কৰিছে। এই গীতবোৰ আগৰ অনাৰ্য

বিলাকৰ দিনৰে পৰা মুখে মুখেই পুৰুষানুক্ৰমে চলি আহিছে। ইতিহাসকাৰে বিহুনামৰ মাজেদি প্ৰকাশ পোৱা প্ৰকৃতিৰ মনোৰম সৌন্দৰ্য আৰু অসমীয়া গাঁৱলীয়া জীৱনৰ প্ৰকাশ কিদৰে হয় কেইফাকি মান বিহুগীতৰ উদাহৰণেৰে সেয়া উল্লেখ কৰিছে। বিয়ানামৰ আলোচনাত বিবাহ অনুষ্ঠান এটাত কি কি পৰিৱেশ বা পৰিস্থিতিত বিয়ানাম গোৱা হয় তাৰ উল্লেখ কৰিছে। লগতে হোমৰ ওচৰত গোৱা বিয়ানাম, মৰলত গোৱা, দৰা হোমৰ গুৰিত বহোঁতে গোৱা বিয়ানাম আৰু জোৰা নামৰ নিদৰ্শন বুৰঞ্জীখনত দাঙি ধৰিছে।

দেখা যায় যে দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাসৰ বিষয়ে পৃথককৈ আলোচনা কৰা নাই আৰু লোকসাহিত্যৰ শ্ৰেণীবিভাজনো কৰা নাই। কেৱল ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত সাঁথৰ আৰু ডাকৰ-বচনৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। আকৌ ‘বৰ্তমান যুগ’ৰ আলোচনাত ৰাতি-খোৱা সম্প্ৰদায়ৰ গীত, বিহুনাম আৰু বিয়ানামক সামৰি লোৱাৰ প্ৰসংগতো কোনো মতামত প্ৰকাশ কৰা নাই। গতিকে দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই *অসমীয়া ভাষা আৰু সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* গ্ৰন্থখনত লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে কৰা আলোচনা পদ্ধতিগত হোৱা নাই আৰু আলোচনা আধৰুৱা হৈছে।

হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ কোনো শ্ৰেণীবিভাজন কৰা নাই। তেওঁ ‘গীতি যুগ’ বা অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ প্ৰথম ছোৱা সময়ৰ আলোচনাত অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ভিতৰুৱা বিভিন্ন লোকগীতক সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। আনহাতে ‘মন্ত্ৰ আৰু ভণিতা যুগ’ত বিভিন্ন মন্ত্ৰ আৰু ডাকৰ বচনক সামৰিছে। হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে ‘গীতি যুগ’ত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা লোকগীতসমূহ আছিল এনেধৰণৰ—

- (১) ধাই নাম
- (২) গৰখীয়া নাম
- (৩) বিয়া নাম
- (৪) বিহুৰ নাম
- (৫) নাও খেলোৱা গীত
- (৬) বাৰমাহী গীত
- (৭) গাৰলীয়া গীত
- (৮) টোকাৰী নাম
- (৯) ছচৰী নাম
- (১০) আই নাম

ইয়াৰে ধাই নামৰ আলোচনাত লৰা শুওৱা নাম, লৰা

নিচুকোৱা নাম, লৰা ওমলোৱা নাম; বিয়া নামৰ ভিতৰত সাধাৰণ বিয়া নাম, হৰগৌৰীৰ বিয়া, ৰাম-সীতাৰ বিয়া, কৃষ্ণ-ৰুক্মিণীৰ বিয়া, উষা-অনিৰুদ্ধৰ বিয়া নাম; বাৰমাহী গীতৰ ভিতৰত মধুমতীৰ গীত, কন্যা বাৰমাহী গীত; গাৱলীয়া গীতৰ ভিতৰত ফুল কোঁৱৰৰ গীত, মণিকোঁৱৰৰ গীত, পগলা-পাৰ্কীতীৰ গীত, হালবোৱা গীত আৰু যঁতৰৰ গীত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

‘মন্ত্ৰ’ৰ আলোচনাত পক্ষীৰাজ মন্ত্ৰ, সুদৰ্শন মন্ত্ৰ, বৃক্ষ আৰোপণ মন্ত্ৰ, গৃহ-কম্পন মন্ত্ৰ, তাম্বুল বাৰা মন্ত্ৰ, পুষ্প বাৰা মন্ত্ৰ, কদলীপত্ৰ বাৰা মন্ত্ৰ, চিকনি বাৰা মন্ত্ৰ, সূত্ৰ বাৰা মন্ত্ৰ, সৰিষা বাৰা মন্ত্ৰ, দিশ-বন্দী মন্ত্ৰ, ধনুবাটলি মন্ত্ৰ, গঢ় মন্ত্ৰ, বিড়া বন্ধ মন্ত্ৰ, কৰতী মন্ত্ৰ, ধৰণী মন্ত্ৰ আৰু গু-কৰতী মন্ত্ৰক সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি এই গ্ৰন্থত বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ ডাকৰ বচনৰ ভিতৰত জন্ম প্ৰকৰণ, ধৰ্ম প্ৰকৰণ, নীতি প্ৰকৰণ, ৰাজনীতি প্ৰকৰণ, ৰন্ধন প্ৰকৰণ, গৃহীনী লক্ষণ, পৰিত্যাগ কথন, কৃষি লক্ষণ, বৃষ লক্ষণ, জ্যোতিষ প্ৰকৰণ আৰু বৰ্ষা লক্ষণ বিষয়ক ডাকৰ বচন সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

দেখা যায় যে হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে লোকগীত, মন্ত্ৰ আৰু ডাকৰ বচনবোৰৰ বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা নাই; কেৱল বিভিন্ন লোকগীত, মন্ত্ৰ আৰু ডাকৰ বচনৰ নিদৰ্শনহে দাঙি ধৰিছে। গতিকে হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ এই আৰ্হি একপ্ৰকাৰে বিভিন্ন লোকগীতৰ সংগ্ৰহ বুলিহে ক’ব পাৰি।

ডিম্বেশ্বৰ নেওগে *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী*ত ভূমুকি গ্ৰন্থত ‘আদি যুগ’ত ৰচিত সাহিত্যৰাজিক (১) বৌদ্ধধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰ সাহিত্য (২) তান্ত্ৰিক ধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰ সাহিত্য আৰু (৩) অনা-ধৰ্মমূলক সাহিত্য এইদৰে তিনিটা ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে। ইয়াৰে ‘বৌদ্ধধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰ সাহিত্য’ শীৰ্ষক ভাগটোত ডাকৰ বচনৰ আলোচনা সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে বা শ্ৰেণীবিভাজনৰ বিষয়ে সুকীয়াকৈ আলোচনা কৰা নাই। ইতিহাসকাৰে ডাকৰ বচনৰ আলোচনাৰ প্ৰসংগত ডাকৰ বচনবোৰক ‘বৌদ্ধ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰ আদি যুগৰ দ্বিতীয় শাৰীৰ লাগতিয়াল সাহিত্য’ বুলি কোৱাৰ লগতে ‘বৌদ্ধ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ নৌ অন্তৰ্গত’ হোৱা কালতে এই ডাকৰ বচনবোৰ ৰচিত হৈছিল বুলি উল্লেখ কৰিছে। ডাকৰ বচনত বৌদ্ধ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ কিদৰে পৰিছে সেয়া *ডাকৰ পুথি*ৰ পৰা উদাহৰণ দি দেখুৱাইছে। তেওঁ সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত ডাকৰ জন্মস্থান সম্পৰ্কে, ডাকৰ জীৱনীৰ অলৌকিক আৰু সম্ভৱপৰ কাহিনীবোৰৰ বিষয়ে, ডাকৰ

অকাল মৃত্যু, ডাকৰ বচনৰ কাল নিৰ্ণয়, ডাকৰ বচনৰ বিষয়-বস্তু আৰু ভাষাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। বহুতে ডাকৰ বচনবোৰ খ্ৰীষ্টিয় ষষ্ঠ শতিকাৰ বুলি কয় যদিও ইতিহাসকাৰৰ মতে এইসমূহ ৮০০ ৰ পৰা ১২০০ খ্ৰীষ্টাব্দৰ ভিতৰৰ ৰচনা। এই সম্পৰ্কে সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে—

বিক্ৰমাদিত্য আৰু তেওঁৰ সভাপণ্ডিত মিহিৰৰ কাল অনুসৰি ডাকৰ বচনবোৰ বহুতে খ্ৰীষ্টিয় ষষ্ঠ শতিকাৰ বুলিব খোজে। ভাষাৰ বুৰঞ্জীমূলক কাৰণৰ পৰা এই মতত আঁহৰাহ ওলায়; কিয়নো খ্ৰীষ্টিয় নৱম শতিকামানৰ পৰাহে আধুনিক ভাৰতীয় ভাষাবোৰে পোনতে গঢ় ল’বলৈ ধৰে। এফালে চৰ্যাপদৰ ভাষা আৰু আনফালে আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ লগত তুলনা কৰি চালে এই বচনবোৰ ৮০০—১২০০ খ্ৰীঃৰ ভিতৰৰ ৰচনা, ইয়াতকৈ সৰহক’ব নোৱাৰি।^{১৪}

ইয়াৰ উপৰি ইতিহাসকাৰে কিছুমান বিশেষ গুণৰ বাবে ডাকৰ বচনৰ লগত পটন্তৰ-ফকৰাৰ বিশেষ মিল দেখা যায় যদিও এই দুয়োবিধ ‘দুই শাৰীৰ সুকীয়া সাহিত্য’ বুলিছে। অকল ‘খনাৰ বচনৰ লগতহে ডাকৰ বচন একে শাৰীৰ বুলি’ তেওঁ উল্লেখ কৰিছে।

‘আদিযুগ’ৰ সাহিত্যৰ আলোচনাৰ তৃতীয়টো ভাগ ‘অনা-ধৰ্মমূলক সাহিত্য’ বিষয়ক আলোচনাত ভণিতা আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্যৰ বাহিৰে ‘অসমীয়া জাতীয় লৌকিক গীত-সাধু’ আদিৰো আদি জন্মকাল ‘প্ৰাক্‌বৈষ্ণৱ যুগ’ বুলিছে। ডাক-ভণিতা আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্যৰ লগত লৌকিক গীত-সাধুৰ পাৰ্থক্যৰ বিষয়ে নেওগে সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত উল্লেখ কৰিছে। ডাক-ভণিতা আৰু মন্ত্ৰৰ মাজত এটা বিশেষ ধৰ্মমত অন্তৰ্গত হৈ থকাৰ দৰে সাধাৰণ গীত-সাধুবোৰত তেনে মত নাই। বিশেষ ধৰ্মমতৰ সাহিত্যৰ কাল সীমাবদ্ধ; কিন্তু লৌকিক গীত-সাধু চিৰকলীয়া। সেয়েহে নেওগে লিখিছে যে ‘ভণিতা আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্য সাধাৰণতে দ্বাদশ শতিকাৰ হেঙাৰতে লাগি ৰ’ল, আৰু গীত সাধু আদি আন সাহিত্য তাৰ মাজেদি সৰকি আধুনিক যুগ পালেহি।^{১৫} বিয়া নাম, গৰখীয়া নাম, আই নাম, ধাই নাম আদিৰ মাজত বৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ অনেক প্ৰসংগ বা সংগতি দেখা যায় বুলি উল্লেখ কৰিছে। বিশেষকৈ এই গীতবোৰক ‘নাম’ বোলা কথাষাৰেই বৈষ্ণৱ প্ৰভাৱৰ প্ৰমাণ দাঙি ধৰে বুলি বুৰঞ্জীত উল্লেখ কৰিছে। এই আলোচনাৰ শেষৰফালে মণিকোঁৱৰ আৰু ফুলকোঁৱৰৰ গীতৰ প্ৰাচীনত্ব আৰু ঐতিহাসিকত্বৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰি মণিকোঁৱৰ আৰু ফুলকোঁৱৰৰ গীতেই আটাইতকৈ পুৰণি বুলি মত প্ৰকাশ কৰিছে।

ইতিহাসকাৰে *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (১৯৫৭) গ্ৰন্থখনতো ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্যক ‘বৈয়্যিক সাহিত্য’ আৰু ‘ধৰ্মমূলক সাহিত্য’ এই দুটা ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে। ‘বৈয়্যিক সাহিত্য’ৰ ভিতৰত চহা গীত, কাব্য, সাধুক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। ইতিহাসকাৰৰ মতে ‘চহা গীত, কাব্য আৰু আদিম মানুহৰ আদিম ধৰ্মস্বৰূপ প্ৰকৃতি-পুৰাণ আদিয়েই আদিম সাহিত্যৰ সৰ্বস্ব আছিল’। কোনো কোনোৱে অসমৰ বিয়ানামবোৰ আৰু কেতখিনি চহা গীত-কাব্যই বৰ্তমান যুগলৈ বাগৰি অহা প্ৰাচীন যুগৰ সাহিত্য-সম্পদ বুলি উল্লেখ কৰিছে। ইতিহাসকাৰৰ মতে কিছুমান বিয়া নাম নৰক আৰু বাণ-অসুৰৰ সমসাময়িক সদিয়াৰ ৰজা ভীষ্মকৰ কণ্যা ৰুক্মিণীৰ হৰণৰ কালৰ বুলি অনুমান কৰা কথাষাৰ অতিশয় অবিবেচিত। এই বিয়া নামবোৰৰ ‘হাড়ে-হিমজুৱে বৈয়্য ধৰ্মই ভেজি আছে’ বুলি উল্লেখ কৰিছে। ইতিহাসকাৰে লোকগীতৰ ভিতৰুৱা বিয়ানামকে আদি কৰি আন আন চহা গীতবোৰ ‘অষ্টদশ শতিকাৰ পিছলৈ নাহিলেও অন্ততঃ বৈয়্য যুগৰ আগত যে বৰ্তমান গঢ় লৈ অহা নাছিল’ বুলি সিদ্ধান্ত দিছে।^১ এই আলোচনাত নিচুকনি বা ধাইনাম আৰু কিছুমান সাধুকথাৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰিছে। চহা সাহিত্য চঞ্চল বা জুলুছ ৰূখে চহা সাহিত্যৰ কোনো যুগ নাই বুলিলেও ইতিহাসকাৰে চহা গীতকাব্য (বেলেড়)ৰ যুগ নিৰ্ণয় কৰা কঠিন নহয় বুলিছে। এই যুক্তিৰ প্ৰমাণস্বৰূপে লিখিছে যে ‘বদন বৰফুকনৰ গীত আৰু মণিৰাম দেৱানৰ গীত নিশ্চয় তেওঁলোকৰ মৃত্যুৰ কেইবছৰমানৰ পিছতে ৰচিত হৈছিল; কিন্তু আখ্যানৰ লোকজন যিমান পুৰণি গীতৰ সম্পূৰ্ণ গঢ় লোৱা কালো সেই অনুপাতে দীঘলীয়া হয়। মণিকোঁৱৰ আৰু ফুলকোঁৱৰৰ গীত দুটিকেই আটাইতকৈ পুৰণি বোলা হয় কিয়নো এই দুটি গীতৰ লগত প্ৰাক-ঐতিহাসিক যুগৰ এজন অসমীয়া ৰজা জড়িত আছে।’^২ ইতিহাসকাৰে এই আলোচনাত কাহিনী-গীত (বেলেড়)ৰ বিষয়ে চমু আভাস দিছে। এই চহা গীত-কাব্যবোৰৰ নিৰ্দিষ্ট এজন ৰচক নাই আৰু সেয়ে ডিম্বেশ্বৰ নেওগে ‘দহৰ কথা, এজনৰ ভাষা’ ই চহা-গীতৰ মূল ৰহস্য বুলি অভিহিত কৰিছে।

‘ধৰ্মমূলক সাহিত্য’ৰ ভিতৰত তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱ আৰু বৌদ্ধ প্ৰভাৱৰ সাহিত্যৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। পুৰণি অসমত শৈৱ আৰু শাক্ত ধৰ্মৰ প্ৰাধান্যৰ বিষয়ে বিভিন্ন উৎসৰ সহায়ত দেখুৱাইছে। ইতিহাসকাৰৰ মতে তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰবোৰ একাদশ-দ্বাদশ শতিকাৰ পিছৰ নহয়। বিশেষকৈ অসমত বৈয়্য ধৰ্মৰ টো উঠাৰ পাছত এনে তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰৰ

নতুনকৈ জন্ম হোৱাটো সম্ভৱ নহয়। মন্ত্ৰবোৰৰ ৰচনা আৰু গঢ়ত বৈয়্য প্ৰভাৱ সুস্পষ্ট। লগতে মন্ত্ৰৰ ভাষাও বৈয়্য-গন্ধী আৰু অৰ্বাচীন। ইয়াতে বিভিন্ন তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰিছে। তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱৰ জনসাহিত্যৰ ভিতৰত দেহ-বিচাৰৰ গীত, বৰাগী বা টোকাৰী গীত আৰু ৰাতি-খোৱা সম্প্ৰদায়ৰ গীতৰ প্ৰসংগও উল্লেখ কৰিছে।

ইতিহাসকাৰে এই বুৰঞ্জীখনতো ডাকৰ বচনক বৌদ্ধ প্ৰভাৱৰ সাহিত্য হিচাপে আলোচনা কৰিছে। পুৰণি অসমত বৌদ্ধ ধৰ্মই কিদৰে শিপাইছিল আৰম্ভণিতে তাৰ আভাস দিছে। ডাকৰ জন্ম সম্পৰ্কে থকা বিভিন্ন মতামত বুৰঞ্জীখনত আছে। এনে মতৰ ভিতৰত ‘ডাক-চৰিত বা ডাক-ভণিতা যিখন সাঁচিপাতৰ পুথিৰ পৰা পোৱা গৈছে, তাৰ কাল ঊনবিংশ বা অষ্টাদশ শতিকাৰ আগলৈ যাব নোৱাৰে বুলি তাৰ ভাষাৰ পৰা অনুমান হয়’ বুলি লিখিছে। আন এটা মত অনুসৰি ‘বৌদ্ধধৰ্মৰ পতন আৰু ব্ৰাহ্মণ্য ধৰ্মৰ পুনৰুত্থানৰ আগতে নিশ্চয় এই ডাকৰ বচনবোৰে জন্ম পাইছিল। এই বিবেচনাৰ পৰাও এই বচনবোৰ অস্ততঃ দশম শতিকাৰ পিছলৈ ঠেলিব নোৱাৰি’ বুলি বুৰঞ্জীত আছে।^৩ ইতিহাসকাৰৰ মতে ডাকৰ বচনৰ সংখ্যা লেখত প্ৰায় এক হাজাৰ। এই ডাকৰ বচনবোৰৰ বাৰ-তেৰটা ভাগ বা প্ৰকৰণৰ কথা উল্লেখ কৰি প্ৰত্যেকৰে উদাহৰণ দাঙি ধৰিছে। ইতিহাসকাৰে সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত বৈয়্যিক সাহিত্যৰ চহা গীত-কাব্য, সাধু, ধৰ্মমূলক সাহিত্যৰ তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱৰ আই-নাম আৰু তন্ত্ৰমন্ত্ৰবোৰ আৰু বৌদ্ধ প্ৰভাৱৰ ডাকৰ বচনলৈকে ক’তো লিখিত অসমীয়া সাহিত্যৰ সম্পূৰ্ণ বিশ্বাসযোগ্য পুৰণি চানেকি পাবলৈ নাই বুলি উল্লেখ কৰিছে।

ডিম্বেশ্বৰ নেওগে *New Light on History of Asamiya Literature* বুৰঞ্জীখনৰ ‘আদি-মধ্যযুগ’ৰ অসমীয়া সাহিত্য সম্পৰ্কীয় আলোচনাৰ ‘Original outbursts of popular poetry’ শীৰ্ষক ভাগটোত লোকগীত আৰু ফকৰাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। লোকগীতৰ ভিতৰত বিয়া নাম, আই নাম, ধাই নাম, বিহু নাম, বন-ঘোষা আৰু গৰখীয়া নাম; আখ্যানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত মণিকোঁৱৰৰ গীত, ফুলকোঁৱৰৰ গীতৰ উদাহৰণসহ আলোচনা কৰিছে। বুৰঞ্জীখনৰ ‘Buddhist songs and Buddhistic poetry’ শীৰ্ষক ভাগটোৰ শেষৰফালে দেহবিচাৰৰ গীত, টোকাৰী নাম, ডাকৰ বচনৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। একেদৰে *নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* গ্ৰন্থখনৰ ‘পুথি এক’ত ‘আদি মধ্যযুগ

অসমীয়া সাহিত্য'ৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। ইয়াৰে 'বৈয়িক সাহিত্য-চহা গীত-সাধু আদি' ভাগটোত বিয়া নাম, ধাই নাম, সাধু, যোজনা-পটন্তৰৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰিছে। ডিম্বেশ্বৰ নেওগে আখ্যানমূলক গীতবোৰক 'চহা গীত-কাব্য' বুলিছে। তেওঁৰ মতে আখ্যান গীতবোৰ মৌখিক গীত হ'লেও এইসমূহৰ সময় নিৰ্ণয় কৰাটো কঠিন নহয়। ইয়াৰ কাৰণ হিচাপে তেওঁ লিখিছে যে—

ই আখ্যানমূলক যেতিয়া আখ্যানৰ নায়কজনৰ পাছত এশ মান বছৰৰ ভিতৰতে সেই গীত-কাব্যই প্ৰথম গঢ় লয় বুলি সাধাৰণতে ধৰিব পাৰি। প্ৰমাণৰূপে, বদন বৰফুকনৰ গীত আৰু মণিৰাম দেৱানৰ গীত নিশ্চয় তেওঁলোকৰ মৃত্যুৰ কেইবছৰ মানৰ ভিতৰতে ৰচিত হৈছিল; কিন্তু আখ্যানৰ নায়কজন যিমান পুৰণি, গীতৰ সম্পূৰ্ণ গঢ় লোৱা কালো সেই অনুপাতে দীঘলীয়া হয়।^{১০}

আখ্যানমূলক গীতবোৰৰ জৰিয়তে কাব্যৰ দৰে একোটা কাহিনী বা বুৰঞ্জীমূলক ঘটনা বৰ্ণিত হয় বাবে ইতিহাসকাৰে এই গীতবোৰক 'গীত-কাব্য' বুলি অভিহিত কৰিছে। ইতিহাসকাৰে 'আদি মধ্যযুগৰ অসমীয়া সাহিত্য' শীৰ্ষক ভাগটোৰ ধৰ্মমূলক সাহিত্যৰ আলোচনাত বিভিন্ন তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰৰ লগতে 'আই নাম'ক তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱৰ সাহিত্য হিচাপে অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি দেহ-বিচাৰৰ গীত, বৰাগী বা টোকাৰী গীত আৰু ৰাতি-খোৱা সম্প্ৰদায়ৰ গীতকো তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। ইতিহাসকাৰে অসম, বংগ আৰু উৰিষ্যাৰ ডাকৰ বচনে কেনেকৈ তিনিটা ৰূপ লৈছে উদাহৰণসহ দেখুৱাইছে। 'দহৰ জ্ঞান, একৰ বাণী', 'যুগ-যুগান্তৰৰ সঞ্চিত জ্ঞান-ৰত্ন', 'জীৱনৰ জ্বলা সমালোচনা', 'মিতব্যয়ী কথাৰ সাৰ-গৰ্ভ চমু তীৱ্ৰ বাক্য' আদি পটন্তৰ-মালা আৰু ডাকৰ বচনৰ উমৈহতীয়া গুণ যদিও ডাকৰ বচনৰ বৈশিষ্ট্য তাৰ নিজা বুলি ইতিহাসকাৰে উল্লেখ কৰিছে। 'ডাকৰ বচন আৰু পটন্তৰ-মালাৰ বুৰঞ্জীয়েই স্বৰূপতে আদি অসমীয়া সংস্কৃতি আৰু সভ্যতাৰ বুৰঞ্জীৰ শ্ৰেষ্ঠ উপাদান যোগাব' আৰু তাৰ কাৰণে 'বিজ্ঞানসন্মতভাৱে সম্পাদিত ডাকৰ-বচন এখনি অতি আৱশ্যকীয় কাম' বুলি বুৰঞ্জীত উল্লেখ কৰিছে।^{১১}

গতিকে এই আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় যে ডিম্বেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া লোকসাহিত্যক অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ প্ৰথমটো যুগ 'আদি যুগ'ৰ সাহিত্য হিচাপেই বিচাৰ কৰি পোনপটীয়াকৈ আলোচনা কৰিছে। লোকগীতৰ আলোচনাত দেখা যায় যে তেওঁ 'আই-নাম'ক তান্ত্ৰিক

প্ৰভাৱৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। ডাকৰ বচনক বৌদ্ধ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি আখ্যানৰ নায়ক জনৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি আখ্যানমূলক গীতৰ সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিব পাৰি বুলি উল্লেখ কৰিছে। তেওঁ বুৰঞ্জী কেইখনত ফকৰা, প্ৰবচন, সাঁথৰ, সাধুকথাৰ বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা দাঙি ধৰা নাই।

সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লোকসাহিত্যক 'যুগ নিৰপেক্ষ সাহিত্য' হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। বুৰঞ্জীখনৰ 'যুগনিৰপেক্ষ মৌখিক সাহিত্য'ৰ আলোচনাত মৌখিক সাহিত্য কি, মৌখিক সাহিত্যৰ বৈশিষ্ট্য, বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ মৌখিক সাহিত্য সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। অৱশ্যে তেওঁ সাধুকথা, ফকৰা-যোজনা আৰু প্ৰবচন সম্পৰ্কে বিস্তৃতভাৱে আলোচনা কৰা নাই। সাধুকথাৰ মাজেদি কি কি দিশৰ প্ৰকাশ ঘটে আৰু ফকৰা-যোজনা আৰু প্ৰবচনবোৰৰ বিষয়বস্তু কেনেধৰণৰ সেই বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে। ইতিহাসকাৰৰ মতে ফকৰা-যোজনা, প্ৰবচনৰ সময় নিৰ্ণয় কৰা টান যদিও বুৰঞ্জীৰ ঘটনা উল্লেখ থকা বা বৈষণ্য নীতি-সদাচাৰ সম্পৰ্কীয় বচনসমূহৰ মোটামুটি সময় নিৰ্ণয় কৰিব পৰা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে 'নাই ৰঙামাটি, নাই গুৱাহাটী', 'ৰামৰ কাৰ্য্যক লাগি বৈদ্য কৰে হেলা' আদি প্ৰবচনৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে। ইতিহাসকাৰে অসমীয়া লোকগীতসমূহক তিনিটা শ্ৰেণীত ভাগ কৰিছে —

(১) অনুষ্ঠানমূলক লোকগীত

(২) আখ্যানমূলক লোকগীত

(৩) বিবিধ বিষয়ক লোকগীত

অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত বিহু গীত, আইনাম, বিয়ানাম, আখ্যানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত মণিকোঁৱৰৰ গীত, ফুলকোঁৱৰৰ গীত, বৰফুকনৰ গীত, জনাগাভৰুৰ গীত, কমলা কুঁৱৰীৰ গীত, ৰাধিকা-শান্তিৰ গীত, দুবেলা শান্তিৰ গীত, কন্যা বাৰমাহীৰ গীত, মধুমতীৰ গীত আৰু বিবিধ বিষয়ক লোকগীতৰ ভিতৰত নিচুকণি গীত, গৰখীয়া গীত, নাও খেলোৱা গীত, নাঙেলী গীত, জুনা গীত, মৈষাল গীত, হাতীমাউতৰ গীত আদি গীতক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। ইতিহাসকাৰে বুৰঞ্জীখনত এই বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ গীতবোৰৰ বিষয়ে উদাহৰণসহ বৰ্ণনা কৰিছে।

ইতিহাসকাৰে ডাকৰ বচনক 'আদি যুগ'ৰ সাহিত্য হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। 'ডাকৰ বচনসমূহ' অসমৰ বাহিৰেও বঙ্গদেশ, বিহাৰ আদি ঠাইতো প্ৰচলিত আছে আৰু সেইবোৰ ঠায়েও ডাকপুৰুষক নিজৰ বুলি দাবী কৰিছে। ইতিহাসকাৰে

ডাকচৰিতৰ কথাত নিৰ্ভৰ কৰি ডাকক নিৰ্দিষ্ট স্থানত আৰু নিৰ্দিষ্ট ঘৰত জন্মলাভ কৰা ঐতিহাসিক ব্যক্তিকৰূপে মানি লোৱা টান বুলি অভিহিত কৰি ডাকৰ বচন সমূহৰ সময় ষোড়শ-সপ্তদশ শতিকা বুলি মত দাঙি ধৰিছে। এই অধ্যায়েত আলোচনা কৰা মন্ত্ৰ সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত বিষয়বস্তু আৰু ৰচনাৰ পটভূমিলৈ দৃষ্টি ৰাখি মন্ত্ৰ সাহিত্যক ‘প্ৰাক-শঙ্কৰী’ যুগৰ সাহিত্য হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। অসমীয়া লোকসাহিত্যক বিভিন্ন ইতিহাসকাৰে ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে নিৰ্ণয় কৰাৰ প্ৰসংগত সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লিখিছে যে—

সমালোচকে গীতবোৰক আদি যুগত স্থাপন কৰাৰ প্ৰধান যুক্তি হ’ল যে সকলো ভাষাৰ লিখিত আৰু পৰিমার্জিত সাহিত্য সৃষ্টি হোৱাৰ আগতে জনসমাজে মৌখিক গীত-নৃত্যৰ মাজেদিয়েই সামূহিক জীৱনৰ আশা-নিৰাশা, প্ৰেম-প্ৰীতি, আনন্দ-উৎসৱত ভাব ফুটাই তোলে। অসমীয়া ভাষা-ভাষী লোকসকলেও লিখিত তথা পৰিমার্জিত সাহিত্য সৃষ্টি কৰাৰ আগতে মৌলিক সাহিত্যৰ যোগেদি জীৱনৰ নানান অভিব্যক্তি প্ৰকাশ কৰিছিল; কিন্তু ওপৰত কোৱা যুক্তি মানি লোৱাতো কোনো বাধা নাই যদিও, বৰ্তমান যিখিনি মৌলিক লোক-গীতে অসমীয়া সাহিত্যৰ সৌষ্ঠৱ আৰু শোভা বৰ্ধন কৰিছে সেইখিনিক বৰ্তমান ৰূপত কোনোমতেই বৈষ্ণৱ যুগৰ আগলৈ ঠেলিব নোৱাৰি।^{১১}

গতিকে এই আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় যে লোকসাহিত্যক সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই ‘যুগ-নিৰপেক্ষ’ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰি ডাকৰবচন আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্যক ‘আদি যুগ’ত স্থান দিছে। ইয়াৰ মাজতো কিছুমান লোকগীতৰ বিষয়বস্তুৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি সময় নিৰ্ণয় কৰিব পাৰি বুলিও সিদ্ধান্ত দিছে।

অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিব নোৱাৰি। এইবোৰৰ ৰচনা কাল, পদ্ধতি সম্বন্ধে পণ্ডিতসকলৰ মাজত মতানৈক্য আছে। মহেশ্বৰ নেওগৰ মতে কিছুমান গীত পৌৰাণিক আখ্যান অৱলম্বন কৰি ৰচিত হৈছিল আৰু কিছুমান গীত দুই-এক বুৰঞ্জীমূলক ঘটনা বা ব্যক্তিক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হৈছিল। গতিকে এই দুই বিধৰ ভিতৰত বুৰঞ্জীমূলক ৰচনাবোৰৰ কাল কিছু পৰিমাণে নিৰ্ণয় কৰিব পাৰিলেও পৌৰাণিক আখ্যান থকা গীতৰ ৰচনাকাল নিৰ্ণয় কৰাটো কঠিন। ইতিহাসকাৰে গীতৰ বিষয়বস্তু অনুসৰি গীতি-সাহিত্যক বিভিন্ন ভাগত ভাগ কৰা নাই। তেওঁ পোনপটীয়াকৈ গীতি-সাহিত্যৰ ভিতৰত বিহুনাৰ আৰু বনগীত, বিয়া-নাম, ধাই-নাম, ধেমালি নাম, আই-নাম,

লখিমী-সবাহৰ গীত, অপেছৰাৰ গীত, গোসাঁই-নাম, সদাশিৱৰ নাম, দেহবিচাৰৰ গীত, টোকাৰী গীত, বাৰমাহী গীত, নাও-খেলৰ গীত, জুনা, কাহিনী-গীত বা বেলাড়, সাধুকথা গীত, হাইদাং গীত, মায়ামৰীয়া ৰণুৱাৰ গীত আৰু জিকিৰক সামৰি আলোচনা কৰিছে। সাধুকথা গীত আৰু মায়ামৰীয়া ৰণুৱাৰ গীতৰ প্ৰসংগ আন ইতিহাসকাৰৰ আলোচনাত পোৱা নাযায়। মন্ত্ৰৰ বিষয়ে আলোচনা কৰোঁতে শঙ্কৰদেৱৰে আগৰে পৰা নানা ধৰণৰ মন্ত্ৰ অসমত প্ৰচলিত হৈ থকাৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে। সাধুকথাৰ প্ৰসংগত ইতিহাসকাৰে লিখিছে—

লোক-কথা বা সাধুকথাৰ কোনো নিৰ্দিষ্ট ৰূপ নাথাকে যদিহে সি গীতৰ ছন্দত বদ্ধ নহয়। ভাল একোটা কাহিনীৰ একোটা সজ নীতি-শিক্ষা থাকে; আৰু সেই কথাৰপৰাই সম্ভৱতঃ লোক-কথাক অসমীয়াত সাধুকথা বোলা হয়।^{১২}

ফকৰা, যোজনা আৰু পটন্তৰ এই শব্দকেইটা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ মতে প্ৰায় সমাৰ্থক আৰু বাস্তৱ ক্ষেত্ৰত এই তিনিওটাৰ মাজত বিশেষ পাৰ্থক্য দেখা নাযায় বুলি উল্লেখ কৰিছে। পুৰণি অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰবাদ-বাক্য, ফকৰা-যোজনাৰ প্ৰভাৱ পৰা দেখা যায়। আনহাতে ‘জনসাধাৰণৰ আৰু কেতিয়াবা পণ্ডিতৰো সহজ বুদ্ধিজাত শব্দৰ ধেমালি’য়েই সাঁথৰ বুলি উল্লেখ কৰি সাঁথৰৰ আলোচনা সিমানতেই সামৰিছে। ডাকৰ বচনৰ আলোচনাত ডাকৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে লিখিছে। ডাকৰ বচনৰ মাজেদি প্ৰকাশ পোৱা বিভিন্ন ৰীতি-নীতিৰ প্ৰসংগ এই আলোচনাত অৱতাৰণা কৰিছে।

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ যুগ বিভাগ কৰোঁতে লোকসাহিত্যক বহুতে ‘আদি যুগ’ত অন্তৰ্ভুক্ত কৰে। কিন্তু লোকসাহিত্যৰ সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিব নোৱাৰি। সেয়ে মহেশ্বৰ নেওগে লোকসাহিত্য সমূহক সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ এটা যুগত অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ পৰিৱৰ্তে ‘লোক-গীতি আৰু লোক-কথা’ হিচাপে বুৰঞ্জীখনত আলোচনা কৰিছে। মহেশ্বৰ নেওগে লোকসাহিত্যৰ সময়সীমা সম্পৰ্কত লিখিছে এইদৰে—

বুৰঞ্জীমূলক কাহিনী-গীতবোৰত আৰু আন অনেক গীত-মাততে বুৰঞ্জীৰ আঁচোৰ লাগি আছে। আই-নাম, বিয়া-নাম, বিহু-নামৰূপেইবোৰৰ এনে নামকৰণত নামধৰ্মৰ প্ৰচাৰৰ প্ৰভাৱৰ ইঙ্গিত সোমাই আছে। ডাকৰ বচন, আজান পীৰৰ গীত, ভকতীয়া ফকৰা আদি বিশেষ একোজন ব্যক্তিৰ নামৰ লগত জড়িত যদিও, সিৰোৰ আমালৈ আহিছে মৌখিক

পথেদি; সিবোৰৰ লক্ষণ চৰিত্ৰ আদিত লোকপ্ৰদাদৰ বৈশিষ্ট্য কৰালৰ দৰে লাগি আছে। গতিকে সিবিলাকক লোক-গীত আৰু লোক-কথাৰ লগতে বিবেচনা কৰা হৈছে।^{১০}

বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা সম্পাদিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (প্ৰথম খণ্ড)ত লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে আলোচনা কৰোঁতে লেখকে লোকসংস্কৃতিৰ উদ্ভৱ সম্পৰ্কে সুনিৰ্দিষ্ট সময় সীমা নিৰ্দেশ কৰিব নোৱাৰি বাবে লোকসাহিত্যক ‘যুগনিৰপেক্ষ ৰচনা’ বুলি অভিহিত কৰিছে। এই বুৰঞ্জীখনত লেখকে লোকসাহিত্যৰ তাত্ত্বিক শ্ৰেণীবিভাজনক এনেদৰে ভাগ কৰিছে—

- (১) লোকগীত
- (২) গদ্যধৰ্মী লোককথা
- (৩) প্ৰবচন, সাঁথৰ আৰু
- (৪) লোকভাষা

লোকগীতক পুনৰ কেইবাটাও ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে—

- (ক) বেলেড বা মালিতা
- (খ) ধৰ্মীয় গীত
- (গ) প্ৰণয়গীত
- (ঘ) কৰ্মগীত
- (ঙ) উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ সৈতে জড়িত গীত
- (চ) তত্ত্বপূৰ্ণ গীত
- (ছ) চিকাৰ আদিৰ লগত জড়িত গীত
- (জ) বিদ্ৰোপাত্মক গীত
- (ঝ) কেঁচুৰা ল’ৰা-ছোৱালীৰ লগত জড়িত গীত

‘বেলেড বা মালিতা’ক লেখকে কথাবস্তু বা কাহিনীৰ বিষয়বস্তু অনুসৰি তলত দিয়াৰ দৰে ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে—

- (ক) পুৰাণগত মালিতা
- (খ) নৈদানিক মালিতা
- (গ) ঐতিহাসিক মালিতা
- (ঘ) জনশ্ৰুতিমূলক মালিতা
- (ঙ) যাদুমূলক বা বিস্ময়াৱহ বা অলৌকিক মালিতা
- (চ) ব্যঙ্গাত্মক মালিতা
- (ছ) বাস্তৱানুগ মালিতা

লেখক মতে ‘বাৰমাহী গীত’ৰ কাহিনীৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি এইবিধ গীতকো মালিতাৰ শ্ৰেণীত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। লেখকে ‘মৌখিক সাহিত্য’ৰ আলোচনাত কেৱল ‘লোকগীত’ৰ বিষয়ে উদাহৰণসহ বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে।

গদ্যধৰ্মী লোককথা, প্ৰবচন, সাঁথৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা নাই। কেৱল ‘লোক গীত’ৰ ওপৰতহে অধিক গুৰুত্ব দিছে। ইয়াৰ উপৰি এই বুৰঞ্জীখনত উল্লেখ কৰা ‘প্ৰণয়গীত’ৰ প্ৰসংগ পূৰ্বৰ ইতিহাসকাৰসকলৰ বুৰঞ্জীত পোৱা নাযায়। লেখকে পূৰ্বৰাগ, অনৰাগ, সন্তোাগ, বিপ্লৱন্ত, মিলন আদি ভাববিশিষ্ট গীতবোৰেই প্ৰেম-প্ৰণয়মূলক গীত হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। গোৱালাপাৰা অঞ্চলত প্ৰচলিত ভাৱাইয়া আৰু ছতকা গীতবোৰ প্ৰেম-প্ৰণয়মূলক গীতৰ অন্তৰ্ভুক্ত। লিৰিকেল সৌন্দৰ্যৰ বাবে এই দুয়ো বিধ গীত উল্লেখযোগ্য।^{১১} লেখকে তামোল-চোৰৰ গীত, চাহ-পুৰাণৰ গীত, বেলগা-পুৰাণৰ গীত, কপাহৰ জুনা, পচলাৰ জুনা, তাঁতীৰ জুনা আদি গীতক ‘বিবিধ বিষয়ক গীত’ৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। গতিকে এই বুৰঞ্জীত লোকগীতৰ বিস্তৃত আলোচনা পোৱা যায়।

সিদ্ধান্ত :

অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস নিৰ্মাণত বিভিন্ন ইতিহাসকাৰসকলৰ দৃষ্টিভংগীৰ তুলনামূলক বিচাৰ শীৰ্ষক আলোচনাৰ অন্তত প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্ত এনেধৰণৰ —

(১) অতীজৰে পৰা পুৰুষাণুৰূপে মানুহৰ মুখ মুখে চলি অহা লোকসাহিত্যসমূহৰ সঠিক সময় নিৰূপণ কৰিব নোৱাৰি। কাৰণ এইসমূহ এটা নিৰ্দিষ্ট যুগত ৰচিত হোৱা নাছিল। কিন্তু দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা আৰু ডিম্বেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া লোকসাহিত্যক ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। আনহাতে সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা আৰু মহেশ্বৰ নেওগে লোকসাহিত্যক সুকীয়া অধ্যায়ত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে। অৱশ্যে ডাকৰ বচন আৰু মন্ত্ৰ সাহিত্যক সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছে। ইয়াৰ লগতে সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা আৰু মহেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া লোকসাহিত্যক পৃথককৈ শ্ৰেণীবিভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে।

(২) দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই লোকসাহিত্যক ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে যদিও তাৰ ভিতৰত কেৱল সাঁথৰ আৰু ডাকৰ বচনকহে অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। তেওঁ ডাকৰ জন্ম বৃত্তান্ত আৰু সময়সীমাৰ দিশত বেছি গুৰুত্ব দিছে। কিন্তু ডিম্বেশ্বৰ নেওগ আৰু আন ইতিহাসকাৰসকলে ডাকৰ বচনৰ বিষয়বস্তু আৰু বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ দিশতো গুৰুত্ব দি আলোচনা কৰিছে।

(৩) হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে লোকসাহিত্যসমূহ কেৱল সংগ্ৰহ কৰি *অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকিত* সংকলন কৰিছে।

তেওঁ লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে কোনো আলোচনা দাঙি ধৰা নাই। মাত্ৰ ‘গীতি যুগ’ আৰু ‘মন্ত্ৰ আৰু ভণিতা যুগ’ত লোকসাহিত্যক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। কিন্তু আটাইবোৰ লোকগীতকে নিৰ্দিষ্ট এটা যুগত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব নোৱাৰি।

(৪) সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা আৰু মহেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া ‘আই-নাম’ক অনুষ্ঠানমূলক লোকগীত হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। কিন্তু ডিম্বেশ্বৰ নেওগে ‘আই-নাম’ক ধৰ্মীয় সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। লগতে অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)ত লেখকে ‘ধৰ্মীয় গীত’ৰ আলোচনাত ‘আই-নাম’ক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

(৫) অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)ত উল্লেখ কৰা ‘প্ৰণয়গীত’ৰ প্ৰসংগ আৰু বিবিধ গীতৰ ভিতৰত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা তামোল-চোৰৰ গীত, চাহ-পুৰাণৰ গীত, বেলগা-পুৰাণৰ গীতৰ প্ৰসংগ আন সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত পোৱা নাযায়।

(৬) সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা আৰু মহেশ্বৰ নেওগে অসমীয়া লোকসাহিত্যসমূহৰ সামগ্ৰিক আলোচনা কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ অন্য ইতিহাসকাৰসকলে অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে সম্পূৰ্ণ আলোচনা আগবঢ়োৱা নাই। বিশেষকৈ ‘লোকগীত’ৰ বিষয়ে কিছুপৰিমাণে আলোচনা কৰিলেও সাধুকথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, সাঁথৰ, ডাকৰ বচনৰ বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা কৰা নাই। ডাকৰ বচনৰ ক্ষেত্ৰত কেৱল ‘ডাক’ পুৰুষৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে।

উপসংহাৰ :

বিষয়টো অধ্যয়ন কৰি দেখা যায় যে অতীজৰে পৰা মানুহৰ মুখ চলি অহা লোকসাহিত্যসমূহ কেতিয়া ৰচনা হৈছিল সঠিককৈ ক’ব নোৱাৰি। কোনো কোনো ইতিহাসকাৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ যুগবিভাজন কৰি ‘আদি যুগ’ত অসমীয়া লোকসাহিত্যক স্থান দিছে। কিন্তু আটাইবোৰ লোকসাহিত্যই ‘আদি যুগ’ৰ ৰচনা বুলি সিদ্ধান্ত দিবলৈ অপাৰগ। কিছুমান লোকসাহিত্যৰ বিষয়বস্তুৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি সময় নিৰ্ধাৰণ কৰিব পাৰিলেও বিহু নাম, বিয়া নাম, ধাই নাম, সাঁথৰ, প্ৰবাদ-প্ৰবচন আদিৰ সময় নিৰ্দ্ধাৰণ কৰিব নোৱাৰি। গতিকে কোনো ইতিহাসকাৰে সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত লোকসাহিত্যক ‘আদি যুগ’ৰ সাহিত্য হিচাপে বিচাৰ কৰিলেও এই লৈ মত বিৰোধ আছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসকাৰ সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লোকসাহিত্যক সেয়েহে ‘যুগ নিৰপেক্ষ সাহিত্য’ হিচাপে বিচাৰ কৰিছে। একেদৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)তো লেখকে লোকসাহিত্যক ‘যুগ নিৰপেক্ষ সাহিত্য’ হিচাপে উল্লেখ কৰিছে। লোকসাহিত্যৰ ইতিহাস আৰু বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ বিষয়ে ইতিহাসকাৰসকলে অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত বহল পৰিসৰত আলোচনা কৰা নাই। লিখিত সাহিত্য উদ্ভৱৰ আগৰে পৰা সমাজত প্ৰচলিত হৈ অহা অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিষয়ে ব্যাপকভাৱে চৰ্চা কৰাৰ অৱকাশ আছে। লগতে অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীতো লোকসাহিত্যক বিস্তৃতভাৱে বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়োজন আছে। □

প্ৰসংগসূত্ৰ :

- ১) বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা, অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ২৩১
- ২) দেবেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱা, অসমীয়া ভাষা আৰু সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, পৃ. ৪৩
- ৩) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৪
- ৪) নগেন শইকীয়া (সম্পা.), ডিম্বেশ্বৰ নেওগ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ৫৪
- ৫) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৫৬
- ৬) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ২৮০
- ৭) হৰিপ্ৰসাদ নেওগ (সম্পা.), ডিম্বেশ্বৰ নেওগ স্মৃতিগ্ৰন্থ, পৃ. ২৮১
- ৮) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ২৯৪, ২৯৫
- ৯) ডিম্বেশ্বৰ নেওগ, নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, পৃ. ২৬
- ১০) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৪
- ১১) সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পৃ. ১৮
- ১২) মহেশ্বৰ নেওগ, অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, পৃ. ৩০
- ১৩) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৩৪৯
- ১৪) বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা (সম্পা.), অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ২৫১

গ্ৰন্থপঞ্জী :

মুখ্য উৎস—

গোস্বামী, হেমচন্দ্ৰ (সম্পা.). (২০০২) অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকি (প্ৰথম খণ্ড), বাণী মন্দিৰ
নেওগ, ডিম্বেশ্বৰ. (২০০৮) নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, গুৱাহাটী

নেওগ, মহেশ্বৰ. (২০১৫) অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্ৰ
প্ৰকাশ, গুৱাহাটী
বেজবৰুৱা, দেবেন্দ্ৰনাথ. (২০১৩) অসমীয়া ভাষা আৰু
সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী
শইকীয়া, নগেন (সম্পা.). (২০১২) ডিম্বেশ্বৰ নেওগ ৰচনাৱলী
(প্ৰথম খণ্ড), অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. (১৯৫৯) অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিবৃত্ত, বাণী
প্ৰকাশ মন্দিৰ
— (১৯৮১) অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত
সোমাৰ প্ৰিন্টিং এণ্ড পাব্লিছিং কোং, গুৱাহাটী
হাজৰিকা, বিশ্বেশ্বৰ (সম্পা.). (২০১৬) অসমীয়া সাহিত্যৰ
বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড), আবিলাক, গুৱাহাটী
গৌণ উৎস—
নেওগ, হৰিপ্ৰসাদ (সম্পা.). (১৯৬৭) ডিম্বেশ্বৰ নেওগ
স্মৃতিগ্ৰন্থ, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট
শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ. (২০১৯) লোক সংস্কৃতি, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হগ্ৰা নাচ : পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন



যুগল চন্দ্ৰ সোণোৱাল

গৱেষক ছাত্ৰ, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়(স্বতন্ত্ৰ)
যোৰহাট- ৭৮৫০০১
☎ ৯৮৫৪৩৫৯৬১৩
✉ jugalchandrasonowal@gmail.com



ড° জ্যোতিৰেখা হাজৰিকা

তত্ত্বাবধায়ক, অৱসৰপ্ৰাপ্ত মুৰব্বী অধ্যাপক
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়(স্বতন্ত্ৰ)
যোৰহাট- ৭৮৫০০১
☎ ৯৪৩৫০৯৬০৪
✉ jyotirekhajb@rediffmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ :

অসমৰ ভূ-খণ্ডত বসবাস কৰা জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত সোণোৱাল কছাৰীসকল অন্যতম। সাধাৰণতে কৃষি নিৰ্ভৰশীল সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত নানা প্ৰকাৰৰ ধৰ্মীয়-সামাজিক-সাংস্কৃতিক আচাৰ-অনুষ্ঠান পালন কৰে। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বৈচিত্ৰ্যময় সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহে অসমৰ সাংস্কৃতিক সমৃদ্ধ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত অৰিহণা আগবঢ়াই আহিছে।

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ সুকীয়া পৰম্পৰাৰে যাপন কৰা স্বকীয় জীৱন-শৈলী আছে। কৃষিকে জীৱন-জীৱিকাৰ আধাৰ হিচাবে গ্ৰহণ কৰা সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত নানা লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, লোক-ৰীতি-নীতি, লোক-পৰম্পৰা পালন কৰি জীৱন যাপন কৰা দেখা যায়। ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে সোণোৱাল কছাৰীসকলে কিছুমান স্বকীয় উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি আহিছে।

সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত পালন কৰা উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত হগ্ৰা নাচ অন্যতম। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ স্বকীয় জনগোষ্ঠীয় পৰম্পৰা এই হগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ পায়।

হগ্ৰা নাচ পৰিবেশনৰ সৈতে জড়িত ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি, লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, পৰিবেশন শৈলী আদিৰ জৰিয়তে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ স্বকীয় পৰিচয় প্ৰকাশ পায়। নাচটিৰ সৈতে সম্পৰ্কিত সকলো দিশ অধ্যয়নৰ বাবে ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰদ্বাৰা আহৰণ কৰা মুখ্য সমল আৰু ইতিমধ্যে প্ৰকাশিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ আদিৰ গৌণ সমলৰ সহায় লোৱা হৈছে। সংগৃহীত তথ্যসমূহ বিশ্লেষণাত্মক আৰু প্ৰয়োজনসাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক আৰু ঐতিহাসিক পদ্ধতিৰে আলোচনা কৰা হ'ব। হগ্ৰা নাচৰ পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তনৰ বিভিন্ন দিশসমূহ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে উদ্ঘাটন কৰি সামাজিক সম্প্ৰীতি স্থাপনত ইয়াৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হগ্ৰা নাচ, লোক-পৰম্পৰা, লোকাচাৰ, পৰিবেশনশৈলী, লোক-উৎসৱ।

০.০০ অৱতৰণিকা :

লোক-উৎসৱৰ জৰিয়তে একোটা জাতি বা জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক জীৱনৰ পৰিচয় প্ৰকাশ পায়। কোনো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে বছৰৰ একোটা নিৰ্দিষ্ট দিন অথবা ঋতুত নিৰ্দিষ্ট ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰে পালন কৰা অনুষ্ঠানসমূহক সাধাৰণভাৱে লোক-উৎসৱ বোলা হয়। লোক-উৎসৱসমূহ লোক-সাংস্কৃতিৰ মূল উপাদানস্বৰূপ।

উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহ মানৱ জীৱনৰ এবাৰ নোৱাৰা একো একোটা উপাদান। অৱসৰ বিনোদন আৰু আনন্দ লাভৰ বাবে কৰা ই এক প্ৰকাৰৰ বিশেষ কৰ্ম। খোৱা-বোৱা কৰা, নাচ-গান কৰা, বং-বহইচ কৰা, খেল-ধেমালি কৰা, কৌতুক, অভিনয় কৰা আদি কাৰ্যসমূহ ইয়াৰ প্ৰধান অংগ।

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চল বৈচিত্ৰময় সাংস্কৃতিক উপাদানৰ সমন্বয় থলী। অসমৰ ভূ-খণ্ডত বসবাস কৰা জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত জনসংখ্যাৰ দিশৰপৰা তৃতীয় স্থানত থকা সোণোৱাল কছাৰীসকল অন্যতম। সাধাৰণতে কৃষি নিৰ্ভৰশীল সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত নানা প্ৰকাৰৰ ধৰ্মীয়-সামাজিক-সাংস্কৃতিক আচাৰ-অনুষ্ঠান পালন কৰে। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বৈচিত্ৰময় সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহে অসমৰ সাংস্কৃতিক সমৃদ্ধ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত অৰিহণা আগবঢ়াই আহিছে।

বৰ্তমান অসমৰ তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, লক্ষীমপুৰ, ধেমাজি, শিৱসাগৰ, যোৰহাট জিলা আৰু গুৱাহাটীৰ সোণাইঘূলিত বসবাস কৰা সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ সুকীয়া পৰম্পৰাৰে যাপন কৰা স্বকীয় জীৱন শৈলী আছে। কৃষিকে জীৱন-জীৱিকাৰ আধাৰ হিচাবে গ্ৰহণ কৰা সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত নানা লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, লোক-ৰীতি-নীতি, লোক-পৰম্পৰা পালন কৰি জীৱন যাপন কৰা দেখা যায়। ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে সোণোৱাল কছাৰীসকলে কিছুমান স্বকীয় উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি আহিছে।

সোণোৱাল কছাৰীসকলে বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত পালন কৰা উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত হুগ্ৰা নাচ অন্যতম। সোণোৱাল কছাৰীসকলে স্বকীয় পৰম্পৰাৰে বহাগ বিহুত ঘৰে ঘৰে হুঁচৰি গোৱা সামৰণি পৰাৰ পাছতে পালন কৰা অন্যতম অনুষ্ঠান হৈছে হুগ্ৰা নাচ। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ স্বকীয় জনগোষ্ঠীয় পৰম্পৰা হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ পায়। তদুপৰি আদিম জনগোষ্ঠীয় পৰম্পৰাও নাচটিৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ পোৱা দেখা যায়।

০.১ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা :

অসমৰ বৃহত্তৰ সংস্কৃতি ইয়াত বসবাস কৰা নানা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ উপাদানেৰে গঢ় লৈ উঠিছে। এই সমূহৰ পাৰস্পৰিক সহযোগিতাৰ বাবেই অনৈক্যৰ মাজতো অসমীয়া সংস্কৃতিত একতৰ

ভাৱনা বিৰাজ কৰা দেখা যায়। এই জাতি-

জনগোষ্ঠীসমূহৰ স্বকীয় কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ সংমিশ্ৰণত অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতি বৰ্তি আছে। অসমৰ এই বাবেবহনীয়া সামাজিক-সাংস্কৃতিক পটভূমি সুন্দৰভাৱে জীয়াই ৰাখিবলৈ ইয়াত বসবাস কৰা প্ৰতিটো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ সুশ্ৰেী দিশসমূহ বিজ্ঞানসন্মতভাৱে অধ্যয়ন কৰাৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা আছে। এনে অধ্যয়নে অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াত অৰিহণা আগবঢ়াব আৰু সমন্বয়ৰ এনাজৰীডাল মজবুত কৰাত সহায়ক হ'ব বুলি ভবা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ মাজত প্ৰচলিত হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে জাতিটোৰ সামাজিক লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস সম্পূৰ্ণভাৱে প্ৰতিফলিত হয়। তদুপৰি সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ সাংস্কৃতিক প্ৰাচীনতাৰ উমানো নৃত্যটিৰ জৰিয়তে লাভ কৰিব পৰা যায়। নাচটিৰ সৈতে সম্পৰ্কিত বিভিন্ন আচাৰ-ৰীতি, জনশ্ৰুতি আৰু নৃত্যটি পৰিবেশনত ফুটি উঠা অনন্য ৰূপ জনগোষ্ঠীটোৰ অমূল্য সম্পদ। এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে তলত দিয়া দিশসমূহ উদ্ঘাটনৰ উদ্দেশ্যেৰে বিষয়টি নিৰ্বাচন কৰা বিষয়টি নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

- ক) হুগ্ৰা নাচৰ সাধাৰণ পৰিচয় দাঙি ধৰা।
- খ) হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে সম্পৰ্কিত কিম্বদন্তী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- গ) হুগ্ৰা নাচৰ লগত জড়িত পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- ঘ) হুগ্ৰা নাচ পৰিবেশনৰ সময় সন্দৰ্ভত আলোচনা কৰা।
- ঙ) হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে জড়িত লোক-বিশ্বাস সম্পৰ্কে বিচাৰ কৰা।
- চ) হুগ্ৰা নাচৰ পৰিবেশনৰ পদ্ধতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- ছ) হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে পৰিবেশনত ব্যৱহাৰ কৰা বাদ্য-গীত সন্দৰ্ভত আলোচনা কৰা।
- জ) হুগ্ৰা নাচ পৰিবেশন কৰোঁতে পৰিধান কৰা সাজপাৰ সম্পৰ্কে পৰিচয় প্ৰদান কৰা।
- ঝ) হুগ্ৰা নাচৰ পৰিবেশনলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ বিভিন্ন দিশ সন্দৰ্ভত আলোচনা কৰা।

০.৩ অধ্যয়ন পদ্ধতি :

গৱেষণা পত্ৰখন বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে আলোচনা কৰা হৈছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। মুখ্য উৎস - ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন। ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নত

প্ৰশ্নসূচী, সাক্ষাৎকাৰ আৰু পৰ্যবেক্ষণ কৰা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে ইতিমধ্যে প্ৰকাশিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ, আলোচনীৰ পৰা তথ্য লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত সোণোৱাল কছাৰীসকলে পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতিৰে হুগ্ৰা নাচ প্ৰদৰ্শন কৰি আহিছে। ইয়াক পৰিৱেশন কৰোঁতে নানা সামাজিক, ধৰ্মীয় নিয়ম মানি চলা হয়, যিসমূহ সোণোৱাল কছাৰী সংস্কৃতিৰ অন্যতম উপাদান। তিনিচুকীয়া জিলাৰ ডাঙৰি বৰপথাৰ গাঁও, ডিব্ৰুগড় জিলাৰ দিনজানৰ বিষ্কাটগাঁও, খোৱাং ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁৱত ৰাইজৰ সমূহীয়া উদ্দ্যোগত হুগ্ৰা নাচ অনুষ্ঠিত কৰা হয়। এই স্থানসমূহৰ ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে তথ্য আহৰণ কৰা হৈছে। হুগ্ৰা নাচ পৰিৱেশন কৰা গাঁওসমূহৰ পৰা আহৰণ কৰা মুখ্যসমলৰ সহায়ত পত্ৰখনিত আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব। হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ প্ৰাচীন নৃ-গোষ্ঠীয় বৈশিষ্ট্য কেনেদৰে প্ৰকাশ পাইছে, আলোচনাৰ মাজত সামৰি লোৱা হ'ব।

০.৫ হুগ্ৰা নাচ সন্দৰ্ভত কৰা পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক ইত্যাদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত ইতিমধ্যে কৰা গৱেষণা কৰ্মৰ জৰিয়তে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ এটি পৰিচয় প্ৰকাশ পাইছে। ইতিমধ্যে হোৱা অধ্যয়ন কৰ্মৰ জৰিয়তে বহুবোৰ বিষয় উদ্ঘাটন হৈছে। এই সমূহ বিভিন্ন গৱেষণা গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ সংকলন, আলোচনী আদিত প্ৰকাশ পাইছে।

মোহন সোণোৱাল আৰু গুণেশ্বৰ সোণোৱালৰ যৌথ সম্পাদনাত প্ৰকাশ পোৱা সোণোৱাল কছাৰীৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতি (২০০১) গ্ৰন্থত ছটা বিভিন্ন বিষয়ৰ প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পাইছে। গ্ৰন্থখনিৰ দ্বিতীয় সোণোৱালৰ 'সোণোৱাল সকলৰ হুগ্ৰা নাচ' নামৰ প্ৰবন্ধত নাচটি সন্দৰ্ভত আলোচনা কৰিবলৈ চেষ্টা চলাইছে। হুগ্ৰা নাচৰ উৎপত্তি, হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে সম্পৰ্কিত ৰীতি-নীতি, গীত-মাত, সামাজিক আৰু ধৰ্মীয় উদ্দেশ্য, উদ্‌যাপনৰ কাৰণ আৰু ভিন্নতাৰ কাৰণ সন্দৰ্ভত আলোচনা আগবঢ়াইছে; কিন্তু প্ৰবন্ধটিত হুগ্ৰা নাচ সন্দৰ্ভত বিস্তৃত তথ্যৰ অভাৱ দেখা যায়। তদুপৰি হুগ্ৰা নাচলৈ অহা পৰিৱৰ্তন, ইয়াৰ কাৰক আৰু ইয়াৰ প্ৰভাৱ সন্দৰ্ভত পৰিপূৰ্ণ অধ্যয়নৰ অৱকাশ ৰৈ গৈছে।

তিলো সোণোৱালৰ শিশু আৰু কিশোৰ ৰচনাৱলীৰ দ্বিতীয় খণ্ড (চতুৰ্থাৰ) ৰ 'হুগ্ৰা নাচঃ কিছু কথা' শীৰ্ষক লেখনিত ককাকো নাতিয়েকক সাধু কোৱাৰ শৈলীৰে হুগ্ৰা নাচৰ বিষয়ে

চমুকৈ আলোচনা কৰিছে। শিশুৱে সৰলভাৱে বুজিব পৰাকৈ পদ্যৰ আৰ্হিত হুগ্ৰা নাচৰ ধাৰণা দাঙি ধৰিছে। হুগ্ৰা নাচৰ সম্পৰ্কে প্ৰচলিত কিস্মদন্তী সন্দৰ্ভতো শিশু আৰু কিশোৰসকলৰ উপযোগী হোৱাকৈ আলোচনা কৰিছে; কিন্তু হুগ্ৰা নাচৰ বিষয়ে গৱেষণাধৰ্মী তথ্য প্ৰদান কৰিব পৰা নাই।

মোহন সোণোৱালৰদ্বাৰা সম্পাদিত সোণোৱাল সৌৰভ (২০০৭) নামৰ গ্ৰন্থত চতুৰ্থৰ সোণোৱালৰ 'বিভিন্নজনৰ দৃষ্টিত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হুগ্ৰা নাচ' নামৰ এটি প্ৰবন্ধত হুগ্ৰা নাচ সন্দৰ্ভত বহুবোৰ দিশ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। বহুৱা নাচৰ উৎপত্তি, ইয়াৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন জনশ্ৰুতি, উদ্‌যাপনৰ সৈতে সম্পৰ্কিত ৰীতি-নীতিৰ পৰিচয় দাঙি ধৰা হৈছে; কিন্তু হুগ্ৰা নাচটিৰ পৰিপূৰ্ণ ধাৰণা এটি প্ৰবন্ধকাৰে দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হোৱা নাই।

নন্দেশ্বৰ কছাৰীৰ সোণোৱাল কছাৰী সমাজ-সংস্কৃতি আৰু ভাষাৰ পৰিচয় (২০১১) গ্ৰন্থত সোণোৱাল কছাৰী ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক সকলো দিশৰ আলোচনা আগবঢ়াইছে। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ পৰিচয়, জীৱিকা, লোক-সাহিত্য, বিবাহ পদ্ধতি, খেল-ধেমালি, সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ ভাষা সন্দৰ্ভত আলোচনা আগবঢ়াইছে; কিন্তু গ্ৰন্থখনিত হুগ্ৰা নাচ সন্দৰ্ভত বিশেষ তথ্য নিৰ্ভৰ আলোচনা কৰা নাই।

গুণেশ্বৰ সোণোৱালৰদ্বাৰা সম্পাদিত সোণোৱাল কছাৰী জনগোষ্ঠী আৰু অন্যান্য জনজাতীয় প্ৰতিভাৰ সমীক্ষা (২০১৩) শীৰ্ষক গ্ৰন্থত বিভিন্ন আলোচকে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক, অৰ্থনৈতিক জীৱন, ইয়াৰ অতীত পৰম্পৰা আৰু ভৱিষ্যত সন্দৰ্ভত বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে। জনগোষ্ঠীয় ধ্বজাবাহী হুগ্ৰা নাচৰ বিষয়ে গ্ৰন্থখনিত কোনো আলোচনা কৰা দেখা নগ'ল।

মোহন সোণোৱালৰদ্বাৰা ৰচিত সোণোৱাল সুবাস (২০১৩) গ্ৰন্থত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ ঐতিহাসিক পটভূমিৰ পৰিচয় দাঙি ধৰি লোকসকলৰ খেল, বংশ, সঁচৰ বিভাজন সন্দৰ্ভত চমুকৈ আলোচনা আগবঢ়াইছে। বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত পালন কৰা উৎসৱ-অনুষ্ঠান, জীৱনবৃত্তৰ সৈতে জড়িত নানা লোকাচাৰ, প্ৰচলিত লোক-সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা দাঙি ধৰিছে। ধৰ্মীয়, সামাজিক, সাংস্কৃতিক বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহ কেনেকৈ পালন কৰে আৰু সাম্প্ৰতিক সময়ত এইসমূহ পালনৰ প্ৰাসংগিকতা সন্দৰ্ভতো আলোচনা আগবঢ়াইছে; কিন্তু আমাৰ আলোচ্য বিষয় হুগ্ৰা নাচৰ বিষয়ে এই গ্ৰন্থতো পৰ্যাপ্ত

আলোচনা কৰা হোৱা নাই।

প্ৰশান্ত কুমাৰলৈ সোণোৱাল কছাৰী তত্ত্ব আৰু বিশ্লেষণ (২০১৩) গ্ৰন্থত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ সঁচ, বংশ বিভাজনৰ তাত্ত্বিক বিষয়ে আলোচনা আগবঢ়াইছে। বিভিন্ন দেৱ-দেৱীৰ পূজা-উপাসনা কৰা সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ প্ৰধান আৰাধ্য দেৱতা বাইথ' পূজা সন্দৰ্ভতো পৰ্যালোচনা কৰা হৈছে। সৰগদেউ পূজা, গজাই পূজাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা গ্ৰন্থখনিত হুগ্ৰা নাচ বিষয়টিয়ে কোনো প্ৰকাৰৰ প্ৰাধান্য পোৱা দেখা নগ'ল।

হেমন্ত কুমাৰ চলিহাৰ সোণোৱাল কছাৰীৰ সংস্কৃতি (২০১৭) শীৰ্ষক গৱেষণা গ্ৰন্থখনিত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ জীৱন-বৃত্তৰ সৈতে সম্পৰ্কিত সকলো দিশ সামৰি আলোচনা আগবঢ়াইছে। নটা অধ্যায়ত বিভাজন কৰা গ্ৰন্থখনিত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ পৰিচয় দাঙি ধৰি তেওঁলোকৰ উৎপত্তি, ৰাজ্য শাসনৰ পদ্ধতি, তেওঁলোকৰ জনজাতীয় বিশেষত্ব, জনবসতি, মুঠ জনসংখ্যা, অসমীয়া জাতি গঠনত তেওঁলোকৰ অৱদান সম্পৰ্কে আলোচনা আগবঢ়াইছে। তদুপৰি প্ৰচলিত লোক-উৎসৱ, লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত পালন কৰা উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহৰ পৰিচয়, পালন কৰা ৰীতি-নীতি আদি সন্দৰ্ভত আলোচনা আগবঢ়াইছে; কিন্তু সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ জনগোষ্ঠীয় ধ্বজাবাহী হুগ্ৰা নাচে আলোচনাত বিশেষ প্ৰাধান্য লাভ কৰা দেখা নগ'ল।

হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে সম্পৰ্কিত কিস্মদন্তী, ৰীতি-নীতি, লোক-বিশ্বাস, লোকাচাৰ আদি সকলোতে জনজাতীয় বিশেষত্ব প্ৰকাশ পায়। ইতিমধ্যে কৰা গৱেষণাত হুগ্ৰা নাচৰ সন্দৰ্ভত বিতং তথ্য উদ্ধাৰ হোৱা দেখা নাই। হুগ্ৰা নাচৰ অনা-উন্মোচিত দিশসমূহ উদ্ঘাটন কৰাৰ উদ্দেশ্যৰে এই অধ্যয়ন কাৰ্য আগবঢ়োৱা হৈছে।

১.০০ বিষয়ৰ আলোচনা :

১.০১ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ পৰিচয় :

অসমত বসবাস কৰা ভৈয়াম জনজাতিসকলৰ ভিতৰত তৃতীয় বৃহৎ জনগোষ্ঠী হ'ল সোণোৱাল কছাৰীসকল। উজনি অসমৰ লখিমপুৰ, ধেমাজি, তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, শিৱসাগৰ, যোৰহাট আৰু গোলাঘাট জিলা সোণোৱাল কছাৰী সকলৰ প্ৰধান বসতিস্থল। তদুপৰি চুবুৰীয়া অৰুণাচল আৰু নগালেণ্ড ৰাজ্যতো সোণোৱাল কছাৰীসকলে বসবাস কৰা দেখা যায়। মূলতঃ মঙ্গোলীয় (কিৰাত) প্ৰজাতিৰ অন্তৰ্গত

সোণোৱাল কছাৰীসকলে শদিয়া অঞ্চলত প্ৰৱল প্ৰতাপেৰে ৰাজত্ব কৰি শৌৰ্য-বীৰ্য প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ কথা ইতিহাসত পোৱা যায়।^১ সোণোৱাল কছাৰীসকলে শদিয়া অঞ্চলত হালালী নামৰ ৰাজ্য স্থাপন কৰিছিল, যাৰ অৰ্থ “হা” মানে মাটি আৰু “লালী” মানে উজ্বল, অৰ্থাৎ উজ্বল মাটিৰ দেশ বা সমৃদ্ধিৰ দেশ।^২ এই ৰাজ্যৰ সীমা পূবে শদিয়া, পশ্চিমে দিখৌমুখ আৰু দক্ষিণে দিলিহিৰ কেন্দুগুৰিলৈ বিস্তৃত আছিল বুলি ড° সূৰ্যকুমাৰ ভূঞাই উল্লেখ কৰিছে।^৩

বুৰঞ্জীবিদ সূৰ্যকুমাৰ ভূঞাৰ মতে - শদিয়া অঞ্চলত প্ৰৱল প্ৰতাপেৰে ৰাজত্ব কৰা কছাৰীসকলৰ হালালী ৰাজ্যৰ সীমা পূবে শদিয়া, পশ্চিমে দিখৌমুখ আৰু দক্ষিণে দিলিহিৰ কেন্দুগুৰিলৈ সীমাবদ্ধ আছিল। ৰাজ্যৰ অধিবাসীসকলক শদিয়াল কছাৰী বোলা হৈছিল। হালালী শব্দৰ অৰ্থ হা-মাটি, লালী-উজ্বল, অৰ্থাৎ উজ্বল মাটিৰ দেশ। এই শদিয়াল কছাৰীসকলেই পিছত সোণোৱাল কছাৰী হিচাবে পৰিচিত হ'ল।^৪

সোণোৱাল কছাৰী লেখক শিৱ সোণোৱালৰ মতে - মঙ্গোলয়দ হৈ অসমত প্ৰৱেশ কৰা সোণোৱালসকল পূৰ্বতে জড়োপাসক আছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত কিৰাত ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰি খেতি-বাতি বা যাতায়তৰ সুবিধাৰ্থে নদী বা পৰ্বতৰ দাঁতি কাষৰীয়া অৰ্থাৎ কক্ষাতঙ্ক কচ্ছাতঙ্ক কচ্ছতৰ লগত অৰি প্ৰত্যয় যোগ হৈ (কচ্ছ ঋ অৰি) কচ্ছাৰী কছাৰী নামৰ উৎপত্তি হ'ল।^৫

মাকুম মামৰণি গাঁৱৰ লোহিত চন্দ্ৰ আচাৰ্য সোণ্যাল খাটোৱালৰ গৃহত থকা আদিমফাৰ দ্বাৰা ৰচিত মহান জাতিৰ ইতিহাস নামৰ গ্ৰন্থত সোণোৱালসকল আহোম আগমনৰ বহু পূৰ্বেই সোণ উৎপাদন কাৰ্যৰ সৈতে জড়িত থকা সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে। সোণোৱাল শব্দটো পূৰ্বতে সুনুৱাল ৰূপতহে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল বুলি উল্লেখ আছে।^৬

বুৰঞ্জীবিদ হিতেশ্বৰ বৰবৰুৱাৰ মতে - সোণোৱাল কছাৰীসকল অসমৰ পূবে উজনি অঞ্চলৰ শদিয়াত আছিল আৰু ইয়াৰ অধিবাসীসকলে সোৱণশিৰি নৈত সোণ কৰ্মাইছিল।^৭

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বংশ পৰম্পৰা অনুসৰি সাতটা খেল আৰু চৈধ্যটা বংশত অতি শৃংখলাবদ্ধভাৱে লোকসকলক ভাগ কৰা হৈছে। এই সাতটা খেল হ'ল- উজনি কুচীয়া, নামনি কুচীয়া, অমৰাপুৰীয়া, টিপমীয়া, ঢুলীয়া, চিৰিপুৰীয়া আৰু বালিখিতাৰী। একে বংশ বা পৰিয়ালত বিবাহ কাৰ্য সম্পন্ন হোৱাটো সোণোৱাল কছাৰী

সমাজত নীতি বহিৰ্ভূত কৰ্ম বুলি গণ্য কৰা হয়।^{১৮} প্ৰচলিত সমাজ-ব্যৱস্থা, জীৱন-ধাৰণ প্ৰণালী, গৃহ-নিৰ্মাণ পদ্ধতি, খাদ্যাভ্যাস, পিন্ধা-উৰা, পূজা-পাৰ্বণ আদি সকলোতে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ স্বকীয় বিশেষত্ব ফুটি উঠা দেখা যায়।

১.০২ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বসতিস্থল :

বিভিন্ন কাৰণত বিশেষকৈ ৰাজনৈতিক, সামাজিক, প্ৰাকৃতিক কাৰণত শদিয়াৰ সোণোৱাল কছাৰীসকল উজনি অসমৰ বিভিন্ন ঠাইলৈ সিঁচৰতি হৈ পৰে। শদিয়া ৰাজ্য পতনৰ পাছত সোণোৱাল কছাৰী লোকসকল চেদেলি-ভেদেলি হৈ পৰিছিল। খামতিসকলৰ লগলাগি আহোমৰ শদিয়াখোৱা গোহাঁইৰ বিৰুদ্ধে বিৰুদ্ধাচৰণ কৰাত আহোমে এই বিদ্ৰোহ দমন কৰে। শদিয়াৰ কছাৰীসকলে ব্ৰথপুত্ৰৰ দক্ষিণপাৰলৈ ভটিয়াই গৈ য'তে সুবিধা পালে গাঁও পাতি থাকিবলৈ লৈছিল। আকৌ ডিমাপুৰলৈ ৰাজ্য স্থানান্তৰ হোৱাত ব্ৰথপুত্ৰ উপত্যকাত থাকি যোৱা কছাৰীসকলক স্বৰ্গদেউ প্ৰতাপ সিংহই নতুন সংস্থাপন দি ন ন গাঁও পাতি দিছিল।^{১৯}

ভূমিকম্প, বানপানী আদিৰ দৰে প্ৰাকৃতিক কাৰণৰ বাবেও সোণোৱাল কছাৰীসকল স্থানান্তৰ হ'বলগীয়া হৈছিল। বজ্জাপুত্ৰ চনৰ বৰভূইকপত সোৱণশিৰিৰ পাৰৰ বহুতো সোণোৱাল কছাৰী লোক বিভিন্ন স্থানলৈ যাব লগা হৈছিল। লখিমপুৰ জিলাৰ বগীনদী অঞ্চলত বসবাস কৰা অধিকাংশ লোকেই এনে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগৰ বলি হৈ স্থানান্তৰিত হোৱা লোক। তেনেদৰে এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল বানপানীৰপৰা হাত সাৰিবলৈয়ো ভিন ভিন স্থানলৈ স্থানান্তৰিত হৈছিল। বিহপুৰীয়াৰ মৰিছাপথাৰৰ সোণোৱাল কছাৰীসকল বানপানীৰপৰা ৰক্ষা পাবলৈকে মাজুলীৰপৰা আহি সেই স্থানত থিতাপি লৈছিল।^{২০}

মানৰ আক্ৰমণৰ সময়ত বহু সোণোৱাল কছাৰী লোকে অসমৰ বিভিন্ন স্থানত গৈ থিতাপি লৈছিলগৈ, ডাঙৰি বৰপথাৰ অঞ্চলৰ বহুতো লোকে মান ভগনৰ সময়ত তালৈ আহিছিল বুলি কয়।^{২১} উৰ্বৰ শস্য ভূমিৰ অনুসন্ধানটো লোকসকলে বেলেগ ঠাইলৈ গমন কৰিছিল।

নানা কাৰণত শদিয়াত বসবাস কৰা সোণোৱাল কছাৰীসকল উজনি অসমৰ সাতখন জিলালৈ গৈ নিগাজীকৈ বসবাস কৰিছিল। সেই জিলাসমূহ হৈছে - তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, ধেমাজি, লখিমপুৰ, শিৱসাগৰ, যোৰহাট আৰু গোলাঘাট। ২০০৭ চনৰ সোণোৱাল কছাৰী ছাত্ৰসমূহৰ পিয়ল অনুসৰি অসমত সোণোৱাল কছাৰী গাঁৱৰ

সংখ্যা তিনিচুকীয়া জিলাত ১৪২ খন, ডিব্ৰুগড়ত ১৯৯ খন, লখিমপুৰত ৬২ খন, ধেমাজিত ৮৪ খন, যোৰহাটত ৫২ খন, গোলাঘাটত ৪৮ খন গাঁও আছে।^{২২}

অসমৰ কামৰূপ আৰু অন্যান্য জিলাটো কৰ্মসূত্ৰে সোণোৱাল কছাৰী লোকে বসবাস কৰে, তদুপৰি নগালেণ্ড ৰাজ্য, অৰুণাচলৰ টিৰাপ, লোহিত, চাংলাং জিলাৰ সমতল ভূমিত সোণোৱাল কছাৰী লোকে বসবাস কৰে।

১.০৩ হগ্ৰা নাচৰ সাধাৰণ পৰিচয় :

হগ্ৰা নাচ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ চিকাৰী জীৱনৰ পৰিচয়বাহক পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰচলিত এক স্মৃতিবাহক অনুষ্ঠান। নাচটিৰ জৰিয়তে প্ৰকৃতিৰ সৈতে মধুৰ সম্পৰ্ক থকা সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ আদিম জনগোষ্ঠীয় বৈশিষ্ট্য প্ৰকাশ পায়। তাহানি এই নাচৰ জৰিয়তেই সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বিহুৰ আৰম্ভণি কৰা হৈছিল। বিহু উৎসৱৰ পূৰ্বে সাতদিন ধৰি চিকাৰ কৰা হৈছিল। “হগ্ৰা” শব্দটিৰ অৰ্থ হৈছে গাহৰি, কোনো কোনোৰ মতে গাহৰি চিকাৰীজনৰ নামহে হগ্ৰা। প্ৰকৃততে চিকাৰী হগ্ৰা বীৰৰ নেতৃত্বত অনুষ্ঠিত নাচটোৱেই হৈছে হগ্ৰা নাচ। বাইথ’ পূজাত বলিৰ বাবে অৰণ্যত গাহৰি বিচাৰি চিকাৰ কৰা হৈছিল। চিকাৰীয়ে কেনেকৈ বাইথ’ শালত বলিৰ বাবে গাহৰি চিকাৰ কৰি তাৰ মাংস প্ৰসাদ হিচাপে বিতৰণ কৰা হয়, মহিলাসকলে জাকৈৰে মাছ ধৰিবলৈ যাওঁতে কেঁৱা ওমলাবলৈ কি কৰিছিল, তাকেই এই হগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে পৰিৱেশন কৰা হয়।

১.০৪ হগ্ৰা নাচ পৰিবেশনৰ সময় :

পুৰণি কালত এই নাচৰ জৰিয়তেই সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বিহুৰ আৰম্ভণি কৰা হৈছিল। বিহু উৎসৱৰ পূৰ্বে সাতদিন ধৰি চিকাৰ কৰা হৈছিল। বহাগ মাহত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ পৰম্পৰাগত হুঁচৰি গোৱা সামৰাৰ পিছত এই হগ্ৰা নাচ পৰিবেশনেৰে বিহু উৰুৱা হয়।

১.০৫ হগ্ৰা নাচৰ উদ্‌যাপন স্থান :

তিনিচুকীয়া জিলাৰ বৰডিৰাক চুমনি গাঁও, ডিব্ৰুগড় জিলাৰ ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, দিনজানৰ বিহুকটা খাল গাঁও, মুলুক গাঁও, নাহৰকটীয়া আদিত এই হগ্ৰা নাচ পৰিৱেশন কৰা হয়। তদুপৰি শিৱসাগৰ, ধেমাজি আৰু লখিমপুৰ জিলাৰ সোণোৱাল কছাৰী গাঁৱত হগ্ৰা নাচ পৰিৱেশন কৰা হয়। আঞ্চলিকতাৰ প্ৰভাৱত এই হগ্ৰা নাচ আৰু গীত পৰিৱেশন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত কিছু ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হয় যদিও নাচটি পৰিৱেশন কৰাৰ মূল আধাৰ কিন্তু একেই। অৰ্থাৎ পাৰদৰ্শী হগ্ৰা বীৰৰ চিকাৰ বৃত্তান্ত হগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে

পৰিৱেশন কৰা।

১.০৬ হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে সম্পৰ্কিত কিস্মদন্তী :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হুগ্ৰা নৃত্যৰ সৈতে কিছুমান কিস্মদন্তী প্ৰচলিত আছে। এই হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে এটি মনোৰম চিকাৰৰ কাহিনী আছে আৰু তাৰ লগত সংগতি ৰাখি কিছুমান গীত পৰিৱেশন কৰা হয়। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ মাজত প্ৰচলিত কিস্মদন্তীটো এনেধৰণৰ -

এদিনাখন হুগ্ৰা বীৰে সন্মুখীয় ভতিজাক এজনক লগত লৈ ৰংদৈ চাপৰিত চিকাৰ কৰিবলৈ যাত্ৰা আৰম্ভ কৰিলে। যাত্ৰা পথত এজনী বালিমাহী চৰায়ে ঠেং দুটা ওপৰলৈ কৰি শুই থকা দেখিলে আৰু যাত্ৰা পথত দুয়োয়ে অমঙ্গলৰ চিন বুলি ভাবি ভয়ত ভতিজাকে চৰাইজনী বধ কৰিবলৈ অনুৰোধ জনালে।

হুগ্ৰা বীৰে শুই থকা চৰাইজনীক ধনুকাঁড় লৈ বধ কৰে আৰু চৰাইজনীয়ে মৰাৰ আগতে হুগ্ৰা বীৰক বিনা দোষত বধ কৰা বাবে চিকাৰ কালত নানা অমঙ্গল হ'ব বুলি অভিশাপ দিয়ে। ভতিজাকক লগত লৈ ৰজা হুগ্ৰা বীৰে বনত প্ৰৱেশ কৰাৰ পিছত হিংস্ৰ জীৱ-জন্তু, নানা অপদেৱতা, যথ-যথিনিৰ কবলত পৰি নানা আত্মকালত পৰিবলগীয়া হয়। চিকাৰলৈ গৈ বহুতো বিপদৰ সন্মুখীন হ'ব লগীয়া হয়। হুগ্ৰা বীৰে হাবিত চিকাৰ নাপায়, বৰঞ্চ বহুবোৰ অমঙ্গলৰ চিন দেখা পায়। অৱশেষত এটি শৰপহু বধ কৰে।

এনেদৰে চিকাৰ কৰি থাকোতে পলম হোৱাৰ বাবে ঘৰত লাঠৈ ৰাণী মহা চিন্তাত পৰিল। চিকাৰৰ পৰা ৰজাই ওলটি অহাত কিয় পলম কৰিছে বুলি চিন্তাত মনৰ আবেগ দমন কৰিব নোৱাৰি ৰাণীয়ে ৰজাক বিচাৰি যোৱাৰ কথা চিন্তা কৰিলে। কোলাৰ কেঁচুৱা ধাইৰ ওচৰত থৈ ৰজাক বিচাৰি ৰাণী লাঠৈ ৰঙদৈ চাপৰিলৈ বুলি চাপলি মেলিলে। অন্যহাতে মাকৰ অনুপস্থিতিত কেঁচুৱাই কান্দিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে, ধাইয়ে পাকঘৰৰ জুইশালৰ চাঙৰ পৰা পকা কল দি ওমলাবলৈ চেষ্টা কৰিছে। তথাপিও কেঁচুৱাই কান্দিবলৈ নেৰাত ধাইয়ে কেঁচুৱাক লৈ বাৰীৰ চুক পাইছেগৈ। বাৰীৰ চুকত পকি থকা চকলা টেঙা গছৰ পৰা চিঙি লৈ কেঁচুৱাক শান্ত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। কেঁচুৱাই তাতো শান্ত নোহোৱাত পুনৰ আহি বৰঘৰ পাইছেহি, তাতো বাঁহৰ চুঙাত থোৱা সান্দহ-পিঠাৰে কেঁচুৱাক নিচুকাবলৈ চেষ্টা কৰিছে। সান্দহ-পিঠাৰে কেঁচুৱাৰ কান্দোন বন্ধ কৰিব নোৱাৰি পাকঘৰৰ চুকলৈ চাই দেখে যে এঠা কলহত থোৱা মদে মলমলাই আছে। তাৰে পৰা মদৰ মেৰা আনি ধাইয়ে কেঁচুৱাক খুৱাই দিয়াত কেঁচুৱাই

লালকাল হৈ টোপনি যায় আৰু ৰাণী ঘৰলৈ ওলটি নহালৈ ধাইয়ে ৰক্ষা পৰে। হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে জড়িত এই কিস্মদন্তীটো সোণোৱাল কছাৰী সমাজত পৰম্পাগতভাৱে প্ৰচলন হৈ আহিছে।

১.০৭ হুগ্ৰা নাচত পৰিবেশন কৰা গীত :

হুগ্ৰা নাচত টকা বাঁহ, টকা মাৰি, ঢোল, তাল লৈ পৰিবেশন কৰা পৰম্পৰাগত সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ ঊঁচৰিত এই গীতসমূহ গোৱা হয়-

গীত : হাতত কাৰফাই ল' হেৰ' দদাই মাৰ এ বালি চৰাই

গুটি : কাঁড়োৱা ককায়ে কাঁড় খেল খেলিলে মাৰ এ বালি চৰাই

থেকেৰা গছলৈ চায় শৰীলৰে মাৰ এ বালি চৰাই
ককায়ে নাহিলে কাঁড়ও নাহিলে মাৰ এ বালি চৰাই
থেকেৰা দুটিকে পাই শৰীলৰে মাৰ এ বালি চৰাই
ৰংদৈ চাপৰিত ৰজাই পহু মাৰে মাৰ এ বালি চৰাই
কুঁৱৰীৰ মনতে ৰঙে শৰীলৰে মাৰ এ বালি চৰাই
হুগ্ৰা বীৰে বনৰ মাজত সন্মুখীন হোৱা নানা বিপদ-
বিঘিনিৰ বৰ্ণনা গীতত আছে এনেদৰে -

গীত : চিৰি চিৰি চিৰি নদৰাই এ চিৰি নদৰাই
ডাল ভাঙি কল খায় হলৌ বান্দৰাই।
গুটি : একো পহু নাকান্দিলে কান্দিলেক ফেঁচা,
চিকাৰীয়ে চুঙাভাত সিঁজাই ভাত কৰে কেঁচা।
একো চৰাই নাকান্দিলে কান্দিলেক শালিক,
চিকাৰীয়ে চিকাৰ নেপাই কৰে তালিক বালিক।
একো চৰাই নাকান্দিলে কান্দিলেক হুদু,
চিকাৰীয়ে বাঘ দেখি কৰে খুদু মুদু।
একো চৰাই নাকান্দিলে কান্দিলেক দাবৈ,
চিকাৰীয়ে চিকাৰ নেপাই কৰে হাই বিয়ে।
ধাইয়ে কেঁচুৱাক নিচুকাবলৈ গোৱা গীতৰ বৰ্ণনা হুগ্ৰা
নাচত এনেদৰে পোৱা যায়-

গীত : চৌ চৌ মিৰি ফচৌ চৌ হালৌ
গুটি : বাপেৰ গৈছি পহু মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
মাৰ গৈছি মাছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
বাৰীত আছি চকলা টেঙা তাৰে ওমলাই থৌ,
চৌ চৌ মিৰি ফচৌ চৌ হালৌ।
বাপেৰ গৈছি পহু মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
মাৰ গৈছি মাছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
চাঙত আছি পকা কলা তাৰে ওমলাই থৌ,

চৌ চৌ মিৰি ফচৌ চৌ হালৌ।
 বাপেৰ গৈছি পছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
 মাৰ গৈছি মাছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
 চুঙাত আছি সাদ-পিঠা তাৰে ওমলাই থৌ,
 চৌ চৌ মিৰি ফচৌ চৌ হালৌ।
 বাপেৰ গৈছি পছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
 মাৰ গৈছি মাছ মাৰব ফচৌ চৌ হালৌ
 চুঙাত আছি মদ মেৰা তাৰে ওমলাই থৌ,
 চৌ চৌ মিৰি ফচৌ চৌ হালৌ।

এনেদৰে গীত গাই কেঁচুৱাক শান্ত কৰা হয়। গীতসমূহ সুন্দৰ সুৰেৰে পৰিৱেশন কৰা হয়। ভাৱবীয়াসকলে নানা ভংগীমাৰে অভিনয় কৰি দৰ্শকক আমোদ প্ৰদান কৰে। গীতসমূহৰ ছন্দ সজ্জা আৰু বিষয়বস্তুত কাব্যিক অভিব্যঞ্জনা বিৰাজমান। চহালোকৰ সৰল অনুভৱ গীতসমূহৰ জৰিয়তে প্ৰকট হোৱা দেখা যায়।

১.০৮ হুগ্ৰা নাচত পালন কৰা ৰীতি-নীতি :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ খ্ৰীং খ্ৰীং বাইথ’ পূজাৰ শেষৰ দিনা এই হুগ্ৰা নৃত্য পৰিৱেশন কৰা হয়। মূল বাইথ’ মন্দিৰত হাইদাং গীত গাই পূজা সামৰাৰ পিছত হুঁচৰি গীত গোৱা হয়। সেইদিনাই আনুষ্ঠানিকভাৱে বিহু নমোৱা হয় আৰু ইয়াৰ অন্তত হুগ্ৰা নাচ পৰিৱেশন কৰা হয়। কিছুমান গাঁৱত অৱশ্যে ব’হাগ বিহুৰ হুঁচৰি উৰুৱাৰ দিনা এই নাচ পৰিৱেশন কৰা হয়।

হুগ্ৰা বীৰৰ মূল চিকাৰীজনৰ লগত জাকৈ, খালৈ লৈ সহচৰীসকল থাকে আৰু লগত এজন বহুৱা থাকে। ধনু-কাঁড় হাতত লৈ ক’লা ৰঙেৰে দেহাটো ঘঁহি লৈ লগত থকা পুৰুষপী জীৱৰ চিকাৰ কৰাৰ অভিনয় কৰি দেখুৱায়। গাহৰি চিকাৰ কৰা, গাহৰি শালত আগবঢ়োৱা আৰু গাহৰি মাংস বিতৰণ আদিৰ ভাও দিয়া হয়। জাকৈ মৰাৰ ভাও লয় মহিলাৰূপী ভাৱবীয়াই আৰু খালৈভাৰীৰ ভাও লয় পুৰুষৰূপী ভাৱবীয়াই। নাচৰ মাজত জাকৈ মাৰি মাছ খালৈত ভৰোৱা, পছ চিকাৰ কৰাৰ অভিনয় দেখুওৱা হয়। ৰাইজে গাঁৱৰ গাতিগিৰিৰ সন্তুষ্টিৰ উদ্দেশ্যেৰে আগলি কলপাতত মাটিৰ চাকি, পাণ-তামোল-অৰিহণা আগবঢ়াই সেৱা জনায়। গাঁৱৰ বিপদ-বিঘিনি, অপায়-অমঙ্গল বিনাশ হ’বলৈ আৰু ভাৱবীয়া সকলৰ কুশল কামনা কৰি আৰ্শীবাদ দিয়া হয়।

১.০৯ হুগ্ৰা নাচত ব্যৱহৃত সাজ-পাৰ :

হুগ্ৰা নাচত প্ৰকৃততে চিকাৰ কৰা দৃশ্য দেখুওৱা হয়। নাচত ভাগ লোৱা ভাৱবীয়াসকলে সমগ্ৰ দেহত ক’লা ৰং

ঘঁহি লয়। কল গছৰ পাত চিৰিলি চিৰিলিকৈ ফালি কঁকাল, হাতৰ বাহু আৰু মূৰত পিন্ধে। নিৰ্দিষ্ট সংখ্যক কলপাত পৰিধান কৰিব লাগিব বুলি কোনো বাধ্যবাধকতা নাহ। চিকাৰীৰ বেষত থকা হুগ্ৰা বীৰে হাতত ধনু-কাঁড় লৈ সুন্দৰভাৱে নাচৰ ভংগীমাৰে চিকাৰীৰ ভাও দেখুৱায়। লগত খালৈ-জাকৈ লোৱা সহচৰীসকলে মাছ ধৰাৰ অভিনয় দেখুৱায়। মহিলাৰূপী ভাৱবীয়াই জাকৈ লয় আৰু মূৰত ক’লা কাপোৰৰ টকয়াৰে খোপা বান্ধে। পুৰুষৰূপী ভাৱবীয়াই খালৈ লয় আৰু জাকৈৰে ধৰা মাছ খালৈত ভৰাই লোৱাৰ অভিনয় প্ৰদৰ্শন কৰে। তদুপৰি এজনে গাত বিভিন্ন ৰং ঘঁহি মূৰত শিঙৰ দৰে মুখা পিন্ধি বনৰীয়া জন্তুৰ ভাও ধৰি নাচ পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়।

১.১০ হুগ্ৰা নাচৰ প্ৰস্তুতি :

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ মাজত পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰে পালন কৰা হুগ্ৰা নাচৰ ভাৱবীয়াসকল পথাৰৰ কাষত থকা হাবিৰ মাজত সাজ-সজ্জা কৰি বাহিৰলৈ নাচ পৰিৱেশনৰ বাবে ওলাই আহে। এই স্থানত কাপোৰেৰে আঁৰ-বেৰ দি লোৱা হয়। গাঁৱৰ বয়োজ্যেষ্ঠসকলে সকলোৰে মঙ্গল কামনা কৰি গাতিগিৰিৰ সন্তুষ্টিৰ উদ্দেশ্যেৰে আগলি কলপাতত পাণ-তামোল-অৰিহণা দি মাটিৰ চাকি জ্বলাই সেৱা জনায়। সকলোৰে আৰ্শীবাদ লৈ সাজ-পাৰ পৰিধান কৰি নাচ পৰিৱেশন কৰিবলৈ সাজু হয়।

১.১১ হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাস :

হুগ্ৰা নাচত ভাগ লোৱা ভাৱবীয়াসকলে বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ বেশভূষাৰে ভাও প্ৰদৰ্শন কৰাৰ পিছত গাঁৱৰ এমূৰৰ হাবিৰ মাজত সকলো বিসৰ্জন দিয়ে। তাৰ পাছত সকলো ঘৰলৈ উভতি আহে। উভতি অহাৰ পথত বগৰীৰ জেং, কাঁইট বা গছৰ ঠাল-ঠেঙুলি আদি চিঙি পেলাই তাৰ ওপৰেৰে জপিয়াই পাৰ হৈ আহে। এনেদৰে উভতি আহোতে পিছলৈ ঘূৰি চাব নেলাগে বুলি সোণোৱাল কছাৰীসকলে বিশ্বাস কৰে আৰু ভুলতো তেওঁলোকে পিছলৈ উভতি চোৱা কাৰ্য নকৰে। কিয়নো হুগ্ৰাক বিসৰ্জন দিয়াৰ লগতে ভূত-প্ৰেত, অপায়-অমঙ্গল, বেমাৰ-আজাৰ সকলো বিসৰ্জন দিয়া হয়, সেইবোৰ পুনৰ উভতি নাহিবলৈ এনে কৰা হয় বুলি সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ লোকবিশ্বাস।

১.১২ হুগ্ৰা নাচত সংগত কৰা বাদ্যযন্ত্ৰ :

ভাৰতীয় শাস্ত্ৰীয় সংগীতৰ ৰীতি অনুসৰি ভৰত মুনিৰ “নাট্যশাস্ত্ৰ”ত গীত-নৃত্যৰ সৈতে সংগত কৰা বাদ্যসমূহ এনেদৰে বিভাজন কৰা হৈছে-

ক) অনৱদ্ধ বা আৱদ্ধ বাদ্য

খ) তত বাদ্য

গ) ঘন বাদ্য

ঘ) সুবিৰ বাদ্য

হুগ্ৰা নাচত আৱদ্ধ বা অনৱদ্ধ বাদ্য ঘন বাদ্য, তত বাদ্য আৰু সুবিৰ বাদ্য ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। ঢোল, তাল, পেঁপা, বীণ আৰু ঢোপ চুঙা বজাই হুগ্ৰা আৰু সংগীসকলক নাচ-অভিনয় পৰিৱেশন কৰোৱা হয়। বাদ্যযন্ত্ৰসমূহৰ তালে তালে হুগ্ৰা নাচৰ গীত গাই এটি আকৰ্ষণীয় পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

ক) অনৱদ্ধ বা আৱদ্ধ বাদ্য :

কাঠৰ খোলাৰ দুইমূৰে জন্তুৰ ছালেৰে চাৱনি কৰি বজোৱাৰ বাবে উপযুক্ত কৰি প্ৰস্তুত কৰা বাদ্যই হৈছে অনৱদ্ধ বা আৱদ্ধ বাদ্য। কঠাল, আম, চেঁচু গছৰ কাঠৰ পৰা এটা মূৰ অলপ ডাঙৰ আৰু আনটো মূৰ সৰু আকাৰত ঢোলৰ খোলাটো তৈয়াৰ কৰা হয়। ইয়াৰ দুইমূৰৰ সৰু ফালে গৰুৰ আৰু ডাঙৰ ফালে ছাগলীৰ ছালক বান্ধি জৰিয়তে বিশেষভাৱে লগাই বজোৱাৰ উপযোগী কৰি লোৱা হয়। ছঁচৰি গীতৰ তালে তালে ঢোলমাৰি আৰু হাতৰ আঙুলিৰে বোল দি এই বাদ্যবিধ বজোৱা হয় কৰি হুগ্ৰা নাচত এই বাদ্য ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়।

খ) ঘন বাদ্য :

কাঁহ ধাতুৰে এইবিধ তাল নামৰ বাদ্য তৈয়াৰ কৰা হয়। বাদ্যবিধ বজাবলৈ বিশেষভাৱে ৰচিৰ ব্যৱস্থা কৰি লোৱা হয়। দুয়ো হাতত দুপাত তাল বাদ্য লৈ ঢোলৰ ছন্দে ছন্দে বজোৱা হয় আৰু হুগ্ৰা নাচত ভাগ লোৱা ভাৱৰীয়াসকলে নাচ আৰু অভিনয় প্ৰদৰ্শন কৰে।

তদুপৰি সোনাৱাল কছাৰীসকলৰ পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰে গোৱা ছঁচৰিট টকা বাঁহত টকামাৰিৰে নিৰ্দিষ্ট লয়ত বজাই পৰিবেশন কৰা হয়। ইয়াৰ তালে তালে হুগ্ৰা নাচৰ ভাৱৰীয়াসকলে নাচ পৰিবেশন কৰে।

১.১৩ হুগ্ৰা নাচৰ ব্যৱহাৰিকতা বা প্ৰকাৰ্য :

হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে বহুবোৰ ব্যৱহাৰিকতা বা সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন হয়। সেই ব্যৱহাৰিকতা বা সামাজিক প্ৰকাৰ্যসমূহ হ'ল-

■ হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে ধৰ্মীয় প্ৰকাৰ্য সাধন হয়।

■ হুগ্ৰা নাচৰদ্বাৰা সামাজিক-সাংস্কৃতিক প্ৰকাৰ্য সাধিত হয়।

■ ইয়াৰদ্বাৰা লোকসকলৰ মাজত পাৰম্পৰিক ঐক্য-সম্প্ৰীতি স্থাপন হয়।

■ অৱসৰৰ সময়ত আনন্দ প্ৰদান কৰে আৰু অৱসৰ বিনোদনত ভূমিকা পালন কৰে।

■ লোকসমাজৰ সৰল বিশ্বাস বহুৱা উৎসৱৰ জৰিয়তে সংৰক্ষিত হয়।

■ গাঁৱৰ গাতিগিৰিৰ উদ্দেশ্য জনোৱা সেৱা-উচৰ্গাই উপৰিপুৰুষৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা জ্ঞাপন কৰে।

■ হুগ্ৰা নাচৰ জৰিয়তে জনগোষ্ঠীটোৰ আদিম পৰম্পৰা প্ৰদৰ্শন হয়, ইয়াৰদ্বাৰা জনগোষ্ঠীয় বিশেষত্ব সংৰক্ষিত হয়।

■ হুগ্ৰা নাচৰদ্বাৰা পৰিবেশ্য কলাৰ সাংস্কৃতিক উপাদান সংৰক্ষিত হয়। ইয়াৰদ্বাৰা জনগোষ্ঠীটোৰ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰ হয়।

২.০ হুগ্ৰা নাচলৈ অহা পৰিৱৰ্তন :

পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰে পালন কৰা বহুৱা নাচলৈ সময়ৰ লগে লগে বহু পৰিমাণে পৰিৱৰ্তন আহিছে। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ বহুৱা নাচত আঞ্চলিক ভিন্নতা আৰু পৰিৱৰ্তন দেখা যায়।

২.১ হুগ্ৰা নাচৰ সৈতে সম্পৰ্কিত কিম্বদন্তীৰ ভিন্নতা দেখা যায়। অঞ্চলভেদে হুগ্ৰা নাচৰ উৎপত্তি সন্দৰ্ভত ভিন্ন কাহিনী সমাজত প্ৰচলন থকা দেখা যায়।

২.২ অঞ্চল ভেদে উদ্‌যাপন কৰা হুগ্ৰা নাচত পালন কৰা ৰীতি-নীতি, সাজ-সজ্জা, পৰিৱেশন শৈলীত ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হয়।

২.৩ পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতিৰে পালন কৰা হুগ্ৰা নাচ পূৰ্বতে কেৱল একোখন গাঁৱৰ লোকসকলৰদ্বাৰা অনুষ্ঠিত কৰা হৈছিল; কিন্তু সময়ৰ লগে লগে ইয়াৰ প্ৰসাৰ ঘটি সামূহিক অংশ গ্ৰহণেৰে ই উৎসৱলৈ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে। কেৱল গাঁওবাসীয়ে ভাগ লোৱা অনুষ্ঠানটিত সমগ্ৰ অঞ্চলবাসীৰ সহযোগ আৰু অনা-সোণোৱাল কছাৰী লোকৰ উপস্থিতিয়ে হুগ্ৰা নাচলৈ এটি আমূল পৰিৱৰ্তন আনিছে।

২.৪ হুগ্ৰা নাচ পৰিৱেশনৰ দিশত পৰিৱৰ্তন অহা পৰিলক্ষিত হয়। জনবসতিৰপৰা নিলগত থকা হাবিৰ মাজত সাজ-সজ্জা কৰি মুকলি পথাৰত পূৰ্বতে হুগ্ৰা নাচ পৰিৱেশন কৰা হৈছিল; কিন্তু বৰ্তমান বিভিন্ন অনুষ্ঠানত ইয়াৰ পৰিৱেশনে পৰম্পৰাৰ পৰা বহু ক্ষেত্ৰত আঁতৰাই নিয়া দেখা যায়।

২.৫ হুগ্ৰা নাচৰ অনুচৰ ভাৱৰীয়াসকলে পূৰ্বতে কলৰ পাত পৰিধান কৰি শৰীৰ আৰু মুখমণ্ডল চৰু চাইৰ ক'লা ৰঙেৰে বোলাই লৈছিল; কিন্তু পৰিৱৰ্তনৰ ফলত বহুৱাসকলে বজাৰত উপলব্ধ কাপোৰত ব্যৱহাৰ কৰা নীলা ৰঙে ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লোৱা দেখা গৈছে।

২.৬ হুগা নাচৰ মহিলা ভেশধাৰী অনুচৰ গৰাকীয়ে মূৰত কলা কাপোৰেৰে টকয়া মাৰি খোপা বান্ধিছিল; কিন্তু ভাৱৰীয়াসকলে বজাৰত উপলব্ধ বিভিন্ন উইগ পৰিধান কৰি পৰম্পৰাৰ মাজলৈ পৰিৱৰ্তন আনিছে।

৩.০ উপসংহাৰ :

হুগা নাচ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ এক উল্লেখযোগ্য লোকনাচ। ইয়াৰ জৰিয়তে প্ৰকৃতি আৰু মানৱৰ মাজত থকা নিবিড় সম্বন্ধৰ স্বৰূপ উপলব্ধি কৰিব পাৰি। সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ লোকজীৱনৰ আচাৰ-ৰীতি, লোকবিশ্বাস আৰু আদিমতাৰ ৰূপ হুগা নাচৰ জৰিয়তে প্ৰকট হয়। হুগা নাচত সংগত কৰা গীত আৰু বাদ্যৰদ্বাৰা সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ সাংস্কৃতিক সম্পদৰো আভাস পাব পাৰি।

সময়ৰ পৰিবৰ্তনৰ লগে লগে বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ দ্ৰুত প্ৰসাৰ, গোলকীকৰণ হৈছে আৰু থলুৱা সংস্কৃতিৰ পৰম্পৰাত আমূল পৰিবৰ্তন হৈছে। হুগা নাচ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ স্বাৰ্থত গাঁৱৰ চোতালৰপৰা আহি চহৰৰ মঞ্চলৈ আহিছে। হুগা নাচৰ স্বকীয়তা অক্ষুন্ন ৰাখি ইয়াৰ চৰ্চা অব্যাহত ৰাখিব পাৰিলে জাতিটোৰ জনজাতীয় প্ৰাচীনতাৰ বিশেষত্ব বৰ্তাই ৰাখিব পৰা হ'ব।

সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ হুগা নাচ, ইয়াত ব্যৱহৃত বাদ্যযন্ত্ৰ, সাজ-সজ্জা, আচাৰ-ৰীতি, লোকবিশ্বাস আদিৰ বিজ্ঞানসন্মত অধ্যয়নৰ সম্ভাৱনা আছে। নিৰ্মোহ গৱেষণাৰদ্বাৰা এটি সৰ্বসন্মত সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰিলে হুগা নাচৰ জৰিয়তে জাতিটোৰ জনজাতীয় প্ৰাচীনতাৰ দাবীদাৰ হ'ব পাৰিব। হুগা নাচৰ পৰিৱেশনৰ ক্ষেত্ৰত সাজ-সজ্জা, উদযাপনৰ দিন আদিৰ আঞ্চলিক বৈষম্য আঁতৰ কৰি সাৰ্বজনীন পৰিৱেশন শৈলী এটি প্ৰতিষ্ঠা কৰি প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰ কৰাৰ সম্ভাৱনা প্ৰবল। তাৰ বাবে হুগা নাচৰ প্ৰশিক্ষণ

অনুষ্ঠিত কৰি এটি সিদ্ধান্তলৈ আহি নিয়মাৱলী প্ৰস্তুত কৰা অতীব প্ৰয়োজন আৰু সোণোৱাল কছাৰীৰ সংস্কৃতি সচেতন লোকসকল এই ক্ষেত্ৰত আগুৱাই আহি গঠনমূলক পদক্ষেপ আগবঢ়ালে জনগোষ্ঠীটোৰ পৰম্পৰাগত সাংস্কৃতিক সম্পদসমূহ সংৰক্ষিত হ'ব।

৪.০ সিদ্ধান্তসমূহ :

আলোচনাৰপৰা উদ্ধাৰ হোৱা কেতবোৰ সত্য হ'ল -
(ক) হুগা নাচ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ চিকাৰী জীৱনৰ পৰম্পৰাগত এক স্মৃতিবাহক অনুষ্ঠান।

(খ) হুগা নাচৰ ভাৱৰীয়াসকলৰ সাজপাৰ আৰু আঙ্গিক কলা-কৌশল জাতিটোৰ সাংস্কৃতিক প্ৰাচীনতাৰ পৰিচয় বাহক বুলি ক'ব পাৰি।

(গ) হুগা নাচটিৰ জৰিয়তে ফুটি উঠা আদিম কৃষ্টিৰদ্বাৰা জনজাতীয় বিশেষত্বৰ দাবী কৰিব পাৰে।

(ঘ) হুগা নাচটিৰ জৰিয়তে সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ প্ৰকৃতিৰ সৈতে থকা সম্বন্ধ, পাৰম্পৰিক আদান-প্ৰদানৰ প্ৰতিচ্ছবিখনো প্ৰকট হয়।

(ঙ) হুগা নাচ পৰিৱেশন কৰাৰ সময় আৰু সাজ-সজ্জাৰ ক্ষেত্ৰত আঞ্চলিক ভিন্নতা দেখা যায়। কৰ্মশালাৰ জৰিয়তে এই ভিন্নতা আঁতৰাই সমন্বয়তা আনিব পাৰিলে ইয়াৰ গ্ৰহণযোগ্যতা সাৰ্বজনীন হ'ব।

(চ) হুগা নাচ সোণোৱাল কছাৰীসকলৰ পৰম্পৰাগতভাৱে সম্পৃক্ত এক সাংস্কৃতিক সম্পদ আৰু স্বকীয় মৰ্যাদাৰে সু-সমৃদ্ধ লোকনাচ।

(ছ) হুগা নাচৰ আঙ্গিক কলা-কৌশল, নাচ-বাদ্য পৰিৱেশন শৈলী আদি সকলোতে পৰিৱেশ্য কলাৰ উপাদান বিদ্যমান। পৰম্পৰা অক্ষুন্ন ৰাখি কৰ্মৰদ্বাৰা পৰিৱেশন কৰোৱাই ইয়াক সমাদৃত কৰাৰ সম্ভাৱনা আছে। □

প্ৰসঙ্গ টোকা :

- ১। সূৰ্য্যকুমাৰ ভূঞা : দেওধাই বুৰঞ্জী, পৃ. ২৪
- ২। বীৰেন্দ্ৰনাথ দত্ত (সম্পা.) : বিশ্বকোষ - পঞ্চম খণ্ড, "সোনোৱাল লোক-সাহিত্য" - গগন চন্দ্ৰ সোনোৱাল, পৃ. ৩২৫ - খ.
- ৩। সূৰ্য্যকুমাৰ ভূঞা : পূৰ্বোল্লিখিত গ্ৰন্থ।
- ৪। সূৰ্য্য কুমাৰ ভূঞা, দেওধাই অসম বুৰঞ্জী, পৃ. ২৭
- ৫। শিৱ সোনোৱাল : সোনোৱাল সৌৰভ, পৃ. ৩০
- ৬। উল্লিখিত গ্ৰন্থ।
- ৭। হিতেশ্বৰ বৰবৰুৱা : আহোমৰ দিন, পৃ. ১৯
- ৮। তথ্যদাতা : যুগল ফৰমাল, বিহিয়াটিং, জামিৰা, তাৰিখ : ১১-১০-২০২৩
- ৯। ডিম্বৰঞ্জন নাথ : 'অসমৰ সোনোৱাল কছাৰীসকল : এটি সমীক্ষা', আৱেগ পৃ. ৩৯
- ১০। তথ্যদাতা : শিৱ সোনোৱাল, নিজ মানকটা, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৫-১১-২০২৩
- ১১। তথ্যদাতা : হৰকান্ত সোনোৱাল, হাঁহুৰা, জকাই, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৫-১১-২০২৩
- ১২। তথ্যদাতা : কাৰ্যালয়, সদৌ অসম সোনোৱাল কছাৰী ছাত্ৰসন্থা, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৭-০৯-২০২৪
- ১৩। তথ্যদাতা : প্ৰমোদ সোনোৱাল, বৰপথাৰ নগাঁও, তিনিচুকীয়া, তাৰিখ : ২০-১০-২০২৪
- ১৪। তথ্যদাতা : কৃপানাথ হাজৰিকা, বাঘতলী গাঁও, খোৱাং, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ২৭-১০-২০২৪

- ১৫। তথ্যদাতা : লভিত সোনোৱাল শইকীয়া, বালিজান গাঁও, ধেমাজি, তাৰিখ : ২৯-১২-২০২৩
 ১৬। তথ্যদাতা : হেৰম্ব শইকীয়া, ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৪-১০-২০২৩
 ১৭। তথ্যদাতা : চেনিৰাম সোনোৱাল, ডেকাপাম, নাহৰণি, ধেমাজি, তাৰিখ : ২৪-১২-২০২৩
 প্ৰমোদ সোনোৱাল, পূৰ্বোল্লিখিত।
 হৰকান্ত সোনোৱাল, পূৰ্বোল্লিখিত।
 ১৮। তথ্যদাতা : মজিন সোনোৱাল, গাগলডুবি, ধেমাজি, তাৰিখ : ২৮-১২-২০২৩
 জোন শইকীয়া, ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৪-১০-২০২৩
 ১৯। তথ্যদাতা : জীৱন সোনোৱাল, মুলুক গাঁও, চাবুৱা, তাৰিখ : ১৪-১০-২০২৩
 মুহিকান্ত সোনোৱাল, মুলুক গাঁও, চাবুৱা, তাৰিখ : ১৪-১০-২০২৩
 ২০। তথ্যদাতা : শংকৰ বাগলাৰী, ধমল গাঁও, জামিৰা, ডিব্ৰুগড়, তাৰিখ : ১৫-১০-২০২৩
 ২১। তথ্যদাতা : যোগেশ্বৰ বৰুৱা, অভয়পুৰ, জোনাই, ধেমাজি, তাৰিখ : ২৯-১২-২০২৩
 ডিম্ব কছাৰী, জলকীয়াসুঁতি গাঁও, চিলাবালি, ধেমাজি, তাৰিখ : ৩০-১২-২০২৩

গ্ৰন্থপঞ্জী :

(ক) অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ

কছাৰী, নন্দেশ্বৰ : ধেমাজি জিলাৰ জোনাই মহকুমাৰ জনজাতীয় সংস্কৃতিৰ অধ্যয়ন ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগৰ অধীনত এম. ফিল. ডিগ্ৰীৰ বাবে প্ৰদত্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ১৯৮৯-৯০ চন।

চেতিয়া, চন্দ্ৰকমল : উজনি অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোকনৃত্য : এটি অধ্যয়ন ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগৰ অধীনত পিএইচ. ডি. ডিগ্ৰীৰ বাবে প্ৰদত্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ২০১৪ চন।

দেৱগোস্বামী, পীতাম্বৰ : অসমৰ সত্ৰীয়া উৎসৱ-অনুষ্ঠান আৰু ইবিলাকৰ তাৎপৰ্য বিচাৰ ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগৰ অধীনত পিএইচ. ডি. ডিগ্ৰীৰ বাবে প্ৰদত্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ২০০০ চন।

হাজৰিকা, জ্যোতিৰেখা : অসমৰ তিব্বত-বৰ্মী ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাস ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগৰ অধীনত পিএইচ. ডি. ডিগ্ৰীৰ বাবে প্ৰদত্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ২০১০ চন।

হাজৰিকা, ৰাজশ্ৰী : যোৰহাট জিলাৰ কৃষিভিত্তিক লোকাচাৰ : এক বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগৰ অধীনত পিএইচ. ডি. ডিগ্ৰীৰ বাবে প্ৰদত্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ২০০৯ চন।

(খ) প্ৰকাশিত অসমীয়া গ্ৰন্থ

অধিকাৰী, শুকদেৱ (সম্পা.) : বিশ্বায়ন আৰু অসমীয়া সংস্কৃতি

নগাঁও : জাগৰণ সাহিত্য প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১২ চন।

আহমেদ, গিয়াচুদ্দিন : সামাজিক গৱেষণা আৰু কৌশল প্ৰণালী

ডিব্ৰুগড় : বনলতা, সংশোধিত সংস্কৰণ, ২০০০ চন।

কছাৰী, নন্দেশ্বৰ : সোনোৱাল কছাৰী সমাজ সংস্কৃতি আৰু ভাষাৰ পৰিচয় ডিব্ৰুগড় : সোনোৱাল কছাৰী সন্মিত পৰিষদ, ২০১১ চন।

কাকতি, বাণীকান্ত : পুৰণি কামৰূপৰ ধৰ্মৰ ধাৰা

পাঠশালা : বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ৰত্নাঙ্কুৰ চন।

কুৰমাল, প্ৰশান্ত : সোনোৱাল কছাৰী তত্ত্ব আৰু বিশ্লেষণ ডিব্ৰুগড় : সোনোৱাল কছাৰী সন্মিত পৰিষদ, ২০০৯ চন।

সমলদাতাৰ তালিকা :

সমলদাতাৰ নাম	বয়স	ঠিকনা
কুপানাথ হাজৰিকা	৭৩	বাঘতলী গাঁও, খোৱাং, ডিব্ৰুগড়
চেনিৰাম সোনোৱাল	৬৮	ডেকাপাম, নাহৰণি, ধেমাজি
দেৱজিৎ সোনোৱাল	৫৯	মুলুক গাঁও, চাবুৱা
দ্রোণকান্ত সোনোৱাল	৭৮	মুলুক গাঁও, চাবুৱা
জীতা সোনোৱাল	৬৫	শদিয়াল গাঁও, বৰহোলা
জীৱন সোনোৱাল	৬৬	মুলুক গাঁও, চাবুৱা
জোন শইকীয়া	৪৯	ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, ডিব্ৰুগড়
প্ৰমোদ সোনোৱাল	৮২	বৰপথাৰ নগাঁও, তিনিচুকীয়া
বিৰোছন তাৰাৰি	৪৯	ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, ডিব্ৰুগড়
মদন হাজৰিকা	৫৩	ধমল গাঁও, জামিৰা, ডিব্ৰুগড়
মজিন সোনোৱাল	৫৫	গাগলডুবি, ধেমাজি
মহেন্দ্ৰ বাগলাৰী	৭৫	ধমল গাঁও, জামিৰা, ডিব্ৰুগড়
যুগল ফৰমাল	৬৭	বিহিয়াটিং, জামিৰা, ডিব্ৰুগড়
যোগেশ্বৰ বৰুৱা	৬৭	অভয়পুৰ, জোনাই, ধেমাজি
লভিত সোনোৱাল শইকীয়া	৭৮	বালিজান গাঁও, ধেমাজি
ললিত শইকীয়া	৭৯	ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, খোৱাং
ডিম্ব কছাৰী	৬৯	জলকীয়াসুঁতি গাঁও, চিলাবালি, ধেমাজি
হৰকান্ত সোনোৱাল	৮২	হাঁহচৰা গাঁও, জকাই, ডিব্ৰুগড়
হেৰম্ব শইকীয়া	৮২	ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, ডিব্ৰুগড়,
ঘনকান্ত হাজৰিকা	৭৭	ন-হাজাৰ নাহৰণি গাঁও, খোৱাং
চেনিৰাম হাজৰিকা	৫৮	পুৰণি বলাই, কোটোহা, ডিব্ৰুগড়
শংকৰ বাগলাৰী	৬০	ধমল গাঁও, জামিৰা, ডিব্ৰুগড়
শান্তিপ্ৰিয়া কছাৰী	৬৯	বিদ্ধাকটা খাল গাঁও, ডিব্ৰুগড়
শিৱ সোনোৱাল	৭৮	নিজমানকটা, ডিব্ৰুগড়

অপূৰ্ব শৰ্মাৰ গল্পত শৈলী প্ৰসংগ : এক অধ্যয়ন (‘বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ’ গল্পপুথিৰ আধাৰত)



কৃত্তিকা হালৈ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
☎ ৭৫৭৭৯৭৫৫৩৯
✉ haloikrittika@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ :

শৈলীবিজ্ঞান (Stylistics) ভাষা আৰু সাহিত্যৰ আন্তঃ সম্পৰ্ক বিশ্লেষণৰ এক বৈজ্ঞানিক পদ্ধতি, যাৰ জৰিয়তে সাহিত্যিক পাঠ এটাত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ, গঠন আৰু কাৰ্যৰ সূক্ষ্ম পৰ্যালোচনাৰ জৰিয়তে পাঠৰ নান্দনিকতা আৰু অৰ্থ-নিৰ্মাণৰ প্ৰক্ৰিয়া উদ্ঘাটন কৰা হয়। সাহিত্য পাঠ এটাত শব্দ - চয়ন, বাক্য - গাঁথনি, বাক্ধাৰা, অৰ্থগত বৈশিষ্ট্য, সংযুতি, সমান্তৰতা, চিত্ৰকল্প, বৰ্ণনাকৌশল - এই দিশবোৰৰ উপযুক্ত প্ৰয়োগে পাঠটোক পাঠগত মৰ্যাদা প্ৰদান কৰে। লেখকৰ সচেতন ভাষা-ব্যৱহাৰে গদ্যৰ নান্দনিক সৌন্দৰ্য বৃদ্ধি কৰাৰ লগতে চৰিত্ৰ, অনুভূতি আৰু সামাজিক বাস্তৱতাৰ উপস্থাপন অধিক গভীৰ আৰু অৰ্থবহু কৰি তোলে। ভাষা-বিজ্ঞান আৰু সাহিত্য সমালোচনাৰ সমন্বয়ৰ জৰিয়তে এই আলোচনাই পাঠগত মৰ্যাদা প্ৰদান কৰা উপাদানবোৰৰ প্ৰয়োগ বিশ্লেষণ কৰি লেখক এজনৰ কৃতিৰ বস্তুনিষ্ঠ অধ্যয়ন কৰে। অসমীয়া গল্পৰ ক্ষেত্ৰখনত অপূৰ্ব শৰ্মাই ভাষাৰ কৌশলী ব্যৱহাৰেৰে নিজস্ব বৈশিষ্ট্য প্ৰকাশ কৰিছে। গল্পকাৰৰ ভাষিক নিৰ্বাচন সমূহে বৰ্ণনাৰ মধুৰতা প্ৰদানৰ লগতে চৰিত্ৰৰ সামাজিক - মানসিক প্ৰকৃতিও স্পষ্ট কৰি তুলিছে। এই অধ্যয়নৰ দ্বাৰা অপূৰ্ব শৰ্মাৰ গল্পৰ বৈশিষ্ট্যৰ লগতে পাঠৰ নিৰ্মাণত কেনেধৰণৰ শৈলীৰ প্ৰয়োগ কৰিছে, তাৰ আলোচনা কৰা হ’ব।

সূচক শব্দ :

শৈলীবিজ্ঞান, ভাষা, সাহিত্য, বাক্ধাৰা, সংযুতি, সমান্তৰালতা

অৱতৰণিকা :

বহুল অৰ্থত শৈলী হৈছে কৰ্তাই কৰ্ম এটা সম্পাদন কৰাৰ এক নিজস্ব প্ৰণালী; যি প্ৰণালীয়ে কাৰ্যটোৰ ক্ষেত্ৰত কৰ্তাৰ বৈশিষ্ট্যৰ প্ৰতিফলন ঘটায়। শৈলী ব্যক্তিৰ মৌলিকতা প্ৰকাশৰ মাধ্যম। শৈলীৰ বিজ্ঞানসন্মত অধ্যয়নক শৈলীবিজ্ঞান (Stylistics) আখ্যা দিয়া হয়। ই সাহিত্য সমালোচনা আৰু ভাষা বিজ্ঞান দুয়োটাৰে অন্তৰ্ভুক্ত। সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত শৈলীয়ে সাহিত্যত ভাষাৰ প্ৰয়োগ বৈচিত্ৰ্যক নিৰ্দেশ কৰে। কিদৰে এটা ভাষিক উপাদানে সাহিত্য সৃষ্টিত অৰিহণা যোগায়, অৰ্থক ব্যাপ্তি প্ৰদান কৰে, মনৰ সূত্ৰ আৰু জটিল অনুভৱক প্ৰকাশ কৰাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে, তেনে পৰ্যালোচনাই ই নিজৰ অধ্যয়নৰ আওটালৈ আনে। এটা বিষয় সম্পৰ্কীয় নিজস্ব চিন্তা-চেতনাক আনৰ আগত প্ৰকাশ কৰিবলৈ লেখক এজনৰ ভাষাৰ যি কৌশলী ব্যৱহাৰ, সেয়া আলোচনাই শৈলীৰ প্ৰধান কাম। সাহিত্যত পাঠ এটাই পাঠগত মৰ্যাদা লাভ কৰিছে নে নাই, পাঠটোৰ অৰ্থ উদ্ধাৰ কেনেদৰে কৰা হ’ব, ভাষাৰ শব্দৰ লগতে অন্য বৈয়াকৰণিক উপাদান তথা সাহিত্য পাঠৰ প্ৰয়োজনীয় সকলো উপাদানৰ ব্যৱহাৰ কি দৰে লেখকে কৰিছে সেয়া শৈলীৰ আলোচনাই আঙুলিয়াই দিয়ে। গতিকে শৈলীৰ আলোচনাৰ পৰিসৰ বহুল। ই লেখকৰ অন্তৰ্জগত, লেখকৰ শৈলীৰ প্ৰতি পাঠকৰ



ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা

প্ৰাক্তন সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
☎ ৯৮৬৪০৫৯১১৩
✉ kalpana.sarma2@gmail.com

সঁহাৰি, অন্য সমসাময়িক লেখকৰ পৰা এজন লেখক কোনটো ক্ষেত্ৰত পৃথক এই দিশসমূহৰো পৰ্যালোচনা আগবঢ়ায়। Leech আৰু Short এ কৈছে - “ We normally study style because we want to explain something, and in general, Literary Stylistics has, implicitly or explicitly, the goal of explaining the relation between language and artistic function. The motivating questions are not so much what as why and how. From the linguist’s angle, it is ‘why does the author here choose this form of expression?’ From the literary critic’s viewpoint, it is ‘How is such-and-such an aesthetic effect achieved through language?’ ” (leech and short, p.11) গতিকে দেখা যায় যে শৈলীৰ অধ্যয়ন দুটা দিশেৰে কৰিব পাৰি। এটা হৈছে ভাষিক আৰু আনটো হৈছে সাহিত্যিক। সাহিত্যিক শৈলীয়ে সাহিত্যত ভাষাৰ জৰিয়তে নান্দনিকতা সৃষ্টিৰ কৌশলগত দিশটোৰ বিচাৰ কৰে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য : অপূৰ্ব শৰ্মাৰ *বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ* (১৯৭৭) গল্পপুথিখনৰ গল্পৰ শৈলী বিচাৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য।

পৰিসৰ আৰু সমল : অপূৰ্ব শৰ্মাৰ ‘বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ’ গল্প পুথিখনৰ অন্তৰ্গত গল্পসমূহক অধ্যয়নৰ পৰিসৰত আৱদ্ধ কৰা হৈছে। শৈলী অধ্যয়নৰ অন্যান্য দিশৰ ভিতৰত বাক্ধাৰা, সংযুক্তি, কাহিনী-কথক, ভাষা-মিশ্ৰণ, ভাষা-সঞ্চৰণৰ এই পাঁচটা দিশকহে গল্প সমূহৰ মাজত বীক্ষণ কৰা হ’ব।

অধ্যয়নৰ সমল হিচাপে অপূৰ্ব শৰ্মাৰ গল্প সমগ্ৰ পুথিখন মূল উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি : আলোচ্য বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ :

অপূৰ্ব শৰ্মাৰ *বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ* গল্প পুথিখনত মুঠ সাতটা গল্প ক্ৰমে - প্ৰভাত পখীৰ গান, শূন্য হ’লে, দাপোন, দাঁতৰ বিষ, বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ, নীল পতাকাৰ তলত আৰু ৰোগ। গল্পকাৰে এই আটাইকেইটা গল্পক বাস্তৱ-সমাজকেন্দ্ৰিক গল্প হিচাপে নিৰ্মাণ কৰিছে। ‘ৰোগ’ গল্পটোৰ বাহিৰে আটাইকেইটা গল্প চৰিত্ৰকেন্দ্ৰিক। বাস্তৱ - সমাজৰ বিভিন্ন ঘটনাৰ প্ৰতি সংবেদনশীল, চিন্তাশীল চৰিত্ৰসমূহৰ মনোজগতৰ ক্ৰিয়া - প্ৰতিক্ৰিয়াক কেন্দ্ৰ কৰি গল্পকাৰে গল্পসমূহ নিৰ্মাণ কৰিছে। গল্পকাৰে এই ক্ষেত্ৰত তিনিধৰণৰ ভূমিকা পালন কৰিছে -

গল্প কথক (Narrator) , ব্যাখ্যাকাৰী (Interpreter) তথা সংযোজক (Co-ordinator) হিচাপে। গল্পকথক হিচাপে তেওঁ বাস্তৱৰ ভেটিত কল্পনাৰ সংমিশ্ৰণ ঘটাই নিৰ্মাণ কৰা কাহিনীক পাঠকৰ আগত বৰ্ণনা কৰিছে। কাহিনীৰ বৰ্ণনাত ঘটনাৰ কাৰণ, চৰিত্ৰৰ কাৰ্য-কাৰণ স্পষ্ট কৰিবলৈ গল্পকাৰে ব্যাখ্যাকাৰী আৰু সংযোজক হিচাপে বাস্তৱ সমাজৰ অৰ্থনৈতিক, সাহিত্যিক, ৰাজনৈতিক, সামাজিক দিশসমূহৰ প্ৰতি প্ৰশ্নৰ অৱতাৰণা কৰি পাঠকৰ সৈতে বৌদ্ধিক যোগাযোগ সাধন কৰিছে।

গল্পকাৰে বিষয়গত বৈচিত্ৰ্যৰে গল্পকেইটা ৰচনা কৰিছে যদিও ৰূপগত দিশত সামঞ্জস্য দেখা যায়। প্ৰতিটো গল্পৰ সৈতে ৰচনা শৈলীৰ ঐক্য লক্ষ্যণীয়। চৰিত্ৰ কেন্দ্ৰিক গল্প হোৱা হেতুকে চৰিত্ৰৰ ব্যক্তিগত আৰু সামাজিক জীৱনৰ প্ৰতি কেনেকুৱা দৃষ্টিভংগী প্ৰকাশ কৰিছে, সেই দিশসমূহ গল্পকেইটাৰ মাজেৰে পৰিদৃশ্য হৈছে। সেয়েহে চৰিত্ৰসমূহ গভীৰ সংবেদনশীল, মানৱীয়, বাস্তৱ জীৱনৰ প্ৰতি যুক্তিশীল। প্ৰতিটো গল্পতে পুৰুষ চৰিত্ৰৰ বিষাদময় অনুভৱ আৰু মানসিক দ্বন্দ্বৰ ছবি অংকন কৰিছে। গল্প কেইটাত পুৰুষ চৰিত্ৰই প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। ভাৱগত বৈচিত্ৰ্য যিহেতু গল্পসমূহৰ মাজত পোৱা নাযায়, সেয়েহে বিষয় অনুসৰি শৈলীৰ ভিন্নতা গল্পসমূহত পৰিস্ফুট নহয়। শৈলীগত আলোচনাই সাহিত্য পাঠ এটাৰ বস্তুনিষ্ঠ অধ্যয়নৰ বাবে সহায় কৰে। সাহিত্য কৃতি আৰু তাত উপস্থিত বাক্ধাৰাই লেখক এজনৰ বাৰ্তা পাঠকৰ আগত প্ৰকাশ কৰাত সহায় কৰে। “লেখকেৰ সৃষ্ট ৰচনা একধৰণেৰে সংজ্ঞাপন চিহ্নিত কৰে। কাৰণ এক্ষেত্ৰে লেখক ও পাঠকেৰ মध्ये বিনিময়ৰ একমাত্ৰ মাধ্যম হয়ে ওঠে সাহিত্যকৃতি (text) বা বয়ান।” (মজুমদাৰ, পৃ. ২৫২) অপূৰ্ব শৰ্মাই কাহিনীৰ উপস্থাপনত প্ৰত্যক্ষ কথন আৰু পৰোক্ষ কথনৰীতি দুয়োটাৰে ব্যৱহাৰ কৰিছে। প্ৰত্যক্ষ কথন সংলাপধৰ্মী। তেওঁ চৰিত্ৰসমূহৰ মাজত হোৱা কথা - বতৰাৰ প্ৰসংগত এনে সংলাপৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত তেওঁ সংলাপ, সংলাপ + বৰ্ণনা, বৰ্ণনা + সংলাপ এই তিনিটা প্ৰক্ৰিয়াৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে।

ক) সংলাপ :

‘ৰাজু। কেতিয়া আহিলি ? কালি ?’

‘হয় জেঠো, কালি ৰাতি পালোঁহি।’

‘বাৰু ; পৰীক্ষা কেনে কৰিলি।’ (চুতীয়া, পৃ. ২৮)

খ) সংলাপ + বৰ্ণনা :

‘নাই ... স্কুলৰ চাকৰিটো মই কেইবাটাও পাইছো’

মুখ ক'লা কৰি ভাগৰে ক'লে।
 'অ', পালে সেইবোৰেই কৰিব লাগে। ছাত্ৰক গঢ়াই
 এতিয়া ডাঙৰ কাম।
 তহঁতে আক'... কৈ কৈ জ্যোতিদা ওলাই গ'ল।^৪
 (চুতীয়া, পৃ. ৫৪)

গ) বৰ্ণনা + সংলাপ

কোটটোৰ পৰা চকু ঘূৰাই আনি ৰাজেনে ক'লে -
 'বঢ়িয়া বস্ত্ৰ ল'লা বৌ। এইবাৰ ল'লা ?
 'কি ? অ' কোটটো ? মোৰ নহয় সেইটো ননীৰহে।'^৫
 (চুতীয়া, পৃ. ২৮, ২৯)

কাহিনীৰ অগ্ৰগতিত চৰিত্ৰসমূহে যেতিয়া পৰস্পৰ সন্মুখীন হৈছে তেতিয়া কাহিনী - কথন সংলাপধৰ্মী হৈ উঠিছে। আনহাতে, পৰস্পৰৰ কথা - বতৰাৰ পিছত পৰিস্থিতিৰ প্ৰতি চৰিত্ৰৰ মনোভাৱ, অভিব্যক্তি প্ৰকাশ কৰিবলৈ সংলাপৰ পিছত গল্পকাৰে কিছু বৰ্ণনা কৰা দেখা যায়। একেদৰে সংলাপৰ পূৰ্ববৰ্তী পৰিস্থিতি যেনে - চৰিত্ৰৰ মানসিক স্থিতি, পৰিৱেশ - পৰিস্থিতিৰ গভীৰতাক পাঠকৰ বোধগম্য কৰিবলৈ বৰ্ণনাৰ আশ্ৰয় লৈছে। বৰ্ণনাৰে গল্পৰ পটভূমিৰ তৈয়াৰ কৰাৰ লগতে কাহিনীক নিৰ্দিষ্ট গতি প্ৰদান কৰিবলৈ বৰ্ণনাৰে আগবাঢ়িছে। সংলাপকেন্দ্ৰিক বাক্যধাৰাক আকৌ ব্যৱহাৰৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি তিনিভাগত ভগোৱা হয়। "আখ্যানে সংলাপেৰ প্ৰয়োগ মোটামুটি তিনি ধৰণেৰ। যথা, 'নাম - দাড়ি সংলাপ' - এৰ ৱীতি; 'বিবৃতি - সংলাপ' - এৰ ৱীতি এবং প্ৰত্যক্ষ সংলাপেৰ ৱীতি।"^৬ (মজুমদাৰ, পৃ. ২২৯) শৰ্মাৰ গল্পত বিবৃতি সংলাপৰ ব্যৱহাৰ অধিক দেখা যায়। বিবৃতি সংলাপ হৈছে সংলাপৰ আগত বা পিছত বিবৃতিমূলক বাক্যৰ ব্যৱহাৰ। এনে বাক্যৰ ক্ষেত্ৰত তিনিটা কথা -

- ১) "বিবৃতি-বাক্যে 'বল্', 'কহ্' জাতীয় তথ্যজ্ঞাপক ক্ৰিয়াৰ ব্যৱহাৰ।"^৭
- ২) "ভঙ্গিসূচক ক্ৰিয়াৰ ব্যৱহাৰ। যেমন, 'জিজ্ঞাসা কৰ', 'প্ৰশ্ন কৰ', 'অন্যপক্ষে 'হাঁক দেওয়া', 'চোঁচিয়ে ওঠা' ইত্যাদি।"^৮
- ৩) "পূৰ্ববৰ্তী ক্ৰিয়াৰ ব্যৱহাৰ ছাড়াই অনেকসময় পৰৱৰ্তী বাক্যাংশে সংলাপেৰ ভঙ্গি বুঝিয়ে দেওয়া হয়।"^৯ (মজুমদাৰ, পৃ. ২২৯, ২২৯, ২৩০)

অপূৰ্ব শৰ্মাই গল্পত সংলাপৰ ক্ষেত্ৰত বিবৃতি সংলাপ বাক্যৰ ব্যৱহাৰ কৰোঁতে 'ক'লে', 'সুধিলে' এনেধৰণৰ ক্ৰিয়াৰ ব্যৱহাৰ সংলাপৰ পিছত কৰিছে। বিবৃতি অংশ

সংলাপৰ পৰৱৰ্তী অংশত পোৱা যায়।
 'বাবু আছনে ?' - মই সুধিলোঁ।
 'নাই।' - সি ক'লে।
 'অফিচৰ পৰা আহিল নে নাই ?' - মই সুধিলোঁ।
 'অফিচৰ পৰাতো আহিল। তাৰ পিছত ওলাই
 গৈছে।' - সি ক'লে।"^{১০}

(চুতীয়া, পৃ. ৩৯)

ঠাই বিশেষে তেওঁ প্ৰত্যক্ষ সংলাপ ৰীতিৰো ব্যৱহাৰ কৰিছে -

'ধেমালি কৰিছ কিয় ? ফিউচাৰৰ কথা ভাবি চাইছ ?'
 'চাইছোঁ। ফিউচাৰ হ'ল্ডচ টেৰৰ। হাঃ হাঃ বাদ দে।
 পঢ়িছ ?'
 'নাই পঢ়া। পঢ়িব পৰা নাই।'^{১১}

(চুতীয়া, পৃ. ৪৭)

গল্পকাৰে গল্পৰ আৰম্ভণি, ঘটনা তথা প্ৰকৃতিৰ বিৱৰণত বৰ্ণনামূলক বাক্যধাৰাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। বৰ্ণনামূলক বাক্যধাৰাৰ ক্ষেত্ৰত দীঘলীয়া আৰু চুটি দুইটা বাক্যৰে ব্যৱহাৰ কৰিছে।

"সেইদিনা গধূলি প্ৰাচীন, ভগ্ন চাইকেলখন বাহিৰৰ পৰা আনি বৰঘৰৰ বেৰত আউজাই থৈ, দুৰ্বল অনিশ্চয় খোজেৰে আগবাঢ়াই গৈ, হাতভগা কাঠৰ চকীখনত বহি জেপৰ পৰা এটি বিড়ি উলিয়াই চাকিৰে অগ্নি সংযোগ কৰি দুবাৰমান ধোঁৱা টনাৰ পিছত অতি সহজভাৱে, অতি স্বাভাৱিকভাৱে এবাটি চাহৰ কথা ৰোষেশ্বৰ পণ্ডিতৰ মনলৈ আহিল।"^{১২} (চুতীয়া, পৃ. ৮৫)

চিত্ৰাৰ ধাৰাবাহিকতা, কাৰ্যৰ ক্ৰমানুগ ধাৰা, পৰিস্থিতিৰ যথাযথ বৰ্ণনা, পৰিৱেশৰ নিটোল বৰ্ণনা পাঠকৰ আগত তুলি ধৰিবলৈ গল্পকাৰে এনে কৌশলৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে। দীঘলীয়া বাক্যই এটা প্ৰসংগক কেন্দ্ৰ কৰি একেটা সময়তে গঢ় লৈ উঠা নিৰৱচ্ছিন্ন ভাৱক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। আনহাতে তেওঁ গল্পত চুটি বাক্যৰেও ভাৱক গধুৰ কৰি তুলিছে।

ক) "তেওঁ পিছফাললৈ ওলাই গ'ল। সুপ্ত, নিৰ্জন, নিঃসংগ।"^{১৩} (চুতীয়া, পৃ. ৯৩)

খ) "কিয়নো বাহিৰৰ সমস্ত পাৰিপাৰ্শ্বৰে বতাহ গধুৰ, থমথম ভাব। আকাশ মেঘলুপ্ত, গোমা।"^{১৪} (চুতীয়া, পৃ. ৮৫)

ঘটনাৰ কাৰণ, ব্যক্তিগত অনুভূতি, জীৱনবীক্ষাৰ ছবি অংকনৰ ক্ষেত্ৰত বাক্যধাৰা ব্যাখ্যামূলক হৈ পৰিছে। এনে ক্ষেত্ৰত লেখক কাহিনীৰ ব্যাখ্যাকাৰী হৈ উঠা বাবে

ব্যাখ্যাৰ মাজেৰে নিজস্ব দৃষ্টি ভংগীও প্ৰকাশ পাইছে — “কিন্তু যোগেশ্বৰ ঠিকাদাৰ ? অৱশ্যেই ঠিকাদাৰ জহন্নামে গৈছে। কিন্তু অকল ঠিকাদাৰেই জানো ? প্ৰগতিৰ পথত মানুহ প্ৰতিদিনে বৰবৰৰ পৰা বৰবৰ হৈছে। মানুহৰ কোনো ধৰ্ম নাই, প্ৰতীতি নাই, শুভবুদ্ধি নাই। বৰ্তমান জীৱনৰ সকলো দিশেই ঘূৰে ধৰা। জীৱনৰ কোনো shade and meaning নাইকিয়া হৈ গৈছে। এই অধোমুখী গতি ৰোধ কৰি মানুহক শুভ পথলৈ আনিবলৈ এটা মিৰাকলৰ প্ৰয়োজন হ’ব।”^{১৫} (চুতীয়া, পৃ. ৩৬)

চৰিত্ৰৰ মানসিক অস্থিৰতাৰ বৰ্ণনাত বাক্যৰ গাঁথনি পৰম্পৰাগত দিশৰ পৰা আঁতৰি আহিছে। গল্পৰ ধাৰাবাহিক বৰ্ণনাৰ পৰা আঁতৰি আহি এনে বাক্যই চৰিত্ৰৰ অন্তৰ্দ্বন্দ্ব যথার্থ দৃষ্টান্ত পাঠকৰ আগত উপস্থাপন কৰিছে — “ওলাই আহিবৰ সময়ত কোনোবা এটাই খেকাৰ পেলোৱাটো এতিয়া , হঠাৎ , ভাৰ হ’ল অস্বাভাৱিক। দুদিনতে দাঢ়ি - যিহেতু গাললৈ। হাত গ’ল - যথেষ্ট বাঢ়িছে, গম পায়।”^{১৬} (চুতীয়া, পৃ. ৭৬) দিলীপে প্ৰত্যাৱৰ্তী জীৱনৰ সৈতে এটা অসম্ভৱ লৈ জীয়াই আছে। এই অস্থিৰতাক বেছি জীৱন্ত কৰি তুলিবলৈ গল্পকাৰে এনে বৰ্ণনাৰ আশ্ৰয় লৈছে।

গল্পকাৰে কাহিনীৰ বৰ্ণনাত বিষয়ানুযায়ী নিজস্ব ভাৱ বা বক্তব্যক স্থান দিওঁতে তেনে বৰ্ণনাই গল্পৰ কাহিনী আৰু পাঠকৰ সৈতে অন্তৰংগ সম্পৰ্ক গঢ়ি তুলিছে। যেতিয়াই ব্যক্তি আৰু সমাজ জীৱনৰ গূঢ়তম দিশবোৰৰ কথা ক’বলগীয়া হৈছে, তেতিয়াই গল্পকাৰে পাঠকৰ সৈতে এনে সম্পৰ্ক গঢ়ি তুলিছে — “প্ৰত্যেক মুহূৰ্তই খণ্ডিত, পৃথক, স্বাধীন, তাৰ লগত জড়িত বিভিন্ন সমস্যা প্ৰত্যেকৰে নিজস্ব আৰু অভিন্ন।”^{১৭} (চুতীয়া, পৃ. ৮১)

গতিকৈ , পাঠ এটাত বাক্যধাৰাই সামগ্ৰিক অৰ্থ আয়ত্ব কৰাত সহায় কৰাৰ লগতে লেখকৰ মনস্তাত্ত্বিক জগতত ক্ৰিয়া কৰি থকা বিভিন্ন প্ৰশ্নৰ, বিভিন্ন সমাধান তথা সিদ্ধান্তৰ প্ৰতিফলন কৰে।

কাহিনী কথনত কথকৰ ভূমিকা আলোচ্য বিষয়। কাহিনী কথকে পাঠ এটাক পাঠকৰ আগত উপস্থাপন কৰি পাঠকৰ সৈতে মানসিক যোগাযোগ সম্ভৱ কৰি তোলে। কাহিনী কথকে কাহিনী এটাক লেখকৰ বা অন্যৰ ফালৰ পৰা পাঠকৰ আগত আগবঢ়াই দিয়ে আৰু সেই দৃষ্টিভংগীক পাঠকে গ্ৰহণ কৰি পাঠকক নিজস্ব ধৰণে বিচাৰ কৰি চায়। মাইক বালে (Mieke Bal) কাহিনীত দুইধৰণৰ কথকৰ উপস্থিতি থাকে বুলি ব্যাখ্যা কৰিছে। এটা হৈছে - চৰিত্ৰবদ্ধ

কথক আৰু আনটো হৈছে পাঠ বহিৰ্ভূত : কথক। “Two types of ‘speakers’ utter the signs that constitute a narrative text; one does not play a role in the fabula whereas the other does.”^{১৮} (Bal, p.9) চৰিত্ৰবদ্ধ কথকে কাহিনীৰ মাজত নিজে উপস্থিত থাকি কাহিনীটো বৰ্ণনা কৰি যায়।

অপূৰ্ব শৰ্মাৰ ‘দাপোন’ গল্পটোত চৰিত্ৰবদ্ধ কথকৰ উপস্থিতি বিদ্যমান। গল্পৰ মুখ্য চৰিত্ৰ ইমৰানে নিজেই কথকৰ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি কাহিনীটো আগবঢ়াই নিছে — “পুনৰবাৰ মই চকু মেলি দিলোঁ আৰু আৱিষ্কাৰ কৰিলোঁ যে চকু মুদিলেহে মানুহে বেছি স্পষ্টকৈ দেখা পায়। আৰু মই চকুযোৰ বহলকৈ মেলি দিলোঁ , যাতে মই একো দেখা নাপাওঁ আৰু মই খোজ আৰম্ভ কৰিলোঁ।”^{১৯}

(চুতীয়া, পৃ. ৪৪)

এনে গল্পত কথক চৰিত্ৰটোৰ নিজস্ব দৃষ্টিকোণ, নিজস্ব অনুভৱ , চেতনাত উজ্জ্বল হৈ উঠে। অন্য চৰিত্ৰৰ মনোভাৱ, অন্তৰ্জগতৰ ভাষাক পাঠকৰ আগত প্ৰকাশ কৰিব নোৱাৰে। একেদৰে পাঠ বহিৰ্ভূত : কথকৰ উদাহৰণ এনেধৰণে পাঠত পোৱা যায়—

“সেইদিনা হোটেলত দুপৰৰ আহাৰত বহি কুকুৰাৰ ঠেং এখন চোবাই চোবাই সি ভাবিছিল, ককাদেউতাৰ কালৰ হাহাকাৰ বেদনাৰ মুহূৰ্তটো কিয় এতিয়া বিংশ শতিকাত স্বস্তিৰ বা একধৰণৰ মানসিক নিৰ্বাৰিত হয় ? এইটো কি মননশীলতা ?”^{২০}

(চুতীয়া, পৃ. ৭৭)

গল্পকাৰে এনেপাঠত গল্পৰ বাহিৰত থাকি কাহিনীৰ বৰ্ণনা কৰি গৈছে।

সংযুতি (Cohesion) : পাঠ এটা অৰ্থপূৰ্ণ কৰি নিৰ্মাণ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বাক্যধাৰাৰ সমূহৰ এটা অংশৰ লগত আনটো অংশৰ মিল ৰক্ষা হোৱাটো বাঞ্ছনীয়। পাঠৰ সংযুতি বিচাৰ প্ৰক্ৰিয়াটো পাঠটোৰ বিশ্লেষণৰ সমালোচনাত্মক অধ্যয়ন প্ৰক্ৰিয়া। পাঠৰ সংযুতি বিচাৰ বাক্যধাৰাৰ সৈতে জড়িত হৈ থাকে। “The concept of cohesion is a semantic one; it refers to relations of meaning that exist within the text , and that define it as a text.”^{২১} (Halliday & Hasan Pg.4) শৈলীবিজ্ঞানত সংযুতি বুলিলে সেইসমূহ ভাষাগত উপাদানক বুজোৱা হয়, যিবোৰ শব্দ, বাক্যাংশ বা বাক্যসমূহক সংযোগ কৰি সুসংগঠিত আৰু অৰ্থবহু পাঠৰ সৃষ্টি কৰে। অপূৰ্ব শৰ্মাই পাঠৰ সংযুতিৰ ক্ষেত্ৰত সংযোজক, বিযোজক, প্ৰসংগবোধক, সম্বোধনবোধক,

সম্মতিসূচক শব্দৰ প্ৰয়োগেৰে বাক্যসমূহৰ মাজত সংযুতি স্থাপন কৰিছে। শৰ্মাই ‘আৰু’ সংযোজক অব্যয়ৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত দৈনন্দিন জীৱনৰ কথাশৈলীৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে।

“আৰু মই অনুমান কৰিব পাৰিলোঁ, মোৰ হাত দুখন বুকুৰ ওছৰলৈ উঠি গৈছে আৰু মই কৈছোঁ - ‘নমস্কাৰ’। আৰু তাৰ পিছত কেইটামান মুহূৰ্তৰ এক অস্বস্তিকৰ নিৰৱতা।”^{২২} (চুতীয়া, পৃ. ৪৩)

গল্পকাৰে প্ৰশ্নোত্তৰৰ মাধ্যমেৰেও বাক্যৰ মাজত সংযুতি স্থাপন কৰিছে।

‘ব’ল, অলপ ওলাই যাওঁ।’

‘খেৎ, ক’ত যাবি? চাহ খা।’

‘নাই নালাগে, ওলা সোনকালে।’^{২৩}

(চুতীয়া, পৃ. ৭০)

সমান্তৰতা (Parallelism) : এটা শব্দ বা একে ব্যাকৰণগত দিশৰ একে ভাৱত, একে সুৰত ব্যৱহাৰ কৰিলে, তাক সমান্তৰতা বুলি কোৱা হয়। “Parallelism- a related device- is the proximity of two or more phrases with identical or similar construction, especially those expressing the same sentiment, but with slight modifications.”^{২৪} (ইণ্টাৰনেট উৎস) কাহিনী কথকজনে বৰ্ণনাৰ ক্ষেত্ৰত ঠাই অনুসৰি এনে সমান্তৰতাৰ সৃষ্টি কৰিছে।

“হয়তো তেওঁ এক হেতুহীন নিঃস্বতা অনুভৱ কৰে। হয়তো তেওঁৰ মাকৰ কথা মনত পৰে। মাকক তেওঁ বেছিদিন পোৱা নাই। তথাপি হয়তো তেওঁৰ মনত আহে, থুঁতৰিত ধৰি মূৰ ফণিয়াই দিয়াৰ কথা, গৰমৰ দিনত পিঠি খজুৱাই দিয়াৰ কথা, ভাতৰ পাতত মাছ বাছি দিয়াৰ কথা, বেমাৰত বিছনাৰ কাষত আকুল নয়নে পাৰ কৰা ৰাতিৰ কথা কিম্বা সেই আকুল অনন্য চকুযোৰৰেই কথা।”^{২৫} (চুতীয়া, পৃ. ৫৬)

সমান্তৰতাই পাঠকৰ দৃষ্টি, বিষয়ৰ কেন্দ্ৰত নিৰদ্ধ কৰিবলৈ সহায় কৰে। ওপৰোক্ত দফাটোত ‘হয়তো’ আৰু ‘কথা’ এই দুটা শব্দৰ পুনৰাবৃত্তিৰে চৰিত্ৰটোৰ মনলৈ বিভিন্ন কামৰ সৈতে সংলগ্ন হৈ থকা একে ভাৱক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে আৰু এই ভাৱটো পাঠকক অনুভৱ কৰোৱাৰ বাবে লেখকে এনে সমান্তৰতাৰ সৃষ্টি কৰিছে। চৰিত্ৰটোৰ মনলৈ অহা নিঃসংগতাৰ কথাটো সমান্তৰতাই স্পষ্ট কৰি তুলিছে। শৈলীবিজ্ঞানৰ দিশৰ পৰা সমান্তৰতাৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়—

১। পাঠকৰ দৃষ্টি মূল ধাৰণাসমূহৰ ওপৰত কেন্দ্ৰীভূত কৰিবলৈ

২। নান্দনিক সৌন্দৰ্য্য সৃষ্টি কৰিবলৈ

৩। পুনৰাবৃত্তিৰ জৰিয়তে অৰ্থক শক্তিশালী কৰিবলৈ

৪। লেখকে পাঠকৰ মনত পুনৰাবৃত্তিৰ জৰিয়তে পৰিস্থিতিৰ প্ৰতি বা বক্তব্যৰ প্ৰতি পতিয়ন নিয়াবলৈ যত্ন কৰে।

শৰ্মাই চৰিত্ৰৰ অৱস্থাক গভীৰ কৰি তুলিবলৈ আৰু চৰিত্ৰটোৱে পাঠকৰ পৰা সহানুভূতি আদায় কৰিবলৈ এনে সমান্তৰতাৰ আশ্ৰয় লৈছে।

ভাষা-মিশ্ৰণ (Code-Mixing) : পৃথিৱীৰ বেছিভাগ ভাষাৰ মানুহে অন্য ভাষাৰ পৰা শব্দ গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। সাধাৰণতে বক্তাই প্ৰভাৱশালী বা বক্তাৰ মাতৃভাষাতকৈ শক্তিশালী ভাষাৰ পৰা বিভিন্ন শব্দ প্ৰয়োজনৰ বাবে বা ইচ্ছাকৃতভাৱে নিজৰ ভাষাত অনুবাদ নকৰাকৈ ব্যৱহাৰ কৰে। বহুত ক্ষেত্ৰত এনে শব্দৰ অনূদিত ৰূপ নাথাকে বা থাকিলেও বক্তাৰ অভিপ্ৰেত অৰ্থমূলক বুজোৱাৰ ক্ষেত্ৰত সমৰ্থ নহয়। তেনেক্ষেত্ৰত বক্তাই অন্যভাষাৰ শব্দটোক মাতৃভাষাৰ সৈতে ব্যৱহাৰ কৰে। বৰ্তমান সময়ত ইংৰাজী ভাষাৰ শব্দ নাগৰিক আৰু শিক্ষিত সমাজত ইচ্ছাকৃতভাৱে ব্যৱহাৰ কৰাটো স্বাভাৱিক নিয়মত পৰিণত হৈছে। গল্পকাৰে তেওঁৰ গল্পত কিছুক্ষেত্ৰত প্ৰয়োজন অনুসৰি, কিছুক্ষেত্ৰত নাগৰিক আৰু শিক্ষিত লোকৰ মুখৰ ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিছে। গল্পক ভাৱ অনুসৰি ৰূপ দিয়াৰ স্বাৰ্থত তেওঁ এই প্ৰয়োগ সচেতনভাৱে কৰিছে।

“অথবা হয়তো কোনো সুস্থিৰ আইডিয়াই তাৰ মনত খেলোৱা নাছিল। নেভাৰ মাইণ্ড সাহিত্যিক। সাহিত্য আলোচনা মই নকৰোঁ। বস্তুটো মোৰ বাবে অসহ্য। কিন্তু তোৰ সাহিত্য কি পাৰৰ জীৱনলৈ আহিছে? নে এতিয়াও চেণ্টিমেণ্টেলিটিৰ সাগৰতে সাঁতুৰি আছে?”^{২৬}

(চুতীয়া, পৃ. ৪৭)

এনেধৰণৰ ইংৰাজী শব্দৰ ব্যৱহাৰ লেখকে অসমীয়া ভাষাত এই ভাৱ বুজোৱাৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় অৰ্থ নথকাৰ বাবে নহয়, বৰঞ্চ চৰিত্ৰৰ সৈতে ৰজিতা খুৱাবৰ বাবেহে ব্যৱহাৰ কৰিছে। তেওঁ ইংৰাজী শব্দৰ লগতে আৰৱী, সংস্কৃত, বাংলা শব্দৰো ব্যৱহাৰ কৰিছে —

“এই কেইদিন অলপ অলপ ‘জলসা’ বহিছে।”^{২৭} (চুতীয়া, পৃ. ৪৩) (আৰৱী)

“কম্পিত হস্তে গিলাছটো তুলি লৈ সি পানীখিনি নিঃশেষ কৰি পিলে।”^{২৮} (চুতীয়া, পৃ. ২৩) (সংস্কৃত)

“ধীৰে ধীৰে যেন কোনো নিচাৰ প্ৰভাৱত, দাৰুণ মানসিক উদ্বেজনাৰ তাড়নাত তাৰ হাত ক্ৰমে ওপৰলৈ গ’ল আৰু নিভাৰ ডিঙিত এতিয়া সি যেন পৰম স্নেহত, হাত বুলাব ধৰিলে।”^{২৯} (চুতীয়া, পৃ.৮৪) (বাংলা)

ভাষা-সঞ্চৰণ (Code-Switching): ভাষা সঞ্চৰণৰ ব্যক্তিজনৰ মাতৃভাষাৰ লগতে অন্য ভাষাৰ ওপৰতো দখল থকাটোক নিৰ্দেশ কৰে। অপূৰ্ব শৰ্মাই অভিপ্ৰেত অৰ্থক পাঠকৰ বেছি ওচৰ চপাই নিবলৈ এই সঞ্চৰণৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে। তদুপৰি ভাষা সঞ্চৰণৰ ফলত চৰিত্ৰৰ কথনভংগী বাস্তৱৰ কথন শৈলীৰ সৈতে অভিন্ন হিচাপে পাঠকে অনুভৱ কৰে। চৰিত্ৰৰ ব্যক্তিত্ব, সামাজিক পৰিচয় পাঠকে লাভ কৰে। পাঠকটোক বাস্তৱসন্মত কৰি তুলিবলৈ সাহিত্যিকজনে ইচ্ছাকৃতভাৱে ভাষা সঞ্চৰণ কৰে। বহুভাষিক বা দ্বিভাষিক সমাজত দৈনন্দিন কথা-বতৰাৰ ধৰণক ছবছ আৰু বিশ্বাসযোগ্যভাৱে প্ৰতিনিধিত্ব কৰিবলৈ এনে কৌশল গল্পকাৰে আয়ত্ত্ব কৰা দেখা যায়।

“এই দুঃসহ শীত কালৰ অন্ত এদিন হ’বই। Winter is fighting tooth and nail, before giving away to spring inevitable. আমি ভোগ কৰিবলৈ নাপাব পাৰোঁ, মধু বসন্ত আহিবই।”^{৩০} (চুতীয়া, পৃ.২৭)

ইয়াত, প্ৰথম বাক্যশাৰীৰ অৰ্থক অধিক গভীৰভাৱে বুজাবলৈ গৈ চৰিত্ৰই ইংৰাজী বাক্যশাৰীৰ সহায় লৈছে, যাৰ অৰ্থ এনেদৰে ক’ব পাৰি - অনিবাৰ্য বসন্তৰ আগমনৰ পূৰ্বে শীতকালে সৰ্বশক্তিৰে যুঁজ দিছে। অৰ্থাৎ নতুনৰ আৰম্ভণি সদায় অনিবাৰ্য। অৰ্থাৎ ভৱিষ্যত প্ৰজন্মৰ সুস্থ চিন্তাই মূল্যবোধৰ সমাজ এখন গঢ় দিব। এনেধৰণে হোৱা সঞ্চৰণক অন্তৰ্বাক্যীয় (Inter Sentential Switching) ভাষা সঞ্চৰণ বুলি কোৱা হয়।

সামৰণি :

অপূৰ্ব শৰ্মাৰ *বন্ধুৰ পথত কেইজনমান ডেকা মানুহ* গল্পপুথিখনৰ গল্প সমূহ শৈলীৰ দিশৰ পৰা বিশ্লেষণ

কৰিলে দেখা যায় যে , পাঠৰ বাক্‌ধাৰা , সংযুতি , সমান্তৰতা, ভাষা - মিশ্ৰণ , ভাষা - সঞ্চৰণে চৰিত্ৰৰ অন্তৰীণ জগত , সমাজিক বাস্তৱতা, মানৱীয় অনুভূতি আৰু জীৱন - দৰ্শনিক উপস্থাপিত কৰাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। বাক্‌ধাৰাৰ ভাষাই সমসাময়িক অসমীয়া নগৰকেন্দ্ৰিক জীৱনৰ কথ্যভাষাটোৰ ৰূপটোক নিৰ্দেশ কৰিছে। চৰিত্ৰৰ মানসিক স্থিতি বা বক্তব্যৰ প্ৰতি পাঠকৰ দৃষ্টি কেন্দ্ৰীভূত কৰিবলৈ গল্পকাৰে সমান্তৰতা শৈলীৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। সমান্তৰতাই চৰিত্ৰৰ অৱচেতন মনত চলি থকা ভাৱৰ ঐক্যকো অনুধাৱন কৰাত সহায় কৰিছে। ভাষা - মিশ্ৰণ আৰু ভাষা - সঞ্চৰণৰ প্ৰয়োগে শিক্ষিত সমাজৰ কথন - শৈলীক নিৰ্দেশ কৰিছে। আনহাতে , কাহিনী কথকৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁ ‘ দাপোন ’ গল্পটোৰ বাহিৰে আন গল্পকেইটাক পাঠ বহিৰ্ভূত : কথকৰে কাহিনীক অগ্ৰগতি প্ৰদান কৰিছে। গল্পসমূহ বেছিভাগেই পুৰুষ চৰিত্ৰ কেন্দ্ৰিক হোৱা হেতুকে পুৰুষৰ কথন ভংগী আৰু শব্দ প্ৰয়োগৰ ধৰণ প্ৰকাশিত হৈছে।

গতিকে দেখা যায় যে , গল্পৰ ভাষাগত গাঁথনিৰে গল্প পাঠটোৰ সাহিত্যিক অৰ্থক নিৰ্ধাৰিত পাঠকৰ (Intended Reader) কাষ চপাই নিয়াৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধান ভূমিকা পালন কৰিছে। তেওঁৰ গল্পৰ নিৰ্ধাৰিত পাঠক শ্ৰেণী হ’ল আধুনিক , অধ্যয়নপুষ্ট আৰু সংবেদনশীল পাঠক। সেয়েহে এনে পাঠকক কেন্দ্ৰ কৰি কাহিনী নিৰ্মাণ কৰা হেতুকে পাঠৰ ভাষা আৰু নিৰ্মাণ প্ৰক্ৰিয়াক যুগ - শৈলীয়ে প্ৰভাৱিত কৰিছে। গল্পকাৰে যুগৰ শৈলী আৰু নিজস্ব শৈলীৰ সংমিশ্ৰণেৰে গল্প ৰচনাৰ বাবে যি কৌশল প্ৰয়োগ কৰিছে , সেয়া তেওঁৰ ৰচনাৰ শৈলীগত বিশেষত্ব হিচাপে চিহ্নিত কৰিব পৰা যায়। □

প্ৰসংগসূচী :

১. Geoffrey Leech and Mick Short. *Style in fiction A linguistic Introduction to English Fictional Prose* . P.11.

২. পৱেশচন্দ্ৰ মজুমদাৰ, অভিজিৎ মজুমদাৰ। *বাঙলা সাহিত্য পাঠ শৈলীগত অনুধাৱন*। পৃ. ২৫২

৩. অসীম চুতীয়া (সম্পাদিত)। *অপূৰ্ব শৰ্মাৰ গল্প সমগ্ৰ*। পৃ. ২৮

৪. প্ৰাগুক্ত, পৃ. ৫৪

৫. প্ৰাগুক্ত, পৃ. ২৮,২৯

৬. পৱেশচন্দ্ৰ মজুমদাৰ, অভিজিৎ মজুমদাৰ। *বাঙলা সাহিত্য পাঠ শৈলীগত অনুধাৱন*। দে’জ পাবলিশিং। পৃ. ২২৯

৭. প্ৰাগুক্ত, পৃ. ২২৯

৮. প্ৰাগুক্ত, পৃ. ২২৯

৯. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ২৩০
 ১০. অসীম চুতীয়া (সম্পা)। অপূৰ্ণ শৰ্মাৰ গল্প সমগ্ৰ। পৃ. ৩৯
 ১১. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৪৭
 ১২. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৮৫
 ১৩. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৯৩
 ১৪. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৮৫
 ১৫. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৩৬
 ১৬. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৭৬
 ১৭. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৮১
 ১৮. Mieke Bal. *Narratology Introduction to the Theory of Narrative*. P. 9.
 ১৯. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৪৪
 ২০. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৭৭
 ২১. M.A.K Halliday & Ruqaiya Hasan. *Cohesion in English*. p. 4 .
 ২২. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৪৩
 ২৩. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৭০
 ২৪. https://edge.sagepub.com/sites/default/files/language_section_02_module02.pdf,
 1.07.2026.
 ২৫. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৫৬
 ২৬. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৪৭
 ২৭. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৪৩
 ২৮. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ২৩
 ২৯. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ৩২
 ৩০. প্রাণ্ডক্ত, পৃ. ২৭
 সহায়ক গ্রন্থপঞ্জীঃ
 অসমীয়া
 মুখ্য :
 চুতীয়া অসীম। অপূৰ্ণ শৰ্মাৰ গল্প সমগ্ৰ। বনলতা, ২০২২।
 গৌণ :
 দত্ত বৰুৱা, ফণীন্দ্র নাৰায়ণ। *প্ৰয়োগ ভাষা বিজ্ঞানৰ ৰূপৰেখা*। বিশাল প্ৰকাশন, ২০১৭।
 দুৱৰা, সপোন। *ভাষা আৰু শৈলী*। ষ্টুডেন্টচ ব'ক্‌ছ, ২০০৪।
 ঠাকুৰ, নগেন। *ভাষা আৰু ভাষা-চিন্তা*। বনলতা, ২০২১।
 নেওগ, সুব্রতজ্যোতি। *শৈলীবিজ্ঞান আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ শৈলী*। বনলতা, ২০১৫।
 পাদুন, নাহেন্দ্র (সম্পা.)। *চিন্তা-প্ৰৱাহ*। শিবসাগৰ কলেজ সোনালী জয়ন্তী উদ্‌যাপন সমিতি। সোণালী জয়ন্তী বৰ্ষ, ১৯৯৬-৯৭।
 শৰ্মা, অনুৰাধা। *শৈলী আৰু শৈলীবিজ্ঞান*। বান্ধৱ, ২০১৫।
 বাংলা :
 চন্দ্ৰবতী বিপ্লব। *শৈলী চিন্তাচৰ্চা*। ৰত্নাৱলী, ২০০৩।
 মজুমদাৰ, অভিজিৎ। *শৈলীবিজ্ঞান আৰু আধুনিক সাহিত্যতত্ত্ব*। দে'জ পাবলিশিং, ২০১৬।
 মজুমদাৰ পৰেশচন্দ্ৰ, মজুমদাৰ অভিজিৎ। *বাঙলা সাহিত্য পাঠ শৈলীগত অনুধাৱন*। দে'জ পাবলিশিং, ২০১৮।
 ৰায়, অপূৰ্ণকুমাৰ। *শৈলীবিজ্ঞান*। দে'জ পাবলিশিং, ২০১৯।
 ইংৰাজী :
 Bradford, Richard. *Stylistics*. Taylor S Francis e-Library , 2005.
 Chapmen, Raymond. *Linguistics and Literature An Introduction to Literary Stylistics*. Edward Arnold (Publishers) Ltd. , 1973.
 Leech, Geoffrey Short, Mick. *Style in Fiction A Linguistics Introduction to English Fictional Prose*. Pearson Education Limited , 2007.
 Halliday M.A.K. & Hasan Raqaiya . *Cohesion in English*. Routledge. Taylor & Francis Group , 2013.
 Mieke Bal. *Narratology Introduction to the Theory of Narrative*. University of Toronto Press , 2025.
 Norman Fairclough. *Critical discourse analysis the critical study of language*. Longman publishing , 1995.
 Simpson, Paul. *Stylistics A Resource Book For Students*. Routledge, 2014.
 Widdowson, H.G. *Stylistics and the Teaching of Literature*. Routledge, 2013.
 কেছাইটঃ
https://edge.sagepub.com/sites/default/files/language_section_02_module02.pdf

অমূল্য বৰুৱাৰ লুইতকেন্দ্ৰিক উপন্যাস 'এই পদুমনি' স্থান আৰু মানুহৰ অবিচ্ছেদ্য সম্পৰ্কৰ এক ভূ-সমালোচনাত্মক অধ্যয়ন



দিপাংকৰ বৰুৱা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১

☎ ৬০০১৮০০৫৫

✉ dipankarboruah717@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ :

নদীকেন্দ্ৰিক অসমীয়া উপন্যাসৰ ধাৰাত অমূল্য বৰুৱাৰ এই পদুমনি (১৯৬৫) উপন্যাসৰ এক বিশেষ গুৰুত্ব আছে। পদুমনি নামৰ এখন লুইতপৰীয়া গাঁৱৰ ভৌগোলিক পৰিৱেশ আৰু তাৰ সৈতে একাত্ম হৈ পৰা নৈপৰীয়া মানুহৰ জীৱন-সংগ্ৰাম উপন্যাসখনৰ মূল উদ্দেশ্য। ইয়াত স্থান আৰু মানুহৰ সম্পৰ্ক আন্তঃসম্পৰ্ক অতি গভীৰ। এই গৱেষণাপত্ৰখনত উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পোৱা 'স্থান' আৰু 'মানুহ'ৰ অবিচ্ছেদ্য সম্পৰ্কটোৰ বিষয়ে ভূ-সমালোচনাত্মক (Geocritical) দৃষ্টিভঙ্গীৰে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। ভূ-সমালোচনাৰ তাত্ত্বিক আধাৰ গ্ৰহণ কৰি এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে দেখুওৱা হৈছে যে, স্থান ইয়াত কেৱল কাহিনীৰ নিষ্ক্ৰিয় পটভূমি নহয়; বৰং ই অঞ্চলটোৰ কৃষি আৰু মৎস্যজীৱী সমাজখনৰ জীৱন-ধাৰণৰ উৎস, পৰিচয়ৰ আধাৰ, সামাজিক-সাংস্কৃতিক জীৱনৰ ভেঁটি আৰু মনস্তাত্ত্বিক গঠনৰ প্ৰধান কাৰক। লুইতৰ চিৰ-পৰিৱৰ্তনশীল ৰূপ, বানপানী আৰু গৰাখহনীয়াই কেনেকৈ চৰাঞ্চলৰ মানুহখিনিৰ আৰ্থ-সামাজিক জীৱন আৰু মানসিক জগতখনক নিয়ন্ত্ৰণ কৰে, সেই দিশটো ইয়াত চালি-জাৰি চোৱা হৈছে। মানুহৰ অভিজ্ঞতাই যেনেকৈ একোটা স্থানক আৱেগিক অৰ্থ প্ৰদান কৰে, ঠিক তেনেকৈ ভৌগোলিক স্থানেও মানুহৰ পৰিচয় নিৰ্মাণ কৰে- এই পাৰস্পৰিক নিৰ্ভৰশীলতাৰ স্বৰূপটোৱেই এই গৱেষণাৰ মূল সিদ্ধান্ত।

বীজশব্দ :

নদী, লুইতকেন্দ্ৰিক উপন্যাস, এই পদুমনি, অমূল্য বৰুৱা, ভূ-সমালোচনাতত্ত্ব, স্থান।

০.০ অৱতৰণিকা :

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

সকলো পাঠেই যিদৰে এছোৱা 'সময়'ৰ ঘটনাৰাজিক উপস্থাপন কৰে, তেনেদৰে সকলো পাঠ এক নিৰ্দিষ্ট ভৌগোলিক পটভূমিতহে গঢ় লৈ উঠে। কিন্তু সাহিত্যৰ পৰম্পৰাগত সমালোচনাবোৰলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, প্ৰায় সকলো সমালোচনাই মূলতঃ পাঠৰ ৰূপতাত্ত্বিক, সমাজতাত্ত্বিক বা ঐতিহাসিক বিচাৰতে সীমিত হৈ ৰয়। ফলত পাঠৰ স্থানিক দিশবোৰ উপেক্ষিত হৈ ৰয়। সেয়ে ভৌগোলিকভাৱে সচেতন সমালোচকসকলে পাঠত সক্ৰিয় ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা ভৌগোলিক দিশবোৰ সুৰ্বেভাৱে অধ্যয়ন কৰাৰ পোষকতা কৰে। এনে পৰিপ্ৰেক্ষিততে অতি-সাম্প্ৰতিক সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সমালোচনাত এক স্থান-সচেতন দৃষ্টিকোণ— ভূ-সমালোচনাতত্ত্ব (Geocriticism)—এ বিকাশ লাভ কৰিছে। এই সমালোচনাই সাহিত্যত ভৌগোলিক স্থান-অৱস্থানৰ ভূমিকাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰ লগতে কাহিনী আৰু চৰিত্ৰৰ সৈতে স্থানৰ সম্পৰ্ক আৰু প্ৰভাৱৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰে। বিংশ শতিকাৰ শেষৰফালে ফ্ৰান্সত



ড० লুটফা হানুম ছেলিমা বেগম

অৱসৰপ্ৰাপ্ত সহযোগী অধ্যাপক,
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১

☎ ৯১৮১৩৮৫০৯৮

✉ lutfahsbegum@gmail.com

উত্থান ঘটা এই বিচাৰ ধাৰাই একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকত ফৰাচী সাহিত্য সমালোচক বাৰ্ত্ৰাণ্ড ৱেষ্টফেল (Bertrand Westphal)-ৰ হাতত আনুষ্ঠানিকভাৱে জন্ম লাভ কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত আমেৰিকাৰ সাহিত্য সমালোচক ৰবাৰ্ট টি. টেলী জুনিয়ৰ (Robert T. Tally Jr.)-ৰ প্ৰচেষ্টাত এই ধাৰাটোৱে বিস্তৃতি লাভ কৰে।

এই তত্ত্ব অনুসৰি, সাহিত্য পাঠত স্থান কেৱল এক নিষ্ক্ৰিয় পটভূমি নহয়; ই বৃত্তান্তৰ গঠনত সক্ৰিয় ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। স্থান আৰু মানুহৰ মাজত এক আন্তঃসম্পৰ্ক বিদ্যমান। মানুহে যিদৰে নিজৰ কৰ্ম আৰু অভিজ্ঞতাৰে স্থানক অৰ্থৰহ কৰি তোলে, ঠিক তেনেদৰে স্থানেও মানুহৰ মনস্তত্ত্ব, আবেগ আৰু আৰ্থ-সামাজিক জীৱনক প্ৰভাৱিত কৰে। কোনো এখন উপন্যাসৰ কাহিনীত স্থানে চৰিত্ৰসমূহৰ জীৱনবোধ, চাল-চলন, জীৱন-ধাৰণা প্ৰণালী, অস্তিত্ব আৰু পৰিচয় চেতনাক নিয়ন্ত্ৰণ কৰা দেখা যায়। সেয়ে স্থানিক দিশসমূহৰ আলোচনা অবিহনে পাঠৰ সম্পূৰ্ণ অৰ্থ উন্মোচন কৰা সম্ভৱ নহয়।

এনে দিশেৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ নদীকেন্দ্ৰিক উপন্যাসসমূহৰ স্থানিক-সমালোচনাৰ প্ৰাসংগিকতা অপৰিসীম। কিয়নো, নদী আৰু নদীকাষৰীয়া ভূ-প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ অবিচ্ছেদ্য সম্পৰ্ক তথা নিৰ্ভৰশীলতা এই উপন্যাসসমূহৰ মূল উদ্দেশ্য। অমূল্য বৰুৱাৰ এই *পদুমনি* উপন্যাসখনো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। প্ৰস্তুত গৱেষণাপত্ৰখনত লুইতপৰীয়া ভৌগোলিক স্থান-অৱস্থানে নৈপৰীয়া অধিবাসীসকলৰ আৰ্থ-সামাজিক, সাংস্কৃতিক, ভূ-ৰাজনৈতিক, মানসিক আৰু পৰিচয় চেতনাক কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰিছে সেই বিষয়ে উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

লুইতপৰীয়া সমাজ-জীৱনৰ কাহিনীৰে ৰচিত এই *পদুমনি* উপন্যাসত স্থান আৰু মানুহৰ সম্পৰ্ক, নিৰ্ভৰশীলতা আৰু চৰিত্ৰসমূহৰ মনস্তত্ত্বত ঠাইখন তথা নদীখনৰ ভূমিকাৰ বিষয়ে ভূ-সমালোচনাতত্ত্বৰ স্থানকেন্দ্ৰিক দৃষ্টিভঙ্গীৰে অধ্যয়ন কৰা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। কিন্তু, এইবোৰৰ স্থানিক-সমালোচনা বৰ্তমানলৈকে পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। সেয়ে বিষয়টোৰ গুৰুত্ব আৰু অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি গৱেষণা কাৰ্যত আগবঢ়োৱা কেইটামান উদ্দেশ্য আগত ৰখা হৈছে—

(ক) সাহিত্য পাঠত ভৌগোলিক স্থানৰ ভূমিকা,

ভৌগোলিক স্থান আৰু বৃত্তান্তৰ চৰিত্ৰসমূহৰ আন্তঃসম্পৰ্ক সন্দৰ্ভে অধ্যয়ন কৰা।

(খ) লুইতৰ ভৌগোলিক পৰিৱেশে এই *পদুমনি* উপন্যাসৰ চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু অৰ্থনৈতিক গঠনত কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰিছে, সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

(গ) নদীৰ খহনীয়া, বানপানী আৰু ইয়াৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা স্থানান্তৰণ (Displacement) আৰু পৰিচয়ৰ সংকটৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

(ঘ) পৰম্পৰাগত সমালোচনাৰ উৰ্দ্ধলৈ গৈ অমূল্য বৰুৱাৰ এই *পদুমনি* উপন্যাসৰ স্থানিক দিশসমূহ উন্মোচন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

ভূ-সমালোচনাতত্ত্বৰ আলোকত অমূল্য বৰুৱাৰ এই *পদুমনি* উপন্যাসখন বিভিন্ন দিশৰপৰা আলোচনা কৰাৰ থল আছে। কিন্তু, গৱেষণাপত্ৰৰ নিৰ্ধাৰিত পৰিসৰত এই সকলো দিশৰ আলোচনা সম্ভৱপৰ নহয়। সেয়ে ভূ-সমালোচনাতত্ত্বৰ প্ৰধান আলোচনাৰ বিষয় স্থান আৰু মানুহৰ আন্তঃসম্পৰ্কসমূহ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে কেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে, কাহিনী আৰু চৰিত্ৰত ভৌগোলিক স্থান-অৱস্থানে কেনেদৰে ক্ৰিয়া কৰিছে, সেই বিষয়েহে বিচাৰ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

গৱেষণাপত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক গৱেষণা পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

১.১ এই *পদুমনি* উপন্যাসৰ ভৌগোলিক পটভূমি :

অমূল্য বৰুৱাৰ ৰচিত এই *পদুমনি* উপন্যাসত উত্তৰ অসমৰ লুইতপৰীয়া অঞ্চল এটাৰ জৈৱ-বৈচিত্ৰ্য আৰু নদীকেন্দ্ৰিক সমাজ-সভ্যতাৰ উত্থান-পতনে প্ৰাণ প্ৰায় উঠিছে। এই *পদুমনি* উপন্যাসৰ পটভূমি মূলতঃ সোৱণশিৰি নদীৰ মোহনা অংশ। খেৰকটীয়া নদী আৰু সোৱণশিৰি নদী যি ঠাইত লগ লাগিছে, তাৰপৰা কিছু ভটিয়াই নদীখন লুইত নামে পৰিচিত হৈছে। ইয়াতে ডিব্ৰুং নদী লগ লাগিছেহি। সোৱণশিৰি নদী ব্ৰখপুত্ৰত মিলিত হোৱাৰ ঠিক পূৰ্বৰ এই অংশতে নৈপৰীয়া পদুমনি গাঁওখন অৱস্থিত।

গাঁওখনৰ নামকৰণত এক ভৌগোলিক ধাৰণা জড়িত হৈ আছে। পদুম ফুলিৰে আৱৰি থকা এটা প্ৰাচীন পুখুৰীৰ আধাৰতে গাঁওখন ‘পদুমনি’ নামেৰে পৰিচিত হৈ পৰে।

কাহিনীকালত হাবি-বনৰিৰে ঢাক খাই পৰিত্যক্ত হৈ থাকিলেও পুখুৰীটোৱে গাঁওখনৰ প্ৰাচীন ইতিহাস আৰু অনেক বহুসময় কাহিনী বহন কৰিছে।

উপন্যাসখনৰ বৰ্ণনা অনুসৰি এই লুইত পৰীয়া অঞ্চলটো প্ৰাকৃতিক সম্পদ আৰু জৈৱ-বৈচিত্ৰ্যৰ দিশেৰে অতি চহকী। লুইতৰ বুকুৰ চাপৰিবোৰত ঝাওবন, বিৰিণা, নদী-খাল-বিলত বিভিন্ন প্ৰজাতিৰ মাছ-কাছ আৰু অঞ্চলটোত বিভিন্ন প্ৰজাতিৰ বন্য জীৱ-জন্তুৰে বৈচিত্ৰ্যময়। ইয়াৰ ভূ-প্ৰকৃতি আৰু জৈৱ-বৈচিত্ৰ্যত সোৱণশিৰি, লুইত, ডিক্ৰং আৰু মূল ব্ৰখপুত্ৰৰ প্ৰভাৱ সৰ্বব্যাপী। লুইতৰ এটা অখ্যাত সাধাৰণ ঘাটৰ পাৰে পাৰে এই পদুমনি গাঁওখন। লুইতৰ জলধাৰাপৰা গঞাৰ ঘৰবোৰ ইমান নিকট যে, শোৱা পাটিৰপৰাই নদীৰ সোঁত আৰু গৰা খহনীয়াৰ শব্দ গাঁওবাসীয়ে স্পষ্টকৈ শুনিবলৈ পায়।

উপন্যাসখনৰ পটভূমি মূলতঃ পদুমনি অঞ্চল হ'লেও সামগ্ৰিকভাৱে ব্ৰখপুত্ৰ দুয়োপাৰৰ কাষৰীয়া অঞ্চলসমূহকো কাহিনীয়ে সামৰি লৈছে। নদীৰ পাৰৰ ৰাজহুৱা ঘাটটোৱে অঞ্চলটোৰ জলপথৰ প্ৰৱেশদ্বাৰ হিচাপে চিত্ৰিত হৈছে। এই ঘাটৰপৰাই লুইতৰ জলপথেৰে পদুমনিৰ লোকসকল দুৰণিবটীয়া ঠাই, নগৰ বা বজাৰলৈ যায়। ঘাটৰ আশে-পাশে দুই এখন জুপুৰি দোকান আৰু মানুহৰ বসতিস্থল। ৰাজহুৱা নামঘৰটো গাঁৱখনৰ মাজ ভাগত আৰু লুইতৰ ঠিক পাৰতে অৱস্থিত। পুৰণি বৰ নামঘৰটো নদীৰ খহনীয়াত পৰাৰ পাছত ৰাইজে পুনৰ নদীৰ পাৰতে নামঘৰটো অনুষ্টিপীয়া কৈ সাজি লয়। গাঁৱৰ আশে-পাশে নৈপৰীয়া মুকলি মাটি থাকিলেও দ, জলাহ পথাৰ। বছৰৰ সকলো সময়তে পানী থকা এই পথাৰবোৰত বাও ধানৰ খেতি কৰা হয়। মূল ভূখণ্ডৰ উপৰিও নদীৰ বুকুৰ চাপৰিসমূহেও অঞ্চলটোৰ এক সুকীয়া ভৌগোলিক বলয় সৃষ্টি কৰে। এই চাপৰিবোৰত গৰু-ম'হৰ খুঁটি অঞ্চলটোৰ এক সুলভ দৃশ্য। এইখিনিকলৈয়ে পদুমনি গাঁৱৰ ভৌগোলিক পৰিমণ্ডল গঢ়ি উঠিছে।

১.২ লুইত আৰু স্থানীয় ভূ-প্ৰকৃতিৰ সৈতে নৈপৰীয়া অধিবাসীসকলৰ সম্পৰ্ক আৰু নিৰ্ভৰশীলতা :

উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা নদী-মানুহৰ সম্পৰ্ক আৰু নিৰ্ভৰশীলতাৰ জৰিয়তে ব্ৰখপুত্ৰ উপত্যকাৰ নদীকেন্দ্ৰিক সমাজ-জীৱনৰ বাস্তৱ ছবিখন পৰিস্ফুট হৈছে। পদুমনিৰ লোকসকল লুইতৰ ওপৰত বিভিন্ন ধৰণে নিৰ্ভৰশীল। নদীখনৰ ভৌগোলিক প্ৰকৃতিয়ে উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰসমূহৰ

জীৱন-চৰ্যা, মন-মানসিকতা আৰু আৰ্থ-সামাজিক জীৱনক গভীৰভাৱে প্ৰভাৱিত কৰিছে। কাহিনীৰ আৰম্ভণিতে এই বিষয়ে উল্লেখ কৰা হৈছে এনেদৰে : “এইবোৰ মাজুলীৰ নৈয়ে খেদা মানুহ। আদিতো ব্ৰখপুত্ৰই খহাই উত্তৰলৈ খেদি পঠালে। নৈপৰীয়া মানুহ। সিহঁতে নৈ ভাল পায়। নৈ এৰি আঁতৰত বা ভিতৰ গাঁৱত নেথাকে। থাকিবই নোৱাৰে সিহঁত। সদায় পানী আৰু মুকলি ঠাইৰ স্পৰ্শ লাগে। পুৰুষ পুৰুষ ধৰি সিহঁতে নৈ পাৰতে বাস কৰি আহিছে। নৈ পাৰতে জন্ম, মৃত্যু, বিবাহ সংঘটিত হৈ আহিছে” (বৰুৱা ১২)।

পদুমনি গাঁৱৰ জন-জীৱন প্ৰধানভাৱে লুইতৰ পানীৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। পূৰ্বে গাঁৱৰ বৰ পুখুৰীটোৰ পানীয়ে গাঁওবাসীয়ে ব্যৱহাৰ কৰিছিল যদিও কালক্ৰমত কাঁইটীয়া হাবি-বনেৰে আৱৰি সেই পানী ব্যৱহাৰৰ অনুযোগী হৈ পৰে। তদুপৰি, পুখুৰীটোকলৈ গঞাৰ মাজত বুঢ়া ডাঙৰীয়া, ভূত-প্ৰেত, ধনুতলৈ আদিৰ বিশ্বাস গঢ় লৈ উঠাৰ ফলস্বৰূপে গাঁওখনৰ লোকসকলে লুইতৰ পানীকে দৈনন্দিন প্ৰয়োজনীয় পানীৰ উৎস হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লয়।

পদুমনিৰ জীৱন-জীৱিকা মূলতঃ লুইতকেন্দ্ৰিক। লুইতৰ খহনীয়াৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা ভূমিহীনতা আৰু স্থায়ী খেতি-মাটিৰ অভাৱৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত গাঁওখনৰ লোকসকলে জীৱিকাৰ বাবে মৎস্য ব্যৱসায়ৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰিবলগীয়া হয়। ফুলবৰ, পুনাবাম, মনবৰ আদি পদুমনিৰ সকলো পুৰুষে লুইত আৰু ইয়াৰ কাষৰীয়া বিলসমূহত মাছ মাৰি, সেই মাছ বিক্ৰীৰ জৰিয়তে পৰিয়াল পোহপাল দিয়ে। কাহিনীৰ বৰ্ণনা অনুসৰি : “পদুমনিৰ সকলো ডেকাই মাছলৈ যায়। সিহঁতৰ এটাই জীৱিকা। ...সিহঁতৰ সমল- নাও জাল ব'ঠা-খৰাটো” (বৰুৱা ৩৫)। মৎস্য ব্যৱসায়ৰ সমান্তৰালভাৱে, বাৰিষা কালত লুইতেৰে উটি অহা কাঠ-বাঁহ সংগ্ৰহ কৰি প্ৰয়োজনীয় খৰিৰ অভাৱ পূৰণ কৰাৰ লগতে, কিছু অংশ বজাৰত বিক্ৰী কৰি আৰ্থিক সকাহ লাভৰো চেষ্টা কৰে। ঠাইখনৰ পৰিচয় প্ৰসংগত কাহিনীৰ আৰম্ভণিতে উল্লেখ কৰা হৈছে এনেদৰে : “পদুমনিৰ ঘাট, কেতবোৰ মানুহৰ পানী খোৱা, খৰি ধৰা, মাছ ধৰা— আচল অৰ্থত জীৱন বেহোৱা ঘাট” (বৰুৱা ৯)। বিশেষকৈ জাহাজ ঘাট স্থাপনৰ পাছত খৰিৰ চাহিদা বৃদ্ধি পোৱাত, ই এক লাভজনক বৃত্তি হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। মাছ আৰু খৰিৰ অভাৱত ফুলবৰে নদীৰ পাৰৰ চাপৰিৰপৰা ঝাও গছ কাটি আনি বিক্ৰী কৰা কাৰ্যই ইয়াৰ প্ৰমাণ দাঙি ধৰে।

অৰ্থনৈতিক অৱলম্বনৰ সমান্তৰালভাৱে লুইতেই অঞ্চলবাসীৰ যাতায়াত আৰু পৰিবহণৰ প্ৰধান পথ আৰু নাৱেই এই ক্ষেত্ৰত অপৰিহাৰ্য মাধ্যম হিচাপে পৰিগণিত হোৱা দেখা যায়। গাঁৱৰ মাজেদি পদুমনি ঘাটলৈ যোৱা পথটো আৰু ঘাটৰপৰা ধলপুৰ বা নাৰায়ণপুৰলৈ গাড়ী চলাচল কৰা প্ৰধান পথটোৱে পদুমনি অঞ্চলক আধুনিক সমাজ-সভ্যতা, শৈক্ষিক-প্ৰশাসনিক ব্যৱস্থা, চিকিৎসা আৰু বজাৰ অৰ্থনীতিৰ লগত সংযোগ কৰিছে। কিন্তু, বাৰিষা কালত লুইতৰ পানী বাঢ়িলে বা নেৰানেপেৰা বৰষুণৰ সময়ত সমগ্ৰ অঞ্চলটো বোকাময় আৰু জলমগ্ন হৈ পৰে। এনে সময়ত খোজ কাঢ়ি আৰু নাৱেৰে যাতায়াত কৰাৰ বাহিৰে গাঁওবাসীৰ গতান্তৰ নাথাকে। লুইতে অঞ্চলটোক আন দূৰণিবৰ্তীয়া ঠাইৰ সৈতে সংযোগ কৰি ৰখাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত স্থলপথৰ দুৰাৱস্থাৰ বিপৰীতে এই জলপথেই যাতায়াত আৰু বাণিজ্যিক পৰিবহণৰ আটাইতকৈ সুচল পথ হিচাপে ব্যৱহৃত হৈছে। বিশেষকৈ লুইতৰ আনটো পাৰে থকা মাজুলী, গোলাঘাট, যোৰহাট আদি ঠাইৰ সৈতে পদুমনিৰ একমাত্ৰ যোগাযোগ পথ হিচাপে লুইত আৰু ব্ৰখপুত্ৰকে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। এই নদী পথেৰেই মাজুলী, যোৰহাট, নামনি খণ্ডৰ পলাশবাৰী, গুৱালকুছি আদিৰ বেপাৰীসকল নাৱেৰে আহি পদুমনিৰ দৰে প্ৰান্তীয় ভিতৰুৱা অঞ্চলত বেপাৰ-বাণিজ্য কৰা সম্ভৱ হৈছে। ঠিক তেনেদৰে, লুইত পৰীয়া লোকসকলেও নদী পথেৰেই আন অঞ্চলসমূহৰ সৈতে অৰ্থনৈতিক সংযোগ ৰক্ষা কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। পৰৱৰ্তী কালত ইংৰাজ কোম্পানীৰ জাহাজ আৰু নাৱৰ চলাচলক কেন্দ্ৰ কৰি অঞ্চলটোৰ অৰ্থনৈতিক গুৰুত্বও বৃদ্ধি পোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

কেৱল নদীখনেই নহয়, অঞ্চলটোৰ স্থানীয় ভূ-প্ৰকৃতিৰ সৈতে নৈপৰীয়া সমাজৰ সম্পৰ্ক আৰু নিৰ্ভৰশীলতা অতি গভীৰ। ঘৰ সাজিবলৈ প্ৰয়োজনীয় বাঁহ, কাঠ, বেত আদি সামগ্ৰী তেওঁলোকে স্থানীয় হাবিৰপৰাই সংগ্ৰহ কৰে। ঘৰৰ চাল ঢাকিবলৈ নদীৰ চাপৰিবোৰত গজা ইকৰা, বিৰিণা, উলুখেৰ আদি ব্যৱহাৰ কৰে। খাদ্য-সামগ্ৰীৰ ক্ষেত্ৰটো নদীৰ মাছ, বাৰীৰ টেকীয়া, কচু, উটেঙা আদিয়ে খাদ্যৰ অভাৱ পূৰণ কৰাৰ কথা কাহিনীত উল্লেখ পোৱা যায়।

লুইতৰ সৃষ্টিশীল অৱদানসমূহৰ সমান্তৰালভাৱে এক ত্ৰুৰ, বিধ্বংসী ৰূপেও নৈপৰীয়া অধিবাসীসকলৰ জীৱন-চৰ্যাৰ প্ৰভাৱিত কৰে। বাৰিষা লুইতৰ বানে দুয়োপাৰ প্লাৱিত কৰাৰ লগতে খহনীয়াই নৈপৰীয়া অঞ্চলবোৰলৈ সংকট

কঢ়িয়াই আনে। ইয়াৰ প্ৰত্যক্ষ প্ৰভাৱপৰে স্থানীয় অধিবাসীসকলৰ জীৱনত। খহনীয়াৰপৰা পৰিত্ৰাণ বিচাৰি মাজুলীৰপৰা প্ৰব্ৰজিত লোকসকলে পদুমনি গাঁও পাতি বসবাস কৰেহি যদিও পদুমনিতো খহনীয়াৰ প্ৰকোপত পুনৰ ঘৰ-ভেঁটি হেৰুৱাব লগা হয়। ফলত লুইত পৰীয়া লোকসকলে বাৰে বাৰে নতুন বসতি ভূমিৰ সন্ধান কৰিব লগা হয়। অঞ্চলটোৰ স্থায়ী আন্তঃগাঁথনিৰ গঢ়ি উঠাৰ ক্ষেত্ৰত লুইতৰ বান আৰু গঢ়া খহনীয়াই বাধাৰ সৃষ্টি কৰিছে। গাঁওবাসীৰ ঘৰ-বাৰী, ৰাজহুৱা নামঘৰ, গাঁৱৰ একমাত্ৰ পাঠশালা স্কুলখন নদীৰ খহনীয়াই গ্ৰাস কৰি নিয়াৰ বৰ্ণনাই গাঁওখনৰ অস্তিত্ব সংকটক নিৰ্মমভাৱে তুলি ধৰিছে। এনে নিৰাপত্তাহীন অস্থায়ী বাসস্থান ব্যৱস্থাই তেওঁলোকৰ জীৱন-দৰ্শনকো সুকীয়াভাৱে গঢ় দিছে। এক কথাত, লুইতৰ বিশাল শক্তিৰ ওচৰত মানুহৰ অসহায়তা, সংগ্ৰাম আৰু সহায়তানেই উপন্যাসখনৰ মূল উদ্দেশ্য। নদীখনৰ এই মাতৃসুলভ উদাৰতা আৰু কালান্তক ত্ৰুৰতাক উপন্যাসখনে অতি সাৰ্থকৰূপত উপস্থাপন কৰিছে।

দুৰ্গম প্ৰান্তীয় স্থানত অৱস্থিত হোৱাৰ বাবেই চৰকাৰী সা-সুবিধাৰপৰাও পদুমনিৰ লোকসকল বঞ্চিত হৈ ৰয়। সুচল যোগাযোগ, দুৰ্যোগ ব্যৱস্থাপনা, শিক্ষা, স্বাস্থ্যসেৱা আদিৰ অভাৱৰ মূলতে ঠাইখনৰ এই প্ৰান্তীয় ভৌগোলিক অৱস্থান আৰু বিচ্ছিন্নতা। বানপানী আৰু গৰা খহনীয়াৰ দৰে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগৰ সময়ত প্ৰশাসনৰ অনুপস্থিতিয়ে এই লোকসকলৰ জীৱন ধাৰণক অধিক দুৰ্বিসহ কৰি তোলে। তথাপি, ঠাইখন আৰু লুইতৰ সৈতে থকা প্ৰৱল আৱিক সম্পৰ্কই পদুমনিৰ অধিবাসীসকলক লুইতৰ পাৰতে সংগ্ৰাম আৰু সহায়তানেৰে বসতি কৰিবলৈ বাধ্য কৰে।

লুইত পাৰৰ সাংস্কৃতিক জীৱনতো নদীখনৰ বিশেষ স্থান আছে। পদুমনিৰ সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে লুইত পাৰৰ নদীকেন্দ্ৰিক সমাজ-জীৱন আৰু জাহাজ ঘাটক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ়ি উঠা সংমিশ্ৰিত সমাজ ব্যৱস্থাৰ আধাৰত। উপন্যাসখনৰ ফুলবৰ, পুনাবাম আৰু বিছলীৰ দৰে চৰিত্ৰসমূহৰ কণ্ঠৰ বিছনামবোৰে তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত অনুভূতি প্ৰকাশ কৰাৰ লগতে আৰু লোক-সাংস্কৃতিক জীৱনৰ সৈতে নৈপৰীয়া পাৰিৱেশিক সত্তাৰ নিবিড় সম্পৰ্ককে সূচাইছে।

১.৩ পৰিচয় চেতনাৰ আধাৰ হিচাপে স্থান :

উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰসমূহৰ পৰিচয় তেওঁলোকৰ বংশ বা গোত্ৰতকৈ প্ৰধানভাৱে তেওঁলোকৰ বাসভূমি আৰু জীৱিকাৰদ্বাৰাহে নিৰূপিত হৈছে। পদুমনিৰ অধিবাসীসকলৰ

পৰিচয় নদীৰ সৈতে জড়িত। অঞ্চলটোৰ লোকসকলৰ প্ৰথম পৰিচয় হৈছে, তেওঁলোক ‘নদীয়াল’ বা ‘লুইতপৰীয়া’। লোকসকলে নিজকে নদীয়াল বা মাছমৰীয়া বুলি পৰিচয় দিয়ে। সেয়ে, তেওঁলোকৰ জীৱনৰ দৰ্শন, চিন্তা-ধাৰা আৰু আশা-আকাংক্ষাসমূহ এক নদীকেন্দ্ৰিক চেতনাৰদ্বাৰা পৰিচালিত হোৱা দেখা যায়।

উপন্যাসখনৰ কেতবোৰ চৰিত্ৰৰ পৰিচয় স্থানৰ নামেৰে গঢ় লৈ উঠিছে। পদুমনি গাঁৱৰ বাসিন্দা হ’লেও বহু চৰিত্ৰৰ নামৰ সৈতে তেওঁলোকৰ পূৰ্বৰ বাসস্থান বা মূল ঠাইখন জড়িত হৈ আছে। উদাহৰণস্বৰূপে, ‘সোৱণশিৰীয়া’ বুলি সম্বোধিত বৃদ্ধজনৰ পৰিচয়ে তেওঁৰ ব্যক্তিগত নামতকৈ সোৱণশিৰিৰ সৈতে থকা স্থানিক পৰিচয়কহে প্ৰধান কৰি তুলিছে। পুনৰাৰম্ভে ‘সোৱণশিৰীয়া বুঢ়া’ক তিৰস্কাৰ কৰি কোৱা কথাষাৰ মন কৰিবলগীয়া— “এই সোৱণশিৰীয়া, কটা চপনীয়া, তোক কিন্তু বুঢ়া বুলি, দেদাইবুলি মান কৰি আহিছে, মান পালিম দেদাইৰ” (বৰুৱা ১৫৭)। এই ‘চপনীয়া’ শব্দৰ অৰ্থয়ো নিজৰ ঘৰ, স্থান এৰি পত্নীৰ ঘৰত থাকিবলৈ লোৱাকে বুজায়। সেইদৰে, মাজুলীৰপৰা প্ৰব্ৰজিত ‘ভাটীচুবুৰী’ৰ লীলমন, বালুৰামৰ সৈতে ‘মাজুলীয়াল’ পৰিচয় সংপৃক্ত হৈ আছে (বৰুৱা ৭২)। বেণু দোকানীৰ ক্ষেত্ৰতো তেওঁ যে পদুমনিৰ খিলঞ্জীয়া নহয়, ভাটীৰ জামুগুৰিফালৰ মানুহ সেই কথা তেওঁৰ পৰিচয়ৰ এটা অংশ হৈ পৰিছে। এই স্থানবাচক বিশেষণসমূহে প্ৰমাণ কৰে যে, সমাজখনত মানুহ এজনৰ পৰিচয় তেওঁ ক’বপৰা আহিছে বা ক’ত বসবাস কৰে তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হয়। আকৌ নদীৰ সোঁতৰ দিশৰ ভিত্তিতো উজনিৰ, ভাটীৰ আদি স্থানসূচক শব্দৰে পৰিচয় দিয়া দেখা যায়।

লুইতৰ বান আৰু খহনীয়া ফলত স্থানান্তৰিত হ’ব লগা হোৱাত তেওঁলোকৰ এই অস্তিত্ব আৰু পৰিচয়ৰ সংকটে দেখা দিছে। সেইদৰে জাহাজ কোম্পানীয়ে ভূমি অধিগ্ৰহণ কৰাৰ ফলত গাঁৱৰ বহু লোকে অনিচ্ছা সত্ত্বেও নিজৰ গাঁওখন এৰি অন্য ঠাইলৈ প্ৰব্ৰজন কৰিব লগা হোৱাত তেওঁলোকৰ পৰিচয় বিপন্ন হৈ পৰিছে। এই স্থানান্তৰণে তেওঁলোকৰ জীৱনক নিৰাপত্তা প্ৰদান কৰাৰ পৰিৱৰ্তে দুৰ্দৰ্শা কঢ়িয়াই অনাৰ ছবি উপন্যাসখনৰ জানেকী মাহী, কান্দুৰী, পুনৰাম, ফুলবৰ আদি চৰিত্ৰৰ মাজত স্পষ্ট।

১.৪ লুইতপৰীয়া স্থান-অৱস্থানৰ সৈতে পদুমনিৰ

অধিবাসীসকলৰ মানসিক সম্পৰ্ক :

জৈৱিকভাৱে নিৰ্ভৰশীল হোৱাৰ উপৰিও লুইতপৰীয়া অধিবাসীসকল নদীখনৰ সৈতে অবিচ্ছেদ্য মানসিক সম্পৰ্কৰে যুক্ত। এই মানসিক সম্পৰ্কবোৰক প্ৰকাশৰ ধৰণ অনুসৰি নিম্নোল্লিখিত ধৰণে আলোচনা কৰিব পাৰি—

(ক) স্থান-প্ৰীতি (Topophilia) :

Topophilia অৰ্থাৎ স্থান-প্ৰীতি হৈছে কোনো এখন ঠাইৰ প্ৰতি মানুহৰ আৱেগিক টান তথা প্ৰেমমূলক আত্মিক সম্পৰ্ক। ই মাথোঁ নান্দনিক প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যৰ প্ৰতি ভালপোৱাকে বুজায়, বৰং এক বিশেষ স্থানৰ সৈতে মানুহৰ অবিচ্ছেদ্য মানসিক বান্ধোনক সূচায়। মানুহে আৱেগিকভাৱে জড়িত আপোন স্থানত বসবাস কৰিহে সুখী অনুভৱ কৰে। সেয়ে, নিজৰ চৌপাশৰ জগতখনৰ সৈতে আত্মিক সম্পৰ্ক গঢ়ি তুলিবলৈ মানুহে নিৰন্তৰ চেষ্টা কৰি থাকে। আপোন ঠাইখন অনুন্নত বা প্ৰত্যাহানপূৰ্ণ হ’লেও সংগ্ৰাম আৰু সহাবস্থানেৰে সেই ঠাইতে বসবাস কৰিবলৈ মানুহে চেষ্টা কৰে। এনে কাৰণতে আৱেগ বিজড়িত ঠাইখনৰ সংকট দেখি আমাৰ মন ব্যাকুল হৈ উঠে।

এই পদুমনি উপন্যাসখন স্থান আৰু মানুহৰ এই অবিচ্ছেদ্য আৱেগিক সম্পৰ্কৰ যথার্থ ৰূপায়ণ বুলিব পাৰি। উপন্যাসখনত চৰিত্ৰসমূহৰ নিজৰ ঠাইখনৰ সৈতে আত্মিক সংযোগ তথা সম্পৰ্কৰ প্ৰকাশ অতি গভীৰ। পদুমনি গাঁওখন ভৌগোলিকভাৱে দুৰ্গম, বান-খহনীয়াৰদ্বাৰা জৰ্জৰিত আৰু আধুনিক সা-সুবিধাৰপৰা বঞ্চিত হোৱা সত্ত্বেও অধিবাসীসকলৰ বাবে ঠাইখন অতি আপোন আৰু সুৰক্ষিত আশ্ৰয়স্থল। নদীখনৰ প্ৰতি পদুমনিৰ নৈপৰীয়া মানুহৰ আৱেগিক টান ইমান গভীৰ যে তেওঁলোকে নদীখন এৰি নিৰাপদ স্থানলৈ বা অন্য গাঁৱলৈ উঠি যাব নিবিচাৰে। তেওঁলোকক সদায় লুইতৰ প্ৰবাহমান পানী আৰু নৈ-পাৰৰ মুকলি পৰিৱেশৰ সংস্পৰ্শ লাগে। এই মানসিকতাৰ বাবেই বানপানী আৰু খহনীয়াৰ দৰে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগৰ সৈতে সংগ্ৰাম কৰিও নদীখনৰ পাৰতেই তেওঁলোকে সুখে-দুখে জীৱন অতিবাহিত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে।

উপন্যাসৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ ফুলবৰৰ মনস্তত্ত্বত ঠাইখনৰ প্ৰতি ভালপোৱাৰ প্ৰকাশ অতি স্পষ্ট। ফুলবৰে পদুমনিক আন্তৰিকতাৰে ভাল পায়। ‘পদুমনি’ নামটো উচ্চৰণ কৰিয়ে সি সুখ অনুভৱ কৰে। তাৰ বাবে ঠাইখনৰ “মানুহ-দুহু, হাবি-জংঘল, নৈ-ডোৱাৰ সকলো আপোন, চিনাকি”,

পদুমনিৰ গছ-বন, নৈ-বিল, জীৱকূলৰ ভাৱ-ভাষাও সি যেন বুজি পায়। ফুলবৰে নদীৰ পাৰত বহি নদীখনৰ বিশালতা অনুভৱ কৰে, নিৰ্জনতাই তাক এক মানসিক শান্তি যোগায়। এই প্ৰশান্তি সি আন ক'তোৱে বিচাৰি নাপায়। উপন্যাসখনত বহু ঠাইত এই কথাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে : “...লুইতখনলৈ সৰুৰেপৰা এটা অজান টান আছে। অৱশ্যে এই নৈৰ লগত তাৰ জন্মৰ সম্বন্ধ আছে। সি ইয়াৰ পাৰতে উপজি ডাঙৰ-দীঘল হৈছে... এইবোৰৰ মাজতে প্ৰাণ আছে। স্বচ্ছলতা আছে। কিবা এক নিভাজ আকৰ্ষণ আছে” (বৰুৱা ২৩)।

ফুলবৰৰ দৰে গাঁওবাসীয়েও বিশ্বাস কৰে যে, লুইতে তেওঁলোকৰ ঘৰ-ভেঁটি কাঢ়ি নিলেও জীৱন-ধাৰণ কৰাৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় পানী, শস্য-মৎস্য, খৰি-খেৰ, অৰ্থ উপাৰ্জনৰ উৎস, বাসস্থান আৰু দূৰণিবচীয়া যাতায়াত পথ প্ৰদান কৰে। উপন্যাসখনৰ পুনাৰাম, মলাচী, জানেকী মাহী, বাঢ়নি, কলিমী আদি চৰিত্ৰৰ মাজেৰেও নিজৰ ঠাইখনৰ প্ৰতি এনে আকৰ্ষণ তথা ভালপোৱাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

(খ) স্থানিক উদ্বেগ (Tophrenia) :

ইংৰাজী Tophrenia শব্দটোৰ আক্ষৰিক অৰ্থই স্থানকেন্দ্ৰিক চিন্তা, উদ্বেগতা বা অস্বস্তিক বুজায়। ধাৰণাটোৰ প্ৰৱৰ্তক ৰবাৰ্ট টি. টেলীৰ মতে, স্থান-প্ৰতি আৰু স্থানিক-ভীতিৰ পৰিৱৰ্তে আধুনিক মানুহৰ স্থানিক-চেতনা অধিক জটিল। আধুনিক মানুহে এখন ঠাইত থাকিও নিজকে বিচ্ছিন্ন যেন অনুভৱ কৰে। মানুহে নিজৰ অস্তিত্ব, পৰিচয় আৰু বিশাল বিশ্বত নিজৰ স্থান-অৱস্থান আদি বিষয়ত উদ্বেগ হৈ থাকে। নিজৰ স্থান-অৱস্থানৰ অনিশ্চয়তা অনুভৱ কৰিলে বা এইবোৰ হেৰুৱাৰ উপক্ৰম হ'লে মানসিক অশান্তিত ভোগে। পৰিচয় বহনকাৰী অৰ্থপূৰ্ণ স্থানৰপৰা বিচ্ছিন্ন হ'লে পৰিচয় আৰু অস্তিত্বৰ সংকট ঘটে আৰু তাৰ ফলত ব্যক্তিৰ মানসিক অস্থিৰতাৰ সৃষ্টি হয়।

এই স্থানিক-উদ্বেগ আৰু ‘অন্য-স্থান’ৰ ধাৰণা এই পদুমনি উপন্যাসৰ কাহিনীত অতি প্ৰৱল। নিজৰ ঠাইখনৰ প্ৰতি থকা গভীৰ ভালপোৱাৰ বাবেই আন ঠাইবোৰ উন্নত বা ভৌগোলিকভাৱে সুৰক্ষিত হ'লেও পদুমনিৰ লোকসকলে আন ঠাইত মানসিক শান্তি আৰু আত্মীয়তা অনুভৱ নকৰে। বাৰিষাৰ বান আৰু খহনীয়াৰ প্ৰকোপ সহ্য কৰিব নোৱাৰি কিছুমান মানুহ মেৰবিল, ডিফ্ৰং বা আন সুৰক্ষিত স্থানলৈ স্থানান্তৰিত হয় যদিও, তেওঁলোকৰ মন লুইতৰ পাৰতে বান্ধ খাই থাকে। নতুন ঠাইলৈ গৈ তেওঁলোকে ভৌগোলিক নিৰাপত্তা লাভ কৰিলেও লুইতৰ

পাৰৰ নিৰ্মল বতাহ, প্ৰবাহমান পানীৰ অমল উৎস, মুকলি পৰিৱেশ আৰু মানসিক সংযোগৰ অভাৱ অনুভৱ কৰে। উপন্যাসখনৰ প্ৰায়বোৰ চৰিত্ৰৰ মাজতে এনে স্থান-কাতৰ লক্ষণ বিদ্যমান। উপন্যাসখনত মালচী চৰিত্ৰৰ মুখেৰে এই কথাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে এনেদৰে : “এৰা, আমাৰ এইবোৰেই ভাল। তাত আমাৰ হ'লে মনেই নবহে পাই। এবাৰ আৰু বৈছা বানেছী পেহীহঁতৰ বিয়ালে গৈছিলোঁ। কেতিয়া আহোঁ, কেতিয়া আহোঁ লাগিল হেৰ’। আমাৰ খন জেগাৰ গতেৰে নহয়” (বৰুৱা ২২)।

গাঁওখনৰ প্ৰতিটো উপাদানৰ সৈতে গাঁওবাসীৰ আৱেগিক সম্পৰ্ক আছে। গাঁৱৰ ঐতিহ্য আৰু পৰিচয় বহনকাৰী বুঢ়া শিমলু গছজোপা লুইতৰ প্ৰৱল গৰা খহনীয়াই উটুৱাই নিয়াত গাঁওবাসীৰ মনত এক শূন্যতাৰ সৃষ্টি হৈছে। এই ঘটনাই তেওঁলোকৰ অস্তিত্বৰ সংকট আৰু গৃহহীন হোৱাৰ শংকাক অধিক ঘনীভূত কৰি তুলিছে। ভৰিৰ তলৰ মাটি, ঘৰ-বাৰী আৰু গাঁওখন যিকোনো মুহূৰ্ততে হেৰাই যোৱাৰ আশংকাত তেওঁলোকৰ মানসিক সুস্থিৰতা বিপন্ন হৈছে। ফলস্বৰূপে, ঠাইখনৰ প্ৰতি ভালপোৱাৰ সমান্তৰালভাৱে ইয়াৰ প্ৰত্যাহানপূৰ্ণ পৰিস্থিতিয়ে কেতবোৰ মানুহৰ মনত এক প্ৰকাৰৰ স্থানিক-বিৰাগ বা উদ্বেগ ভাৱৰ জন্ম দিছে। জগৰাই কৈছে : “মই আৰু এইখন টকলা দেশত খহনীয়াত পাৰি নেথাকো। ত’ৰ ডিক্ৰঙলৈ যাম”। সেইদৰে তিহকৰেও গাঁওবাসীক সজাগ কৰি দিছে : “... সাৱধান হ'হঁত এইবাৰ। কাক ক'ত নিয়ে ঠিকনা নাই!... মই ইয়াত নেথাকোৱেই। ৰঙা নৈত ঘাট লৈছো। তালৈ যাম” (বৰুৱা ৪৭)। আনহাতে, নদীখনৰ অবাধ খহনীয়াৰপৰা পৰিত্ৰাণ বিচাৰি ফুলবৰ মাজে-সময়ে লেম চাপৰি বা ডিক্ৰঙৰ পাৰলৈ উঠি যোৱাৰ কথা ভাবে যদিও, তাত কেইদিনমান থকাৰ পাছতে তাৰ মন অস্থিৰ হৈ উঠে। সেই নতুন ঠাই, নতুন মানুহ আৰু নতুন পৰিৱেশৰ লগত নিজকে একাত্ম কৰিব নোৱাৰি পুনৰ উভতি আহি লুইতৰ পাৰকে খামুচি জীৱন অতিবাহিত কৰে। অৰ্থাৎ অনিশ্চিত ভৱিষ্যতৰ চিন্তায়ে পদুমনিৰ মোহত বন্দী ফুলবৰক আঁতৰাই নিব পৰা নাই। আকৌ, বিধৱা কলিমীৰ সৈতে পলাই গৈ মাজুলীৰ বায়েকৰ ঘৰত আশ্ৰয় লৈ থকাৰ সময়তো গাঁওখনৰপৰা আঁতৰি থকাত ফুলবৰ মানসিক দ্বন্দ্বৰ সন্মুখীন হৈছে। ফুলবৰ পুনৰ পদুমনিলৈ উভতি আহিছে। অৱশ্যে, লুইতৰ পাৰতে থকাৰ মোহে ফুলবৰক নিৰাপত্তা দিব পৰা নাই। নদীখনৰ ধাৰাবাহিক খহনীয়া দেখি ফুলবৰৰ মনৰ অস্থিৰ হৈ উঠিছে। ডিক্ৰঙৰ পাৰৰপৰা

মেৰবিললৈ উঠি যোৱা মানুহখিনিয়ে তাত সন্মুখীন হোৱা দুৰ্দশাই ফুলবৰহঁতৰ এই ধাৰণাক অধিক দৃঢ় কৰি তুলিছে। মেৰবিললৈ উঠি যোৱাৰ পাছত জানেকী মাহীৰ দৰে লোকসকলৰ শাৰীৰিক-মানসিক পৰিৱৰ্তন আৰু কথা-বতৰাত ফুটি উঠা হতাশাই স্থানান্তৰণৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা গভীৰ মানসিক চাপকে সূচায়। জানেকী মাহীয়ে ফুলবৰৰ আগত এই হতাশা প্ৰকাশ কৰি কৈছে : “ভিতৰৰ জেগা কিবা ভালেই নেলাগে বোপাই” (বৰুৱা ৬৩)। নতুন আৰু অচিনাকি পৰিৱেশত তেওঁলোকে নিজকে খাপ খুৱাব নোৱাৰি এক ধৰণৰ বিচ্ছিন্নতাত ভুগিছে। তেওঁলোকৰ স্থানিক-পৰিচয় বিপন্ন হৈ পৰাত তীব্ৰ মানসিক যন্ত্ৰণাৰ সৃষ্টি হৈছে।

উপন্যাসৰ শেষৰফালে কোম্পানীয়ে জাহাজ ঘাট স্থাপন কৰাত ঠাইখনৰ উন্নতিয়ে স্থানীয় লোকসকলক সুখী কৰে যদিও আপোন ঠাইখনৰ চিনাকি ৰূপ হেৰাই যোৱাৰ শংকাত তেওঁলোক উদ্ভিগ্ন হৈ উঠাও দেখা যায়। উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা স্থান সম্পৰ্কীয় এনেবোৰ দিশে মানুহৰ স্থানিক উদ্বেগ বা ট’প’ফ্ৰেনিয়াকে প্ৰকাশ কৰে।

(গ) স্থানিক-ভীতি (Tophobia) :

স্থান-প্ৰীতিৰ বিপৰীতে, স্থানিক-ভীতিৰ ধাৰণাটোৱে কোনো বিশেষ স্থানৰ প্ৰতি ভয়, উদ্বেগ, ঘৃণা বা বিৰাগক

বুজায়। এই অনুভৱবোৰৰ প্ৰধানভাৱে কোনো অচিনাকি বা অসুৰক্ষিত বুলি ভবা স্থানৰপৰা উৎপন্ন হয়। কোনো নিৰ্দিষ্ট স্থানক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ়ি উঠা বিশ্বাস আৰু ভয় স্থানিক-ভীতিৰ অন্যতম লক্ষণ। উপন্যাসখনত পদুমনি গাঁৱৰ বৰ পুখুৰীটোৰ পাৰৰ ও-টেঙা জোপাত ‘বুঢ়া ডাঙৰীয়া’ থকা বুলি থকা বিশ্বাস, পুখুৰীটোত সোণৰ নাও থকা আৰু সেই নাও দেখিলে দেখোঁতাৰ মৃত্যু হয় বুলি কৰা বিশ্বাস, শনিবাৰ-মঙলবাৰে পুখুৰীটোৰ পাৰত ধন গুলৈৰ জুই আৰু যথিনী ওলোৱা বুলি প্ৰচলিত হৈ থকা কাহিনীসমূহে গএগ ৰাইজৰ মনত ঠাই বিশেষৰ প্ৰতি থকা ভীতিৰ প্ৰমাণ দাঙি ধৰে।

উপসংহাৰ :

সামগ্ৰিকভাৱে, এই পদুমনি উপন্যাসৰ কেন্দ্ৰীয় চেতনাই হৈছে, লুইতপৰীয়া পদুমনি গাঁৱৰ জনসমষ্টিৰ স্থান হেৰুৱাৰ যন্ত্ৰণা আৰু অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ সংগ্ৰাম। উপন্যাসখনত নিজৰ ঠাইখনৰ প্ৰতি থকা আৱেগিক-আসক্তি, স্থানান্তৰণৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা পৰিচয়ৰ সংকট আৰু ভৱিষ্যতৰ অনিশ্চয়তাই চৰিত্ৰসমূহক অস্থিৰ কৰি তুলিছে। এনে মানসিক সংযোগ, আৱেগ, আকৰ্ষণ, স্থান হেৰুৱাৰ বেদনা আৰু স্থানচ্যুতিৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা মানসিক সংঘাতৰ গভীৰ চিত্ৰায়ণে উপন্যাসখনক স্থান আৰু মানুহৰ অবিচ্ছেদ্য সম্পৰ্কৰ জীৱন্ত দস্তাবেজত পৰিণত কৰিছে।

সিদ্ধান্ত :

(ক) অমূল্য বৰুৱাৰ এই পদুমনি উপন্যাসত স্থানিক উপাদানসমূহে কাহিনীৰ গঠন আৰু চৰিত্ৰসমূহৰ জীৱন-প্ৰবাহক গভীৰভাৱে প্ৰভাৱিত কৰাৰ লগতে নিয়ন্ত্ৰণ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

(খ) উপন্যাসত লুইতপৰীয়া ভৌগোলিক স্থান আৰু নদীখনে অঞ্চলটোৰ নৈপৰীয়া সমাজৰ জীৱন-জীৱিকা আৰু সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠাত নিৰ্ণায়ক ভূমিকা পালন কৰিছে।

(গ) বান আৰু গৰাখহনীয়াৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা স্থানান্তৰণে নদীপৰীয়া অধিবাসীসকলৰ জীৱনবোধ, অস্তিত্ব আৰু পৰিচয় চেতনাক বিপন্ন কৰি তুলিছে।

প্ৰসংগ পুথি :

বৰুৱা, অমূল্য। এই পদুমনি। কমলিনী বৰুৱাৰদ্বাৰা প্ৰকাশিত, ২০০৯।

সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ আলোকত ৰাম আতাৰ সুভদ্রা হৰণ নাটত প্ৰকাশিত শৃঙ্গাৰ ৰস : এক বিশ্লেষণ



বিদ্যুৎ দত্ত

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ, বড়োলেণ্ড
বিশ্ববিদ্যালয়, কোকৰাঝাৰ
ৰঙালীখাত - ৭৮৩৩৭০
☎ ৬০০২১২২৮১০
✉ bidyutdutta1996@gmail.com



ড° বিভূতি লোচন শৰ্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বড়োলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়
কোকৰাঝাৰ ৰঙালীখাত - ৭৮৩৩৭০
☎ ৯৮৬৪৫২২৩০০
✉ bls.nalbari@gmail.com

০.০ প্ৰস্তাৱনা :

শংকৰদেৱৰ দ্বাৰা সৃষ্ট অংকীয়া নাট্য সাহিত্য অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ইতিহাসত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ সংযোজন। এই নাট্য সাহিত্যই কেৱল অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ অভাৱ পূৰণতে সীমাবদ্ধ নাথাকি অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ প্ৰগতিতো প্ৰভূত পৰিমাণে অৰিহণা যোগাই গ'ল। সংস্কৃত ভিন্ন অলংকাৰশাস্ত্ৰ আৰু নাট্যতত্ত্বৰ অধ্যয়নে তেওঁৰ নাট্যচৰ্চাক বিশেষ গতি দিছিল। তেওঁ দেখুৱাই যোৱা বাটেৰে পৰৱৰ্তী সময়ত বহু নাট্যকাৰে নাট ৰচনা কৰি অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ ভঁৰালটোক চহকী কৰিছে। শংকৰদেৱৰ পৰৱৰ্তী শংকৰোত্তৰ যুগ নামেৰে পৰিচিত যুগটোৰ এগৰাকী বৈষ্ণৱ সাধক আৰু নাট্যকাৰ হৈছে শ্ৰীৰাম আতা। তেওঁ গোপাল আতাই প্ৰতিষ্ঠা কৰি থৈ যোৱা কালঝাৰ সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ আছিল। বৰ্তমান উপলব্ধ তেওঁৰ একমাত্ৰ নাটখন হৈছে *সুভদ্রা হৰণ* নাট। ৰাম আতাই এই নাটখন ৰচনা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ নাট্যৰীতি আৰু দৰ্শনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছিল বুলি ভাবিব পৰা যথেষ্ট যুক্তি আছে। ইয়াৰোপৰি সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰো বিভিন্ন উপাদানৰো প্ৰয়োগ এই নাটখনত লক্ষ্য কৰিব পাৰি। অৱশ্যে এনে বৈশিষ্ট্য পোনপটীয়াকৈ সংস্কৃত নাটকৰ পৰা নাহিলেও শংকৰদেৱৰ নাটৰ পৰাহে তেওঁ অধিক প্ৰভাৱিত হৈছে বুলি ভাবিব পাৰি। সি যি কি নহওক, সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ অন্তৰ্গত আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়সমূহৰ ভিতৰত ৰসতত্ত্বৰ বিষয়টোও গুৰুত্বপূৰ্ণ। দৰাচলতে ৰসৰ অবিহনে কোনো সাহিত্যকৃতিয়েই পাঠক বা দৰ্শকক আনন্দৰ খোৰাক দিব নোৱাৰে। এই ৰস সম্পৰ্কত ভাৰতীয় নাট্যাচাৰ্যসকলে বিস্তৃতভাৱে আলোচনা আগবঢ়াইছে। আমাৰ প্ৰস্তাৱিত আলোচনাপত্ৰত ৰাম আতাৰ *সুভদ্রা হৰণ* নাটখনত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ সম্পৰ্কতহে আলোচনা আগবঢ়াবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে। আশা কৰা হৈছে এই আলোচনাই *সুভদ্রা হৰণ* নাটত শৃঙ্গাৰ ৰস সৃষ্টি কৰাৰ ক্ষেত্ৰত নাট্যকাৰৰ সফলতা-বিফলতাৰ লগতে কিমানদূৰ সংস্কৃত ৰসতত্ত্বৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছে সেই কথাও স্পষ্ট হ'ব।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

সংস্কৃত নাট্য সাহিত্যৰ সমৃদ্ধিশালী ইতিহাস থকাৰ দৰে অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰো এক সমৃদ্ধিশালী ইতিহাস আছে। শংকৰদেৱৰ হাতত জন্মলাভ কৰা অসমীয়া নাট্যধাৰাটো মূলতঃ সংস্কৃত নাট আৰু নাট্যতত্ত্বৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত। সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ বিভিন্ন উপাদানেৰে অসমীয়া নাট চহকী হৈছে। সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ অন্তৰ্গত এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ আৰু কেন্দ্ৰীয় বিষয় হৈছে ৰসতত্ত্বৰ ধাৰণাটো। অসমীয়া নাট্যকাৰসকলেও তেওঁলোকৰ নাটত ৰসৰ উপযুক্ত প্ৰয়োগ কৰিছে। আমি আলোচনাৰ বাবে বাচি লোৱা বিষয়টো হ'ল ৰাম আতাৰ *সুভদ্রা হৰণ* নাটত প্ৰকাশিত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ অধ্যয়ন। এই অধ্যয়নৰ অন্তৰ্ভুক্ত থকা মূল উদ্দেশ্য হৈছে নাট্যকাৰ ৰাম আতাই শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰয়োগ কৰোঁতে সংস্কৃত

নাট্যতত্ত্বৰ দ্বাৰা কেনেদৰে প্ৰভাৱিত হৈছে বা শৃঙ্গাৰ বসক তেওঁ উপযুক্তভাৱে চিত্ৰায়ণ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছেনে এনে বিষয় সম্পৰ্কত অধ্যয়ন কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে যদিও প্ৰয়োজনত তুলনামূলক পদ্ধতিৰো প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

০.৩ প্ৰাক-কল্পনা :

(ক) সুভদ্ৰা হৰণ নাটখনত শৃঙ্গাৰ বসৰ প্ৰয়োগ ঘটিছেনে?

(খ) সুভদ্ৰা হৰণ নাটখন ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত নাট্যকাৰ সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছেনে?

(গ) সুভদ্ৰা হৰণ নাটখনত শৃঙ্গাৰ বসৰ কি কি ভাগৰ প্ৰকাশ ঘটিছে?

(ঘ) সুভদ্ৰা হৰণ নাটখনত শৃঙ্গাৰাভাস ঘটিছে নেকি?

১.০ ৰাম আতাৰ জীৱন আৰু সাহিত্যকৰ্ম :

অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ ইতিহাসত শংকৰোত্তৰ যুগটোৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা আছে। অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ আলোচনাৰ প্ৰসংগত এই সময়ছোৱাৰ নাট্যকৰ্মক সাধাৰণতে উপেক্ষা কৰি চলা হয়। পণ্ডিতসকলে এই সময়ৰ নাট্য সাহিত্যৰ মানদণ্ড নিম্নমানৰ বুলি অজুহাত দিয়েই এই সাহিত্যকৰ্মক আলোচনাৰ মাজলৈ নানে। কিন্তু এই মতৰ বিপৰীতে শংকৰোত্তৰ যুগৰ নাট্যকৰ্মৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰিলে পণ্ডিতসকলৰ চিন্তাৰ উৰ্বৰতা আৰু পক্ষপাতিত্বও চকুত পৰে। সি যি কি নহওক, এই সময়ছোৱাৰ নাট্য সাহিত্যয়ো যে অসমীয়া নাটকৰ গতিপথক এক বিশেষ মাত্ৰা দিছে সেইকথা ক'ব পাৰি। শংকৰোত্তৰ যুগটোত নাটক ৰচনাৰে যিসকল নাট্যকাৰে অসমীয়া নাটকক সমৃদ্ধ কৰিলে সেইসকলৰ ভিতৰত ৰাম আতা অন্যতম। ৰাম আতা আছিল ভৱানীপুৰীয়া গোপাল আতাৰ অন্যতম প্ৰিয় শিষ্য। শ্ৰীৰাম আতাৰ পিতৃৰ নাম আছিল গোবিন্দ মিশ্ৰ। মহাপুৰুষ মাধৱদেৱে প্ৰতিষ্ঠা কৰি যোৱা বাৰগৰাকী ধৰ্মাচাৰ্যৰ অন্যতম আছিল শ্ৰীৰাম আতা। চৰিত পুথিসমূহত উল্লেখ থকা অনুসৰি শ্ৰীৰাম আতাৰ জন্ম হৈছিল ষোড়শ শতিকাৰ শেষৰফালে। শ্ৰীৰাম আতা গোপাল আতাই প্ৰতিষ্ঠা কৰি যোৱা কালঝাৰ সত্ৰৰ ধৰ্মাচাৰ্য আছিল (শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ, অক্ষমালা, ৬-৭)।

শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱকে আদি কৰি অন্যান্য বৈষ্ণৱ সাধকসকলৰ দৰে শ্ৰীৰাম আতাই একশৰণ নামধৰ্মৰ প্ৰচাৰ-

প্ৰসাৰৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই বহুখিনি গীত, ঘোষাৰ লগতে নাটক ৰচনা কৰিছিল। তেওঁৰ ঘোষা পটল এখনি উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ। এই গ্ৰন্থখনিত বিবিধ শাস্ত্ৰ ভক্তিবিসয়ক শ্লোক আৰু তাৰ অনুবাদ পোৱা যায়। বৰ্তমানলৈকে ৰাম আতাৰ মুঠ ৭৯ টা গীত উদ্ধাৰ হৈছে। তেওঁৰ প্ৰায়ভাগ গীততে শ্ৰীকৃষ্ণৰ লীলা বিষয়ক জগৰণ, চলন, খেলন, নৃত্য, পৰমার্থ, বিৰহ, বিৰক্তি আদিৰ প্ৰকাশ লক্ষ্য কৰা যায়। ৰাম আতাৰ দ্বাৰা ৰচিত নাট্যকৃতিৰ ভিতৰত এতিয়ালৈকে কেৱল সুভদ্ৰা হৰণ আৰু শ্ৰীকৃষ্ণ অন্নভোজন নাট দুখনিহে উদ্ধাৰ হৈছে।

২.০ সুভদ্ৰা হৰণ নাটৰ কাহিনীভাগ :

শ্ৰীৰাম আতাই ৰচনা কৰা সুভদ্ৰা হৰণ নাটৰ কাহিনীভাগ ভাগৱত পুৰাণ আৰু মহাভাৰতত পোৱা যায়। নাট্যকাৰ ৰাম আতাই অনন্ত কন্দলিৰ দ্বাৰা অনুদিত দশম স্কন্ধ ভাগৱতৰ শেষছোৱাৰ কাহিনীক আধাৰ হিচাপে লৈ সুভদ্ৰা হৰণ নাটখন ৰচনা কৰিছে বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। ভাগৱত পুৰাণৰ দশম স্কন্ধৰ বাৰটা অধ্যায়ত সুভদ্ৰা হৰণৰ কাহিনীভাগ বৰ্ণিত হোৱাৰ সমান্তৰালভাৱে মহাভাৰতৰ নটা অধ্যায় এই কাহিনীয়ে সামৰি লৈছে। ৰাম আতাই সুভদ্ৰা হৰণ নাটখন ৰচনা কৰোঁতে অনন্ত কন্দলিৰ দ্বাৰা বিশেষভাৱে কাহিনী সংগ্ৰহ কৰিছে যদিও ভাগৱত পুৰাণ আৰু মহাভাৰতৰ দ্বাৰাও তেওঁ প্ৰভাৱিত হৈছে বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। ইয়াৰ সমান্তৰালভাৱে তেওঁ শংকৰদেৱৰ ৰুক্মিণী হৰণ নাটখনৰ দ্বাৰা বিশেষভাৱে প্ৰভাৱিত হৈছিল বুলি ভবাৰ থল আছে। নাৰদৰ যোগেদি সুভদ্ৰা-অৰ্জুনৰ মনত পূৰ্বৰাগৰ সঞ্চাৰ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত নাট্যকাৰ নিশ্চয় ৰুক্মিণী হৰণ নাটখনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত বা অনুপ্ৰাণিত হৈছে। বলোৰামৰ চৰিত্ৰটো অঙ্কন কৰাৰ ক্ষেত্ৰতো উল্লিখিত নাটখনৰ ৰুক্মবীৰ চৰিত্ৰটোৰ আধাৰ হিচাপে লৈ নিৰ্মাণ কৰাৰ কথা ভাবিব পাৰি। গীত, সংলাপ আদিতো শংকৰদেৱৰ ৰুক্মিণী হৰণ নাটৰ কিছু প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। তলত সুভদ্ৰা হৰণ নাটখনৰ কাহিনীভাগৰ এক পৰিচয় দাঙি ধৰা হ'ল—

সুভদ্ৰা হৰণ নাটখনৰ মূল কাহিনীটো অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ মিলনক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লৈ উঠিছে। নাটখনৰ প্ৰথম পৰ্বত দেখা যায় যে অৰ্জুনে বনবাস লাভ কৰাৰ মূল কাৰণ হৈছে প্ৰতিশ্ৰুতি ভঙ্গ কৰা। দেৱৰ্ষি নাৰদৰ পৰামৰ্শ অনুসৰি দ্ৰৌপদীৰ পঞ্চপাণ্ডৱৰ সৈতে বিবাহৰ পাছত চৰ্ত ৰখা হৈছিল যে দ্ৰৌপদী পঞ্চপাণ্ডৱৰ প্ৰত্যেকৰে সৈতে এমাহকৈ থাকিব আৰু সেইখিনি সময়ত যদি কোনো এজন ভাতৃয়ে অন্য

এজন ভাতৃক দ্রৌপদীৰ সৈতে দেখে তেতিয়া তেওঁ এবছৰৰ বাবে বনবাস খাটিব লাগিব। ইয়াৰ মাজতে হঠাৎ এদিনাখন নিশা এগৰাকী ব্ৰাথিণী আহি ছলছুল লগালে যে তেওঁৰ গাই গৰুজনী চোৰে চুৰ কৰি নিছে আৰু অৰ্জুনে গৰুজনী ঘূৰাই আনিব লাগে। কথা শুনি অৰ্জুনে ধনু আৰু বান আনিবলৈ বিশেষ কোঠাটোলৈ যায়; দুৰ্ভাগ্যক্ৰমে সেই কোঠাত দ্রৌপদী আৰু যুধিষ্ঠিৰ ক্ৰীড়াৰত অৱস্থাত আছিল। অৰ্জুনে চোৰৰ হাতৰ পৰা ব্ৰাথিণীগৰাকীৰ গৰু উদ্ধাৰ কৰি পূৰ্ব প্ৰতিশ্ৰুতি অনুসৰি বনবাসলৈ যাবলৈ সাজু হ'ল। যুধিষ্ঠিৰ-দ্রৌপদীৰ কাকুতি-মিনতিয়েও অৰ্জুনক বনবাস যাত্ৰাৰ পৰা পিছ হুহকাব নোৱাৰিলে।

আনফালে, নাৰদে দ্বাৰকালৈ গৈ সুভদ্ৰাৰ সন্মুখত অৰ্জুনৰ গুণ-গান বৰ্ণনা কৰি অৰ্জুনেই তেওঁৰ বাবে আটাইতকৈ যোগ্য স্বামী বুলি পতিয়ান নিয়ালেগৈ। নাৰদৰ মুখে অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা শুনি সুভদ্ৰাই অৰ্জুনকেই পতিৰূপে বৰণ কৰিলে। ইফালে আকৌ সুভদ্ৰাৰ পিতৃ বসুদেৱেও সুভদ্ৰাৰ বিবাহৰ কথা আলোচনাৰ বাবে জ্ঞাতি-কুতুম্বক নিমন্ত্ৰণ কৰি আলোচনা কৰাত একমাত্ৰ বলোৰামৰ বাহিৰে আন সকলোৱেই অৰ্জুনকেই সুভদ্ৰাৰ বাবে আটাইতকৈ যোগ্য প্ৰাৰ্থী বুলি সন্মতি প্ৰদান কৰিলে। কেৱল বলোৰামে নিজ ভগ্নীক দুৰ্যোধনলৈ বিয়া দিয়াৰ অভিসন্ধি ৰচনা কৰিলে।

আনফালে, নাৰদে অৰ্জুনৰ কাষলৈ গৈও তেওঁৰ সন্মুখত বসুদেৱৰ কন্যা সুভদ্ৰাৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা দাঙি ধৰিলে। নাৰদৰ মুখে সুভদ্ৰাৰ ৰূপ-সৌন্দৰ্যৰ কথা শুনি অৰ্জুনো সুভদ্ৰাক পাবৰ বাবে ব্যাকুল হৈ পৰিল। তাৰ পাছত অৰ্জুনে সন্ন্যাসী বেশ লৈ আঁৰে আঁৰে সুভদ্ৰাক হৰণ কৰি নিয়াৰ কথা চিন্তা কৰাত লাগিল। দ্বাৰকাত এনেকৈ ঘূৰি ফুৰোঁতে তেওঁৰ শ্ৰীকৃষ্ণৰ সৈতেও মুখামুখি হয় আৰু শ্ৰীকৃষ্ণই অৰ্জুনক এনে সন্ন্যাসী বেশ লোৱাৰ কাৰণ সুধিলে। তেতিয়া অৰ্জুনে সমস্ত বিষয় শ্ৰীকৃষ্ণৰ সন্মুখত বিৱৰি ক'লে। সখা অৰ্জুনৰ কথা শুনি শ্ৰীকৃষ্ণই তেওঁক এইবুলি বুদ্ধি দিয়ে যে দ্বাৰকাত দেৱযাত্ৰা মহোৎসৱলৈ সুভদ্ৰাও যোৱাৰ কথা; সেই সময়তে অৰ্জুনে সুভদ্ৰাক হৰণ কৰি নিব পাৰিব। সেই অনুসৰি অৰ্জুনে নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ বাবে অপেক্ষা কৰি থাকিল। হৰিণাৰ ছাল পাৰি দেৱদৰ্শনৰ বাবে যোৱা পথৰ কাষতে অৰ্জুনে মহাদাৰ্শিকৰ ভাও দি ৰ'ল। ঠিক সেই সময়তে অৰ্জুনে সুভদ্ৰাক দেখি নিজৰ সন্ন্যাসবেশ এৰি বীৰ ধনঞ্জয় হৈ ৰথীয়াসকলক খেদা মাৰি সুভদ্ৰাক হৰণ কৰি নিয়ে।

সুভদ্ৰাক হৰণ কৰি নিয়াৰ খবৰ পাই বলোৰাম অৰ্জুনৰ সৈতে যুদ্ধ কৰিবলৈ উদ্যত হয় যদিও শ্ৰীকৃষ্ণৰ বচন আৰু বুজিয়েহে বলোৰামক ক্ষান্ত কৰে। ইয়াৰ পাছত অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ মিলনত হস্তিনাপুৰত আনন্দোৎসৱৰ ৰোল উঠিছে আৰু তেওঁলোকৰ বিবাহ কাৰ্যৰ প্ৰস্তুতি চলিছে। বিয়াত বসুদেৱো উপস্থিত হৈছেহি। বিয়াত মাংগলিক কাৰ্য সম্পন্ন কৰা ধৌম্য পুৰোহিতে সুভদ্ৰাৰ কমনীয় ৰূপ দেখি মুৰ্ছা গৈছে। অৱশ্যে শেষত পুনৰ চেতন অহাত তেওঁ হোম পুৰি বিবাহ কাৰ্য সম্পন্ন কৰিছে। এনেকৈয়ে নাটখনৰ শেষত অৰ্জুন আৰু সুভদ্ৰাৰ মিলন হোৱা দেখা যায়। ইমানতে নাট্যকাহিনীৰ অন্ত পৰিছে।

৩.০ প্ৰাচ্য নাট্যতাত্ত্বিকৰ দৃষ্টিত শৃঙ্গাৰ ৰস :

ভাৰতীয় অলংকাৰশাস্ত্ৰত ৰসতত্ত্ব এক অপৰিহাৰ্য আৰু গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়। এই ৰস অবিহনে কোনো সাহিত্য পাঠে কেতিয়াও দৰ্শক-পাঠকক আকৰ্ষণ কৰিব নোৱাৰে। ভাৰতীয় আলংকাৰিকসকলে ৰসক শিল্প বা সাহিত্যৰ মূল আত্মৰূপে স্বীকাৰ কৰিছে। ভৰতমুনিৰ মতে 'ন হি ৰসাদৃতে কশ্চিদৰ্থ প্ৰৱৰ্ততে' অৰ্থাৎ ৰস অবিহনে কোনো অৰ্থই প্ৰকাশ নহয় (নাট্যশাস্ত্ৰ, ৬। ৩২)। ৰস শব্দৰ আক্ষৰিক অৰ্থ হ'ল আনন্দ বা আনন্দ। খাদ্যবস্ত্ৰৰ সোৱাদ ল'লে যিদৰে তৃপ্তি পোৱা যায়, তেনেদৰে কাব্য পাঠ কৰি বা নাটক দৰ্শন কৰি যি অলৌকিক আনন্দ পোৱা যায় তাকেই ভাৰতীয় আলংকাৰিকসকলে 'ৰস' বুলি অভিহিত কৰিছে। ৰসতত্ত্বৰ আদি প্ৰৱৰ্তক ভৰতমুনিয়ে ৰসৰ সূত্ৰ আগবঢ়াবলৈ গৈ কৈছে— "বিভাৱানুভাৱব্যভিচাৰিসংযোগাদ ৰসনিপ্পত্তিঃ" অৰ্থাৎ বিভাৱ, অনুভাৱ আৰু ব্যভিচাৰী ভাৱৰ সংযোগত স্থায়ী ভাৱটিয়ে যেতিয়া পৰিপক্ক অৱস্থা লাভ কৰে তেতিয়াই ৰসৰ উৎপত্তি হয়। আচাৰ্য ভৰতমুনিৰ পৰৱৰ্তী সময়ত লোপ্লেট, শংকুক, ভট্টনায়ক, অভিনৱগুপ্ত, মন্মট, বিশ্বনাথ কবিৰাজ আদি আলংকাৰিকসকলে অলংকাৰশাস্ত্ৰৰ অন্যান্য দিশৰ লগতে ৰস সম্পৰ্কীয় দিশৰ আলোচনা কৰি এই সম্পৰ্কীয় চৰ্চাক এক শক্তিশালী গতি প্ৰদান কৰে। মন্মট আৰু বিশ্বনাথে ৰসক কাব্যৰ আত্মাৰূপে স্বীকাৰ কৰিছে। আচাৰ্য ভৰতমুনিয়ে তেওঁৰ নাট্যশাস্ত্ৰ গ্ৰন্থত ৰস ৮ প্ৰকাৰৰ বুলি উল্লেখ কৰিছে। সেই অষ্টম ৰস হৈছে— শৃঙ্গাৰ, হাস্য, কৰুণ, ৰৌদ্ৰ, বীৰ, ভয়ানক, বীভৎস আৰু অদ্ভুত। ভৰতমুনিৰ পৰৱৰ্তী কালত অভিনৱগুপ্ত, মন্মট, বিশ্বনাথ কবিৰাজ, উদ্ভট আদি আলংকাৰিকসকলে অষ্টম ৰসৰ সৈতে 'শাস্ত' নামৰ আন এবিধ ৰসৰ সংযোজন ঘটাই নৱৰসৰ

আলোচনা আগবঢ়ায়। বসৰ সংজ্ঞা আৰু বিভাজন সম্পৰ্কত আলংকাৰিকসকলৰ মাজত বিভিন্নধৰণৰ বিতৰ্ক থাকিলেও সাহিত্যত যে বসৰ প্ৰয়োজনীয়তা অপৰিহাৰ্য সেই সম্পৰ্কত প্ৰায় সকলো পণ্ডিত একমত।

নৱৰস সম্পৰ্কত বিস্তৃত আলোচনা আগবঢ়োৱাৰ বিপৰীতে আমি আলোচনাপত্ৰখনৰ উদ্দেশ্যৰ প্ৰতি দৃষ্টি ৰাখি কেৱল শৃঙ্গাৰ বস সম্পৰ্কতহে ইয়াত আলোচনা আগবঢ়াবলৈ যত্ন কৰিম। ইতিমধ্যে ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা স্পষ্ট হৈছে যে শৃঙ্গাৰ বস হৈছে নৱৰসৰ অন্যতম ভাগ। ভাৰতীয় অলংকাৰ শাস্ত্ৰৰ বিভিন্ন গ্ৰন্থত শৃঙ্গাৰ বসক অধিক শ্ৰেষ্ঠ আৰু মনোহৰ বুলি গণ্য কৰা হৈছে। আচাৰ্য ভৰতমুনিৰ মতে, শৃঙ্গাৰ মানৱ হৃদয়ৰ স্বাভাৱিক প্ৰেমমূলক অনুভূতিৰ নান্দনিক প্ৰকাশ। তেওঁৰ মতে, “ৰতি স্থায়ীভাৱঃ শৃঙ্গাৰঃ” অৰ্থাৎ ৰতি হৈছে শৃঙ্গাৰ বসৰ স্থায়ীভাৱ (নাট্যশাস্ত্ৰ, ৬/৪৬)। শৃঙ্গাৰ বসৰ সৌন্দৰ্য আৰু পবিত্ৰতা সম্পৰ্কত ক’বলৈ গৈ তেওঁ কৈছে, “যৎকিঞ্চিজ্ঞানোকে শুচি মেধ্যং উজ্জ্বলং দৰ্শনীয়ম্। তৎ শৃঙ্গাৰেণোপমীয়তে।” অৰ্থাৎ জগতৰ যি বস্তু পবিত্ৰ, উজ্জ্বল, মনোৰম আৰু দৰ্শনীয় সেয়া শৃঙ্গাৰ বসৰ সৈতে তুলনীয়। (নাট্যশাস্ত্ৰ, ৬/৪৬) এনে মন্তব্যৰ যোগেদি ভৰতমুনিয়ে শৃঙ্গাৰ বসক সৌন্দৰ্য আৰু আনন্দৰ প্ৰতীক হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে।

ভাৰতীয় ভিন্ন নাট্যতাত্ত্বিকসকলৰ দৰে বিশ্বনাথ কবিৰাজেও অন্যান্য বসৰ লগতে শৃঙ্গাৰ বস সম্পৰ্কত আলোচনা আগবঢ়াইছে। তেওঁৰ মতে, “শৃঙ্গং হি মম্মথোদ্ভেদস্তদাগমনহেতুকঃ। উত্তমপ্ৰকৃতিপ্ৰায়ো বসঃ শৃঙ্গাৰ ইয্যতে।।” (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/১৮৮) অৰ্থাৎ শৃঙ্গাৰ শব্দৰ অৰ্থ হ’ল কামনাৰ উদ্ৰেক। শৃঙ্গ উদ্ভৱৰ কাৰণস্বৰূপ উত্তম অৱলম্বন-বিশিষ্ট বসেই শৃঙ্গাৰ বস। সাধাৰণভাৱে ক’বলৈ গ’লে প্ৰেমৰ পৰা উৎপন্ন হোৱা আনন্দময় অনুভূতিয়েই নাট্য বা কাব্যত শৃঙ্গাৰ বসৰূপে বিবেচিত। বিশ্বনাথে ইয়াৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন দিশৰ কথা ক’বলৈ গৈ কৈছে যে শৃঙ্গাৰ বসত পৰস্ত্ৰী আৰু অনুৰাগিনী গণিকাৰ বাহিৰে সকলো নায়িকা আৰু দক্ষিণাদি নায়ক আলম্বন বিভাৱ হয়। চন্দ্ৰ, চন্দন, ভ্ৰমৰগুঞ্জৰ আদি উদ্দীপন বিভাৱৰূপে পৰিগণিত হয়। অবিচ্ছেদ্য, কটাক্ষ আদি শৃঙ্গাৰ বসত অনুভাৱ। উগ্ৰতা, মৃত্যু, আলস্য আৰু জুগুপ্সাৰ বাহিৰে সকলো ব্যভিচাৰী ভাৱেই ইয়াত ব্যভিচাৰী ভাৱ। এই বসৰ স্থায়ী ভাৱ ৰতি। (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/১৮৮) ইয়াৰ পিছতে বিশ্বনাথে শৃঙ্গাৰ বসৰ বিভাগ সম্পৰ্কতো ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে। তেওঁৰ মত অনুসৰি

শৃঙ্গাৰ বসক মূলতঃ দুটা ভাগত ভগাব পাৰি— বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰ আৰু সন্তোগ শৃঙ্গাৰ (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/১৮৯)। তলত এই ভাগ দুটাৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰা হ’ল—

(ক) বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰ : যি ক্ষেত্ৰত ৰতি অতিশয় প্ৰবল কিন্তু অভীষ্ট ব্যক্তিৰ লাভ হোৱা নাই, তেনে অৱস্থাকে বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰ বোলে (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/১৯০)। ইয়াত অভীষ্ট শব্দৰ দ্বাৰা নায়ক-নায়িকাক নিৰ্দেশ কৰা হৈছে। বিশ্বনাথ কবিৰাজে বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰকো আকৌ পূৰ্বৰাগ, মান, প্ৰবাস আৰু কৰুণ এই চাৰিটা ভাগত ভাগ কৰি ইয়াৰ আলোচনা আগবঢ়াইছে।

(খ) সন্তোগ শৃঙ্গাৰ : বিশ্বনাথ কবিৰাজে সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ সংজ্ঞা দিবলৈ গৈ কৈছে “দৰ্শনস্পৰ্শনাদীনি নিষেৰেতে পৰস্পৰম্। যত্ৰানুপৰন্তৌ দম্পতী সন্তোগোহয়মুদাহৃতঃ।।” অৰ্থাৎ যি অৱস্থাত পৰস্পৰৰ প্ৰতি আসক্ত নায়ক-নায়িকা একত্ৰিত হয় আৰু দৰ্শন-স্পৰ্শন আদিৰ জৰিয়তে মিলনৰ সুখ উপভোগ কৰে, তাকে সন্তোগ শৃঙ্গাৰ বোলে (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/২১২)। চুস্মন, আলিঙ্গন আদি বহুপ্ৰকাৰ বাবে সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ ভাগ গণনা কৰিব পৰা নাযায়, সেইবাবে পণ্ডিতসকলে সন্তোগ শৃঙ্গাৰ মাত্ৰ একপ্ৰকাৰৰ বুলি উল্লেখ কৰে (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/২১৩)। সন্তোগ শৃঙ্গাৰত বৰ্ণনা কৰিবলগীয়া বিষয় সম্পৰ্কত ক’বলৈ গৈও বিশ্বনাথে কৈছে, “সন্তোগ শৃঙ্গাৰত ছয় ঋতু, চন্দ্ৰ-সূৰ্য, চন্দ্ৰ-সূৰ্যৰ উদয়াস্ত, জলকেলি, বনবিহাৰ, প্ৰভাত, মধুপান, যামিনী আদি বৰ্ণনীয়; অনুলেপন, ভূষণ আৰু ইয়াৰ বাহিৰেও পৰিত্ৰ আৰু সকলো বিষয় বৰ্ণনা কৰিবলগীয়া (সাহিত্যদৰ্পণ, ৩/২১৪)।” ভৰতমুনিয়েও নাট্যশাস্ত্ৰৰ ষষ্ঠ অধ্যায়ৰ ৪৬ নং শ্লোকত একেধৰণৰ কথাকে কৈছে। দৰাচলতে আচাৰ্য বিশ্বনাথে ভৰতমুনিৰ কথাৰ গাতে ভেজা দি তেওঁৰ আলোচনা আগবঢ়াইছে। এইখিনিতে আন এটা মন কৰিবলগীয়া কথা হৈছে যে নাট্য বা কাব্যত প্ৰথমে বিপ্ৰলম্বৰহে প্ৰকাশ ঘটে, তাৰ পাছতহে সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ সৃষ্টি হয়। বিপ্ৰলম্ব নোহোৱাকৈ সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ পৰিপুষ্টি সাধন নহয় (নাট্যশাস্ত্ৰ, ৬ নং অধ্যায়, ১২১ নং শ্লোকৰ পাছৰ গদ্যাংশত পোৱা যায়)।

আচাৰ্য ভৰতমুনি আৰু বিশ্বনাথ কবিৰাজৰ উপৰিও অন্যান্য ভাৰতীয় নাট্যচাৰ্যসকলেও এই বিষয়ত তেওঁলোকৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে। আলোচনা অধিক ব্যাপক হোৱাৰ আশংকাত আমি আটাইবোৰ আলংকাৰিকৰ আলোচনাবোৰ উল্লেখ কৰাৰ পৰা বিৰত ৰ’লোঁ।

৩.০ সুভদ্রা হৰণ নাটত প্ৰকাশিত শৃঙ্গাৰ ৰস :

প্ৰাচীন কালৰ পৰাই সাহিত্যত শৃঙ্গাৰ ৰসে প্ৰধান আৰু প্ৰথম ৰস হিচাপে স্থান লাভ কৰি আহিছে। ইতিমধ্যেই উল্লেখ কৰা হৈছে যে পাৰস্পৰিক প্ৰেম, আসক্তি আদিৰ ছবি প্ৰকাশ কৰোঁতে দৰ্শক বা সহৃদয়ৰ ৰতি নামৰ স্থায়ী ভাৱটোৰ উদ্ৰেক ঘটি যি ৰসৰ সৃষ্টি হয় সিয়েই শৃঙ্গাৰ ৰস। এই সংজ্ঞাটোৰ আঁত ধৰি সুভদ্রা হৰণ নাটখনলৈ মন কৰিলে নাটখনত মূলতঃ তিনিটা অংশত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটা দেখা যায়। সেইকেইটা হ'ল— (ক) নাৰদে বসুদেৱৰ দুহিতা সুভদ্ৰাৰ আগত অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা দাঙি ধৰোঁতে, (খ) নাৰদে অৰ্জুনৰ সমুখত সুভদ্ৰাৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা দিওঁতে, (গ) অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ সুখী বৈবাহিক জীৱনৰ বৰ্ণনা দি লিখা নাটখনৰ শেষ গীতটোত। ইয়াৰ বাহিৰেও অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ সয়ম্বৰ সভাত সুভদ্ৰাৰ মনোমোহা সৌন্দৰ্যত কাম জৰ্জৰিত হৈ অচেতন হৈ পৰা ধৌম্য পুৰোহিতৰ বৰ্ণনাত নাটখনত শৃঙ্গাৰাভাসৰ প্ৰকাশ মন কৰিবলগীয়া।

নাটখনৰ প্ৰথম পৰ্বত দেখা যায় যে দেৱৰ্ষি নাৰদ মুনি দ্বাৰকালৈ গৈ দুহিতা সুভদ্ৰাৰ আগত পাণ্ডৱ বীৰ অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণৰ কথা বৰ্ণনা কৰি তেওঁৰ মনত পূৰ্বৰাগৰ সঞ্চাৰ ঘটাবলৈ চেষ্টা কৰিছে। সুভদ্রায়ো অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণৰ কথা শুনি অৰ্জুনৰ প্ৰতি তীব্ৰ আকৰ্ষণ অনুভৱ কৰিছে আৰু অৰ্জুনকেই স্বামীৰূপে পাবৰ বাবে ব্যকুল হৈ উঠিছে। নাৰদৰ মুখত প্ৰয়োগ কৰা ভটিমাটোত অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণ-সৌন্দৰ্যৰ যি ছবি প্ৰকাশ পাইছে, সি কেৱল শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটোৱাতেই সীমাবদ্ধ হৈ নাথাকি নাটখনৰ নান্দনিক সৌন্দৰ্য বৃদ্ধিৰ ক্ষেত্ৰতো বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিছে। অৰ্জুনৰ ৰূপ-সৌন্দৰ্যৰ কথা নাটখনৰ দ্বিতীয় ভটিমাটোত এনেদৰে ফুটি উঠিছে—

“শুন মাই সুভদ্রা স্বৰূপ।

কি কহবো বিজয়ক ৰূপ।।

নবীন বয়সত শ্যাম।

সুচান্দ বয়ন অনুপাম।।

দশন সুন্দৰ কুণ্ডকোৰ।

শিৰবৰ ছত্ৰক কেশ।।

সুসম কপোল মনোমোহে।

নাসা তিলফুল শোহে।। (ৰায়চৌধুৰী, ভূপেন্দ্ৰ, সুভদ্রা হৰণ নাট, ৫১) এই ভটিমাটোত নবীন বয়সৰ শ্যামবৰণীয়া অৰ্জুনৰ চন্দ্ৰৰ দৰে মুখৰ কান্তি, বন্দুলীৰ দৰে ৰঙা ওঁঠ, কুণ্ডলিৰ দৰে সুন্দৰ দাঁত, শিৰ ছাতিৰ দৰে বহল, চুলিবোৰ

অতি সুন্দৰ আৰু কেঁকোঁৰা, তিল ফুলৰ দৰে নাক ত্ৰিভঙ্গ ৰূপ কামদেৱৰ ধনুৰ দৰে যাক দেখিলে ৰমণী বিচলিত হৈ পৰে আদি বিভূষণেৰে অৰ্জুনৰ ৰূপ-সুখমাৰ আকৰ্ষণীয় উপস্থাপনৰ যোগেদি নাট্যকাৰে শৃঙ্গাৰ ৰস সৃষ্টিৰ চেষ্টা কৰিছে। অৰ্জুনৰ এই ৰূপ-সৌন্দৰ্যৰ বৰ্ণনা শুনি সুভদ্রাই অৰ্জুনক পতি ৰূপে পাবৰ বাবে ব্যকুল হৈ উঠিছে। এইক্ষেত্ৰত ৰতি অতি প্ৰবল হৈ উঠিছে যদিও অভীষ্ট ব্যক্তিৰ লাভ ঘটা নাই, সেইবাবে ইয়াত বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰৰ প্ৰকাশ ঘটিছে বুলি ক'ব পাৰি।

ইয়াৰ সমান্তৰালভাৱে নাট্যকাৰে তদনুৰূপভাৱে অৰ্জুনৰ আগত বৰ্ণনা কৰা সুভদ্ৰাৰ ৰূপ-সৌন্দৰ্য্যো অৰ্জুনৰ মনত পূৰ্বৰাগৰ সৃষ্টি কৰি নাটকীয় কাহিনীক অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি তোলাৰ লগতে সহৃদয়ৰ মনত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটাইছে। ইয়াতো অভীষ্ট ব্যক্তিৰ অনুপস্থিতিত বিপ্ৰলম্ব শৃঙ্গাৰৰ সৃষ্টি হৈছে, যিয়ে নাট্যকাহিনীৰ সৌন্দৰ্য বৃদ্ধি কৰিছে।

আনহাতে, অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ বিবাহ অনুষ্ঠানত সুভদ্ৰাৰ অতুলনীয় ৰূপ-সৌন্দৰ্য লক্ষ্য কৰি কাম জৰ্জৰিত হৈ ধৌম্য পুৰোহিতগৰাকী কঁপি কঁপি অচেতন হৈ পৰা ঘটনাটোৰ আপাত দৃষ্টিত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটা যেন লাগিলেও কিন্তু অনৌচিত্য স্থানত শৃঙ্গাৰ ৰস সৃষ্টি কৰাৰ বাবে ইয়াত শৃঙ্গাৰাভাসৰহে প্ৰকাশ ঘটিছে। নাটখনৰ শেষত সংযোজন কৰা গীতটোত বিবাহ কাৰ্য সম্পন্ন হোৱাৰ পাছত অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ মধুমিলনৰ ছবিও তুলি ধৰা হৈছে। ইয়াৰ যোগেদিও নাটখনত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটোৱাৰ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়। গীতটোত এনেদৰে আছে—

“পঙ্কজ বয়ন নয়ন ঘন হেৰত কৰত অধৰ মধুপান।

চোৰি কণ্ঠ আকুচ নখঘন হানত বীৰবৰ ৰসিক সুজান।।

নৰপিউ অঙ্গ মিলত চুম্বন কৰু বৰ মালা।

কৰযুগ কঙ্কণ ঝাংকত হৃদিমহ দুৰ্লভ ৰতনকু মালা।।”

(ৰায়চৌধুৰী, ভূপেন্দ্ৰ, সুভদ্রা হৰণ নাট, ৭১)

এই গীতটোত নায়ক-নায়িকাৰ বিবাহৰ পাছত পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ প্ৰতি অনুৰক্ত হৈ দৰ্শন-স্পৰ্শ, চুম্বন আদিৰ দ্বাৰা উপভোগ কৰাৰ দৃশ্য দাঙি ধৰা হৈছে। ইয়াৰ মাজত সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ প্ৰকাশ আছে।

৫.০ সিদ্ধান্ত আৰু উপসংহাৰ :

প্ৰস্তাৱিত আলোচনাপত্ৰত শংকৰোত্তৰ যুগৰ নাট্যকাৰ ৰাম আতাৰ সুভদ্রা হৰণ নাটত প্ৰকাশ পোৱা শৃঙ্গাৰ ৰস সম্পৰ্কত আলোচনা কৰি দেখা গ'ল যে সুভদ্রা হৰণ নাটখন

ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত নাট্যকাৰ বহুপৰিমাণে শংকৰদেৱৰ ৰুক্ষিণী হৰণ নাটখনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত। নাটখনৰ বলোৰামৰ চৰিত্ৰটো শংকৰদেৱৰ ৰুক্ষিণী হৰণ নাটৰ ৰুক্মবীৰৰ আদৰ্শত নিৰ্মাণ কৰা। ঠিক একেদৰে সুভদ্ৰা চৰিত্ৰটোকো ৰুক্ষিণী চৰিত্ৰটোৰ পৰা প্ৰেৰণা লৈ নিৰ্মাণ কৰা বুলি ভবাৰ অৱকাশ আছে। আনহাতে, নাটখনত অন্যান্য ৰসৰ লগতে শৃঙ্গাৰ ৰসৰ প্ৰকাশৰ ক্ষেত্ৰতো নাট্যকাৰে বিশেষ নিপুণতা দেখুৱাইছে বুলি ক'ব পাৰি। নাৰদে অৰ্জুনৰ আগত ৰুক্ষিণীৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে নাইবা ৰুক্ষিণীৰ আগত অৰ্জুনৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে নাটখনত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ সৃষ্টি হৈছে। এই

দৃশ্যাবলীৰ যোগেদি নাটখনত বিপ্লৱশৃঙ্গাৰৰ সৃষ্টি হোৱাৰ লগতে শেষত অৰ্জুন আৰু সুভদ্ৰাৰ মিলনৰ পাছৰ ক্ৰীড়াৰত অৱস্থাৰ যি চিত্ৰণ নাটখনত আছে তাৰ মাজত সন্তোগ শৃঙ্গাৰৰ প্ৰকাশ মন কৰিবলগীয়া। নাটখনত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ এনে প্ৰয়োগে সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ প্ৰভাৱৰ কথাটো মনত দৃঢ় কৰে। অৰ্জুন-সুভদ্ৰাৰ বিবাহত সুভদ্ৰাৰ ৰূপ-সৌন্দৰ্যত মুগ্ধ আৰু কাম-জৰ্জৰিত হৈ ধৌম্য পুৰোহিত মূৰ্ছা যোৱা ঘটনাটোৰ যোগেদি নাটখনত শৃঙ্গাৰাভাস ঘটিছে বুলিব পাৰি। এনেদৰেই ৰাম আতাৰ নাটত সংস্কৃত নাট্যতত্ত্বৰ অন্তৰ্গত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ দক্ষতাপূৰ্ণ প্ৰয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়। □

গ্ৰন্থপঞ্জী :

অসমীয়া গ্ৰন্থ :

গন্ধীয়া, জয়কান্ত। শংকৰদেৱৰ নাট্য-কলা আৰু অংকীয়া নাটৰ সৌন্দৰ্য। অসম বুক ট্ৰাষ্ট, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০২১।

দেৱ শৰ্মা, সোণাপতি। অসমীয়া সাহিত্যৰ সাজ। বাণী প্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড, পাণবজাৰ গুৱাহাটী, ০১। প্ৰকাশ, ২০১৭ চন।

বায়ন, ভৰজিৎ। অংকীয়া নাটঃ এটি আলোচনা। পাহি প্ৰকাশ, গান্ধীবস্তি, গুৱাহাটী-০৩। প্ৰথম সংস্কৰণ, অক্টোবৰ, ২০০৬ চন।

ৰায়চৌধুৰী, ভূপেন্দ্ৰ। গোপাল আতাৰ সুভদ্ৰা হৰণ নাট। গ্ৰন্থম, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৫ চন।

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। অঙ্কমালা। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়। ১৯৭৩।

শান্ত্ৰী, বিশ্বনাৰায়ণ (অনুবাদ আৰু সম্পাদনা)। বিশ্বনাথ কবিৰাজৰ সাহিত্য-দৰ্শন। শৰাইঘাট প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২১। তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১০ চন।

বাংলা গ্ৰন্থ :

মুখোপাধ্যায়, দুৰ্গাশঙ্কৰ। নাট্যতত্ত্ব বিচাৰ। মডাৰ্ন বুক এজেন্সী প্ৰাইভেট লিমিটেড, ১০, বঙ্কিম চোৰ্জী ষ্ট্ৰীট, কলকাতা। পুনৰুদ্গ্ৰহণ, ভাদ্ৰ, ১৪০৪ শক।

মুখোপাধ্যায়, চন্দ্ৰদানন্দ। ভাৰতীয় নাট্যবেদ ও বাংলা নাটক। সাহিত্য নিকেতন, ই ৮৭/৩, কলেজ ষ্ট্ৰীট মাৰ্কেট, কলিকতা-৭। ভাদ্ৰ, ১৩৬৭ শক।

হিন্দী গ্ৰন্থ :

পাণ্ডে, ৰাজেন্দ্ৰ কুমাৰ। ৰস-হৃদ-অলংকাৰ। বাণী প্ৰকাশন, দৰিয়াগঞ্জ, নতুন দিল্লী, ১১০০০২। প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১২।

ৰেণ্ণী, আচাৰ্য শেষৰাজশৰ্মা। (অনুবাদ আৰু সম্পাদনা)। বিশ্বনাথ কবিৰাজৰ সাহিত্যদৰ্শনম্। চৌখম্বা কৃষ্ণদাস একাডেমী, বাৰাণসী। ২০২৪ চন।

আৱাহন আলোচনীত প্ৰকাশিত চুটিগল্পত বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ

সাৰ ভাগ :



শিখা মণি দাস

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০১৪

☎ ৬০০০৬২৯৮০০

✉ shikadas68@gmail.com

বিজ্ঞান সাহিত্য অসমীয়া সাহিত্য জগতৰ নৱ সংযোজন। কল্পবিজ্ঞান বিজ্ঞান সাহিত্যৰ ভিতৰুৱা। অসমীয়া সাহিত্যত কল্পবিজ্ঞানে প্ৰৱেশ কৰে গল্পৰ যোগেদি। সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ মাজেৰে সমসায়িক সমাজৰ প্ৰতিচ্ছবি স্পষ্টকৰণত লক্ষ্য কৰা যায়। সেয়ে চুটিগল্পৰ মাজেৰে বিভিন্ন সময়ত ঘটা ঘটনা, সমাজ-সংস্কৃতিতলৈ অহা নতুন ধাৰা, বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিৰ প্ৰভাৱ আদিবোৰ দিশ লক্ষ্য কৰা যায়। অসমীয়া সাহিত্যত একোটা যুগৰ সৃষ্টি কৰিবলৈ সমৰ্থ হোৱা *আৱাহন* আলোচনীত প্ৰকাশ পোৱা চুটিগল্পবোৰত কল্পবিজ্ঞান বা বিজ্ঞানৰ বিভিন্ন প্ৰসঙ্গ লক্ষ্য কৰা যায়। এইবোৰৰ পৰা *আৱাহন*ৰ সময়ছোৱাত যে বিজ্ঞানে সমসাময়িক সমাজখনত বাৰুকৈয়ে নিজৰ অধিকাৰ সাব্যস্ত কৰিছিল সেয়া সততে অনুমান কৰিব পাৰি। বিজ্ঞান যিহেতু এক জটিল বিষয় সেয়ে গল্প বা উপন্যাসৰ দৰে পোনে পোনে ইয়াৰ পৰা বস পান কৰা সহজ নহয়। এইখিনিতেই বিজ্ঞান সাহিত্যই মানুহৰ চাহিদা আৰু বাস্তৱ জগতৰ সত্যক সৰ্বসাধাৰণৰ ওচৰ চপাই আনে। চুটিগল্পৰ মাজেৰে বিজ্ঞানৰ বিভিন্ন প্ৰসঙ্গ উত্থাপিত হয়। সৃষ্টিশীল সাহিত্যত যদিও কল্পনা ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ থাকে তথাপি বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ থকা আটাইবোৰ গল্পকে কল্পবিজ্ঞানভিত্তিক গল্প বুলিব নোৱাৰি। এনে বহুতো গল্প আছে য'ত বাস্তৱ বিজ্ঞানৰ প্ৰসংগ, চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ বিভিন্ন তথ্য আদিবোৰ বিষয় পোৱা যায়, অথচ কল্পবিজ্ঞানৰ বৈশিষ্ট্য সেইবোৰত নাই। আমাৰ এই আলোচনাত *আৱাহন* আলোচনীত প্ৰকাশিত কল্পবিজ্ঞান আৰু বিজ্ঞান প্ৰসংগ থকা চুটিগল্পবোৰ সামৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

অসমীয়া চুটিগল্প, বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ, আৱাহন আলোচনী, কল্পবিজ্ঞান

০.০ অৱতৰণিকা



ড° বিপুল মালাকাৰ

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নগাঁও, ছোৱালী মহাবিদ্যালয়
নগাঁও, হাইবৰ গাওঁ, অসম - ৭৮২০০১

☎ ৯৩৬৫০৬২৫৭৮

✉ abhinabbipul@gmail.com

অসমীয়া চুটিগল্পৰ জন্ম হয় আলোচনীৰ পাতত। *আৱাহন*ৰ পূৰ্বৰ আলোচনী *জোনাকী* (১৮৮৯) তেই অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰথমটো চুটিগল্পই প্ৰকাশ লাভ কৰি পৰৱৰ্তী *আৱাহন*, *ৰামধেনু*, *প্ৰকাশ*, *প্ৰান্তিক* আদি আলোচনীৰ মাজেৰে বিকাশৰ ন ন স্তৰ অতিক্ৰম কৰে। আমেৰিকান লিখক এডগাৰ এলেন পোৰে চুটিগল্পক তেওঁৰ দেশৰ আলোচনীৰ সন্তান আখ্যা দিছিল। আমাৰ ভাষাৰো আলোচনীবিলাকেই চুটিগল্পৰ প্ৰসাৰত প্ৰধানকৈ সহায় কৰি আহিছে। *আৱাহন* আৰু *ৰামধেনু* এই দুখন জনপ্ৰিয় মাহেকীয়া আলোচনীয়ে অগা-পিছা দুটা বিশিষ্ট যুগৰ গল্প সাহিত্যৰ বিকাশত বৰঙণি যোগাইছিল। (ভূমিকা.১৩) *জোনাকী*ৰ চতুৰ্থ বছৰ চতুৰ্থ সংখ্যাত (১৮৯২) প্ৰকাশ পোৱা লঞীনাথ বেজবৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰথমটো চুটিগল্প 'সেউতী' ৰ উপৰি এই আলোচনীত প্ৰকাশ পোৱা আন চুটিগল্পবোৰো অতি চালুকীয়া অৱস্থাত আছিল। *আৱাহন*ত প্ৰকাশ পোৱা গল্পবোৰতহে চুটিগল্পই শিল্পৰূপ লাভ কৰিলে।

‘আবাহন’ আলোচনীয়ে অসমীয়া সাহিত্যক দি গৈছে অপূৰ্ব গল্প সম্পদ। অসমীয়া সাহিত্যৰ ভালেকেইজন সুপ্ৰসিদ্ধ গল্পকাৰ ‘আবাহন’তে জন্ম লৈ ‘আবাহন’তে বিকশিত হৈ অসমীয়া সাহিত্যৰ গল্পৰ ভঁৰাল চহকী কৰি থৈ গৈছে। (ভূমিকা ০.৮) স্বাধীনতা আন্দোলন, সমকালীন শিক্ষা ব্যৱস্থা, পশ্চিমৰ বিভিন্ন সাহিত্য মতাদৰ্শ এই তিনিটা মতাদৰ্শৰ পৰা আবাহন যুগৰ এক শক্তিশালী পৃষ্ঠভূমি গঢ় লৈ উঠিছিল, সেয়ে আবাহন যুগৰ অসমীয়া চুটিগল্পত সমকালীন জাতীয় সমস্যা, পাশ্চাত্যৰ বিবিধ সাহিত্য দৰ্শন, মানৱীয় প্ৰেম, বিজ্ঞান, বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ ফলশ্ৰুতিত অন্ধবিশ্বাস-কুসংস্কাৰৰ বিপৰীতে গল্পকাৰসকলৰ সুস্থ সমাজ গঢ়াৰ সপোন আদিবোৰ দিশ প্ৰতিফলিত হৈছিল। প্ৰগতিশীল সমাজ নিৰ্মাণেই আছিল আবাহনৰ লক্ষ্য, সেয়েহে আবাহন কেৱল অসমীয়া আলোচনীয়েই নাছিল, কুসংস্কাৰত ডুব গৈ থকা অসমীয়া সমাজখনৰ উত্তৰণৰ পথ বিচাৰি উলিওৱাটোও এক দায়িত্ব হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। (ডেকা ৫১)

জোনাকীত প্ৰকাশ পোৱা গল্পবোৰৰ বিষয়বস্তুৰ ক্ষেত্ৰখন আবাহন যুগত অধিক সমৃদ্ধিশালী হৈ পৰিল। কিন্তু আবাহনৰ গল্পত এনে কিছুমান উপাদান পোৱা গ’ল যি কেৱল চুটিগল্পৰ ক্ষেত্ৰতে নহয় অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰতো নতুন। কল্পবিজ্ঞান, চেতনাস্ৰোত, ফ্ৰয়েডীয় মনস্তত্ত্বৰ প্ৰয়োগ আদিবোৰ দিশৰ লগত আবাহনৰ মাজেৰেই পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে অসমীয়া মানুহে চিনাকি হ’ব পাৰিলে। সাহিত্য, শিল্প, সমাজ, ইতিহাস, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি, বিজ্ঞান—এই সকলোৰে পয়োভৰত ‘আবাহন’ জাতিস্কাৰ হৈ উঠিছিল। (ভূমিকা ০.৫) অৰুণোদই (১৮৪৬) বাৰ্তালোচনীখনতে ভূমুকি মৰা অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্যই পৰ্যায়ক্ৰমে বিভিন্ন আলোচনী তথা গ্ৰন্থৰ মাজেৰে বিকাশ লাভ কৰিছে। সমসাময়িক সমাজখনত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা বিজ্ঞানে সাহিত্যৰ মাজতো প্ৰৱেশ কৰি পঢ়ুৱৈক এক নতুন সোৱাদ দিছে। চুটিগল্পত উত্থাপন হোৱা বিজ্ঞান প্ৰসঙ্গৰ কথা আলোচনা কৰাৰ পূৰ্বে বিজ্ঞান সাহিত্য সন্দৰ্ভত এটি আলোচনা কৰা হ’ল।

বিজ্ঞান আৰু সাহিত্য দুয়োটা ভিন্নসুৰী ধাৰা যদিও দুয়োটাৰ মাজত নিবিড় সম্পৰ্ক আছে। বিজ্ঞানৰ ন ন উদ্ভাৱনৰ কথা সাহিত্যৰ মাজেৰে জনসাধাৰণৰ কাষ চাপে। বিজ্ঞান আৰু সাহিত্য দুয়োবিধতে কল্পনা সংযুক্ত হৈ থাকে যদিও সাহিত্যত থকা কল্পনাৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে সাহিত্যিকৰ চিন্তাধাৰাক আকৰ্ষণীয় কৰা আনহাতে বিজ্ঞানত থকা

কল্পনাক বাস্তৱ ৰূপ দিবলৈ বিজ্ঞানীসকলে পৰীক্ষা তথা বিশ্লেষণ কৰে আৰু এক সত্যত উপনীত হয়। বিজ্ঞান সাহিত্যই বিজ্ঞানৰ জ্ঞান আৰু সাহিত্যৰ ৰস যোগান ধৰে। বিজ্ঞান আৰু সাহিত্য সম্পৰ্কে বেনেডে ক্লকে দিয়া মন্তব্যটো এনেধৰণৰ—

Scientific discovers are not the light of truth, that truth alone which enlightens and fortifies, the truth which is good for soul and which scientists and inventors do not give us, but only the geniuses of religion, philosophy and poetry, be they called Jesus of Nwareth, Socrates, Homen and Shakespeare. The discoveries of Natural Sciences as Bacan belived, do indeed, increase, man’s command over things, i.e. the power of his hands, but not of his soul. (বৰা ১৭)

বিজ্ঞান আৰু সাহিত্যৰ যোগেদি সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ মানসিকতা, দৈনন্দিন জীৱন-ধাৰণ প্ৰণালী আদিবোৰত প্ৰভাৱ পেলাব পাৰি। সাহিত্যৰ দ্বাৰা মানুহৰ আত্মাত প্ৰভাৱ পেলোৱাৰ বিপৰীতে বিজ্ঞানে মানৱ মনৰ বস্তুগত (material) স্থিতি প্ৰমাণ কৰে। বিজ্ঞান আৰু সাহিত্য দুয়োবিধকে ভাষাই ধৰি ৰাখে। উল্লেখযোগ্য যে বিজ্ঞান সাহিত্য আৰু কল্পবিজ্ঞানৰ মাজত সাদৃশ্য থাকিলেও দুয়োবিধ কিন্তু একে নহয়। সাহিত্যত বিজ্ঞানৰ বিভিন্ন তথ্য, তত্ত্ব, আৱিষ্কৃত হোৱা বস্তুৰ ওপৰত মননশীলভাৱে বৰ্ণনা কৰা হয় আনহাতে কল্পবিজ্ঞানত ভৱিষ্যৎ বিজ্ঞানৰ সম্ভাৱনীয়তা দেখুৱা হয়। বিজ্ঞান সাহিত্যিকসকলে বিজ্ঞান সাহিত্য আৰু কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য সন্দৰ্ভত এনেদৰে কৈছে—

বিজ্ঞানৰ তাত্ত্বিক বিষয়বস্তুক সৰ্বসাধাৰণ আনকি অন্য বিষয়ৰ বিজ্ঞানসকলৰ বোধগম্য হোৱাকৈ বৰ্ণনাত্মক আৰু ৰসোত্তীৰ্ণ ভাষাৰে ৰচনা কৰা লেখনীৰাজি হ’ল ‘বিজ্ঞান সাহিত্য’ (science literature)। (তামুলী ৩৮)

কল্পবিজ্ঞান বা বিজ্ঞানভিত্তিক কল্পকাহিনীবোৰ প্ৰথমতে কাহিনী, তাৰ পাছতহে এইবোৰ বিজ্ঞান। বিজ্ঞানৰ অতীত, বৰ্তমান বা ভৱিষ্যতৰ তত্ত্ব বা তথ্য কিছুমানক উল্লেখ্য হিচাপে লৈ এই কাহিনীবোৰ ৰচনা কৰা হয়। কল্পবিজ্ঞান ৰচনা কৰোঁতে বিজ্ঞানৰ প্ৰকৃত জগতখনৰ নিশ্চিত তথ্য বা তত্ত্বৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি ৰচনা কৰাতকৈ কল্পনাৰ নাকীজৰী কিছু ঢিলাই দি, প্ৰকৃত বিজ্ঞানৰ জগতখনৰ পৰা সম্ভব্য বিজ্ঞানৰ জগত এখনলৈ আগবাঢ়ি গৈ, তাত সৃষ্টি হোৱা পৰিস্থিতিৰ ভিত্তিত এটা কল্পিত কাহিনী ৰচনা কৰা হয়। (গোস্বামী ১১)

০.১ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য :

নিৰ্বাচিত আলোচনীৰ আধাৰতহে অসমীয়া চুটিগল্পত লক্ষ্য কৰা বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গবোৰ চাবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। এই সময়ৰ চুটিগল্পবোৰৰ বিষয়ে বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰাই আমাৰ এই অধ্যয়নৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।

আৱাহন আলোচনীৰ গল্পই সেই সময়ৰ সাহিত্যিক তথা জনসমাজত বিজ্ঞানৰ প্ৰভাৱ আৰু বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ পৰিচয় কেনেদৰে দিছে লগতে কল্পনাৰ সহায়ত কিদৰে তেতিয়াই সাহিত্যিকসকলে বিজ্ঞান জগতত ভৱিষ্যতে ঘটিব পৰা ঘটনাৰ সন্বেদ দিছে সেয়া ফহিয়াই চোৱাই আমাৰ এই আলোচনাৰ অন্য এক লক্ষ্য।

০.২ বিষয়ৰ গুৰুত্ব :

অসমীয়া সাহিত্যত বিজ্ঞান বা কল্পবিজ্ঞান সাহিত্যৰ ধাৰাটো তুলনামূলকভাৱে নতুন। বিজ্ঞানৰ তত্ত্ব বা আৱিষ্কাৰসমূহ বসালকৈ বৰ্ণনা কৰা হয় বিজ্ঞান সাহিত্যত। বিজ্ঞানভিত্তিক সাহিত্যত ভৱিষ্যত সমাজৰ কল্পনা কৰা হয়। বিজ্ঞানভিত্তিক সাহিত্যৰ আৰম্ভণি হয় আৱাহন আলোচনীৰ পাতত। বিজ্ঞান সাহিত্যও আলোচনীৰ মাজেৰে প্ৰকাশ লাভ কৰি বিকাশৰ পথত আগবাঢ়িছে। তেনে পৰিপ্ৰেক্ষিতত আৱাহন আলোচনীৰ বিজ্ঞান প্ৰসঙ্গযুক্ত গল্পৰ আলোচনা কৰাৰ নিশ্চয় এক গুৰুত্ব আছে। আনহাতে আৱাহন আলোচনীত প্ৰকাশ পোৱা গল্পবোৰৰ বিভিন্ন দিশসমূহ আলোচনা হোৱাৰ দৰে বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ থকা চুটিগল্পবোৰৰ বিষয়ে প্ৰণালীবদ্ধ অধ্যয়নৰ প্ৰাসংগিকতা আছে।

০.২ বিষয়ৰ পৰিসৰ

বৰ্তমান সময়ত বিজ্ঞান সাহিত্য বা কল্পবিজ্ঞান সাহিত্যৰ গুৰুত্ব বাঢ়িছে। সাহিত্যৰ সহায়ত সাধাৰণ মানুহে বিজ্ঞানৰ আৱিষ্কাৰসমূহৰ বিষয়ে জানিব পাৰিছে। গল্প, উপন্যাসৰ মাজেৰে পাঠকে ভৱিষ্যত সম্ভাৱনীয়তা, বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ পৰিচয় পাবলৈ সক্ষম হৈছে। কল্পনা আৰু বাস্তৱৰ সংযোগ ঘটাই কল্পবিজ্ঞানে অসমীয়া সাহিত্যত ভূমুকি মাৰে আৱাহন আলোচনীৰ মাজেৰে। পিছলৈ বিভিন্ন সাহিত্যিক, আলোচনী, গ্ৰন্থ আদিৰ মাজেৰে এই ধাৰা সাহিত্যই বিকাশ লাভ কৰে। গতিকে আমাৰ এই আলোচনাত কেৱল মাত্ৰ আৱাহন আলোচনীত প্ৰকাশ পোৱা বিজ্ঞান প্ৰসঙ্গযুক্ত গল্পহে আলোচনা কৰা হৈছে। নিৰ্বাচিত বিষয়টি স্পষ্ট তথা বিতংকৈ আলোচনা কৰাৰ বাবে আৱাহন আলোচনীতেই আমাৰ আলোচনা সীমাবদ্ধ কৰা হৈছে।

১.১ বিষয়বস্তু আৰু উপস্থাপন পদ্ধতি

বিজ্ঞানভিত্তিক সাহিত্যৰ বিষয় যিকোনো হ'ব পাৰে। মাত্ৰ তাত বিজ্ঞান আৰু ভৱিষ্যত সম্ভাৱনীয়তা থকাটো জৰুৰী। কিন্তু সাধাৰণ চুটিগল্পৰ মাজত যেতিয়া বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ চোৱা হয় তাত অনাগত দিনৰ বিজ্ঞান জগতৰ সম্ভাৱনা বা ভৱিষ্যত সমাজ নাথাকিলেও সাধাৰণ কথোপকথনৰ মাজত বিজ্ঞানৰ কিছু কথা নিহিত হৈ থাকে। আৱাহন আলোচনীতো তেনে বহুকেইটা গল্প বিচাৰি পোৱা যায়।

আৱাহনৰ ২য় বছৰ ৩য় সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা ৰেণু নামৰ গল্পটোত পদাৰ্থ বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ উত্থাপিত হৈছে। গল্পকাৰ নন্দনাথ গোস্বামীৰ দ্বাৰা গল্পটো ৰচিত। পদাৰ্থ বিজ্ঞানৰ অণু-পৰমাণুৰ লগত প্ৰেম তথা মানুহৰ মনটোক তুলনা কৰি চোৱা হৈছে। গল্পটোৰ একমাত্ৰ নাৰী চৰিত্ৰটোৰ নামৰ পৰাই গল্পটোৰ নামকৰণ কৰা হৈছে। গল্পটোত মুঠ চাৰিটা চৰিত্ৰ আছে যদিও তিনিটি চৰিত্ৰৰ জীৱনৰ কাহিনী, সংঘাত, বিচ্ছেদ আৰু শেষত মিলন হোৱাটোই গল্পটোৰ সমাপ্তি ঘটিছে।

ৰেণু, কিৰণ আৰু ৰেণুৰ দেউতাক—এই চৰিত্ৰকেইটাই গল্পটোৰ কাহিনী আগবঢ়াই নিছে। কিৰণ মেধাৱী যদিও সৰুতে ঘাট-মাউৰা হোৱাত ৰেণুৰ দেউতাকে কিৰণক পঢ়াই-শুনাই ডাক্তৰ বনালে। ৰেণুৰ দেউতাকৰ গোপন ইচ্ছা এটা আছিল যে কিৰণক ভাল মানুহ কৰি ৰেণুক কিৰণৰ তালৈ বিয়া দিয়া। কিন্তু এই ইচ্ছাৰ কথা কিৰণক জনোৱাত কিৰণে প্ৰস্তাৱটো প্ৰত্যাখ্যান কৰিছে। ৰেণু আৰু কিৰণৰ মাজত প্ৰকৃততে প্ৰেম নে কৃতজ্ঞতা আছে সেই বিষয়ত কিৰণ আৰু তেওঁৰ বন্ধু চলিহাৰ মাজত এখন শীতল তৰ্কযুদ্ধ চলিছে। কিৰণে বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ টানি নিজৰ যুক্তি ৰাখিছে এনেদৰে—

বস্তু-জগতত যেনেকৈ অণু-পৰমাণু বিলাকৰ মাজত নিগূঢ় সম্বন্ধ নিহিত আছে, মানৱৰ মনো-জগতৰো সেইদৰে সূত্ৰোতিসূত্ৰে মনোবৃত্তি বিলাকৰ ভিতৰত নিগূঢ় সম্বন্ধ বৰ্তমান। বস্তুজগতৰ অনুপৰমাণুবোৰ যেনেকৈ সমগুণসম্পন্ন অণুপৰমাণুৰ লগতহে মিলিত হ'ব পাৰে সেইদৰে সূত্ৰে-মনোবৃত্তি বিলাকৰ সমতা বা সমগুণত্ব নাথাকিলে দুজন মানুহৰ মাজত প্ৰেমৰ ভাব সোমাব নোৱাৰে। (গোস্বামী ২৫১)

কিৰণক প্ৰত্যুত্তৰ দিবলৈ চলিহাই কৈছে—

আপুনি যে বস্তু-জগতৰ অণুপৰমাণুৰ লগত মানুহৰ মনৰ উদাহৰণ দিছে তাৰ তো বিপৰীতভাৱেও অনুভৱ কৰিব

পাৰি। বস্তু- জগতৰ অণুপৰমাণু বিলাক যেনেকৈ মিলিত হয় সেইদৰে অৱস্থা অনুসৰি বিভক্তও হয়। বিভক্ত হোৱাৰ পিছত সিহঁত আকৌ লগ হবও পাৰে। (২৫১)

বিভক্ত হৈয়ো অণুপৰমাণু বা মানুহৰ সূত্ৰে মনোবৃত্তি বিলাক পুনৰ সন্মিলিত হব পাৰে। কিন্তু সেইটো মই প্ৰথমত কৈছো সমগুণসম্পন্ন হলেহে হব পাৰে। তেল পানী মিহলাই থলে যেনেকৈ কোনো ৰাসায়নিক ক্ৰিয়া সম্পন্ন হ'ব নোৱাৰে সেইদৰে যদি বেলেগ প্ৰকৃতিৰ দুজন মানুহৰ মিহলাই থোৱা যায় তেনেহ'লে তেওঁলোকৰ আন্তৰিক বা মনোজগতৰ মিলনো অসম্ভৱ। (২৫২)

গল্পটোৰ শেষত পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰৰ উৎসৱলৈ যোৱা ৰেণু আৰু তেওঁৰ দেউতাকক কিৰণে ল'গ পাইছে। ৰেণুৰ অসুস্থতাৰ খবৰ ল'বলৈ গৈ কিৰণে ৰেণুৰ শুশ্ৰূষা কৰিছে আৰু তিনিওৰে এই মিলন পৰ্বতেই গল্পটোৰ সামৰণি ঘটিছে।

আৰাহনৰ ৫ম বছৰ ১০ম সংখ্যাত হলীৰাম ডেকাৰ ফটোগ্ৰাফাৰ নামৰ গল্পটো প্ৰকাশ পাইছে। গল্পটোত পোনপটীয়াকৈ বিজ্ঞানৰ কথা নাই যদিও গল্পটোত থকা ফটোগ্ৰাফৰ কথাখিনিৰ লগত বিজ্ঞানৰ দৈনন্দিন অগ্ৰগতি তুলনা কৰি চাব পাৰি। গল্পটোত ফটোগ্ৰাফাৰ এজনৰ জীৱন বৰ্ণনা যাঁওতে গল্পকাৰে প্ৰসংগব্ৰহ্মে ফটোগ্ৰাফিৰ কথা কৈছে। কলিকতাৰ দৰে ব্যস্ত চহৰ এখনত গল্পৰ নায়কে একো কাম বিচাৰি নাপায় শেষত ফটো তোলা দোকান এখনত কাম কৰাৰ সিদ্ধান্ত লৈছে। সেই সময়ত কেৱল কলিকতাতে নহয় আন আন চহৰ-নগৰবোৰতো ফটোৰ প্ৰচলন বৃদ্ধি পাইছিল। ফটো তোলা বা উঠাটো এতিয়াৰ নিচিনা সহজলভ্য নাছিল বাবেই বিবাহ, পূজা বা বিবাহোপযোগী পাত্ৰ-পাত্ৰীৰ বাবেও ফটো একধৰণৰ দৰকাৰী বস্তু হিচাপে গণ্য হৈছিল। অৱশ্যে এতিয়াৰ কেমেৰাৰ নিচিনা অত্যাধুনিক প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ সুবিধা তেতিয়াৰ কেমেৰাবোৰত নাছিল। পূৰ্বতে যে ফটোগ্ৰাফাৰে শকতক ক্ষীণ, ওখক চাপৰ আদিবোৰ কাৰ্য কেমেৰাৰ সহায়ত কৰিব পৰা নাছিল সেয়া গল্পটোত বৰ্ণিত হৈছে। গল্প এটাৰ যোগেদি সেই সময়ৰ সমাজ-সংস্কৃতি যিদৰে পৰিস্ফুট হৈ ওলাই ঠিক তেনেদৰে বিজ্ঞানৰ ক্ষেত্ৰখনৰ অগ্ৰগতিৰ কথাও জানিব পৰা যায়। গল্পটোৰ কিয়দংশ তুলি ধৰিলে তেতিয়াৰ বিজ্ঞান আৰু এই সময়ৰ বিজ্ঞানৰ অগ্ৰগতি সহজে বুজিব পৰা যাব—

“... কাৰো দেখিবা চকুৰ খোৰোংটো বৰ বহল, কাৰো ক পালখন বৰ ওখ, কাৰো নাকৰ দিলাটো বৰ

চাপৰ,...ফটোগ্ৰাফাৰৰ সাধ্য নাই যে এইবোৰ দোষ একেবাৰে নাই নুই কৰে...।” (ডেকা ১১০৬)

আৰাহনৰ ৬ষ্ঠ বছৰ ১ম সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা বীণা বৰুৱাৰ জনসংখ্যা নামৰ গল্পটোত বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ বিদ্যমান। গল্পটোৰ কাহিনী আগবাঢ়িছে হোষ্টেলীয়া ল'ৰা কেইজনমানৰ দেওবৰীয়া আড্ডাক কেন্দ্ৰ কৰি। বিভিন্ন শাখা তথা বিভিন্ন বিষয়ৰ লগত জড়িত হৈ থকা হোষ্টেলৰ ল'ৰাবোৰে জনসংখ্যা আৰু তাৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ ওপৰত তৰ্ক-যুদ্ধ কৰিছে। সমাজবিজ্ঞানী আৰু অৰ্থনীতিবিদ থমাস মালথাছৰ বিখ্যাত জনসংখ্যা তত্ত্ব ‘থিয়ৰি অৱ প্ৰোগ্ৰেশ্যন’ৰ বিৰোধ কৰিছে শইকীয়া উপাধিৰ কেমেস্তিৰ ল'ৰাজনে। এই থিয়ৰিটো মতে পৃথিৱীৰ জনসংখ্যা গুণোত্তৰ প্ৰগতি (geometrical progression চমুকৈ GP) মতে আগবাঢ়িছে আৰু খাদ্য-বস্ত্ৰৰ উৎপাদন হৈছে সমান্তৰ প্ৰগতি (arithmetical progression চমুকৈ AP) মতে। GP য়ে এনেকুৱা এক গাণিতিক অতিক্ৰম সূচায় য'ত প্ৰথম পদটোৰ পিছত থকা পদবোৰে প্ৰথমটোৰ লগত এক নিৰ্দিষ্ট সংখ্যা, পূৰণ-হৰণৰ যোগেদি পোৱা যায়। জনসংখ্যা বৃদ্ধিৰ ক্ষেত্ৰত GP য়ে নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ ব্যৱধানত জনসংখ্যা নিৰ্দিষ্ট হাৰ বা শতাংশত বৃদ্ধি পোৱা বুজায়। আনহাতে AP য়ে সংখ্যাৰ এনেকুৱা এক অনুক্ৰমক সূচায় য'ত আগৰ পদটোৰ সৈতে নিৰ্দিষ্ট সংখ্যা যোগ-বিয়োগ কৰিলে পিছৰ পদটো পোৱা যায়। মালথাছৰ সূত্ৰ অনুসৰি খাদ্য উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত সদায় AP নিয়ম খাটে। অৰ্থাৎ প্ৰতি বছৰ খাদ্য উৎপাদন হয় এক নিৰ্দিষ্ট পৰিমাণে বা তাৰ যোগফলৰ আধাৰত। আড্ডাৰ মাজৰে কেইজনমানে জনসংখ্যা বৃদ্ধি আৰু মানৱ সম্পদ গঢ়াতহে গুৰুত্ব দিয়াৰ পক্ষ লৈছে। সেয়ে তেওঁলোকে আড্ডাৰ মাজতে কথা পাতিছে ‘টেষ্ট টিউব বেবী’ৰ কথা। বিজ্ঞানৰ অত্যাধুনিক আৱিষ্কাৰ হৈছে ‘টেষ্ট টিউব বেবী’। এই প্ৰক্ৰিয়াটোৰ সপক্ষে মাত্ৰ দি ভট্ট নামৰ মানুহজনে কৈছে—

আপুনি ভাল ‘টেষ্ট-টিউব বেবী’ৰ কথা সোঁৱৰাই দিলে বস্তুটো আমাৰ নিতান্ত প্ৰয়োজনীয় হৈ পৰিছে। ল'ৰাছোৱালী এনেভাৱে বজাৰত কিনিবলৈ পালে আমাৰ তেও মাক বাপেকহঁতৰ মহা আনন্দই হয়। (বৰুৱা ৮)

চিকিৎসা বিজ্ঞানত কৃত্ৰিমভাৱে কৰোৱা ডিম্বাণু আৰু শুক্ৰাণুৰ মিলন প্ৰক্ৰিয়াটোক test tube বা IVF (In vitro fertilisation) বোলা হয়। ১৯৭৮ চনৰ ২৫ জুলাইত আমেৰিকা যুক্তৰাষ্ট্ৰত জন্মগ্ৰহণ কৰা লুইচ ব্ৰাউন হৈছে প্ৰথম টেষ্ট টিউব বেবী। লুইচ জন্মৰ আঁৰত আছে ভ্ৰূণতত্ত্ববিদ

(embryologist) ৰবাৰ্ট এডৱাৰ্ডছ (Robert edward) আৰু প্যাটৰিক ষ্টেপো (Patrick Steptoe)। লুইচৰ পাছৰ পৰা লক্ষ লক্ষ টেষ্ট টিউব বেবীৰ জন্ম হৈ নিসন্তান পিতৃ-মাতৃক সন্তান সুখ প্ৰদান কৰিছে। গল্পটোত নিসন্তানক সন্তান প্ৰদানৰ অৰ্থে টেষ্ট টিউবৰ কথা কোৱা হোৱা নাই যদিও এই পদ্ধতিৰ জৰিয়তে জনসংখ্যা বৃদ্ধি কৰি মানৱ সম্পদ গঢ়াৰ ক্ষেত্ৰত টেষ্ট টিউব প্ৰক্ৰিয়াটো যে সহায়ক হ'ব পাৰে তাৰে এক ইংগিত দিছে। অৱশ্যে জনসংখ্যা বৃদ্ধি আৰু মানৱ সম্পদ গঢ়াৰ ক্ষেত্ৰত টেষ্ট টিউব বেবীৰ সহায় লোৱাটো আইনগতভাৱে কিমানদূৰ গ্ৰহণযোগ্য সেয়াও এক গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়।

আৱাহনৰ ৬ষ্ঠ বছৰ ৪ৰ্থ সংখ্যাত উষা দেৱী আৰু লীলা দেৱীয়ে যুটীয়াভাৱে প্ৰকাশ কৰা *ওঁ শান্তি* নামৰ গল্পটোৰ কাহিনী আগবাঢ়োতে প্ৰসঙ্গক্ৰমে বিজ্ঞানৰ কথা পোৱা যায়। লীলা, শেৱালি, তাপস— মুখ্যত এইকেইটা চৰিত্ৰৰ মাজেৰেই গল্পৰ কাহিনীয়ে গতি কৰিছে। শেৱালি আৰু লীলাৰ জৰিয়তে গল্পটোত বন্ধুত্বৰ সুন্দৰ নিদৰ্শন ফুটি উঠিছে। লীলাৰ নিৰাশাবাদী মনটোত আশাৰ সঞ্চাৰ কৰিবলৈ শেৱালিয়ে অহৰহ চেষ্টা চলাইছে। জীৱনৰ ভাল দিশ, মধুৰ ক্ষণবোৰৰ কথা কৈ লীলাৰ মনৰ পৰা অন্ধকাৰ তথা নিৰাশাবাদ দূৰ কৰিব বিচাৰিছে। লীলাৰ খবৰ ল'বলৈ শেৱালি আহিব বুলি লীলাই পূৰ্বানুমান কৰিছে। আৰু সেই অনুমান সঁচা হোৱাত শেৱালিয়ে Telepathy science ৰ কথা কৈছে—

শেৱালি কেতিয়া আহিলা।... মই ঠিক ভাৱিছিলোঁ তুমি আহিবা।

এৰা Telepathy science টো এনেয়েই ওলালনে? ...মই হ'লে তোমাৰ pessimistic turn of mind টো গুচাবই নোৱাৰিলোঁ। (দেৱী, দেৱী ৩৮১)

বিজ্ঞানে বৰ্তমান টেলিপেথিক বিজ্ঞানক 'ছদ্ম বিজ্ঞান' বুলিহে গণ্য কৰিছে। Telepathy science হৈছে কোনো মাধ্যম (যেনে-কথাবাৰ্তা, ইংগিত, লিখা, প্ৰযুক্তি)ৰ সহায় নোলোৱাকৈ এজন ব্যক্তিয়ে আন এজন ব্যক্তিৰ মনত চলি থকা চিন্তা-ভাবনাৰ ছবিত্ত উমান পোৱা। বিজ্ঞান যিহেতু অনুমানৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত নহয় আৰু অলৌকিক ক্ষমতা প্ৰদৰ্শন বিজ্ঞানৰ লক্ষ্য নহয় সেয়ে Telepathy science ক বিজ্ঞানীসকলে প্ৰকৃত বিজ্ঞানৰ শাৰীত থ'ব নোখোজে। প্ৰযুক্তিবিজ্ঞানৰ সহায়েৰে মানুহৰ মনৰ ভিতৰত প্ৰৱেশ কৰি মনৰ ভিতৰত চলি থকা চিন্তা, অনুভূতি আদিবোৰৰ বৃজ লোৱা বৰ্তমানেও সম্ভৱ হৈ উঠা নাই। আনকি যমজ সন্তানৰ

ক্ষেত্ৰতো বিজ্ঞানে Telepathy science নাকচ কৰে। বিজ্ঞানৰ মতে জিন আৰু একে পৰিৱেশে যমজ সন্তানৰ চিন্তা-ভাবনাবোৰ একে হোৱাত সহায় কৰে।

আৱাহনৰ ৬ষ্ঠ বছৰ ৯ম সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা অচ্যুতানন্দ দাসৰ *আসুৰিক ঔষধ* নামৰ গল্পটোত আসুৰিক চিকিৎসাৰ কথা কোৱা হৈছে। ৰামমল মেধিৰ বয়সৰ জোখাৰে অধিক চৰ্বি বা ভৰহোৱা হেতুকে আসুৰিক ঔষধ ব্যৱহাৰ কৰি শৰীৰৰ ভৰ কমাব খোজা আৰু অত্যধিক আসুৰিক ঔষধ সেৱনৰ ফলত হিতে বিপৰীত হোৱাৰ বৰ্ণনা গল্পটোত পোৱা যায়। হাস্যৰস সংযোগ কৰি গল্পটোত আসুৰিক ঔষধৰ গুণাগুণৰ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। আসুৰিক ঔষধ সেৱন কৰি বহু মানুহে উপশম পোৱাৰ হাজাৰ উদাহৰণ আমাৰ আগত আছে। অসমীয়া মানুহ আসুৰিক ঔষধত বিশেষকৈ স্ত্ৰীৰোগজনিত ৰোগৰ ক্ষেত্ৰত পাকৈত আছিল বুলিয়ে ক'ব পাৰি।

আসুৰিক আৰু আয়ুৰ্বেদিক দুটা ভিন্ন চিকিৎসা পদ্ধতি। আয়ুৰ্বেদিক চিকিৎসাৰ লগত আসুৰিক চিকিৎসাৰ ভালেখিনি মিল থাকিলেও দুয়োটা কিন্তু একে নহয়। আৱাহন ৬ষ্ঠ বছৰ ১০ম সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা 'অসমৰ সুকীয়া ভৈষজ্য বিদ্যা' নামৰ প্ৰবন্ধটোত দুয়োবিধ চিকিৎসা পদ্ধতিৰ পাৰ্থক্য স্পষ্ট কৰিছে— এলোপেথি আয়ুৰ্বেদৰ সৈতে আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতিৰ অমিল এইখিনিতে যে উক্ত প্ৰণালী মতে ঔষধ প্ৰস্তুত বটলত বা টেমাত ভৰাই অৰিষ্ট, ব'ৰি, আৰু ইত্যাদি নাম দি সংৰক্ষিত কৰি থোৱা হয় আৰু আসুৰিকত তেনে কৰা নহয়। (মিশ্ৰ ১১৪৪)

ৰামমল মেধিৰ শৰীৰৰ ভৰ যথেষ্ট বৃদ্ধি হোৱা বাবে প্ৰথমে তেওঁ ডাক্তৰৰ কাষ চাপিছে। ডাক্তৰে হৃদযন্ত্ৰটো পৰীক্ষা কৰোতে বুকু আৰু পেটৰ সীমাটো বিচাৰি নোপোৱাৰ পৰাই মেধিৰ শৰীৰৰ ভৰ কিমান সেয়া অনুমান কৰিব পাৰি। বয়সৰ সমান্তৰালভাৱে মেধিৰ শৰীৰৰ ভৰো যে বাঢ়িব সেয়া ডাক্তৰৰ মুখে শুনি তেওঁ আসুৰিক চিকিৎসাৰ কাষ চাপিছে। আসুৰিক চিকিৎসাত শৰণাপন্ন হ'লে উপবাসৰ প্ৰয়োজন নহ'ব বুলিও মেধিয়ে ডাক্তৰী চিকিৎসাৰ পৰা ফালৰি কাটিছে। মেধিৰ মূল সমস্যাটো হৈছিল ভৰক লৈ। ভৰহীন হৈ শৰীৰটো বাঢ়ি গ'লে মেধিৰ একো সমস্যা নাছিল। আসুৰিক ঔষধত গছৰ পাত, শিপা, গা, ফল আদিবোৰ সামগ্ৰী পোনে পোনে ব্যৱহৃত হয় বাবে ৰোগীৰ ৰোগ উপশম হোৱাত কেতিয়াবা পলম হয় যদিও এই ঔষধে ৰোগক একেবাৰে গুৰিৰ পৰা ভাল কৰে বুলি

কোৱা হয়। আয়ুৰ্বেদিক দৰব যিহেতু উদ্ভিদ, প্ৰাণী আৰু খনিজ পদাৰ্থৰ পৰাই প্ৰস্তুত কৰা হয় আৰু কোনো দ্ৰব্যৰ বিষক্ৰিয়া থাকিলেও তাক বিশেষ শোষণ প্ৰণালীৰে পৰিশোধন কৰিহে প্ৰস্তুত কৰা হয়, সেয়ে দৰবৰ বিষক্ৰিয়া প্ৰায়ে নাথাকে আৰু থাকিলেও অন্যান্য চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ দৰবৰ বিষক্ৰিয়াৰ তুলনাত অতি নগণ্য। (ভট্টাচাৰ্য্য ১৪৯) আসুৰিক ঔষধ অত্যাধিক সেৱন কৰিলে ৰোগীৰ মৃত্যু পৰ্যন্ত হোৱাৰো আশংকা থাকে। মেধিৰ ক্ষেত্ৰতো প্ৰথম পালি ঔষধে কাম নিদিয়া বাবে দ্বিতীয় পালি ঔষধ অধিক পৰিমাণে খালে। কিন্তু বেজে এই ঔষধ পালি খোৱাৰ নিয়ম এনেদৰে দিছিল—

এই পালি দৰৱ অলপ চোকা ধৰণৰ, দুভাগ কৰি তিনি ঘণ্টা অন্তৰত দুবাৰ খাব, গুণ নিশ্চয় কৰিব...। (দাস ১০৪৩)

ঔষধ পালি খোৱাৰ পিছতে মেধিৰ শৰীৰটো একেবাৰে ভৰশূন্য হৈ বেলুনৰ দৰে ফুলি একেবাৰে ঘৰৰ মুখচ পাইছে। তেতিয়া মেধিয়ে আসুৰিক ঔষধৰ তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়াৰ প্ৰতি বিৰক্ত হৈ ভৰযুক্ত দেহাটোৰেই মাটিত থাকিব বিচাৰিছে। এই কাৰু-কাৰ্যবোৰ বাস্তৱিকতে মেধিৰ সপোনতহে সংঘটিত হৈ আছিল। মেধিয়ে বেলুনৰ দৰে ফুলা, ব্যায়াম কৰা গদা দুটা হাতত লৈ পুনৰ মাটিলৈ নামি অহা আদিবোৰ কাৰ্যৰ আঁৰত আছে আসুৰিক ঔষধত ব্যৱহাৰ হোৱা সিদ্ধি বা ভাঙ। গল্পটোত হাস্যৰসৰ যোগেদি আসুৰিক ঔষধৰ ভয়াবহতাৰ ছবি এখন দেখুৱাব বিচৰা যেন অনুমান হয়। কিয়নো আসুৰিক ঔষধত বিজ্ঞানতকৈ মানুহৰ অভিজ্ঞতাহে অধিক পৰিমাণে যুক্ত হৈ থাকে।

আৱাহনৰ ৭ম বছৰ ৮ম সংখ্যাত প্ৰকাশিত প্ৰসন্নলাল চৌধুৰীৰ গল্পৰ সামৰণি গল্পটোত হোমিও'প্যাথিক চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ প্ৰসঙ্গ বিচাৰি পোৱা যায়। এলোপেথি, আয়ুৰ্বেদিক, হোমিও'প্যাথিক- এই তিনি ধৰণৰ চিকিৎসা পদ্ধতিৰ কথা বিভিন্ন সময়ত নানা গল্পৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে। এই গল্পটোত হোমিও'প্যাথিক চিকিৎসা পদ্ধতি দৈনন্দিন জীৱনতো প্ৰয়োগ হোৱা দেখুৱাইছে। অসমীয়া ভাষাটো শুদ্ধ ৰূপত ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ গল্পৰ নায়কেইগৰাকীয়ে 'আদৰণি' নামৰ কাকত এখন উলিওৱাৰ কথা আলোচনা কৰি আছে। শব্দৰ অৰ্থ, ব্যাকৰণৰ জঞ্জাল আদিবোৰ তত্ত্বগধুৰ কথাৰ ওপৰত আলোচনা কৰি থাকোঁতেই মহিকান্তই আটাইবোৰৰ কাৰণে চাহ লৈ আহে। চাহৰ ৰং পাতল হোৱা বাবে সকলোৱে যেতিয়া ইহঃ, উহঃ কৰে তেতিয়া মহিকান্তই অসমীয়া মানুহে যে গতানুগতিক ভাব

আৰু প্ৰথা এবিধ নোৱাৰে তাকে কৈ হোমিও'প্যাথিকৰ Dillution প্ৰণালীৰ কথা কয়। Dillution অৰ্থাৎ সূত্ৰেকৰণ প্ৰণালীৰ দৰে গাখীৰ চাহকাপতো যে ক্ৰমে গাখীৰ নোহোৱা হৈছে তাকে বুজাবলৈ মহিকান্তই কৈছে—

হোমিও'প্যাথিকৰ মূল সূত্ৰবিলাক জানাতো? তাত Dillution অৰ্থাৎ সূত্ৰেকৰণ বুলি এটা প্ৰণালী আছে।...হোমিও'প্যাথিক ঔষধ ডাইলিউশ্যনত অৰ্থাৎ যিমানে পাতল হৈ আহে সিমানে সূত্ৰে আৰু কাৰ্য্যকৰী হয়। ইয়াতো সেয়ে হ'ব। গাখীৰৰ শক্তি ক্ৰমে ডাইলিউশ্যন বেছি হয় মানে বাঢ়ি যাব। গাখীৰ ক্ৰমে নোহোৱা হৈছে। (চৌধুৰী ৮৬৭)

সাহিত্যৰ এটি নতুন ধাৰা কল্পবিজ্ঞানে অসমীয়া সাহিত্যত ভূমুকি মাৰে গল্পৰ যোগেদি। এই ধাৰাৰ প্ৰথমটো গল্প প্ৰকাশ পাই দীননাথ শৰ্মাই সম্পাদনা কৰা আৱাহন আলোচনীত। আৱাহনৰ ৮ম বছৰ ৭ম সংখ্যাত প্ৰকাশ পোৱা হৰিপ্ৰসাদ বৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত বিৰচতীয়াৰ দেশ (১৯৩৭) গল্পটো প্ৰথম অসমীয়া কল্পবিজ্ঞানভিত্তিক গল্প যদিও বহু পণ্ডিত-সমালোচকে অৰুণোদইৰ পাততেই কল্পবিজ্ঞান সাহিত্যৰ সূচনা হোৱা বুলি মত প্ৰকাশ কৰিছে। ব. ন. ছদ্ম নামৰ লেখক এগৰাকীয়ে লিখা 'মিক্ৰোস্কোপ আৰু এক নিষ্ঠুৰ ল'ৰাৰ কথা' শীৰ্ষক কাহিনীটোতে কল্পবিজ্ঞানৰ ক্ষীণ প্ৰভাৱ লক্ষ্য কৰা যায় যদিও ইয়াত বিজ্ঞানভিত্তিক সাহিত্যৰ বৈশিষ্ট্য স্পষ্ট নহয়। অৱশ্যে প্ৰাৰম্ভিক প্ৰচেষ্টা হিচাপে ইয়াৰ ঐতিহাসিক গুৰুত্ব নুই কৰিব নোৱাৰি।

...১৮৫৩ চনতে অৰুণোদইৰ পাতত 'মিক্ৰোস্কোপ আৰু এক নিষ্ঠুৰ ল'ৰাৰ কথা' (নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.): অৰুণোদইত এই গল্পটোৰ শিৰোণাম মিক্ৰোস্কোপ বুলিহে উল্লেখ আছে, পৃঃ ১০২৫) নামৰ এটা সৰু বিজ্ঞানভিত্তিক গল্পৰ প্ৰকাশ পাইছিল। সম্ভৱত অসমীয়া ভাষাত প্ৰকাশ পোৱা এইটোৱেই এই জাতীয় প্ৰথম গল্প। (মহন্ত, পৰমানন্দ (সম্পা.)

'মিক্ৰোস্কোপ আৰু নিষ্ঠুৰ ল'ৰাৰ কথা' কাহিনীটোত বিজ্ঞানৰ ভৱিষ্য কল্পনা তথা সম্ভাৱনীয়তা নাই। সেয়ে ইয়াক প্ৰকৃত বিজ্ঞানভিত্তিক সাহিত্য বুলিব নোৱাৰি। ১৯১৪ চনত অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰীৰ জগতৰ শেষ আদৰ্শ আৰু বিশ্বশান্তি স্থাপনৰ পথ গ্ৰন্থত বৈজ্ঞানিক সম্ভাৱনীয়তা স্পষ্ট ৰূপত লক্ষ্য কৰা যায়। অন্য গ্ৰন্থত মানুহৰ বসতি সম্বন্ধে কৰা আলোচনাতোই ভৱিষ্য বিজ্ঞানৰ সম্ভাৱনীয়তা ফুটি উঠিছে।

বিৰচতীয়া দেশ গল্পটোত হাস্যৰসৰ মাজেৰে পাঠকে বিজ্ঞানৰ সোৱাদ পায়। সৌৰজগতৰ বিভিন্ন গ্ৰহ, নক্ষত্ৰ

বিশেষকৈ সূৰ্য, চন্দ্ৰ, বুধ, শুক্ৰ, শনি আৰু বৃহস্পতি গ্ৰহৰ কথা গল্পটোত উল্লেখ আছে। গল্পটোত কাল্পনিক গ্ৰহ যেনে- ইন্দ্ৰ গ্ৰহ, বৰুণ গ্ৰহৰো নাম পোৱা যায়। ফাণ্ডনাই বৃহস্পতি গ্ৰহৰ নিবাসী বিৰচতীয়াৰ সৈতে টেলিফোন যোগে কথা পাতি সেই গ্ৰহ আৰু তাত থকা মানুহ, সমাজ ব্যৱস্থা আদিৰ বিষয়ে জানিব পাৰিছে। মৃত্যুৰ পিছত মানুহে বেলেগ বেলেগ গ্ৰহলৈ গৈ জন্ম লোৱা (মানুহৰ নামানুসাৰে বেলেগ গ্ৰহলৈ যাব পাৰে। যেনে মঙলা, মঙলুৱে মঙল গ্ৰহত, বুধিয়া, বুদুৰাই বুধগ্ৰহত) আৰু পৃথিৱীৰ তুলনাত বহু বেছি আগবাঢ়ি থকা সেই গ্ৰহবোৰৰ বিষয়ে ফাণ্ডনাই বিৰচতীয়াৰ মুখেৰে শুনিছে। সকলো জানি ফাণ্ডনাৰ মনত এটাই ইচ্ছা হৈছে যাতে সি মৃত্যুৰ পাছত তাৰ ল'ৰা দুটা ভদীয়া আৰু আহিনাক লগ নাপায়। বৃহস্পতি গ্ৰহত থকা কিছুমান নিয়ম যেনে- সৰু ল'ৰা-ছোৱালীৰ গাত হাঁচিয়ালে বা কাহ মাৰিলে সেই সন্তান চিৰঞ্জীৱ হয় আদিবোৰৰ প্ৰথা ফাণ্ডনাই নিজৰ দেশত চলোৱাৰ কথা ভাবিছে। ফাণ্ডনাই বৃহস্পতি গ্ৰহৰ বিষয়ে জানিব বিচৰাত বিৰচতীয়াই কৈছে—

আমাৰ ইয়াত সকলো কথাতে নৱমী। ঘৰৰ গৃহস্থনী নজনী হ'ব লাগে। আকাশত চন্দ্ৰও নটা। একোটা চন্দ্ৰৰে একো গৰাকী উপমা দিয়ে। আমাৰ প্ৰথম ভাৰ্য্যা বৰ খুলন্তৰ হ'ব লাগে, কিয়নো তেওঁৰ ববীয়া চন্দ্ৰটো সেয়ে।...সেই বাবে ববীয়া চন্দ্ৰটোৰ নাম 'আয়ো'। তেওঁৰ পাছক গৰাকী ভাৰ্য্যাৰ ৰূপৰ কথা নকবা। তেওঁ যদিও লাহী তেওঁৰ ৰূপৰ কথা নকলেই ভাল। তেওঁৰপৰাই তেওঁৰ ববীয়া চন্দ্ৰটোৰ নাম হৈছে 'ইয়োকপা'। তোমাক উৰ্বশী বুলি কলেও নুবুজিবা...। (বৰুৱা ১৩৯)

জ্যোতিৰ্বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ বহু দিশ গল্পটোত পৰিস্ফুট হৈছে। প্ৰথম পুৰুষত বৰ্ণিত কাহিনী আৰু কথোপকথন আৰ্হিৰ বাবে গল্পটোত বিজ্ঞানৰ জটিল কথাবোৰ সহজ ৰূপত বৰ্ণিত হৈছে। মানুহ মৰিলে আকাশত যোৱা বা তৰা হৈ চাই থকা—অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত এই বাক্যাশাৰীক গল্পকাৰে সাক্ষাৰ ৰূপ দিছে। বৰ্তমান বিজ্ঞানীসকলে গ্ৰহান্তৰত সম্ভাৱ্য জীৱৰ সন্ধানৰ ওপৰত চলাই থকা প্ৰকল্পবোৰ কুৰি শতিকাৰ চতুৰ্থ দশকতে হৰিপ্ৰসাদ বৰুৱাই কল্পনাৰ সহায়ত দেখুৱাইছে। গল্পকাৰে বিজ্ঞানৰ সহায়ত সম্ভাৱনাময় ভৱিষ্যত জগতৰ ছবি অংকন কৰিছে। কল্পবিজ্ঞান গল্প এটা বা উপন্যাস এখনে সদায় আমি দেখি-শুনি-জানি থকা জগতখনতকৈ বেলেগ জগত এখনৰ ছবি দাঙি ধৰে (বা হয়তো আমাৰ চিনাকি

জগতখনতে আমাৰ অচিনাকি অথচ সম্ভাৱ্য পৰিৱেশ এটা দাঙি ধৰে)। (গোস্বামী ১১) এই গল্পটোতো বৃহস্পতি গ্ৰহৰ কথা কৈ গল্পকাৰে বেলেগ জগত এখনৰেই সন্ভেদ দিছে। কল্পবিজ্ঞানত বিজ্ঞান বা সম্ভাৱ্য বিজ্ঞানখিনিক বাদ দি কাহিনী বচিত নহয়। আলোচ্য গল্পটোতো বিজ্ঞানখিনি বাদ দি কাহিনীটো কল্পনা কৰিব নোৱাৰি, তথাপি বহু সমালোচকে এই গল্পটোক কল্পবিজ্ঞান বুলি ক'ব নোখোজে কাৰণ ইয়াত ঘটা সকলো ঘটনা সংঘটিত হৈছে চৰিত্ৰৰ অৰ্ধচেতন অৱস্থাত। দীনেশ চন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে ১৯৫০ চনৰ পিছৰ পৰাহে প্ৰকৃত কল্পবিজ্ঞান সাহিত্যৰ সৃষ্টি হোৱা বুলি কৈছে। এ. কে. জিয়াউদ্দিন আহমেদেও সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'আৰাজ' গল্পটোকেই প্ৰথম অসমীয়া কল্পবিজ্ঞান চুটিগল্প বুলি কৈছে। ফাণ্ডনাৰ অৰ্ধচেতন অৱস্থাৰ যোগেদি গল্পকাৰে জাগতিক বাস্তৱতাৰ সীমা অতিক্ৰম কৰি মহাজাগতিক জগতৰ সন্ভেদ প্ৰদান কৰিছে। বৃহস্পতি গ্ৰহ তথা তাৰ অধিবাসীসকলৰ তুলনাত পৃথিৱী (বিশেষকৈ অসম)খন কিমান আসোঁৱাহপূৰ্ণ তাকে দেখুৱাবলৈ গল্পকাৰে বিৰচতীয়া আৰু ফাণ্ডনাৰ কথোপকথনৰ জৰিয়তে সুকীয়া পটভূমি এটা সৃষ্টি কৰি লৈছে।

গল্পটোৰ শেষত বৃহস্পতি গ্ৰহ অস্ত্ৰ যোৱাৰ ফলস্বৰূপে ফাণ্ডনা আৰু বিৰচতীয়াৰ টেলিফোনিক বাৰ্তালাপ হঠাতে বিচ্ছিন্ন হৈছে; আৰু ঠিক তেতিয়াই ফাণ্ডনাৰ গালৈ চেতনা আহিছে। ঘৈণীয়েকৰ মুখেৰে ফাণ্ডনাই জানিব পাৰিছে যে ভাঙৰ নিচাত পৰি থকা ফাণ্ডনাই সম্পূৰ্ণ তিনিটা দিনৰ পাছতহে সাৰ পাইছে। সাৰ পোৱাৰ মাত্ৰকে কাল্পনিক জগতত বিচৰণ কৰি থকা ফাণ্ডনাৰ সকলো কথা, সপোন অথহীন হৈ পৰিছে। গল্পটোত সেই সময়ৰ সামাজিক ৰীতি-নীতি, সমাজ সংস্কাৰৰ মনোভাৱ, নাৰী-পুৰুষৰ সামাজিক অৱস্থিতি আদি দিশবোৰো ফুটি উঠিছে।

আৱাহন যুগৰ এগৰাকী গল্পকাৰ হৈছে নগেন্দ্ৰ নাৰায়ণ চৌধুৰী। *বিৰচতীয়াৰ দেশ* গল্পটো প্ৰকাশ পোৱাৰ পাছৰ বছৰেই অৰ্থাৎ ১৯৩৮ চনতেই এণ্ড'ৰ *ৰসায়ন* নামৰ বিজ্ঞানভিত্তিক গল্পটো প্ৰকাশ পায়। 'ৰসায়ন' নামৰ চুটিগল্পটি অসমীয়া সাহিত্যৰ সৰ্বপ্ৰথম কল্প-বিজ্ঞান কাহিনী (science fiction) বুলি ক'ব পাৰি (ভূমিকা .২১)। গল্পটোত আয়ুৰ্বেদ কায়কল্প চিকিৎসা, আধুনিক জীৱবিজ্ঞান আৰু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিভংগীৰে মানৱ জীৱন আৰু প্ৰকৃতিৰ নিয়ম বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। প্ৰাকৃতিক নিয়মৰ বিপৰীতে গৈ বৃদ্ধ এজনে তৰুণ হ'বলৈ বিচৰাৰ ফলস্বৰূপে কিদৰে সমস্ত হেৰুৱাব লগাত পৰিছে তাৰ নিখুঁত বিৱৰণ গল্পটোত পোৱা যায়।

বিদেশৰ শিক্ষা সাং কৰি অহা ডাঃ ফুকনে ৰসায়ন বিজ্ঞানৰ সহায়েৰে বাৰ্ধক্য নিবাৰণৰ বাবে প্ৰচেষ্টা চলাইছে। বুঢ়া বৰলা এজনক পাই ডাঃ ফুকনে বৃদ্ধৰ পৰা তৰুণ অৱস্থালৈ আনিবলৈ বিভিন্ন পথ খুৱাইছে। ৰসায়ন বিজ্ঞানৰ সহায়ত কৰা এই গৱেষণাৰ দ্বাৰা বৃদ্ধজনে তৰুণ অৱস্থা পাব হৈ কেচুৰা হোৱাৰ উপক্ৰম হৈছে। শৰীৰৰ পৰা মনক যিহেতু পৃথকে চাব নোৱাৰি সেয়েহে বুঢ়াজনৰ বয়সৰ লগে লগে ক্ৰিয়া-কলাপবোৰো সৰু ল'ৰাৰ দৰেই হৈ পৰিছিল। ডাক্তৰে এইবাৰ 'ডায়েটিক ট্ৰিটমেন্ট'ৰ সহায়েৰে বুঢ়াক সুস্থ কৰিবলৈ বিচাৰিছিল যদিও সফল হ'ব নোৱাৰিলে। শেষত ডাঃ ফুকনে বৃদ্ধক বান্দৰৰ গ্লেণ্ডৰ ৰসেৰে বেজী দিছে। চিম্পাঞ্জী বা বান্দৰৰ গ্ৰন্থিবিশেষৰ ৰসে বাওনা মানুহক ওখ কৰাত সহায় কৰে তেনেস্থলত বুঢ়াৰ ক্ষেত্ৰত এই পদ্ধতিটো ব্যতিক্ৰম নহয় বুলিয়ে ফুকনে বুঢ়াক বেজীটো দিছে। গল্পটোৰ শেষত বুঢ়াক সকলোৱে মিলি কেচাইখাতী গোঁসানীলৈ বুলি বলি দিব খোজোতেই বুঢ়া নেজ থকা বান্দৰ এটালৈ ৰূপান্তৰিত হৈছে আৰু গছৰ ওপৰলৈ বগাই গৈছে। গল্পকাৰে হাস্য আৰু ব্যঙ্গৰ সহায়ত কাহিনীটো উপস্থাপন কৰিছে। বুঢ়াক বেজী দিয়াৰ আঁৰত থকা কাৰণ গল্পটোত এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—

চিম্পাঞ্জী বান্দৰৰ গাৰ বৰণটো ক'লা নহ'লেও হাতেৰে গছৰ ঠালে-ঠেঙুলিয়ে ফুৰা আদিলৈ চাই এইবোৰক আমাৰ দেশৰ হলৌ বান্দৰৰ লগত ৰিজাব পাৰি। এই কাৰণে ডাঃ ফুকনে হলৌ বান্দৰ কিনি আনি তাৰ গ্লেণ্ডৰ পৰা ৰস উলিয়াই বুঢ়াৰ গাত বেজী দিবলৈ ধৰিলে। (চৌধুৰী ২২)

আয়ুৰ্বেদীয় শাস্ত্ৰৰ কায়কল্প চিকিৎসাৰ বিধান অনুসৰি মানৱ শৰীৰটো বৃদ্ধাৱস্থাৰ পৰা যৌৱনপ্ৰাপ্ত অৱস্থালৈ ঘূৰাই আনিব পাৰি। মহাভাৰতৰ যুগতো কায়কল্প চিকিৎসাৰ প্ৰচলন আছিল। তাৰ উদাহৰণ হৈছে যযাতি। পুৰুষে নিজৰ যৌৱন পিতৃক দান দি জৰা গ্ৰহণ কৰিছিল। পিছত যযাতিয়ে পুৰুষক যৌৱন ওভতাই দিয়ে। ৰসায়ন গল্পটোতো তেনে এখন ছবিয়ে দেখিবলৈ পোৱা যায়। দীৰ্ঘকাল গৱেষণাৰ পৰা এটা কাৰ্যকৰী সিদ্ধান্তত উপনীত হ'বলৈ গৈ ডাঃ ফুকনে বৃদ্ধগৰাকীক দিয়া কৈশোৰ, যৌৱন আৰু কেচুৰা অৱস্থাৰ পৰা বিজ্ঞানৰ অনাকাংক্ষিত গৱেষণা যে মানৱ জীৱনৰ বাবে কেতিয়াবা ভয়ংকৰ হ'ব পাৰে সেয়া গল্পটোৰ দ্বাৰা সহজেই বুজা যায়। বয়স অনুপাতে জীৱ দেহত থকা অসংখ্য কোষ পৈণত হয় আৰু মৃতপ্ৰায় হয়। চিকিৎসা আৰু কোষবিজ্ঞানৰ সহায়ত মৃতপ্ৰায় কোষবোৰৰ ঠাইত নতুন

কোষ সংস্থাপন প্ৰক্ৰিয়া বৰ্তমান সৰ্বজনবিদিত। জিন-থেৰাপীৰ দৰে বৈজ্ঞানিক পদ্ধতিয়ে মানুহৰ যৌৱন ধৰি ৰাখিব পাৰে। যৌৱন ধৰি ৰখাৰ সম্ভাৱনীয়তাৰ কথা চৌধুৰীয়ে গল্পটোৰ মাধ্যমেৰে তুলি ধৰিছে। অত্যাধিক চিন্তা-চৰ্চা, অতিমাত্ৰা ভয়, ৰসায়ন বিজ্ঞানৰ সহায়ত তৈয়াৰ কৰা দৰৱৰ সুফল-কুফল আদিবোৰ কাৰকেও যে অকাল বাৰ্ধক্যত অৰিহণা যোগাই সেয়া গল্পটোৱে আঙুলিয়াইছে। গল্পটোৰ জৰিয়তে গল্পকাৰগৰাকীৰ বৈজ্ঞানিক মনস্কতাৰ পৰিচয় পোৱাৰ লগতে সেইসময়ৰ পাঠককো বিজ্ঞান সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ সোৱাদ প্ৰদান কৰিছে। ৰসায়ন গল্পত বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰ উমান পোৱা যায় যদিও তাত কোনো বৈজ্ঞানিক সত্য প্ৰকাশিত হোৱা নাই। (ভট্টাচাৰ্য ২১৬) আৱাহন যুগৰ ৰসায়ন গল্পটোৱে পাঠকক এক ব্যতিক্ৰমী তথা ৰসাল গল্পৰ সোৱাদ দিছে। দীৰ্ঘকাল আগুৰি লোৱা গল্পটোৱে লক্ষ্যৰ একমসতা আৰু ফলশ্ৰুতিৰ একমুখিতা বৰ্তাই ৰাখিছে। ৰসায়ন গল্পটোৰ সন্দৰ্ভত প্ৰহ্লাদ কুমাৰ বৰুৱাই এনেদৰে কৈছে—

গল্পটোৰ বিষয়-বস্তু আপাততঃ অবাস্তৱ যেন ধাৰণা হ'ব পাৰে, কিন্তু পাহৰিলে নহ'ব যে ই গল্পহে— সাধুকথা নহয়। ৰসায়ন গল্পত আয়ুৰ্বেদৰ কায়কল্প চিকিৎসা, আধুনিক জীৱবিজ্ঞান আৰু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে জীৱন আৰু জগতৰ গতি আৰু প্ৰকৃতি বিশ্লেষণ কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। অসমত আধুনিক বিজ্ঞানৰ প্ৰসাৰ নোহোৱা সময়তে এগৰাকী জমিদাৰৰ চিন্তা, চেতনা আৰু বুদ্ধিমত্তাৰ পৰা এনে এটা নতুন দৃষ্টীভঙ্গীৰ জন্ম হোৱাটো আচৰিত হ'ব লগা কথাই নহয়, গৌৰৱৰ কথাও। আয়ুৰ্বেদৰ কায়-কল্প বিদ্যাৰ দ্বাৰা শৰীৰৰ ৰূপান্তৰ সাধন, জীৱবিজ্ঞানৰ তত্ত্ব অনুসৰি ভিন্ন জীৱনৰ ৰক্ত কণিকাৰে ভিন্ন জীৱৰ ৰূপান্তৰ আৰু ভয়াবহ সংঘাত, ভীতি বিহ্বলতাই মানুহক অকাল বাৰ্ধক্য দান আদি কথাবোৰ অবাস্তৱ নহয়। এনে তিনিটা দিশৰ জ্ঞানৰ সমাহাৰ ঘটাই জীৱনৰ ব্যাখ্যা আগবঢ়াওঁতে গল্পটোত বিসঙ্গতিও ঘটা নাই। (বৰুৱা ৬২)

সামৰণি :

আৱাহন আলোচনীয়ে নগেন্দ্ৰ নাৰায়ণ চৌধুৰীকে ধৰি আন কিছুসংখ্যক লেখককো গল্পকাৰৰূপে প্ৰতিষ্ঠা কৰাত যথেষ্ট অৰিহণা আগবঢ়াইছে। সমাজৰ বাস্তৱ ছবি, ব্যক্তি জীৱনৰ সৰলতা, হাঁহি-কান্দোন, প্ৰেম, মানৱতা আদিবোৰৰ লগতে গল্পকাৰসকলৰ বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগী গল্পবোৰত বিৰাজমান। কল্পনাৰ সৈতে বাস্তৱ তথা বিজ্ঞানৰ সংযোগ কৰি গল্পকাৰসকলে একধৰণৰ নতুন

ধাৰাৰ গল্পৰ সৃষ্টি কৰিছে। সময় সলনি হোৱাৰ ফলস্বৰূপে সমাজত হোৱা পৰিৱৰ্তনৰ প্ৰভাৱ সাহিত্যত পোনপটীয়াকৈ পৰে। বৰ্তমান যুগ যিহেতু বিজ্ঞানৰ যুগ সেয়ে সাহিত্যতো তাৰ প্ৰতিফলন স্পষ্ট। উপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা সাহিত্যৰ মাজেৰে যে বিজ্ঞান প্ৰসঙ্গ উত্থাপিত হৈছে সেই কথা প্ৰমাণিত হৈছে। বিশেষকৈ দ্বিতীয় বিশ্ব যুদ্ধৰ পাছত মানুহে বিজ্ঞানৰ ধ্বংসাত্মক দিশৰ প্ৰতি সচেতন হৈ বাস্তৱতাৰ মুখামুখি হ'বলৈ

শিকিলে। সেই বাস্তৱৰ ছবি লক্ষ্য কৰা যায় *আৱাহন* আলোচনীত প্ৰকাশিত গল্পত। সেয়ে *আৱাহন*ৰ গল্পত অন্ধবিশ্বাসৰ পৰা আঁতৰি মানুহ বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ ফালে অগ্ৰসৰ হোৱাৰ ছবি দেখিবলৈ পোৱা যায়। *আৱাহন*ৰ বিজ্ঞান প্ৰসঙ্গ থকা গল্পবোৰে পঢ়ুৱৈক নান্দনিক আনন্দ দিয়াৰ উপৰিও মানুহক বৈজ্ঞানিক মানসিকতা গঠন আৰু বৌদ্ধিক পৰিৱৰ্তন সাধনতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। □

প্ৰসঙ্গসূচী:

নেওগ, দাস, শৰ্মা। অসমীয়া গল্পগুচ্ছ। অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭৮ ভূমিকা. ১৩
মজুমদাৰ, পৰমানন্দ। আৱাহন। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১৮ ভূমিকা ০.৮
ডেকা, প্ৰণৱজ্যোতি। 'আৱাহন' আৰু কিছু স্মৃতি। সাতসৰী (একবিংশ বছৰ, অষ্টম সংখ্যা)। (সম্পা.) অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰী, পৃ-৫১
মজুমদাৰ, পৰমানন্দ (সম্পা.)। আৱাহন (দশম খণ্ড)। ভূমিকা ০.৫
বৰা, হেম। সাহিত্য বিচাৰৰ মূল কথা। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৯৫, পৃ-১৭
তামূলী, শান্তনু। 'অসমীয়া জনপ্ৰিয় বিজ্ঞান গ্ৰন্থ: এক সমীক্ষা'। অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য অতীতৰ পৰা বৰ্তমানলৈ। (সম্পা.) ক্ষীৰধৰ বৰুৱা, অসম বিজ্ঞান সমিতি, ২০০৫ পৃ-৩৮
গোস্বামী, দীনেশ চন্দ্ৰ। 'কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য'। অসমীয়া কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য। (সম্পা.) নিপন কলিতা, পূৰ্বয়ণ প্ৰকাশন, ২০২১ পৃ-১১
গোস্বামী, নন্দনাথ। ৰেণু। আৱাহন (২য় বছৰ ৩য় সংখ্যা)। পৃ-২৫১
উল্লিখিত ২৫২
উল্লিখিত ২৫২
ডেকা, হালীৰাম। 'ফটোগ্ৰাফাৰ'। আৱাহন (দশম খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-১১০৬
বৰুৱা, বীণা। জনসংখ্যা। আৱাহন (একাদশ খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-৮
দেৱী লীলা, দেৱী, উষা। ওঁ শান্তি। আৱাহন (একাদশ খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-৩৮১
মিশ্ৰ, নলিনীকুমাৰ। অসমৰ সুকীয়া ভেষজ বিদ্যা। আৱাহন (দ্বাদশ খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-১১৪৪
ভট্টাচাৰ্য, পাৰ্বতী চৰণ। আয়ুৰ্বেদ আৰু অসমত ইয়াৰ প্ৰসাৰ। অসমত বিজ্ঞান চৰ্চাৰ ধাৰা। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-১৪৯
দাস, অত্যাচানন্দ। আসুৰিক ঔষধ। আৱাহন (দ্বাদশ খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-১০৪৩
চৌধুৰী, প্ৰসন্নলাল। গল্পৰ সামৰণি। আৱাহন (চতুৰ্দশ খণ্ড)। (সম্পা.) পৰমানন্দ মজুমদাৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ-৮৬৭
বৰুৱা, হৰিপ্ৰসাদ। বিৰচতীয়াৰ দেশ। অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য অতীতৰ পৰা বৰ্তমানলৈ। (সম্পা.) ক্ষীৰধৰ বৰুৱা, অসম বিজ্ঞান সমিতি, ২০০৫ পৃ-১৩৯
গোস্বামী, দীনেশ চন্দ্ৰ। 'কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য'। অসমীয়া কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য। (সম্পা.) নিপন কলিতা, পূৰ্বয়ণ প্ৰকাশন, ২০২১ পৃ-১১
নেওগ, দাস, শৰ্মা। অসমীয়া গল্পগুচ্ছ। অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭৮ ভূমিকা. ২১
চৌধুৰী, নগেন্দ্ৰ নাৰায়ণ। ৰয়াসন। অসমীয়া গল্পগুচ্ছ। অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭৮ পৃ-২২
ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ। গল্পৰ প্ৰসংগ আৰু অসমীয়া গল্প সাহিত্য। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০১৩ পৃ-১১৬
বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন। বনলতা, ২০১৭ পৃ-৬২
সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী:
কলিতা, নিপন (সম্পা.)। অসমীয়া কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য। পূৰ্বয়ণ প্ৰকাশন, ২০২৪
দেৱী, অনু ৰাণী, শৰ্মা, অৰ্পণ (সম্পা.)। বিৰতনৰ ৰূপৰেখাত অসমীয়া চুটিগল্প। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, ২০২৪
বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.)। অসমীয়া গল্প সংকলন (তৃতীয় খণ্ড)। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১৯
বৰা, অপূৰ্ব (সম্পা.)। অসমীয়া চুটিগল্প ঐতিহ্য আৰু বিৱৰ্তন। বেদকণ্ঠ, ২০২০
বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন। বনলতা, ২০১৭
বৰুৱা, ক্ষীৰধৰ। অসমীয়া বিজ্ঞান সাহিত্য অতীতৰ পৰা বৰ্তমানলৈ। অসম বিজ্ঞান সমিতি, ২০০৫
ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ। গল্পৰ প্ৰসংগ আৰু অসমীয়া গল্প সাহিত্য। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০১৩
মজুমদাৰ, পৰমানন্দ (সম্পা.)। অসমত বিজ্ঞান চৰ্চাৰ ধাৰা। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০০৭
Robert, Adam. The History of Science Fiction. 2nd ed. London: palgrave Macmillan, 2016

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ জহ্নাৰ ঝিটাছ উপন্যাসত ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ : এক নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন



কৃপাৰেখা গগৈ

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়
লখিমপুৰ, খেলমাটি - ৭৮৭০৩১
📞 ৯৯৫৪০০৪৮৫২
✉ rs.kriparekha@nlu.ac.in



ড° অৰবিন্দ ৰাজখোৱা

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়
লখিমপুৰ, খেলমাটি - ৭৮৭০৩১
📞 ৯৪৩৫১৮৯১৭৪
✉ arabinda@nlu.ac.in

সাৰাংশ :

অসমত ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ অন্যতম আধাৰ আছিল তেওঁলোকে অসমত স্থাপন কৰা চাহ-বাগিছাসমূহ। অসমৰ থলুৱা লোকে নিজৰ ঠাইৰ মাটিত কোম্পানীৰ পৰাধীনতাত শ্ৰমিকৰ কাম কৰা কথাটো লজ্জাজনক বুলি গণ্য কৰাৰ লগতে নিয়োগ কৰিলেও তেওঁলোকক পৰিচালনা কৰোঁতে অসুবিধা হোৱাৰ থল অধিক আছিল। সেয়েহে ঔপনিৱেশিক ব্ৰিটিছ কোম্পানীৰ লোক আৰু তেওঁলোকে উৰিয়া, বাৰখণ্ড, পশ্চিমবংগ আদি ঠাইৰ পৰা চাহ-বাগিছাত শ্ৰমিকৰ কাম কৰিবলৈ অনা দৰিদ্ৰ আদিবাসী মানুহৰ বসতিয়ে অসমৰ পৰিৱেশতন্ত্ৰক ভিন্নধৰণে প্ৰভাৱিত কৰাৰ লগতে চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক এক নব্য পৰিৱেশতন্ত্ৰ গঢ় লৈ উঠিছিল। অসমত ঔপনিৱেশিক শাসনৰ আন্তঃসম্পৰ্কৰ কথা বৰ্ণিত হোৱা অসমীয়া সাহিত্যৰ এখন অন্যতম উপন্যাস হৈছে অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ *জহ্নাৰ ঝিটাছ*। এই উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ব্ৰিটিছ শাসক আৰু তেওঁলোকৰ দ্বাৰা অসমত সংকল্পিত চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ মাজৰ উচ্চবৰ্গীয়- নিম্নবৰ্গীয় অৰ্থাৎ শাসক আৰু শোষিতৰ এই বিপৰীতধৰ্মী সম্পৰ্কই পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ ওপৰত পেলোৱা প্ৰভাৱসমূহ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। উচ্চবৰ্গৰ দ্বাৰা বহুসময়ত নিম্নবৰ্গীয় জীৱন নিয়ন্ত্ৰিত হ'লেও তেওঁলোকৰ নিজৰ স্বতন্ত্ৰ জীৱন-ধাৰণৰ শৈলী, চিন্তা, বিশ্বাসৰ জগত এখনো গঢ় লৈ উঠে। নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ জীৱন আৰু সমাজ ঐতিহ্য বুজিবলৈ এনে দিশবোৰৰো সূত্ৰোভাৱে অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন থাকে। এই দিশবোৰ অধ্যয়ন কৰোঁতে কোনো এটা নিম্নবৰ্গীয় শ্ৰেণীৰ লোকৰ প্ৰকৃতি জগতৰ সৈতে সম্পৰ্কৰ কথাবোৰো পৰিস্ফুট হৈ পৰে। *জহ্নাৰ ঝিটাছ* উপন্যাসত চাহ-জনগোষ্ঠীয় মানুহৰ জীৱনশৈলীত প্ৰকৃতি নিৰ্ভৰশীলতা, প্ৰাকৃতিক সমলৰ আধাৰত গঢ় লৈ উঠা লোক-চিকিৎসা-প্ৰণালী, প্ৰকৃতি সচেতনতা আদি দিশবোৰৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জহ্নাৰ ঝিটাছ উপন্যাসত প্ৰকাশ পোৱা অসমত ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ প্ৰেক্ষাপটত গঢ় লৈ উঠা চাহবাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে এক অৱধাৰণা লাভ কৰিব পৰা যাব বুলি আশা কৰিব পাৰি।

০০ অৱতৰণিকা :

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ বহুকেইখন উপন্যাসৰ মাজেৰে ঔপনিৱেশিকতাবাদৰ প্ৰভাৱপূৰ্ণ চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ কথা প্ৰকাশ পোৱা পৰিলক্ষিত হয়। ঔপনিৱেশিক অসমৰ বাস্তৱ পটভূমিত ৰচিত এনে উপন্যাসসমূহৰ ভিতৰত *কেঁচা-*

পাতৰ কঁপনি, সেউজী পাতৰ কাহিনী, এজাক-মানুহ এখন অৰণ্য, নৈ বৈ যায়, জচনাৰ বিটাছ আদি উপন্যাসৰ নাম ল'ব পাৰি। ঔপনিৱেশিকতাবাদ পৰিভাষাটোৱে শাসকৰ ঘাইকৈ নিজ স্বার্থৰ অনুকূলে আন এখন ঠাইৰ ভূখণ্ডত নিয়ন্ত্ৰণ আৰু আধিপত্য প্রতিষ্ঠা কৰি সেই ঠাইৰ ধন, সম্পদৰ ব্যৱহাৰ তথা আহৰণ কৰাৰ লগতে নিজৰ সংস্কৃতি, ভাষা আদি ঔপনিৱেশ স্থাপন কৰা ভূখণ্ডৰ ওপৰত আৰুপৰ প্ৰচেষ্টা চলোৱা সামগ্ৰিক মনোভংগীক বুজায় বুলি ক'ব পাৰি। আধুনিক ইতিহাসৰ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ স্বৰূপলৈ মন কৰিলে যিহেতু দেখা যায় যে শাসনৰ লগতে শোষণো একপ্ৰকাৰ তেওঁলোকৰ নীতিৰ দৰে আছিল। ঔপনিৱেশিক প্ৰেক্ষাপটত ব্ৰিটিছ আৰু দেশীয় অভিজাতবৰ্গৰ বিপৰীতে বহুসময়ত খেতিয়ক, শ্ৰমিক, নাৰীকে ধৰি আৰ্থিকভাবে অনগ্রসৰ সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ স্থিতি নিম্নবৰ্গীয় আছিল। ভাৰত তথা অসমত ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিকৰ শোষণ-শাসন অভিপ্ৰেত প্ৰক্ৰিয়াটো আগৰঢ়াই নিওতে তেওঁলোকে গ্ৰহন কৰা ব্যৱস্থা আৰু কাৰ্যসমূহে নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ জীৱন নিয়ন্ত্ৰিত আৰু অৱদমিত কৰিছিল যাৰ সামগ্ৰিক প্ৰভাৱ পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ ওপৰতো পৰিছিল। ইয়াৰ সমান্তৰালভাৱে নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ সুকীয়া সংস্কৃতি, চিন্তা-চেতনাও অৱধাৰিতভাৱে সামগ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰক কেন্দ্ৰ কৰি বৰ্তি থকাৰ লগতে পৰিৱেশক প্ৰভাৱিত কৰে। ঔপনিৱেশিকতাবাদৰ আওতাত এনেধৰণৰ প্ৰভাৱ, পৰিৱৰ্তন আৰু স্বৰূপ সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নো নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ ভিতৰুৱা। এই আলোচনাত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰে অৰুপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

০.০১ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

(১) *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত ঔপনিৱেশিকতাবাদী শাসক আৰু ঔপনিৱেশিকৰ শাসিত লোকৰ উচ্চবৰ্গীয় আৰু নিম্নবৰ্গীয় এই বৈপৰীত্যমূলক অৱস্থানৰ মাজেৰে স্থাপিত সম্পৰ্কই গঢ় দিয়া পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ স্বৰূপ বুজিবলৈ নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস অধ্যয়নৰ দৃষ্টিভংগীৰে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

(২) *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ স্বতন্ত্ৰ চিন্তা-চেতনা আৰু জীৱন শৈলীত প্ৰকৃতি নিৰ্ভৰশীলতা, প্ৰকৃতি চেতনা কেনেদৰে সংপৃক্ত হৈ আছে সেয়া অধ্যয়নৰ জৰিয়তে নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ জীৱন

আৰু সমাজ ঐতিহ্যৰ যি স্বৰূপৰ মাজত প্ৰকৃতিৰ ভূমিকা আৰু গুৰুত্ব কেনেধৰণৰ সেয়া বিচাৰ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

(৩) *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ সাংস্কৃতিৰ অংশ লোকচিকিৎসা, ধৰ্মীয় বিশ্বাস, লোক-উৎসৱৰ সৈতে প্ৰকৃতি কেনেদৰে জড়িত হৈ আছে সেয়া বিশ্লেষণ কৰিবৰ বাবে বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

(১) অসমত ঔপনিৱেশিকতাবাদী প্ৰভাৱৰ ফলশ্ৰুতিত অসমলৈ অহা ব্ৰিটিছ শাসক আৰু চাহ-জনগোষ্ঠীয় শাসিত মানুহৰ বৈপৰীত্যমূলক অৱস্থানৰ মাজেৰে সাধিত সম্পৰ্কৰ প্ৰভাৱ পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ সৈতে কেনেদৰে সম্পৰ্কিত হৈছিল সেয়া অধ্যয়ন কৰা বিষয়টো অধ্যয়নৰ এটা অন্যতম উদ্দেশ্য।

(২) *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা অসমৰ নিম্নবৰ্গীয় শ্ৰেণীৰ লোকসকলৰ অন্যতম চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকৰ স্বতন্ত্ৰ চিন্তা-চেতনা তথা জীৱনশৈলীৰ সৈতে প্ৰকৃতি নিৰ্ভৰশীলতা, প্ৰকৃতি চেতনা কেনেদৰে সংপৃক্ত হৈ আছে সেয়া অধ্যয়নৰ জৰিয়তে নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ জীৱন আৰু সমাজ ঐতিহ্যৰ স্বৰূপৰ মাজত প্ৰকৃতিৰ ভূমিকা আৰু গুৰুত্ব কেনেধৰণৰ সেয়া বিচাৰ কৰা বিষয়টো অধ্যয়নৰ আন এক উদ্দেশ্য।

৩) *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ সাংস্কৃতিৰ অংশ লোকচিকিৎসা, ধৰ্মীয় বিশ্বাস, লোক-উৎসৱৰ সৈতে প্ৰকৃতি কেনেদৰে জড়িত হৈ আছে সেয়া বিশ্লেষণ কৰাও বিষয়টো অধ্যয়নৰ আন এক উদ্দেশ্য।

৪) ঔপনিৱেশিকতাবাদী প্ৰভাৱ প্ৰতিফলিত অন্যতম অসমীয়া উপন্যাস *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ সম্পৰ্কে নিম্নবৰ্গীয় দৃষ্টিকোণেৰে অৱধাৰণা লাভ কৰা বিষয়টো অধ্যয়নৰ এক উদ্দেশ্য।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

অৰুপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসত ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ : এক নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ পৰিসৰত মূল সমল গ্ৰন্থ হিচাপে অৰুপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ *জহনাৰ বিটাছ* উপন্যাসখন গ্ৰহন কৰা হৈছে।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

(ক) তাত্ত্বিক আধাৰগত পদ্ধতি : বিষয়টো অধ্যয়নৰ

তাত্ত্বিক পদ্ধতি হিচাপে নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতত্ত্বক আধাৰ হিচাপে গ্ৰহন কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীক ইতিহাস আৰু সাহিত্যপাঠ বিচাৰৰ এক আন্তঃবিদ্যায়তনিক তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগী হিচাপে গ্ৰহন কৰা হৈছে।

(খ) বিষয়বস্তু বিশ্লেষণগত পদ্ধতি : বিষয়টো অধ্যয়নৰ বিষয়বস্তু বিশ্লেষণগত পদ্ধতি হিচাপে গ্ৰহন কৰা পদ্ধতিসমূহ এনেধৰণৰ—

(ক) বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতি (Textual Analytical Method)

এই পদ্ধতিৰ সহায়ত নিৰ্বাচিত বিষয়টো সম্পৰ্কীয় সকলো তথ্য প্ৰণালীবদ্ধভাৱে আঁতি গুৰি মাৰি ব্যাখ্যা কৰিব পৰা যায়। সাহিত্য পাঠ এটাৰ বিষয়বস্তু, গঠন আৰু কাৰ্যকাৰিতা বিশ্লেষণৰ বাবে এই পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

(খ) বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি (Descriptive Method)

বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত কোনো এটা বিষয় অধ্যয়ন কৰোঁতে বিষয়টোত কি আছে, কি ঘটিছে বা কি পোৱা যায় ইত্যাদি দিশ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰিব পৰা যায়।

(গ) ঐতিহাসিক পদ্ধতি (Historical Method) :

কোনো এটা বিষয়ৰ অতীত পৰিঘটনা, ঐতিহাসিক পৃষ্ঠভূমি আৰু পূৰ্ব প্ৰতিষ্ঠিত সত্যৰ বিষয়ে জানিবলৈ ঐতিহাসিক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হয়।

১.০ নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতত্ত্বৰ পৰিচয় :

মানৱ সভ্যতাৰ চলমান গতিত বিৱৰ্তিত শ্ৰেণী বিভাজন ব্যৱস্থাৰ আওতাত বহুসময়ত ক্ষমতাৱান মানুহৰ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক তথা সাংস্কৃতিক স্থিতি উচ্চবৰ্গীয় আৰু তেওঁলোকৰ বিপৰীত মেৰুত অধীনস্থ লোকৰ স্থিতি নিম্নবৰ্গীয় হোৱা দেখা যায়। ইতিহাসৰ বিভিন্ন স্তৰত বিভিন্নধৰণে নিম্নবৰ্গীয় স্থিতিত অৱতীৰ্ণ হ'বলগীয়া মানুহে বহুসময়ত আধিপাত্যকাৰী গোষ্ঠীসমূহৰ দ্বাৰা প্ৰক্ষিপিত কুট-কৌশল তথা সেইসমূহৰ আওতাত গঢ় লোৱা সমাজ-ব্যৱস্থা, সমাজ-মানসিকতাৰ পৰিপ্ৰেক্ষাত জীৱন-ধাৰণৰ ন্যায্য অধিকাৰসমূহৰ পৰা বঞ্চিত হৈ দুৰ্দশাগ্ৰস্ত, অজ্ঞানময় তথা অসহায় জীৱন কটাবলগীয়া হয়। ইতিহাসৰ ভিন্ন সময়ৰ পৰা বৰ্তমানলৈকে সমাজৰ শোষিত, অৱহেলিত, বঞ্চিত অথবা অনাদৃত হৈ অহা নিম্নবৰ্গীয় লোকে জীৱন-ধাৰণ তথা সামাজিক স্থিতিৰ পৰা নিম্নবৰ্গত অৱস্থান কৰাৰ লগতে বিংশ শতিকাৰ মাজভাগৰ আগলৈকে

সমসাময়িক প্ৰচলিত ইতিহাসতো অচৰ্চিত তথা উপেক্ষিত হৈ অহা দেখা যায়। অথচ সমাজৰ সকলোধৰণৰ মানুহৰ চিন্তা, কৰ্মৰ সামূহিকতাতহে ইতিহাসৰ সৃষ্টি হয়। অৰ্থাৎ কেৱল শাসকীয়গোষ্ঠী অথবা আধিপাত্যকাৰী মানুহৰ ইতিহাস অধ্যয়নৰ জৰিয়তেই কোনো এছোৱা সময়ৰ সামগ্ৰিক ইতিহাসক উপলব্ধি কৰা সম্ভৱ নহয়। ইতিহাসৰ স্বৰূপ উপলব্ধি কৰি বৰ্তমান তথা ভৱিষ্যতৰ সমাজৰ সুস্থ বিকাশৰ বাবে সমাজৰ নিম্নবৰ্গত অৱস্থান কৰা লোকৰো ইতিহাস অধ্যয়নৰো গুৰুত্ব আছে। বিংশ শতিকাৰ আশী দশকৰ ফালে ভাৰতবৰ্ষত প্ৰচলিত অভিজাতবৰ্গৰ জাতীয়তাবাদী ইতিহাস চৰ্চাত চৰ্চিত নোহোৱা সমাজব্যৱস্থাৰ মেৰপাকত নিম্নবৰ্গীয় হৈ থকা বিভিন্ন শ্ৰেণী আৰু গোষ্ঠীৰ কণ্ঠস্বৰ ইতিহাসৰ পৃষ্ঠাত প্ৰতিস্থাপিত কৰাৰ উদ্দেশ্যেৰে ৰণজিৎ গুহ প্ৰমুখ্যে অনান্য ইতিহাসবিদসকলৰ কৰা ইতিহাস চৰ্চাই *নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস* তত্ত্ব ৰূপে পৰিচিত হ'ল। নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাই তত্ত্বৰ ৰূপ পৰিগ্ৰহন কৰাৰ আগতেই এই সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ প্ৰথম সূত্ৰপাত ঘটিছিল ইটালীৰ মাৰ্ক্সবাদী দৰ্শনক সৃজনীশীল চিন্তা-চৰ্চাৰে নতুন গতি প্ৰদান কৰা এণ্টনিঅ' গ্ৰামছিৰ কাৰাগাৰৰ টোকাবহীত। গ্ৰামছিয়ে ইটালীৰ বিভিন্ন প্ৰভুত্ববাদী শ্ৰেণী আৰু নিম্নবৰ্গৰ শ্ৰেণীসমূহৰ অধীনতাৰ সম্পৰ্ক, সংঘাত, নিম্নবৰ্গৰ স্বতন্ত্ৰ মানসিকতা ইত্যাদি পৰ্যবেক্ষণ কৰি নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস চৰ্চাৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰাসংগিকতা অনুধাৱন কৰে। ইটালীৰ সাম্যবাদী দাৰ্শনিক এণ্টনিঅ' গ্ৰামছিৰ চিন্তা-চৰ্চাত পোন প্ৰথমে নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ ইতিহাস অধ্যয়ন সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ উন্মেষ ঘটিছিল। গ্ৰামছিয়ে পোনপ্ৰথমে তেওঁৰ কাৰাগাৰৰ টোকাবহীত সন্নিৱিষ্ট ৰচনা *On the Margins of History: History of the Subaltern social group* ত পোনপ্ৰথমবাৰৰ বাবে *Subaltern* শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিছে। গ্ৰামছিয়ে প্ৰধানকৈ শাসকীয় গোষ্ঠীৰ অধীনস্থ আৰু সহায়কাৰী লোকক বুজাবলৈ নিম্নবৰ্গ শব্দটোৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। আকৌ ইটালীৰ পুঁজিবাদী সমাজ ব্যৱস্থাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত তেওঁ নিম্নবৰ্গ শব্দটো প্ৰধানকৈ শ্ৰমিক শ্ৰেণীক বুজাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰাৰ লগতে শ্ৰেণীবিভক্ত সমাজত অনা আধিপাত্যকাৰী সামাজিক গোষ্ঠী (Non Hegemonic) কিছুমানক বুজাবলৈও ব্যৱহাৰ কৰিছিল।^১ পৰৱৰ্তী সময়ত তেওঁৰ মতৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়ে ভাৰতৰ প্ৰেক্ষাপটত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস অধ্যয়নৰ পাতনি মেলা

ইতিহাসবিদসকলে নিম্নবৰ্গ পদটোৰ অৰ্থ অধীনস্থ বা তলতীয়া লোকসমষ্টি হিচাপে নিৰ্ণয় কৰিছিল।^১ গ্রামছিৰ ব্যাখ্যা অনুসৰি সামাজিক ক্ষমতাৰ এক বিশেষধৰণৰ বিন্যাস আৰু প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজেৰে শ্ৰমিক শ্ৰেণী শোষিত আৰু শাসিত হয়। এই বিন্যাসৰ এটা মেৰুত শোষিত শ্ৰমিকসকল থকাৰ বিপৰীতে আনটো মেৰুত আধিপাত্যকামী শাসকগোষ্ঠী থাকে।^২ গ্রামছিয়ে মধ্যযুগৰ পৰা আধুনিক যুগলৈ ইটালীৰ ইতিহাস অধ্যয়ন কৰি লক্ষ্য কৰিছিল যে বিভিন্ন প্ৰভুত্বকামী গোষ্ঠীৰ সৈতে নিম্নবৰ্গীয় শ্ৰেণীসমূহৰ অধীনতাৰ সম্পৰ্ক নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ আশা-আকাংক্ষা আৰু চিন্তা চেতনাৰ জগতখনে বহু পৰিমাণে নিৰ্ণয় কৰে। সেয়ে তেওঁ শাসকগোষ্ঠী অথবা ৰাষ্ট্ৰগোষ্ঠীৰ স্বৰূপ বুজিবলৈ নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনৰ কথা কৈছিল।^৩ গ্রামছিৰ চিন্তা-চৰ্চাৰ আঁত ধৰিয়ে ভাৰতবৰ্ষৰ প্ৰেক্ষাপটত ৰণজিৎ গুহকে প্ৰমুখ্য কৰি ডেভিদ আৰ্ণল্ড, ডেভিদ হাৰ্ডমেন, সুমিত সৰকাৰ, দীপেশ চক্ৰৱৰ্তী, গায়ত্ৰী চক্ৰৱৰ্তী স্পিভাক, গৌতম ভদ্ৰ, পাৰ্থ চট্টোপাধ্যায় আদিয়ে দক্ষিণ এছিয়া তথা প্ৰধানকৈ ঔপনিৱেশিক ভাৰতৰ প্ৰেক্ষাপটত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতাত্ত্বিক আৰম্ভ কৰাৰ লগতে বিকাশ সাধন কৰিছিল। প্ৰথম অৱস্থাত প্ৰচলিত বুৰ্জোৱা ইতিহাস ৰচনাৰ ধাৰাৰ বিৰোধিতা কৰি নিম্নবৰ্গৰ জীৱনগাথাৰ বিভিন্ন সত্যক ইতিহাসত প্ৰতিস্থাপন কৰাই নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস তত্ত্বৰ উদ্দেশ্যৰূপে দেখা গৈছিল যদিও পৰৱৰ্তী সময়ত গায়ত্ৰী চক্ৰৱৰ্তী স্পিভাককে ধৰি বিভিন্ন পণ্ডিত, ইতিহাসবিদৰ গঠনমূলক সমালোচনা তথা পৰিৱৰ্তিত ধ্যান-ধাৰণাৰ ফলত পাছলৈ নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস তত্ত্বৰ জৰিয়তে নিম্নবৰ্গৰ নিৰ্মিতিৰ সৈতে জড়িত কথাবোৰ অধ্যয়নৰ আওতালৈ আনি সেই সম্পৰ্কে যুক্তিনিষ্ঠ বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰিবলৈ লোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। অসমতো প্ৰসিদ্ধ ইতিহাসবিদ অমলেন্দু গুহে অসমৰ আৰ্থ-সামাজিক ব্যৱস্থা, মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ ইতিহাস, স্বাধীনতা সংগ্ৰাম, অসমৰ পুঁজিবাদী অৰ্থনীতি আদি বিষয়ক লৈ লিখা গ্ৰন্থসমূহত নিম্নবৰ্গীয় শ্ৰেণী চেতনাৰ ইতিহাস প্ৰকাশ পাইছে। অসমৰ প্ৰেক্ষাপটত মানুহৰ নিম্নবৰ্গীয় স্থিতি আৰু ইতিহাস সম্পৰ্কে অমলেন্দু গুহ, ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰা, কমল কুমাৰ তাঁতী, জয়িতা শৰ্মা, সুৰজিত বৰুৱা, দেৱব্ৰত শৰ্মা, জুৰি বৰা বৰগোহাঞি আদিয়ে চিন্তা-চৰ্চা কৰি অহা দেখা যায়। লক্ষ্যণীয় যে নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰে ইতিহাস চৰ্চা কৰিবলৈ ইতিহাস গ্ৰন্থ, সমাজতত্ত্ব তথা সামাজিক নৃবিজ্ঞান, ৰাজনীতি বিজ্ঞান,

অৰ্থনীতি, মৌখিক ইতিহাস, লোকসাহিত্য, অভিলেখাগাৰৰ তথ্য, আইন-পৰিসংখ্যা সংগ্ৰহাৱলী তথ্য, মৌখিক ইতিহাস, লোকসাহিত্য, লিখিত সাহিত্য আদিয়েও মুখ্য-অথবা গৌণ সমলৰ উৎস হিচাপে বিবেচিত হয়। এই উৎসসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম সাহিত্যই সমাজক অনুকৰণ কৰে বুলি কোৱা হয়। সাহিত্যৰ মাজেৰে পূৰ্বৰ পৰাই সমাজৰ দৰিদ্ৰ, শোষিত তথা বিভিন্নধৰণে নিম্নশ্ৰেণীৰ মানুহৰ কথা অৱধাৰিতভাৱেই সাহিত্যৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাই আহিছে। নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰ উন্মেষ ঘটাত চৰ্চা হ'বলৈ লোৱাৰ পৰা সাহিত্যৰ মাজেৰেও গৱেষণালব্ধ তথা সচেতন প্ৰয়াসেৰে সমাজৰ দলিত, নিষ্পেষিত, শোষিত, অসহায় নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ দুদৰ্শা তথা সেই পৰিস্থিতিসমূহৰ পটভূমি, কাৰক ইত্যাদি তুলি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়। নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসৰ সৈতে সাহিত্যৰ আন্তঃসম্পৰ্ক বিচাৰ কৰিলে দেখা যায় যে ন-পুৰণি বিভিন্ন সাহিত্যই বহুসময়ত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ এহাতে সমল যোগান ধৰিব পাৰে আনহাতে ইতিহাস চৰ্চাৰ বস্তুনিষ্ঠ বিচাৰত অতীতৰ অচৰ্চিত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসৰ তথ্যপূৰ্ণ সংগতিৰ আঁত ধৰি সম্ভাৱ্য সাহিত্যিক অন্বেষণ কৰাৰ থল থাকে। এনে পৰিপ্ৰেক্ষাত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাসতত্ত্ব নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস আৰু সাহিত্য অধ্যয়নৰ এক আন্তঃবিদ্যায়তনিক তাত্ত্বিক আধাৰ তথা পদ্ধতি হিচাপে প্ৰয়োগ কৰি ইতিহাস আৰু সাহিত্যৰ শৃংখলাবদ্ধ অধ্যয়ন কৰাৰ প্ৰাসংগিকতা দেখা যায়।

২.০০ জহনাৰ ৰিটাছ উপন্যাসৰ বিষয়বস্তুৰ পৰিচয় :

অৰুণা পট্টীয়া কলিতাৰ *জহনাৰ ৰিটাছ* উপন্যাসৰ কাহিনী ঔপনিৱেশিক অসমৰ চাহবাগিছাকেন্দ্ৰিক পটভূমিক আধাৰ কৰি ৰচিত হৈছে। অসমত ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিকতাবাদৰ প্ৰধান আধাৰ স্বৰূপ চাহ-বাগিছাসমূহ স্থাপন কৰি তাত শ্ৰমিকৰ কাম কৰিবলৈ ভাৰতৰ উৰিয়া, বিহাৰ, ঝাৰখণ্ড, পশ্চিমবংগ আদি ঠাইৰ পৰা অভাৱগ্ৰস্ত মানুহক

অসমত জীৱিকাৰ সুযোগ দিয়াৰ প্ৰতিশ্ৰুতিৰে অসমলৈ জলপথেৰে স্ত্ৰীমাৰত উঠাই অনাৰ কথাৰে কাহিনীৰ আৰম্ভণী হৈছে। যাত্ৰাপথত অপৰিচ্ছন্ন ব্যৱস্থাবে অনা মানুহজাকৰ খোৱা-শোৱা থকা সকলোফালৰ পৰাই অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশৰ বাবে কলেৰা, হাইজা, পেট-চলা আদি মহামাৰী আৰু বেমাৰত পৰি জাহাজতে বহু মানুহৰ মৃত্যুও হৈছে। তাৰ মাজতে জীয়াই থকা মানুহজাকক আনি

কোম্পানীয়ে স্থাপন কৰা চাহ-বাগিছাৰ আশে-পাশে সংস্থাপিত কৰিছে। আন এখন ঠাইৰ পৰা অসমৰ চাহ-বাগানত কাম কৰিবলৈ অনা এই মানুহজাকৰ মাজৰে উপন্যাসত মুখ্য চৰিত্ৰৰূপে অংকিত হোৱা নাৰী চৰিত্ৰ দুৰ্গা দেখিবলৈ কলা যদিও ওখ, কুণ্ডত কটা অৱয়বেৰে সাইলাখ দুৰ্গা মূৰ্তিৰ দৰে মুখেৰে সৈতে কামে-কাজ, মনোভাবৰ ফালৰ পৰাও সবল এজনী কম বয়সীয়া ৰোৱাৰী। তাইৰ তীব্ৰদাজ গিৰিয়েক দচাৰুৰ তীব্ৰ মৰাৰ দক্ষতাৰ সকলোৰে মূখে মূখে। ইংৰাজে চাহ-বাগানত কাম কৰিবলৈ অনোৱা এইখিনি সৰল চিত্তৰ মানুহে। ব্ৰিটিছে হাজাৰ শাসন-শোষণ কৰিলেও বাগিছাৰ মানুহৰ শৰীৰ ঘাম নিগৰাই অহৰহ কাম কৰোৱাই বিনিময়ত মাত্ৰ ভাত-কাপোৰ পায়হি সুখী। সেয়ে তেওঁলোক ব্ৰিটিছ বিষয়া অৱসৰ লৈ গুছি যাওঁতে আৱেগিক হৈছে, কান্দি পৰিছে। কোম্পানীৰ এজন বিষয়া গ'লে আন এজন আহে। প্ৰত্যেকেই সুকীয়া মেজাজৰ যদিও কোনোজনে ঔপনিৱেশিক শোষণৰ লগতে মানুহবোৰৰ প্ৰতি কেতিয়াবা সদয় হ'ই সাধাৰণ সা-সুবিধাৰ ব্যৱস্থাও কৰি দিয়া দেখা গৈছে। অৱশ্যে ইয়াৰ কাৰণ হিচাপে অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশত চাহ-শ্ৰমিকৰ মৃত্যুৰ হাৰ বাঢ়িলে যে বাগান চলোৱাত অসুবিধা হ'ব সেয়াও এটা কাৰণ। বাগিছাত কাম কৰা এই মানুহজাকৰ জীৱন এক ঔপনিৱেশিক আৱেষ্টনীত বন্দী হ'লেও তেওঁলোকৰো নিজৰ জীৱন-ধাৰণৰ শৈলী আছে, চিন্তা-চেতনা, আশা-আকাংক্ষা আছে, সংস্কৃতি আছে, আচাৰ-বিচাৰ, ব্যৱস্থা-বিধান আছে। এইবোৰৰ মাজেৰেই জীৱনটো জীবলৈ শিকে তেওঁলোকে। দচাৰুৰ পত্নী বয়সৰ জোখাৰে ধুনীয়া গাভৰু দুৰ্গাৰ ৰূপৰ বাবে বাগানৰ ব্ৰিটিছ চাহাব পেৰিটন, ফ্ৰেজাৰ আদিয়ে তাইক পোৱাৰ কামনা কৰিছে। এই দুজন চাহাবৰ প্ৰথমজন কামুক স্বভাৱৰ পেৰিটনে বাগানৰ সাপৰ বসতি উচন কৰিবলৈ গৈ নিজে সাপৰ চেপাত মৃত্যু মুখত পৰাৰ উপক্ৰম হোৱাত দচাৰুয়ে তীব্ৰ মাৰি বিয়োগম সাপ বধ কৰাত কথমপি ৰক্ষা পৰিল। ইয়াৰ পাছত পেৰিটন আন ঠাইলৈ বদলি হৈ গুছি গৈছে। ইফালে ধৰ্মীয় বিশ্বাসত আৰু নিজৰো বিবেকৰ বিৰুদ্ধে গৈ সাপ বধিবলৈ বাধ্য হোৱা বাবে দচাৰু ক্ৰমে মানসিক অশান্তিত ভুগি ভাং, মদৰ আশ্ৰয় লৈ ঘৈণীয়েক দুৰ্গাৰ সৈতে কাজিয়া কৰি ঘৰ এৰি গুছি মৃত্যুমুখত পৰিছে। পেৰিটনৰ পাছত বাগানৰ বৰচাহাবৰূপে নিযুক্তি পোৱা ফ্ৰেজাৰৰ আন বহুতৰ দৰে নাৰীৰ প্ৰতি অযথা দুৰ্বলতা নাই যদিও বিচক্ষণ আৰু গভীৰ স্বভাৱৰ ফ্ৰেজাৰে দুৰ্গাৰ স্বভাৱ, তাইৰ

সৌন্দৰ্যৰ প্ৰতি আকৃষ্ট হৈ তাইক বাংলাত মেমৰ দৰে ৰাখি তাইৰ কাৰণে সুকীয়া ঘৰ-বাৰী কৰি তিনিটাকৈ সন্তানৰ পিতৃ হৈছে। অসমৰ চাহ-বাগিছাত এনেদৰে বহুতো ব্ৰিটিছ বিষয়া আৰু চাহ-জনগোষ্ঠীয় নাৰীৰ সন্তান জন্ম পাই যাক সমাজে দুভেটীয়া বুলি অভিহিত কৰে। সময়ত অসমৰ পৰা গুছি যোৱা ব্ৰিটিছ দেউতাকৰ এনে সন্তানবোৰৰ দশা দলনিত পোনা মেলাৰ দৰে নিখৰুৱা হয়। পিতৃ-মাতৃৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হৈয়েই বহুসময়ত আনৰ আশ্ৰয়ত লালিত-পালিত হয়। জচনাৰ বিটাইছ উপন্যাসত দুৰ্গায়ে ফ্ৰেজাৰ চাহাবৰ সৈতে তিনিটা সন্তানেৰে বৰ আটোল-তোলকৈ গঢ়ি তোলা সংসাৰখনতো যতি পৰিছিল যেতিয়া স্বাধীনতা আন্দোলনৰ তীব্ৰতা বাঢ়ি অহাৰ বাবে ফ্ৰেজাৰ চাহাবে পুনৰ ঘূৰি অহাৰ মিছা প্ৰতিশ্ৰুতি দি জীয়েক বেবীক মাকৰ বুকুৰ পৰা আঁতৰাই লৈ গৈছিল। ইয়াৰ পাছৰ দুৰ্গাৰ মানসিক, আৰ্থিক দশা কষ্টকৰ হৈছিল, যদিও প্ৰতিৱেশী বৰুৱাৰ পৰিয়ালে একালৰ দুৰ্গামেমক স্বনিয়োজনৰ বাট এটাৰ সন্ধান দি পুনৰ মানুহৰ দৰে জী থাকিব পৰা কৰিছিল। উপন্যাসখনৰ শেষলৈ দুৰ্গাৰ বৰপুত্ৰ আৰ্থাৰৰ মাক-দেউতাকহীন নিখৰুৱা কিশোৰী নাতিনী জুলিৰ মেমসদৃশ চেহেৰাই যেন লেখিকাক পুনৰ দুৰ্গাৰ দৰে নাৰীৰ কাহিনীৰ মাজত নিহিত হৈ থকা চাহ-বাগিছাক কেন্দ্ৰ গঢ়ি উঠা ব্ৰিটিছ উপনিৱেশকৰ শোষণ-শাসনৰ ইতিহাস বিচাৰি চাবলৈ আহ্বান জনাই তেনে এক ইংগিতেই বহন কৰিছে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে সামগ্ৰিকভাৱে ব্ৰিটিছৰ শাসন, শোষণৰ স্বৰূপ, চাহ-বাগিছাৰ শ্ৰমিক জীৱনৰ দুদৰ্শাৰ ইতিহাসগাঁথাৰ চিত্ৰপট অংকন কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে বুলি ক'ব পাৰি।

২.০০ মূল আলোচনা :

নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস অধ্যয়ন সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ জনক এণ্টনিঅ' গ্ৰামছিয়ে নিম্নবৰ্গীয় সম্প্ৰদায়ৰ ইতিহাস ভালদৰে বুজিবলৈ হ'লে তথা শাসকীয় পক্ষৰ স্বৰূপ ভালদৰে বুজিবলৈ হ'লে আধিপাত্যকামী অথবা প্ৰভাৱশালী গোষ্ঠীৰ সৈতে অধীনস্থ লোকসকলৰ অধীনতাৰ সম্পৰ্ক অধ্যয়নৰ লগতে তেওঁলোকৰ স্বতন্ত্ৰ আশা-আকাংক্ষা, চিন্তা-চেতনা, সমাজ, সংস্কৃতিৰ বিষয়েও অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনৰ কথা কৈছিল।^৭ সেয়েহে এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে *অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ জহনাৰ বিটাইছ উপন্যাসত ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ : এক নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন* শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে অসমত ব্ৰিটিছৰ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ প্ৰভাৱত গঢ় লৈ

উঠা চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ তথা সেই পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ আওতাত শাসক আৰু শাসিতৰ সম্পৰ্কৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। সমান্তৰালভাৱে এই অধ্যয়নত উপন্যাসখনত ফুটি উঠা ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ সময়ছোৱাত অসমৰ অন্যতম নিম্নবৰ্গীয় সম্প্ৰদায় হৈ পৰা চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোক-জীৱনৰ সমাজ, সংস্কৃতি তথা জীৱন-প্ৰবাহৰ বিভিন্ন দিশৰ সূত্ৰে বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱশ্ৰুত নিম্নবৰ্গীয় সমাজ-সংস্কৃতি সম্পৰ্কীয় দিশসমূহো অধ্যয়ন কৰা হৈছে। অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ্থে কেইটামান দিশত ভাগ কৰি এনেদৰে আলোচনা কৰা হৈছে —

(ক) ঔপনিৱেশিক উচ্চবৰ্গ, নিম্নবৰ্গ আৰু পৰিৱেশতন্ত্ৰ : ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ পৰৱৰ্তী সময়ৰ পৰা অসমত ঔপনিৱেশিক শাসন চলোৱা ব্ৰিটিছসকল ৰাজনৈতিকভাৱে উচ্চবৰ্গীয় অৱস্থানত থকাৰ বিপৰীতে তেওঁলোকে অসমত চাহ-বাগিছা স্থাপন কৰি সেইসমূহত শ্ৰমিকৰূপে কাম কৰিবলৈ অসমৰ থলুৱা লোকৰ পৰিৱৰ্তে ভাৰতৰ আন আন ৰাজ্যৰ পৰা জীৱিকাৰ প্ৰতিশ্ৰুতিৰে অসমলৈ অনা লোকসকলৰ অৱস্থান আছিল নিম্নবৰ্গীয়। নিজৰ ঔপনিৱেশৰ বিস্তাৰৰ প্ৰয়োজনতে ব্ৰিটিছসকলে অসমৰ বাহিৰৰ পৰা শ্ৰমিক আনি চাহ-বাগিছাৰ ব্যৱসায় চলাই নিছিল। অসমৰ থলুৱা লোকসকলে নিজৰ ঠাইতে আনৰ অধীনত শ্ৰমিকৰ কাম-কৰাটো লজ্জাজনক বুলি গণ্য কৰাৰ লগতে থলুৱা লোকসকলক সততে নিয়ন্ত্ৰণ, শোষণ কৰাৰ অসুবিধা হোৱাৰ সম্ভাৱনা অধিক বাবেই ইংৰাজে অসমলৈ শ্ৰমিকৰ আমদানি কৰিছিল। অৰ্থাৎ ঔপনিৱেশিকতাবাদী আশ্ৰয়নৰ অভিপ্ৰায়ৰ বাবেই ব্ৰিটিছসকল অসমলৈ আহিছিল আৰু তেওঁলোকেই চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসকলকো অসমত সংকপিত কৰিছিল। অসমত ঔপনিৱেশিক উচ্চবৰ্গ আৰু নিম্নবৰ্গৰ এই সংযোজনে অসমৰ পৰিৱেশতন্ত্ৰলৈও ব্যাপক সালসলনি অনাৰ কথা উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। পৰিৱেশতন্ত্ৰ বুলিলে সাধাৰণতে মানুহকে ধৰি অনান্য জীৱকূল, উদ্ভিদ আৰু মাটি, বায়ু, পানীৰ আদিৰ পাৰস্পৰিক ভাৱসাম্যতাৰ আধাৰত বৰ্তি থকা পৰিৱেশৰ সামগ্ৰিক ৰূপটোক বুজা যায়। অসমত চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক ঔপনিৱেশিক নীতিৰ প্ৰভাৱে অনা সামগ্ৰিক পৰিৱৰ্তনে বহুলাংশে অসমৰ পৰিৱেশতন্ত্ৰলৈ জনগাঁঠনিগত সংযোজন, বনাঞ্চলৰ পৰিমাণ হ্ৰাস কৰি

চাহ-উদ্যোগ স্থাপন আদি পৰিৱৰ্তন অনাৰ কথা *জহনাৰ কিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে— “লাইন চকীদাৰে দুৰ্গীহঁতক কাম ভগাই দিলে। মতা মানুহখিনিক পাহাৰৰ গাতে লাগি থকা ঠাইখনলৈ লৈ গ’ল। এইখিনি মাটি মোকলাব লাগিব। বাগান এইফালে বাঢ়িব। গছ-লতাৰে অন্ধকাৰ হাবিডৰা দেখিলে গা চমচমাই উঠে। এইখন হাবি চফা কৰি চাহ গছ ৰুৱালৈকে এখন ৰামায়ণ মেলিব লাগিব। প্ৰথম কাম গছবোৰ বগৰাব লাগিব। হাতী সাজু আছে। হাতীয়ে টানি নি গছবোৰ লৈ যাব।” ব্ৰিটিছৰ আমোলত ঔপনিৱেশিক স্বাৰ্থতে হওক অসমত হাবি ভাঙি চাহ-উদ্যোগ স্থাপনে অসমৰ মাটিক অৰ্থনৈতিকভাৱে উৎপাদনক্ষম কৰি জনবসতিৰ কাৰণে অধিক উপযোগী কৰিছিল বুলি ক’ব পাৰি যদিও পৰিৱেশতাত্ত্বিক দিশত বনাঞ্চল ধ্বংস, বন্য-জীৱ-জন্তুৰ অবিচাৰে কৰা বধ আদিয়ে জৈৱ-বৈচিত্ৰ্যৰ ক্ষয়-ক্ষতি কৰাৰ লগতে পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ ওপৰত ঋণাত্মক প্ৰভাৱ পেলাইছিল। চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক ঔপনিৱেশিক নীতিয়ে অসমত চাহ-খেতি, চাহ-শ্ৰমিক আৰু প্ৰকৃতিৰ অনান্য উপাদান সাঙুৰি এক নতুন পৰিৱেশতাত্ত্বিক অৱস্থাৰ সৃষ্টি কৰিছিল যদিও বহনক্ষম উন্নয়নৰ প্ৰতি ঔপনিৱেশিক শাসকে গুৰুত্ব নিদিয়াৰ ফলত পৰিৱেশতন্ত্ৰত বিৰূপ প্ৰভাৱ পৰাৰ কথা উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে। উদাহৰণস্বৰূপে উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা চাহ-শ্ৰমিকসকলৰ স্বাস্থ্যসন্মত খোৱা-পানী, চিকিৎসাৰ ব্যৱস্থা নকৰা, চাহ-খেতিৰ চাৰিওফালে প্ৰতিৰক্ষামূলক বেৰা দিয়াৰ ব্যৱস্থা কৰাৰ সলনি আশে-পাশে জীৱ-জন্তু দেখিলে গুলিয়াই অথবা আন অস্ত্ৰৰে বধ কৰিবলৈ দিয়া নিৰ্দেশ, নিজৰ চিকাৰ বিলাসৰ কাৰণেই মাংসৰ প্ৰয়োজন নহ’লেও পছ চিকাৰ কৰা, সৰ্প আদিক অতৰ্কিত আক্ৰমণ কৰি বধ কৰা আদি কাৰ্যই ঔপনিৱেশিকালীন সময়ৰ যি চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ গঢ় লৈ উঠিছিল তাৰ মাজেৰে যে বহনক্ষম উন্নয়নৰ প্ৰসংগক গুৰুত্ব দিয়া হোৱা নাছিল সেই কথাটোকে সূচাইছে। অৱশ্যে ঔপনিৱেশৰ স্বৰূপত শাসন-আৰু শোষণকহে প্ৰাধান্য দিয়া নীতি আছিল বাবে হয়তো এনে হৈছিল বুলি ক’ব পাৰি। *জহনাৰ কিটাছ* উপন্যাসত ঔপনিৱেশিক উচ্চবৰ্গৰ পৰিৱেশতন্ত্ৰ আৰু প্ৰকৃতিৰ ওপৰত ঘাইকৈ স্বাৰ্থানুকূল আশাসী মনোভাব পৰিলক্ষিত হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে নিম্নবৰ্গীয় চাহ-শ্ৰমিকৰ প্ৰকৃতি আৰু পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ প্ৰতি সহৃদয়,

আত্মীয়তাৰ মনোভাব দেখা পোৱা গৈছে যদিও উচ্চবৰ্গৰ নিৰ্দেশিত অনিচ্ছাসত্ত্বেও প্ৰকৃতিৰ ক্ষতি কৰিব পৰা কামত জড়িত হ'ব লগা হৈছে। এইখিনিতে এণ্টনিঅ' গ্ৰামছিয়ে কোৱা উচ্চবৰ্গ আৰু নিম্নবৰ্গৰ সম্পৰ্কটো অধীনতাৰ সম্পৰ্ক সেয়া দেখা পোৱা গৈছে। অৱশ্যে ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ মাজেৰে নিম্নবৰ্গীয় চৰিত্ৰসমূহ আৰু সমাজৰ সদৰ্থক নৈতিক মনোভাবক চিত্ৰিত কৰাৰ ওপৰত বেছি গুৰুত্ব আৰূপ কৰা যেনো পৰিলক্ষিত হয়।

(খ) নিম্নবৰ্গীয় চেতনা আৰু প্ৰকৃতি : *জহ্ননাৰ ৰিটাছ* উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পোৱা চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ চেতনাত প্ৰকৃতিৰ স্থান লক্ষ্য কৰিলে দেখা যাব যে নিম্নবৰ্গীয় চাহ-শ্ৰমিকসকলৰ চেতনাৰ সৈতে ওতঃপ্ৰোতভাৱে প্ৰকৃতি জড়িত হৈ আছে। এই কথা স্বীকাৰ্য যে কেৱল নিম্নবৰ্গীয় লোকেই নহয় সকলো মানুহেই প্ৰকৃতিক আশ্ৰয় কৰিয়েই জীয়াই থাকে। যিসকল নিম্নবৰ্গীয় শ্ৰেণীৰ লোকে প্ৰত্যক্ষভাৱে প্ৰকৃতিৰ সাহচৰ্যত জীৱন নিৰ্বাহ কৰে সেইসকলৰ চেতনা সাধাৰণতে প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি অধিক সংবেদনশীল হোৱা দেখা যায়। *জহ্ননাৰ ৰিটাছ* উপন্যাসৰ দুৰ্গীয়ে নিজ ঠাইৰ ফুল-ফলৰ সঁচ লগত লৈ আনি অসমত সিঁচা, অসমৰ মাটি-পানীৰ প্ৰতি দুৰ্বাৰ আকৰ্ষণ অনুভৱ কৰা, দচাৰুয়ে অনিচ্ছাসত্ত্বেও সাপ বধ কৰাৰ ফলত ভোগা তীব্ৰ অনুশোচনা, বাগান ৰখীয়াহঁতৰ বন্য জীৱ মৰাৰ বাবে দিয়া নিৰ্দেশত দুখী হোৱা আদি কাৰ্যই তেওঁলোকৰ প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি থকা সচেতনতা সূচাইছে বুলিব পাৰি।

(গ) নিম্নবৰ্গীয় লোক-চিকিৎসা আৰু প্ৰকৃতি : ঔপনিৱেশিকালীন অসমত চাহ-জনগোষ্ঠীয় মানুহৰ লোক-চিকিৎসা পদ্ধতি প্ৰধানকৈ প্ৰকৃতিক নিৰ্ভৰ কৰিয়েই গঢ় লৈ উঠিছিল। *জহ্ননাৰ ৰিটাছ* উপন্যাসখনত এনে পদ্ধতিসমূহৰ আভাস পোৱা যায়। চাহ-বাগিছাত পাত চিঙোতে তলৰ বননিৰ পৰা এবিধ সাপৰ দৰে বিষাক্ত আৰু ভয়াৱহ জোক সোমালে সেই জোকে শৰীৰৰ ভিতৰত তেজ খাই বংশ বৃদ্ধি কৰাৰ ফলত জোক সোমোৱা ব্যক্তিজনৰ মৃত্যু হয়। পাত তোলা অৱস্থাত দুৰ্গীৰ শৰীৰতো সেই জোক প্ৰৱেশ কৰা বলি আন পাত তোলা মাইকীমানুহ কেইগৰাকীয়ে গম পোৱাত তৎকালীনভাৱে তেওঁলোকৰ মাজত প্ৰচলিত প্ৰাকৃতিকভাৱ উপলব্ধ লোকচিকিৎসা পদ্ধতি বা জ্ঞানৰ প্ৰয়োগ কৰা উপন্যাসখনত দেখা গৈছে। প্ৰথমে দুৰ্গীৰ

ভিতৰলৈ অৰ্থাৎ যোনিপথেৰে নিমখ পানী ভৰোৱা হৈছে। নিমখ পানীয়ে কাম নিদিয়াত কেঁচা তিয়হ কাটি খাবলৈ দিয়া হৈছে। সেয়াও কাম নিদিয়াত পোহনীয়া হাঁহ এজনী থিতাতে মাৰি গৰম তেজ পি খাবলৈ দিয়া হৈছে। ইমানবোৰ যতনৰ পাছত জোক সৰি ওলাই আহিছে। তৎকালীনভাৱে দুৰ্গীৰ লগৰ মহিলা কেইজনীয়ে এয়া নকৰা হ'লে দুৰ্গা হয়তো নাবাচিল হয়। তেনেদৰে উপন্যাসখনৰ আন এঠাইত উল্লেখ আছে গেন্দা ফুলৰ পাতৰে হাত-ভৰিৰ কটা ছিঙাৰ বিষ উপশম কৰাৰ কথা আছে—‘দচাৰুৱেও সেইদিনা হাত-ভৰি দেদেৰা খুৱাই ঘৰ ওলাইছিলগৈ। দুৰ্গীয়ে তাইৰ গেন্দাফুলডাৰৰ পৰা পাত তুলি থেতেলিয়াই দিলে বুলিহে ৰক্ষা।’^৭ উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা এইধৰণৰ নিদানসমূহ মানুহৰ ব্যৱহাৰিক অভিজ্ঞতালব্ধ জ্ঞানৰ পৰা প্ৰচলিত হয় বুলি ক'ব পাৰি। ইয়াৰ বিপৰীতে প্ৰকৃতিৰ উপাদানেৰে দিয়া কিছুমান নিদান ধৰ্মীয় বিশ্বাস আধাৰিত যিবোৰৰ কিন্তু বিজ্ঞানসন্মত ভিত্তি নাই অথচ নিম্নবৰ্গীয় সমাজত বিশ্বাসেৰে প্ৰচলিত হৈ থাকে। উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা তেনে এটা উদাহৰণ হ'ল—‘নীচ লাইনলৈ যোৱাৰ আগতে দুৰ্গীয়ে সেই পুখৰী পাৰৰ মন্দিৰটোলৈ গ'ল। বাহিৰৰ পৰাই সেৱা কৰি তাই বেকা ডিঙিৰ মানুহজনী ভাল হৈ উঠিবলৈ প্ৰাৰ্থনা কৰিলে। পুখৰীৰ পৰা ভৰাই ল'লে এবটল পানী। বাগানৰ আটাইয়ে কিবা বিপদ আপদ হ'লে এই পুখৰীৰে পানী লৈ ঘৰত ৰাখে।’^৮ উপন্যাসখনৰ আন এঠাইত নানা বনদৰেৱেৰে ৰোগৰ বিধান দিয়া সাধুবাৰাৰ বনৌষধি আৰু বনদৰেৱেৰে ভৰা টিলাৰ কথা উল্লেখ আছে। তেওঁৰ দৰেৱেৰে ভাল নহ'লেহে ডাক্তৰৰ দৰৱৰ কাষ চাপে। এই কথা লক্ষণীয় যে প্ৰাকৃতিক সমলেৰে দিয়া বনদৰেৱৰ নিদানেৰে বহুসময়ত ৰোগ ভাল হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকিলেও এই বনদৰেৱৰ ওপৰত গঢ় লোৱা নিৰ্ভৰশীলতাৰ বাবে বৰ্তমান সময়তো বহুতো চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকে ৰুগৰ নিৰাময়ৰ বাবে সততে ডাক্তৰৰ কাষ নাচাপে, ফলত ৰোগ বা বাঢ়িও যায়। কিন্তু বহু ক্ষেত্ৰত নিম্নবৰ্গীয় লোকৰ মাজত প্ৰচলিত বনদৰেৱৰ সঠিক প্ৰয়োগে বহু ৰোগ নিৰাময় কৰাৰ উদাহৰণ নথকাও নহয়। এনেদৰে উপন্যাসখনত ঔপনিৱেশ সৃষ্ট চাহ-জনগোষ্ঠীয় জীৱনশৈলীৰ মাজত নিহিত লোক-চিকিৎসাগত পদ্ধতি ৰ ব্যৱহাৰ তথা প্ৰচলন ঘটা দেখা যায়।

(ঘ) নিম্নবৰ্গীয় ধৰ্মীয় বিশ্বাস আৰু প্ৰকৃতিঃ পুৰণি সময়ৰে পৰা মানুহৰ ধৰ্মীয় বিশ্বাসৰ সৈতে প্ৰকৃতি অৱধাৰিতভাৱেই জড়িত হৈ আছে। *জহ্নাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে নিম্নবৰ্গীয় চাহ-শ্ৰমিকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত ধৰ্মীয় বিশ্বাসত প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি আদৰ, ভয় মিশ্ৰিত শ্ৰদ্ধা নিহিত হৈ থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বাগানৰ ব্ৰিটিছ বিষয়াই বন্দুকেৰে গুলিয়াই সাপ মাৰোতে চাহ-মজদুৰসকলৰ মনৰ ভাব সম্পৰ্কে উপন্যাসত এনেদৰে প্ৰকাশ পাইছে— “দেৱতা প্ৰাণী এইবোৰ। এনেদৰে চৰাই মৰাদি গুলিয়াই মাৰিলে কি হ’ব ভাবি সিহঁতৰ অন্তৰাত্মা কাঁপি উঠিছিল।” সাপক দেৱতা বুলি গণ্য কৰা চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ মাজত সাপৰ দেৱ-দেৱীলৈ পূজা আগবঢ়োৱাৰ কথা প্ৰকাশ পাইছে। সাপৰ সৈতে জড়িত আন এক বিশ্বাস হ’ল যে হকা সাপ দেখিলে চাব নেপায়। শাও লাগিব। সেয়া সৰ্প দেৱী মনসা মাৰ ৰূপ বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে। নতুনকৈ পতা চাহ-বাগানৰ কাষৰ হাবিত থকা সৰ্প-সপিনীৰ গাত নোতোলিবলৈ তেওঁলোকৰ বেজস্বৰূপ কাহান বুঢ়াই হাক দিয়া কথাৰ মাজত সৰ্পকেন্দ্ৰিক ধৰ্মীয় বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। এই বিশ্বাস এক প্ৰকাৰ প্ৰকৃতিৰ শক্তিৰ প্ৰতি চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকৰ শ্ৰদ্ধা মিহলি সংৰক্ষণ চেতনাক সুচাইছে বুলি ক’ব পাৰি, কিয়নো নিজৰ অনিচ্ছা সত্ত্বেও বিয়োগোম সাপটো ব্ৰিটিছ চাহাবক ৰক্ষা কৰিবৰ বাবে মাৰিবলগা হোৱাত তীব্ৰ অনুশোচনা হোৱা দচাৰুৰ বাবে এই কথা এটা সময়ত মানসিক অশান্তি আৰু বিকাৰৰ কাৰণ হৈ পৰাৰ কথা উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে জানিব পাৰি।

৪.০০ উপসংহাৰঃ

অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ জহ্নাৰ বিটাছ উপন্যাসত ঔপনিৱেশিকতাবাদী প্ৰভাৱ আৰু পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ মাজৰ সম্পৰ্কঃ এক নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে উপনীত হোৱা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ—

(১) বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জানিব পাৰি যে ভাৰত তথা পৰৱৰ্তী সময়ত অসমলৈও ঔপনিৱেশিকতাবাদী শাসন স্থাপন উদ্দেশ্যেৰে অহা ব্ৰিটিছৰ আগমন আৰু তেওঁলোকৰ দ্বাৰা চাহ-বাগিছাত কাম কৰিবলৈ সংৰূপিত চাহ-জনগোষ্ঠীয় বসতিয়ে অসমৰ বনাঞ্চলৰ পৰিৱেশতন্ত্ৰলৈ পৰিৱৰ্তন আনি এক চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ সৃষ্টি কৰিছিল। এই নতুন পৰিৱেশতন্ত্ৰৰ সৃষ্টিয়ে ব্ৰিটিছৰ বাবে ঔপনিৱেশ স্থাপনৰ সুবিধা কৰাৰ সমান্তৰালভাৱে ভৱিষ্যতৰ বাবেও অসমৰ মাটিক

অৰ্থনৈতিকভাৱে উৎপাদনশীল কৰি তোলাৰ বাট প্ৰশস্ত কৰি গ’ল যদিও বহনক্ষম উন্নয়নৰ প্ৰসংগ ৰক্ষা নপৰা বাবে ঔপনিৱেশিকালীন অসমৰ জৈৱ-বৈচিত্ৰ্যৰ ক্ষতি সাধন কৰাৰ পেলোৱাৰ কথা *জহ্নাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে।

(২) ঔপনিৱেশিকতাবাদী প্ৰভাৱৰ ফলশ্ৰুতিত অসমত বসতি স্থাপন কৰা চাহ-জনগোষ্ঠীয় নিম্নবৰ্গীয় সমাজৰ নিজস্ব জীৱনশৈলীত প্ৰকৃতি নিৰ্ভৰশীলতাৰ কথা জানিব পাৰি। তেওঁলোকৰ চেতনাত প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি সংৰক্ষণশীল মনোভাৱ, কৃতজ্ঞতা নিহিত হৈ আছিল যদিও ঔপনিৱেশিক উচ্চবৰ্গৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ বাবে প্ৰকৃতি বিৰুদ্ধী কামত জড়িত হ’ব লগা হোৱাৰ কথা *জহ্নাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে।

(৩) বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে *জহ্নাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পোৱা চাহ-জনগোষ্ঠীয় নিম্নবৰ্গীয় সমাজৰ সাংস্কৃতিক দিশৰ অংশ লোক-চিকিৎসা পদ্ধতিৰ সৈতে প্ৰকৃতি ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত হোৱাৰ কথা জানিব পাৰি। চাহ- জনগোষ্ঠীয় লোক-চিকিৎসা পদ্ধতিত ব্যৱহাৰ হোৱা প্ৰাকৃতিক নিদানৰ ভিতৰত তৎকালীনভাৱে উপযোগী কিছুমান নিদান আছিল, যিবোৰ বাস্তৱক অভিজ্ঞতালব্ধ জ্ঞানৰ পৰা আহৰিত বুলি ক’ব পাৰি। ইয়াৰে কিছুমান নিদান ধৰ্মীয় বিশ্বাসক কেন্দ্ৰ কৰি প্ৰচলিত আছিল, যিবোৰৰ বিজ্ঞানসন্মত ভিত্তি দেখা নাযায়। ইয়াৰোপৰি তেওঁলোকে বেমাৰ নিমূৰ্ণৰ বাবে স্থানীয় বেজৰ বন-দৰৱৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল হোৱাৰ কথা উপন্যাসখনৰ মাজেৰে জানিব পাৰি।

(৪) বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকৰ ধৰ্মীয় বিশ্বাসৰ সৈতে প্ৰকৃতি সংপৃক্ত হৈ থকাৰ কথা জানিব পাৰি। বিশেষকৈ সৰ্পক পূজা কৰাৰ প্ৰথা আৰু দেৱ-দেৱীৰূপে সমীহ, ভয় কৰাৰ বিশ্বাস তেওঁলোকৰ মাজত

গভীৰভাৱে নিহিত হৈ থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়। ইয়ীৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ প্ৰকৃতিৰ শক্তিৰ প্ৰতি কৃতজ্ঞতাবোধ

১ চেতনা জড়িত হৈ থকা বুলি ক’ব পাৰি।

(৫) বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে *জহ্নাৰ বিটাছ* উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পোৱা ঔপনিৱেশিক প্ৰভাৱসৃষ্ট

চাহ-বাগিছাকেন্দ্ৰিক পৰিৱেশতন্ত্ৰ সম্পৰ্কে এক অৱধাৰণা লাভ কৰিব পৰা গৈছে বুলি ক’ব পাৰি। □

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

১. কমল কুমাৰ তাঁতী, নিম্নবৰ্গৰ সমাজ ঐতিহ্য, পৃ. ৪
২. উল্লিখিত, পৃ.৪
৩. উল্লিখিত, পৃ.২
৪. উল্লিখিত, পৃ.২
৫. উল্লিখিত, পৃ.৪
৬. অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা, জহ্নাৰ বিটাছ, পৃ.৫৬
৭. অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা, জহ্নাৰ বিটাছ, পৃ.৮৯
৮. উল্লিখিত, পৃ.৮৬
৯. উল্লিখিত, পৃ.৯৪

গ্ৰন্থপঞ্জী :

কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া : *জহ্নাৰ বিটাছ*, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ- ২০২২,
দাস, শোণিত বিজয় আৰু মুনীন বায়ন (সম্পা.) : *হীৰেন গোহাঁই বচনাৱলী- ২ , দ্বিতীয় খণ্ড*, কথা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ - ২০১৪
তাঁতী, কমল কুমাৰ : *নিম্নবৰ্গ, সমাজ ঐতিহ্য*, আখৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ- ২০০৭
দত্ত, পংকজ কুমাৰ : *অৰণ্যৰ বদ-বৰষুণ*, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ- ২০২১
বৰগোহাঞি, হোমেন, : *অসমৰ চাহ-উদ্যোগৰ কথিত কাহিনী*, ষ্টুডেন্টচ্ ষ্ট'ৰচ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ- ১৯৮০
Arnold, David : *The Problem of Nature*. Willy Blackwell, New Jersey, United State, First edition-1996
Gramsci, Antonio : *Selection From the Prison Notebooks*, (Quintin Hoore and Geoffrey Nowell
Smith (ed. & tr.)plec Book, London, 1999
Guha, Ranajit(ed.) : *Subaltern Studies I : Writings on South Asian History And Society*, Oxford University Press, New
Delhi, First Publication- 1982
Sharma, Jayeeta : *Empire's Garden : Assam and the making of India* Duke University Press,
Durham and London First Edition - 11 July, 2011

পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্য (শিশু-গল্পৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)



পূৰ্বী শইকীয়া

সংক্ষিপ্তসৰ :

সাম্প্ৰতিক সাহিত্য সমালোচনাৰ ক্ষেত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ এটি নতুন ধাৰা হৈছে ‘পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনা’। ই পৰিৱেশকেন্দ্ৰিক দিশৰ পৰা সাহিত্য অধ্যয়ন কৰে। বিংশ শতিকাৰ শেষৰ ভাগত আমেৰিকাত উত্থান হোৱা সাহিত্য সমালোচনাৰ এই ধাৰাটোৱে পৰৱৰ্তী সময়ত বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ সাহিত্য সমালোচনাৰ ক্ষেত্ৰখনত গুৰুত্ব লাভ কৰে। সাম্প্ৰতিক সময়ত বিশ্বৰ সকলো স্থানতে পৰিৱেশ সম্পৰ্কে গঢ় লৈ উঠাৰ সচেতনতাৰ ফলস্বৰূপেই সাহিত্যতো পৰিৱেশ-প্ৰকৃতিৰ সম্পৰ্কীয় এই অধ্যয়নে বিকাশ লাভ কৰে। প্ৰকৃতিৰ অবিহনে মানুহৰ অস্তিত্ব শূন্য, মানৱ জাতিৰ ইতিহাসৰ বিভিন্ন স্তৰত মানুহৰ মাজত প্ৰকৃতি সম্পৰ্কে সচেতনতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। সেয়ে সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত পৰিৱেশ সচেতনতাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি সাহিত্যিকসকলে প্ৰকৃতি সম্পৰ্কীয় বিষয়বস্তুৰ উপস্থাপনত বিশেষভাৱে গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হয়। সাম্প্ৰতিক অসমীয়া সাহিত্য ক্ষেত্ৰখনৰ এগৰাকী শিশু সাহিত্যিক হিচাপে পৰিচিত কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্যত পৰিৱেশ সংৰক্ষণ তথা প্ৰাকৃতিক ভাৰসাম্যৰ বিষয়ে বৰ্ণনা পোৱা যায়। তেওঁ শিশু-কিশোৰসকলক পৰিৱেশ সংৰক্ষণৰ প্ৰতি যত্নবান হ’বলৈ শিকোৱাৰ উদ্দেশ্যে ৰচনা কৰা ভালেসংখ্যক পৰিৱেশ বিষয়ক শিশু উপযোগী গল্প আৰু প্ৰবন্ধত পৰিৱেশ সংৰক্ষণকামী চিন্তা-চেতনা প্ৰকাশিত হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনত কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত পৰিৱেশ বিষয়ক শিশু-গল্পসমূহত ঔদ্যোগিক সংস্কৃতিয়ে মানুহ আৰু প্ৰকৃতি জগতলৈ কঢ়িয়াই অনা ভয়াবহতাৰ লগতে পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতামূলক দিশবোৰ কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে, সেই সম্পৰ্কে পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

প্ৰকৃতি, মানৱ সমাজ, ঔদ্যোগীকৰণ, বনাঞ্চল ধ্বংস, পৰিৱেশ সজাগতা।

০.০ অৱতৰণিকা

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয়

সাধাৰণ অৰ্থত ক’বলৈ হ’লে মানুহৰ চাৰিওফালে বিৰাজমান পাৰিপাৰ্শ্বিক অৱস্থাকে (বায়ু, পানী, মাটি, গছ-গছনি, জীৱ-জন্তু আদি) পৰিৱেশ বুলি গণ্য কৰা হয়। বৰ্তমান সময়ত বিভিন্ন কাৰণত আমাৰ চৌপাশৰ এই প্ৰাকৃতিক জগতখনৰ পৰিৱৰ্তন হ’বলৈ ধৰিছে। বিশেষকৈ জনসংখ্যা বিস্ফোৰণ, বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ উৎকৰ্ষ সাধনৰ ফলত কল-কাৰখানা স্থাপন, বাট-পথ, ঘৰ-দুৱাৰ নিৰ্মাণ আদিৰ বাবে কৃষিভূমিকে ধৰি পৰ্বত-পাহাৰ, নদ-নদী, জান-জুৰি আদিৰ সংখ্যা কমি আহিবলৈ ধৰিছে। ইয়াৰ ফলত ভূমিস্থলন, বানপানী, খাদ্য-শস্যৰ নাটনি, জলবায়ু পৰিৱৰ্তন,

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ডিব্ৰুগড়, অসম - ৭৮৬০০৪

📞 ৬৯০০৭৫৫৪৬৯

✉ saikiapurabi909@gmail.com

খোৰা পানীৰ নাটনি আদি প্ৰতিকূল পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হ'বলৈ ধৰিলে। পৰিৱেশ প্ৰদূষিত হ'লে মানৱ সমাজৰ বাবে প্ৰবল ভাবুকিৰ সৃষ্টি কৰে। সেয়েহে বৰ্তমান সময়ত প্ৰত্যেকজন সচেতন ব্যক্তিয়ে পৰিৱেশ সম্পৰ্কে ভাবিবলৈ বাধ্য হৈ পৰিছে। সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰটো ক'বলৈ গ'লে সাহিত্যত পৰিৱেশ সজাগতা সৃষ্টিৰ প্ৰয়াস সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এক চৰ্চিত বিষয় হৈ পৰিছে। সাম্প্ৰতিক সাহিত্যত পৰিৱেশ সম্পৰ্কে অধ্যয়নৰ প্ৰচেষ্টাত সাহিত্য সমালোচনাৰ এক নতুন ধাৰা পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনা (Ecocriticism) ই বিকাশ লাভ কৰিছে। বিংশ শতিকাৰ শেষৰ ফালে আমেৰিকাত সাহিত্য সমালোচনাৰ এই ধাৰাটোৰ উত্থান ঘটে। পৰৱৰ্তী সময়ত বিশ্বৰ প্ৰেক্ষাপটত এই ধাৰাটোৱে গুৰুত্ব লাভ কৰে। পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনা এটা আন্তঃঅনুশাসনমূলক বিদ্যাশাখা, যিয়ে মূলতঃ সাহিত্য আৰু ভৌতিক পৰিৱেশৰ মাজৰ সম্পৰ্কৰ তাত্ত্বিক অধ্যয়ন কৰে। বিংশ শতিকাৰ মাজভাগৰ পৰা ঔদ্যোগীকৰণ আৰু নগৰীকৰণে প্ৰাকৃতিক জগতলৈ কঢ়িয়াই অনা সংকটৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত সাহিত্যত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় দিশবোৰ উদ্দেশ্যপ্ৰণোদিতভাৱে বিচাৰ কৰাৰ প্ৰচেষ্টাই সাহিত্যৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক দৃষ্টিভংগীৰ উত্থানত গুৰুত্ব লাভ কৰে। এই সমালোচনাই সাহিত্য আৰু সংস্কৃতিয়ে প্ৰকৃতিক কেনেকৈ প্ৰতিনিধিত্ব কৰে, প্ৰাকৃতিক জগতত মানৱতাৰ প্ৰভাৱৰ সমালোচনা কৰে আৰু পৰিৱেশ সচেতনাক প্ৰসাৰিত কৰে, সেই বিষয়ে অধ্যয়ন কৰে। পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত নিৰ্বাচিত শিশু-গল্পৰ অধ্যয়নেই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূল বিষয়বস্তু। শিশু সাহিত্যিক হিচাপে অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতত পৰিচিত কেশদা মহন্তৰ 'নিৰ্মলা নদীৰ পানী' শীৰ্ষক গল্পপুথিখনত সন্নিৱিষ্ট গল্পসমূহত প্ৰকৃতি আৰু মানৱ সমাজৰ আন্তঃসম্পৰ্কৰ বাস্তৱসন্মত চিত্ৰণ ঘটিছে। গতিকে কেশদা মহন্তৰ নিৰ্বাচিত শিশু-গল্পসমূহত প্ৰতিফলিত ঔদ্যোগিক সংস্কৃতি তথা কল-কাৰাখানা, উদ্যোগৰ সম্প্ৰসাৰণে মানুহ আৰু প্ৰকৃতি জগতলৈ কঢ়িয়াই অনা ভয়াবহতাৰ লগতে পাৰিপাৰ্শ্বিক সমস্যাৰ প্ৰতি সজাগতামূলক দিশসমূহ পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে অধ্যয়নৰ বাবে বিষয়টো নিৰ্বাচন কৰি লোৱা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

বিষয়টি অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে —

- পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰ আধাৰত

কেশদা মহন্তৰ শিশু-গল্পৰ বিচাৰ কৰা।

- কেশদা মহন্তৰ শিশু-গল্পসমূহত মানুহ আৰু প্ৰকৃতি জগতৰ আন্তঃসম্পৰ্ক কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেয়া উন্মোচন কৰা।

- পাৰিপাৰ্শ্বিক আৰু সামাজিক সমস্যাবোৰৰ মাজৰ আন্তঃসম্পৰ্ক বিচাৰ কৰি ইয়াৰ মাজেদি লেখকৰ পৰিৱেশ সজাগতামূলক দৃষ্টিভংগী কেনেদৰে প্ৰকাশ পাইছে সেয়া অধ্যয়ন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি

গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰিসৰত কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত 'নিৰ্মলা নদীৰ পানী' (১৯৯১) শীৰ্ষক শিশু-গল্পপুথিখনত সন্নিৱিষ্ট গল্পসমূহত প্ৰতিফলিত পাৰিপাৰ্শ্বিক প্ৰসংগক অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

গৱেষণা পত্ৰখনৰ তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে গল্পৰ কাহিনী বিন্যাসৰ আলোচনাত বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

১.০ পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনা আৰু অসমীয়া সাহিত্য

সাম্প্ৰতিক সাহিত্য সমালোচনাৰ এক নতুন ধাৰা পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা বুলিলে সাহিত্যত প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশ সম্পৰ্কে কৰা অধ্যয়নক বুজায়। পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ মূল বিষয়সমূহ হৈছে সাহিত্যত লেখকসকলে প্ৰকৃতি, জীৱ-জন্তু, ভূমি, প্ৰদূষণ, জলবায়ু পৰিৱৰ্তন, প্ৰাকৃতিক সম্পদৰ ব্যৱহাৰ, পৰিৱেশ প্ৰদূষণৰ পৰা হোৱা সমস্যা আৰু ফলাফল, পৰিৱেশ সংকট, পৰিৱেশ সংৰক্ষণ, জৈৱবৈচিত্ৰ সংৰক্ষণ, গোলকীয় উষ্ণতা বৃদ্ধি, মানৱসৃষ্ট পৰিৱেশ, সামাজিক পৰিৱেশ আদি সকলো দিশ সামৰি সেই বিষয়ে কেনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছে, সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হয়। ই মানৱকেন্দ্ৰিক চিন্তাধাৰা আৰু পৰিৱেশতত্ত্বৰ চিন্তাধাৰা প্ৰসাৰিত কৰে। তদুপৰি ই ঔদ্যোগীকৰণ, পুঁজিবাদ, ঔপনিৱেশিকতাবাদে গঢ় দিয়া প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি শোষণমূলক মনোভাৱক প্ৰত্যাখ্যান জনায়। মানুহ আৰু প্ৰকৃতিৰ মাজত এক আন্তঃসম্পৰ্ক বিৰাজমান। পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ মূল লক্ষ্য হৈছে সাহিত্য আৰু সংস্কৃতিৰ জৰিয়তে মানুহ আৰু প্ৰকৃতিৰ এই সম্পৰ্কৰ পুনঃবিশ্লেষণ কৰি পৰিৱেশ সচেতনতা সৃষ্টি কৰা আৰু বহনক্ষম জীৱনধাৰণৰ পদ্ধতিক প্ৰভাৱান্বিত কৰা। তদুপৰি পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাই

সাহিত্যত মানব সভ্যতাৰ উন্নয়নৰ সমান্তৰালভাৱে পৰিৱেশ জগতলৈ নামি অহা সংকটে মানুহৰ চিন্তা-চেতনাত কেনেদৰে প্ৰভাৱ পেলাইছে তাৰ অধ্যয়নৰ কৰাৰ লগতে কেনেধৰণৰ পৰিৱৰ্তনৰ মাজেদি আহি প্ৰকৃতিৰ এই দুৰৱস্থাৰ সন্মুখীন হৈছেহি তাৰো ইতিহাস অধ্যয়ন কৰে। গতিকে পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ পৰিসৰত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় বিষয়ৰ উপৰিও সংস্কৃতি, নৃতত্ত্ব, ইতিহাস, অৰ্থনীতি, দৰ্শন, মনোবিজ্ঞান আদি বিষয়কো সামৰি ল'ব বিচাৰে। সেয়ে ক'ব পাৰি যে পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ পৰিসৰ যথেষ্ট বিশাল আৰু বিস্তৃত।

বৰ্তমান সমগ্ৰ বিশ্বতে পৰিৱেশ সজাগতাৰ অংশ হিচাপে বিকাশ লাভ কৰা 'পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা' শব্দটোৰ উদ্ভাৱন হোৱাৰ পূৰ্বে 'পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা'ৰ ধাৰণাটোৰ ১৯৭৩ চনত বিট্ৰিছ মাৰ্ক্সীয় তাত্ত্বিক ৰেমন্ড উইলিয়ামছ (Raymond Williams) ৰ *The Country and the City* শীৰ্ষক গ্ৰন্থত প্ৰথম অৱতাৰণা কৰিছিল।^১ ১৯৭২ চনত প্ৰকাশিত যোচেফ মিকাৰ (Joseph Meeker) ৰ *The Comedy of Survival : Studies in Literary Ecology* নামৰ গ্ৰন্থখনত সাহিত্যত প্ৰতিফলিত জৈৱিক বিষয়বস্তু আৰু সম্পৰ্কৰ অধ্যয়নক বুজাবলৈ 'সাহিত্যিক পৰিৱেশবিজ্ঞান' (Literary Ecology) শব্দটোৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল। ৰুকাৰ্টৰ মতে, পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা হৈছে 'সাহিত্য অধ্যয়নত পৰিৱেশবিজ্ঞান আৰু পৰিৱেশগত ধাৰণাসমূহৰ প্ৰয়োগ।'^২ উল্লেখযোগ্য যে Ecocriticism শব্দটো ১৯৭৮ চনত উইলিয়াম ৰুকাৰ্ট (William Rueckert) এ তেওঁৰ 'Literature and Ecology : An Experiment in Ecocriticism' শীৰ্ষক ৰচনাত প্ৰথমবাৰৰ বাবে প্ৰয়োগ কৰিছিল।^৩ পৰৱৰ্তী সময়ত এই বিষয়টোৰ সম্পৰ্কত হোৱা ধাৰাবাহিক অধ্যয়নৰ মাজেৰে বিষয়টোৱে যথেষ্ট গুৰুত্ব লাভ কৰে। ১৯৯৬ চনত চেৰিল গ্ল'টফেল্টি আৰু হেৰল্ড ফ্ৰম (Cheryl Glotfelty, Harold Fromm) এ যুটীয়াভাৱে সম্পাদনা কৰি উলিওৱা *The Ecocriticism Reader : Landmarks in Literary Ecology* শীৰ্ষক গ্ৰন্থখনে 'পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা'ক সাহিত্য সমালোচনাৰ এটা ধাৰা হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰাত সহায় কৰে। গ্ৰন্থখনত পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ সম্পৰ্কে গ্ল'টফেল্টিয়ে আগবঢ়োৱা সংজ্ঞাটো হৈছে 'পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা হৈছে সাহিত্য আৰু ভৌতিক পৰিৱেশৰ মাজৰ আন্তঃসম্পৰ্কৰ অধ্যয়ন।'^৪ গ্ল'টফেল্টিৰ

মতে পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ মৌলিক ধাৰণাটো হৈছে মানৱ সংস্কৃতি ভৌতিক জগতখনৰ সৈতে সম্পৰ্কজড়িত আৰু দুয়োটাৰে পৰস্পৰক প্ৰভাৱান্বিত কৰে। প্ৰকৃতি আৰু মানৱ সংস্কৃতিৰ মাজৰ আন্তঃসম্পৰ্কই এই অধ্যয়নৰ মূল বিষয়বস্তু। এক তাত্ত্বিক দৃষ্টিভঙ্গী হিচাপে ই মানুহ আৰু মানুহ-ভিন্ন জগতৰ মাজৰ সম্পৰ্কৰ আলোচনা কৰে।^৫ পৰৱৰ্তী সময়ত পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ ধাৰাটোৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত গ্লেন এ. লভ্ ৰ (Glen A. Love) ৰ *Practical Ecocriticism : Literature, Biology and Environment* (২০০৩), গ্ৰেগ গাৰ্ড (Greg Garrard) ৰ *Ecocriticism* (২০০৪) ইত্যাদি গ্ৰন্থসমূহৰ অৱদান উল্লেখযোগ্য।

অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰাক্ শংকৰী আৰু শংকৰী যুগৰ সাহিত্যৰ পৰাই পৰিৱেশ সচেতনতা পৰিলক্ষিত হয়। সেই সময়ৰ সাহিত্যৰ উদ্দেশ্য পৰিৱেশ সচেতনতা নাছিল যদিও সাহিত্যৰ ধৰ্মীয় দৰ্শনৰ অন্তৰালত পৰিৱেশ সচেতনতা প্ৰকাশ পাইছিল। এইক্ষেত্ৰত মাধৱ কন্দলী, শংকদেৱ, মাধৱদেৱ আদি কবিসকলৰ ধৰ্মীয় কাব্য চৰ্চাৰ মাজত প্ৰকৃতিক উপাদান হিচাপে লোৱা দেখা যায়। অৰুণোদই আলোচনীৰ পৰা আৰম্ভ কৰি পৰৱৰ্তী সময়ৰ *জোনাকী*, *ৰামধেনু* আদি আলোচনীৰ মাজেৰে অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় ৰচনাৰ উত্থান ঘটে। জোনাকী যুগৰ ৰোমান্টিক সাহিত্যৰ মূল বিষয়েই আছিল প্ৰকৃতিপ্ৰীতি। প্ৰকৃতিক মূল বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ এই সময়ছোৱাৰ ৰোমান্টিক কবিসকল যেনে - চন্দ্ৰকুমাৰ আগৰৱালা, হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী, লক্ষীনাথ বেজবৰুৱা, ৰঘুনাথ চৌধাৰী আদিয়ে কবিতা আৰু নগেন্দ্ৰনাৰায়ণ চৌধুৰী, শৰৎচন্দ্ৰ গোস্বামী আদিয়ে গল্প ৰচনা কৰিছিল। ৰোমান্টিক যুগৰ সাহিত্যত প্ৰকৃতিয়ে গুৰুত্ব লাভ কৰিছিল যদিও সেই সাহিত্যৰাজিক পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনাৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে অধ্যয়ন কৰিব নোৱাৰি। বিংশ শতিকাৰ মাজ ভাগৰ পৰা সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে অসমীয়া সাহিত্যত পাৰিপাৰ্শ্বিক বিষয়বোৰ স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ পাবলৈ ধৰিছে। এই সময়ছোৱাৰ কবিতাৰ ক্ষেত্ৰত নৱকান্ত বৰুৱা, ৰাম গগৈ, হৰেকৃষ্ণ ডেকা, হীৰেণ ভট্টাচাৰ্য, নীলিম কুমাৰ, জীৱন নৰহ, কুশল দত্ত, কমল কুমাৰ তাঁতী আদিৰ কবিতাত পাৰিপাৰ্শ্বিক অৱক্ষয় আৰু সজাগতাৰ প্ৰসংগ পৰিলক্ষিত হয়। সেইদৰে গল্পৰ ক্ষেত্ৰত এই সময়ছোৱাৰ প্ৰায়সংখ্যক গল্পকাৰৰ গল্পত পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতনতা দেখা যায়। মহিম বৰাৰ 'এখন নদীৰ মৃত্যু', সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ 'মৰুদ্যান',

ইমৰাণ হুচেইনৰ 'গ্ৰাস' আদি গল্পৰ লগতে ভৱেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া, হোমেন বৰগোহাঞি, অৰুণা পটংগীয়া কলিতা, অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰী, বিপুলজ্যোতি খাটনিয়াৰ আদিৰ গল্পত পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতনতাই গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। উপন্যাসৰ ক্ষেত্ৰত ক'বলৈ হ'লে সাম্প্ৰতিক সময়ৰ কেইবাখনো উপন্যাসত পাৰিপাৰ্শ্বিক দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰভাৱ পৰিছে। সেইসমূহৰ ভিতৰত অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰীৰ 'ইয়াত এখন অৰণ্য আছিল', দিলীপ চন্দনৰ 'কাজিৰঙাৰ বেলাড', প্ৰভাত গোস্বামীৰ 'শুকুলা হাতীৰ খোজ', গোবিন কুমাৰ খাউণ্ডৰ 'ৰুমিয়াং', পংকজ গোবিন্দ মেধিৰ 'চৰাইচুবুৰি', যতীন্দ্ৰকুমাৰ বৰগোহাঞিৰ 'পৃথিৱীৰ মৰম' ইত্যাদি। অসমীয়া শিশু সাহিত্যৰ শিশু-গল্পসমূহত পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতৰ বিবিধ ৰূপ আৰু বিবিধ ছবি ফুটি উঠিছে। প্ৰকৃতি আৰু প্ৰাকৃতিক পৰিৱৰ্তনৰ ছবি, বিবিধ জীৱ-জন্তু, গছ-গছনি, চৰাই-চিৰিকটি আদি প্ৰকৃতিৰ সুন্দৰ আৰু মনোমোহা ৰূপৰ উল্লেখ পোৱাৰ লগতে প্ৰকৃতিৰ ভয়ানক ৰূপৰ প্ৰসংগো শিশু-গল্পসমূহত ঠাই পাইছে। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতন শিশু-সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত কেশদা মহন্ত, হৰপ্ৰিয়া বাৰুকিয়াল বৰগোহাঞি আদি অন্যতম।

২.০ পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে কেশদা মহন্তৰ নিৰ্বাচিত শিশু-গল্পৰ আলোচনা

সাধাৰণ অৰ্থত সাহিত্যত পাৰিপাৰ্শ্বিক পৰিৱেশ সম্পৰ্কে কৰা অধ্যয়নকে পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনা বুলি কোৱা হয়। প্ৰকৃতিৰ অবিহনে মানুহৰ অস্তিত্ব শূন্য, মানৱ জাতিৰ ইতিহাসৰ বিভিন্ন স্তৰত মানুহৰ মাজত প্ৰকৃতি সম্পৰ্কে সচেতনতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। সেয়ে পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতনতাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনতো সাম্প্ৰতিক সাহিত্যিকসকলে পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় বিষয়বস্তুৰ উপস্থাপনত বিশেষ গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হয়। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ এনে এগৰাকী পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতন শিশু-সাহিত্যিক হ'ল কেশদা মহন্ত। তেওঁ শিশু উপযোগী কেইবাখনো আখ্যানমূলক কাহিনী সংকলন, গল্পপুথি, উপন্যাসিকা, নাটিকা, গীত, কবিতা, ঐতিহ্য বিষয়ক প্ৰবন্ধ, পৰিৱেশ বিষয়ক প্ৰবন্ধ, আত্মজীৱনীমূলক ৰচনাৰে অসমীয়া শিশু সাহিত্যক সমৃদ্ধ কৰিছে। কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্যসমূহ বিষয়-বৈচিত্ৰৰে ভৰপূৰ। শিশু গল্পকাৰৰূপে অসমীয়া শিশু সাহিত্য জগতত পৰিচিত কেশদা মহন্তৰ *নিৰ্মলা নদীৰ পানী* (১৯৯১), *মৌ কোঁহৰ কমী প্ৰজা* (১৯৯৫), *সেউজী ধৰণী ধুনীয়া*

(১৯৯৭), *সোণালী সূতাৰে বন্ধা ঃ ককা-আইতা আৰু বিদিশাহঁত* (২০০৫) আৰু *যাওঁ আমি মৌ বিচাৰি* (২০১০)—এই পাঁচখন শিশু গল্পপুথি। সাহিত্যিক গৰাকীৰ পৰিৱেশ বিষয়ক শিশু উপযোগী গল্প আৰু প্ৰবন্ধসমূহৰ মাজেৰে তেখেতৰ পৰিৱেশ সংৰক্ষণকামী দৃষ্টিভংগীৰ উমান পাব পাৰি। উল্লেখযোগ্য যে আজিৰ পৰা চৌত্ৰিশ বছৰৰ আগতেই (১৯৯১) শিশু-কিশোৰসকলক পৰিৱেশ সংৰক্ষণৰ দিশ একোটাৰ প্ৰতি যত্নবান হ'বলৈ শিকোৱাটোৰ অন্তৰালত সাহিত্যিক গৰাকীৰ মানৱ সমাজ আৰু পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতৰ সম্পৰ্কত বিজ্ঞানসন্মত জ্ঞান আৰু তথ্যসমৃদ্ধ যুক্তিপূৰ্ণ চিন্তাধাৰাৰ আভাস পাব পাৰি।

কেশদা মহন্তৰ শিশু-গল্পপুথিসমূহৰ ভিতৰত *নিৰ্মলা নদীৰ পানী* (১৯৯১) শীৰ্ষক গল্পসংকলনখনত সন্নিৱিষ্ট আঠোটা গল্পতে পাৰিপাৰ্শ্বিক দিশবোৰ স্পষ্টৰূপত প্ৰতিফলিত হৈছে। অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ সীমাবদ্ধতাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি ইয়াৰে তিনিটা গল্প ক্ৰমে 'চিৰশ্যামল বন আৰু সুখপুৰ গাঁৱৰ কাহিনী', 'নিৰ্মলা নদীৰ পানী', 'হে বৰষুণ, অমৃত ধাৰা হৈ নামি আহিবা' গল্পত প্ৰতিফলিত প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ সম্পৰ্ক, ঔদ্যোগীকৰণে পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতলৈ কঢ়িয়াই অনা ভয়াবহতাৰ লগতে মানৱ সমাজত ইয়াৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱ আৰু পৰিৱেশ সজাগতাৰ প্ৰসংগ আদি পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে তলত উল্লেখ কৰা দিশসমূহৰ জৰিয়তে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

২.১ ঔদ্যোগীকৰণ-নগৰীকৰণৰ প্ৰভাৱত বনাঞ্চল ধ্বংস, বিপৰ্যস্ত জীৱ-জন্তু আৰু মানৱ সমাজ

মানৱ সভ্যতাৰ বিকাশধাৰাত ঔদ্যোগিক সংস্কৃতিৰ ভূমিকা উল্লেখযোগ্য। কল-কাৰখানা, উদ্যোগৰ সম্প্ৰসাৰণে সমাজলৈ অৰ্থনৈতিক উন্নয়ন, জীৱন-ধাৰণ শৈলীলৈ সূচলতা আনিছে। কিন্তু এইসমূহ গঢ়ি তোলাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত প্ৰকৃতি ধ্বংস, শোষণ কৰা দিশটোও মানৱ সমাজৰ বাবে গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়। মানুহৰ জীৱনৰ ৰক্ষক প্ৰকৃতিক ঔদ্যোগিক সংস্কৃতিয়ে সম্পদৰ দৃষ্টিৰে লক্ষ্য কৰিবলৈ লৈছে। সাম্প্ৰতিক সময়ত প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ দূৰত্ব ক্ৰমশঃ বাঢ়ি গৈছে। দেৱতা বা মাতৃ জ্ঞান কৰা প্ৰকৃতিক পুঁজিবাদী চেতনাই এতিয়া বাণিজ্যিক সম্পদলৈ পৰিণত কৰিছে। বিকাশ, উন্নয়ন আৰু অতি লাভৰ ইচ্ছাত আধুনিক সংস্কৃতিয়ে প্ৰকৃতিৰ ওপৰত ধ্বংস অব্যাহত ৰাখিছে। আধুনিক সংস্কৃতিয়ে প্ৰকৃতিক ধ্বংস কৰাই নহয়, অস্তিত্বশূন্যও কৰি তুলিছে। বিশ্বায়ন প্ৰভাৱিত আধুনিক সংস্কৃতিৰ ধাৰণাত প্ৰকৃতি কেৱল

উপাৰ্জন, ভোগ আৰু মনোৰঞ্জনৰ আধাৰ হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। মানুহ আৰু প্ৰকৃতি যি পৰস্পৰৰ পৰিপূৰক এই কথা উদ্যোগিক সংস্কৃতিত মানুহে পাহৰি গ'ল। সাম্প্ৰতিক সময়ত প্ৰকৃতিৰ ক্ৰমবৰ্ধমান ধ্বংসৰ ফলত জৈৱবৈচিত্ৰ্যলৈ আহি পৰা সংকটৰ লগতে মানৱ সমাজতো ইয়াৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱ বিদ্যমান। কাঠ, কয়লাৰ ব্যৱসায়ৰ বাবে গছ-গছনি কাটি বনাঞ্চল ধ্বংস কৰা কাৰ্যই সমগ্ৰ পৰিৱেশলৈ সংকট নমাই আনিছে। গছ-গছনি কাটি বনাঞ্চল ধ্বংস কৰাৰ ফলত পাৰিপাৰ্শ্বিক আৰু মানৱ সমাজলৈ আহি পৰা সংকটক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচনা কৰা কেশদা মহন্তৰ 'চিৰশ্যামল বন আৰু সুখপুৰ গাঁৱৰ দুখৰ কাহিনী' নামৰ শিশু-গল্পটোৰ প্ৰসংগ এই ক্ষেত্ৰত বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। গল্পটোত প্ৰতিফলিত হৈছে হিমালয়ৰ পাদদেশত অৱস্থিত চিৰশ্যামল বনাঞ্চলৰ কাষতে অৱস্থিত সুখপুৰ নামৰ গাঁওখনলৈ এই বনাঞ্চলখন ধ্বংস কৰাৰ পাছত নামি অহা সমস্যাৰ ছবি। মানুহৰ জনসংখ্যা দিনে দিনে বাঢ়ি অহাৰ ফলত কৃষিভূমি, গৃহ নিৰ্মাণ, কল-কাৰাখানা, উদ্যোগ নিৰ্মাণ আদিৰ বাবে অৰণ্য ধ্বংস কৰাটো বৰ্তমান মানুহৰ বাবে সাধাৰণ কথা হৈ পৰিছে। এনে এখন প্ৰতিচ্ছবিকে গল্পকাৰে গল্পটোৰ মাজেৰে তুলি ধৰি শিশু-কিশোৰসকলক এইবোৰৰ বিৰুদ্ধে সজাগ-সচেতন কৰাৰ প্ৰয়াস দেখিবলৈ পোৱা যায়। ভৰপুৰ খেতি-পথাৰ, জীৱ-জন্তু, গছ-গছনি, ল'ৰা-ছোৱালীয়ে খেলিব পৰা আহল-বহল পথাৰকে ধৰি প্ৰকৃতিৰ অনন্য অৱদানেৰে ভৰপুৰ আছিল সুখপুৰ গাঁওখন, এখন শূন্য আদৰ্শ গাঁৱত সুখে-সন্তোষেৰে গাঁওখনৰ ৰাইজে দিন কটাইছিল। কিন্তু দূৰ-দূৰণিৰ নগৰৰ পৰা অহা কাঠৰ ব্যৱসায়ীয়ে গাঁওখনৰ কাষতে কেইবাটাও কাঠফলা কল স্থাপন কৰি অধিক লাভৰ আশাত চিৰশ্যামল অৰণ্যৰ পৰা য'ধে-মধে গছ কাটি হাবিখন ধ্বংস কৰি পেলালে। এই সম্পৰ্কে গল্পকাৰে বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে—

চিৰশ্যামল বনৰ পৰা এই কলবোৰলৈ জধে-মধে গছ কাটি অনা হ'ল। ঘৰ-দুৱাৰ সজা, চকী-মেজ আদি আচ-বাব সজা, দলং আদি সজা, এনেকুৱা নানা ধৰণৰ কামত লগাবলৈ বোজাই বোজাই কাঠ ঠাইখনৰ পৰা উলিয়াই পঠিওৱা হ'ল। সোণৰ কণী পৰা হাঁহজনী কণীৰ লোভত মাৰি পেলোৱাৰ দৰে বেছিকৈ লাভত এইদৰে হাবিখন খাঙাং কৰিব লাগে নে বাৰু? (শিশুৰ মৌ-কোঁহ, পৃ. ১২৪)

সাম্প্ৰতিক সমাজত পুঁজিবাদী শ্ৰেণীটোৱে অধিক উপাৰ্জনৰ আশাত কেনেদৰে য'তে-ত'তে উদ্যোগ নিৰ্মাণৰ স্বার্থ হাবি-জংঘল, কৃষিভূমি আদি খাঙাং কৰি আহিছে তাৰ

উপস্থাপন গল্পটোত কৰা হৈছে। প্ৰকৃতিক কেৱল উপাৰ্জন, ভোগৰ সম্পদ হিচাপে গণ্য কৰা উদ্যোগিক সংস্কৃতিত মানুহে প্ৰকৃতিৰ সৈতে থকা আত্মিক সম্পৰ্কৰ কথা পাহৰি গ'ল। ইয়াৰ পৰিণতিত পাৰিপাৰ্শ্বিক আৰু মানৱ সমাজলৈ আহি পৰা ভয়াবহতাৰ প্ৰসংগ গল্পটোৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। সেই পাহাৰীয়া অঞ্চলটোৰ গছ-গছনি কাটি হাবি ধ্বংস কৰাৰ ফলত পাহাৰী মাটি ওলাই পৰা, বানপানী, ভূমিস্থলন হোৱা, পানীৰ অভাৱত কৃষিভূমিত শস্য নোহোৱা, বনৌষধি গছ, লতা, ফুল ক্ৰমে শুকাই যোৱা, বনৰীয়া জীৱ-জন্তু খাদ্য-আশ্ৰয়ৰ অভাৱত সেই ঠাই এৰি যোৱা আদি কৰি জৈৱবৈচিত্ৰ্যলৈ সংকট অহাৰ ফলত সুখপুৰ অঞ্চলটোলৈ দুখৰ দিন নামি আহিছিল। অতিবৃষ্টি, অনাবৃষ্টি, বানপানী, দুৰ্ভিক্ষই সুখপুৰ গাঁৱখন চিৰদিনৰ বাবে দুখপুৰলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে। এইসম্পৰ্কে গল্পকাৰে উপস্থাপন কৰিছে এনেদৰে—

কোনোকালে সেই গাঁৱৰ মানুহে নেদেখা-নুশুনা সেই বিপদে সুখপুৰ গাঁও গ্ৰাস কৰি পেলালে। এবছৰ সেই অঞ্চলটোত অতিপাত বৰষুণ হ'ল। গছ-গছনি নোহোৱাৰ ফলত ইতিমধ্যে বছৰি বছৰি অবাধে উটি অহা বালি-মাটিৰে জান-জুৰিবোৰৰ তলি পোত খাই আহিছিল। গতিকে কম সময়ৰ ভিতৰতে সিহঁতৰ বুকু ওফন্দি পাৰ বাগৰিলে ধৰিলে। মুহূৰ্তৰ ভিতৰতে সুখপুৰ গাঁৱত বানপানীৰ ধ্বংসলীলা আৰম্ভ হ'ল। গৰু গ'ল, ম'হ গ'ল, ঘৰ-দুৱাৰ গ'ল, বানপানীৰ কোবাল সোঁতত মানুহো উটি গ'ল। বাট-পথৰ চিন-মোকাম নোহোৱা হ'ল। জান-জুৰি, নৈ-নৰ্দমাৰ ওপৰত থকা দলংবোৰো পানীয়ে উটুৱাই নিলে। ফলত অন্য ঠাইৰ লগত সেই আওঁহতীয়া পাহাৰী গাঁৱখনৰ যাতায়তৰ সম্পৰ্ক ছিগি গ'ল। কোনে কাৰ খবৰ লয় অন্য ঠাইৰ পৰা সহায় দিবলৈকে বা কোন আহে? (শিশুৰ মৌ-কোঁহ, পৃ. ১২৪-১২৫)

মানৱ সভ্যতাৰ বিকাশত নদীৰ ভূমিকা অপৰিহাৰ্য। প্ৰাচীন মানৱ সভ্যতা নদীক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে বিকাশ লাভ কৰিছিল। মানৱ সমাজৰ বাবে নদী ভগৱানৰ অৱদানস্বৰূপ। নদীৰ বহুতো উপকাৰিতা আছে, যাৰ ভিতৰত মানুহ আৰু অন্য প্ৰাণীজগতক খাদ্য-শস্যৰ যোগান ধৰা, জীৱ-জন্তু আৰু মানুহৰ বাবে পানী যোগান, বতৰৰ শাক-পাচলি খেতি উৎপাদনত ভূমিকা, কৃষিভূমিত প্ৰয়োজনীয় পানী যোগান, মৎস পালন, শিল্প-উদ্যোগত প্ৰয়োজনীয় পানী যোগান ইত্যাদি। মানৱ সমাজক সবৰ্তোপকাৰে সহায় কৰা সেই নদীক বৰ্তমান মানুহে নিজৰ স্বার্থ সিদ্ধিৰ বাবে ধ্বংস

কৰিবলৈ ধৰিছে, যাৰ ফলত বৰ্তমানৰ শিশু-কিশোৰসকলৰ মনত পূৰ্বৰ নদীৰ প্ৰতি থকা মানুহৰ যি ধাৰণা সেই ধাৰণা সলনি হৈছে। বৰ্তমান সময়ত বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰা কল-কাৰাখানা, শিল্প-উদ্যোগবোৰৰ পেলনীয়া আবৰ্জনা নদীত পেলাবলৈ লোৱাৰ ফলত তাত মিহলি হৈ থকা বিষাক্ত ৰাসায়নিক পদাৰ্থৰ ফলত নদীৰ পানী ক্ৰমে দূষিত হ'বলৈ ধৰিলে। যাৰ পৰিণতিত মাছ-কাছ আদি জলজ প্ৰাণীবোৰ মৰি শেষ হোৱাৰ লগতে মানুহৰ জীৱন-চৰ্যালৈও বিপদ মাতি আনিলে। কেশদা মহন্তৰ 'নিৰ্মলা নদীৰ পানী' শীৰ্ষক গল্পটোৰ মাজেৰে মানুহৰ বিবেচনাহীন কামৰ বাবে জীৱন্ত নদী এখন এনেদৰে মৃতপায় হৈ অহাৰ ছবি এখন প্ৰতিফলিত হৈছে। গল্পটোত সোণকণৰ ককাইতৰ দিনত নিৰ্মলা নদীখনে মানুহক বিভিন্ন মাছ যোগান, জীৱ-জন্তুক, মানুহৰ খোৱা পানী যোগান, মানুহক খাদ্য-শস্য উৎপাদনত যি উপকাৰ কৰিছিল সেইকথা পৰৱৰ্তী আধুনিক প্ৰজন্মৰ নাতি সোণকণৰ বাবে সাধুকথাৰ দৰে হৈ পৰিছে। এটা সময়ত নিৰ্মলা নদীখনত মাছ ধৰি খোৱা, আইতাকহঁতে কাষত কলচী লৈ নিৰ্মলা নদীৰ পৰা পানী আনি খোৱা কথাটো সোণকণৰ বাবে অবিশ্বাস্য। কাৰণ সিহঁতৰ প্ৰজন্মটোৱে যিখন নিৰ্মলা নদী দেখিছে সেইখন এখন দূষিত পানীৰে ভৰপূৰ মাছ-কাছনথকা নদী। মানুহৰ সকলো প্ৰয়োজন পূৰণ কৰা নিৰ্মলা নদীখনৰ পানী কেনেকৈ দূষিত হৈ পৰিল সেই সম্পৰ্কে গল্পকাৰে অতি সচেতনভাৱে বৰ্ণনা কৰিছে। মানুহৰ বিবেচনাহীনতাৰ বাবে এখন নদী মৃতপায় হৈ পৰা দিশটো গল্পটোৰ মাজেৰে লেখকে বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে—

নিৰ্মলা নদী ভৈয়ামলৈ নমাৰ পৰা দহ কিলোমিটাৰ মানতে 'মাদাৰ ইণ্ডিয়া পেপাৰ মিল'টো পতা হ'ল। কাগজ কলটোৰ পেলনীয়া আবৰ্জনাবোৰ নিৰ্মলা নদীলৈকে পেলোৱা হয়। কিমান বিষাক্ত ৰাসায়নিক বস্তু তাত মিহলি হৈ থাকে। প্ৰথমতে নৈখনৰ পাৰত বাস কৰা মানুহখিনিয়ে সেইকথাবোৰ ভাবিয়ে চোৱা নাছিল। লাহে লাহে কাগজকলৰ আবৰ্জনাবোৰে নৈখনৰ পানী দূষিত হৈ আহিল। পানী বিষাক্ত হোৱাৰ কাৰণে মাছ মৰি উপাস্ত হ'ল। কাগজকলৰ উজান ভাগলৈ যি দুই-এটা মাছ নৈখনত পোৱা যায়, সেইবিলাকতো কিবা ভেকেটা-ভেকেট গোন্ধ। খালে মানুহৰ বেমাৰ হয়। নিৰ্মলা নদীয়ে পাৰত থকা মানুহক যি নিৰ্মল পানী, বতাহ, মাছ-পুটি আৰু খাদ্য সম্ভাৰ উপহাৰ দিছিল, সেই সকলোবোৰ মানুহৰ বিবেচনাহীন কামৰ ফলত নাশ পালে। আজি যেন নিৰ্মলা নদী মৰণপুৰীৰ বৈতৰণীহে। (পৃ. ১৩৮)

২.২ জলবায়ু প্ৰদূষণৰ ভয়াবহতা :

জলবায়ু প্ৰদূষণ বুলিলে সাধাৰণতে মানুহৰ কৰ্মকাণ্ডৰ ফলত জলবায়ুত অপকাৰী গেছ, ধূলিকণা আৰু বিষাক্ত পদাৰ্থ মিশ্ৰিত হোৱা প্ৰক্ৰিয়াকে বুজা যায়। ই প্ৰকৃতিৰ স্বাভাৱিক ভাৰসাম্য বিনষ্ট কৰে আৰু মানুহ আৰু প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশত বিভিন্নধৰণৰ নেতিবাচক প্ৰভাৱ পেলায়। প্ৰাকৃতিক আৰু মানৱসৃষ্ট দুটা কাৰণত বায়ু প্ৰদূষিত হয়। শিল্প-উদ্যোগ, কল-কাৰাখান, কৃষিক্ষেত্ৰত কীটনাশক দ্ৰব্যৰ প্ৰয়োগ, বনাঞ্চল ধ্বংস, জলবায়ুত বিষাক্ত গেছ, ধূলিকণাৰ মিশ্ৰণ আদিৰ জলবায়ু প্ৰদূষিত হোৱাৰ মূল কাৰণ। জলবায়ু প্ৰদূষণৰ ফলতেই পৃথিৱীত এছিড বৰষুণ হ'বলৈ আৰম্ভ কৰে। ই হৈছে বৰ্তমান সময়ৰ এক অন্যতম বিশ্বজনীন সমস্যা। আধুনিক সমাজ-সভ্যতাৰ বিকাশৰ লগে লগে বৃদ্ধি হোৱা বিভিন্ন শিল্প-উদ্যোগ, কল-কাৰাখান, যান-বাহন আদি চলোৱাৰ বাবে প্ৰয়োগ কৰা ইন্ধনৰ ফলত এই যন্ত্ৰসমূহৰ পৰা নিৰ্গত হোৱা প্ৰদূষক পদাৰ্থ তথা ধোঁৱা, বিভিন্ন আৱলম্বিক গেছ যেনে : নাইট্ৰ'জেন অক্সাইড আৰু ছালফাৰ-ডাই-অক্সাইডৰ বায়ুমণ্ডলত যোগ হৈ জলবায়ু প্ৰদূষিত কৰি এছিড বৰষুণ সৃষ্টি হয়। বায়ু প্ৰদূষণে মানুহ আৰু অন্যান্য জীৱ-জন্তুৰ লগতে খাদ্য-শস্যৰো ক্ষতি সাধন কৰে। এই বায়ু প্ৰদূষণৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা এছিড বৰষুণৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱ মানৱ স্বাস্থ্য, আন প্ৰাণীজগত, উদ্ভিদজগত, জলবায়ুৰ ওপৰত পৰাৰ লগতে পকী ঘৰ-দুৱাৰ, অট্টালিকা, পুৰণি কীৰ্তিচিন আদিৰো ই অনিষ্ট সাধন কৰে। এছিড বৰষুণ কিয় হয় আৰু মানৱ আৰু পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতত ইয়াৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে কেশদা মহন্তৰ 'হে বৰষুণ, অমৃতৰ ধাৰা হৈ নামি আহিবা' নামৰ শিশু-গল্পটোত প্ৰতিফলিত হৈছে। গল্পটোত দেখা যায় গল্পকাৰে মৃদুল নামৰ দিল্লীত বি.এচ চি. পঢ়ি থকা ল'ৰাটোৰ জৰিয়তে গৰম বন্ধত ঘৰলৈ আহি সপ্তম শ্ৰেণীত পঢ়ি থকা ভায়েক-ভনীয়েকহঁতক এছিড বৰষুণ কি আৰু ইয়াৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱৰ বিষয়ে জ্ঞান দিছে। গল্পকাৰৰ বিজ্ঞানমনস্ক চিন্তাৰে শিশু-কিশোৰসকলৰ মনত শৈশৱৰে পৰা পৰিৱেশ সম্পৰ্কে সচেতনতা গঢ়ি তুলিবলৈকে শিশু-গল্পসমূহত লোককল্পনাৰ সৈতে বিজ্ঞান মানসিকতাক সামৰি প্ৰতিটো দিশ চালি-জাৰি চোৱাৰ এটা আগ্ৰহ তেওঁৰ গল্পবোৰত সততে দেখা যায়। সেয়ে এই গল্পটোত গল্পকাৰে শিশু-কিশোৰসকলক বৰষুণৰ সৌন্দৰ্যতা আৰু আমেজৰ কথা শিশুসুলভ বৰ্ণনাৰে কোৱাৰ লগতে বৰষুণেও কেতিয়াবা কেনেদৰে মানৱ সমাজলৈ বৰবিহ কঢ়িয়াই

আনিব পাৰে সেই সম্পৰ্কেও শিশু-কিশোৰসকলক বিজ্ঞানসন্মত দৃষ্টিভংগীৰে জ্ঞান আগবঢ়াইছে। গল্পটোত মৃদুল চৰিত্ৰটোৰ দ্বাৰা এছিড বৰষুণ কি কাৰণে হয় আৰু ই পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতৰ ওপৰত পেলোৱা নেতিবাচক প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে—

“তোমালোকে এছিড বৰষুণ বা অম্ল বৰষুণৰ নাম শুনিছা নহয়। এনে বৰষুণ প্ৰাণী, উদ্ভিদ উভয়ৰে কাৰণেই ভয়ানক অনিষ্টকৰ। নানা কাৰণত বৰষুণৰ পানীত কম-বেছি পৰিমাণে কিছু এছিড থাকেই। পেট্ৰলিয়াম, কয়লা আদি ইন্ধন বেছিকৈ পোৰাৰ ফলত বায়ুমণ্ডলত ছালফাৰ-ডাই-অক্সাইড আৰু নাইট্ৰ’জেন অক্সাইড আদি নানা ধৰণৰ অনিষ্টকাৰী গেছবোৰৰ উদ্ভৱ হয়। জলীয় বাষ্পৰ লগ লাগি ইয়াৰ দুটামানে নানা প্ৰকাৰৰ এছিড তৈয়াৰ কৰে। সেই এছিডেই বৰষুণৰ পানীত মিহলি হৈ আহে। তেনে এছিডৰ পৰিমাণ বেছি হ’লে বৰষুণজাকক এছিড বৰষুণ বোলা হয়। এনে বৰষুণ বেছি হোৱা ঠাইত নৈ-বিল, মাছ-কাছ আদি জলচৰ প্ৰাণীবোৰৰো বিনাশ সাধন হয়, গছ-গছনি, হাবি-বনো ধ্বংসৰ মুখত পৰে। এনে বৰষুণে মাটিত অম্লগুণ বেছি কৰি শস্যৰ অনুপযুক্ত কৰি পেলায়। (পৃ. ১২৯)

এছিড বৰষুণে প্ৰকৃতি জগতৰ লগতে মানুহৰ স্বাস্থ্য আৰু শিল-ইটাৰে নিৰ্মিত বিভিন্ন আচবাব, পকী অট্টালিকা, পুৰণি কীৰ্তিস্তম্ভ আদিৰো ক্ষতিসাধন কৰাৰ দিশটো গল্পটোত প্ৰতিফলিত হৈছে এনেদৰে—

“১৯৪৭ চনত জাপানত হোৱা এজাক এছিড বৰষুণত তিতা মানুহে চকুৰ পোৰণি, চকু ৰঙা পৰা ইত্যাদি ৰোগত ভুগিব লগা হৈছিল। এছিড বৰষুণে ঘৰ-দুৱাৰ, পুৰণি কীৰ্তিচিন আদিৰো ব্যাপক অনিষ্ট সাধন কৰে। (পৃ. ১২৯)

এনেদৰে শিশু-গল্পটোৰ জৰিয়তে জলবায়ু পৰিৱৰ্তনৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা এছিড বৰষুণে পাৰিপাৰ্শ্বিক আৰু মানৱ জগতলৈ কঢ়িয়াই অনা ভয়াবহতাৰ সম্পৰ্কে প্ৰতিফলিত হৈছে।

২.৩ শিশু-কিশোৰৰ মাজত পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতাৰ প্ৰসংগ

দৰাচলতে মানুহে নিজৰ সুবিধাৰ বাবে প্ৰাকৃতিক সম্পদবোৰ লাহে লাহে ধ্বংস কৰিবলৈ লোৱাৰ ফলত আমাৰ চৌপাশৰ পৃথিৱীখনৰ পৰিৱেশ দ্ৰুতগতিত পৰিৱৰ্তন হ’বলৈ ধৰে আৰু ইয়াৰ ফলস্বৰূপে মানৱ সমাজত সৃষ্টি হ’ব পৰা জটিল সমস্যা আৰু ভৱিষ্যত সম্পৰ্কত মানুহ সন্দ্বিহান হৈ পৰিল। সেয়ে সমাজৰ পৰিৱেশ সচেতন ব্যক্তিসকলে পৰিৱেশ ৰক্ষণাবেক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত সজাগতা সৃষ্টিৰ

বাবে যথেষ্ট কষ্ট কৰিবলৈ ধৰিলে। প্ৰত্যেক বছৰে ২২এপ্ৰিল তাৰিখটো ‘ধৰিত্ৰী দিৱস’ আৰু ৫ জুন দিনটোক ‘বিশ্ব পৰিৱেশ দিৱস’ হিচাপে উদ্‌যাপন কৰাটো পৰিৱেশ সজাগতাৰে ফচল। আনহাতে ১৯৮৪ চনত বন সংৰক্ষণৰ বাবে The Enviroment Protection Act প্ৰয়োগ কৰা হয়।^৬

পৰিৱেশ প্ৰদূষিত হ’লে মানৱ সমাজৰ বাবে প্ৰবল ভাবুকিৰ সৃষ্টি কৰে। সেয়েহে বৰ্তমান সময়ত প্ৰত্যেকজন সচেতন ব্যক্তিয়ে পৰিৱেশ সম্পৰ্কে ভাবিবলৈ বাধ্য হৈ পৰিছে। সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষকৈ সৃষ্টিশীল সাহিত্যত প্ৰত্যক্ষভাৱে পৰিৱেশ সজাগতা সৃষ্টিৰ বাবে প্ৰচেষ্টা দেখা পোৱা নাযায় যদিও সাহিত্যৰ মাজত পৰিৱেশ সজাগতা সৃষ্টিৰ প্ৰয়াস একেবাৰে নাই বুলি ক’ব নোৱাৰি। সাহিত্যত পৰিৱেশ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা পাৰিপাৰ্শ্ব-সমালোচনাই সাহিত্যৰ জৰিয়তে পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতা সৃষ্টিৰ প্ৰসংগ অৱতাৰণা কৰাৰ ক্ষেত্ৰটো বিশেষভাৱে গুৰুত্ব দিয়ে। পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতাই মানৱ সমাজৰ চাৰিওফালে আগুৰি থকা পাৰিপাৰ্শ্বিক অৱস্থাৰ প্ৰতি সচেতন হোৱা, পৰিৱেশ বিনষ্ট হোৱাৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা সমস্যাসমূহৰ বিষয়ে মানৱ সমাজত সচেতন উপলব্ধি গঢ়ি তোলা আৰু ইয়াৰ সংৰক্ষণৰ বাবে ইতিবাচক মনোভাৱ গঢ়ি তোলাৰ চেষ্টা কৰে।

পাৰিপাৰ্শ্বিক সমালোচনাই পাৰিপাৰ্শ্বিক সমস্যাৰ প্ৰেক্ষাপটত পাৰিপাৰ্শ্বিক বিষয়বোৰৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি পৰিৱেশতাত্ত্বিক সমস্যাসমূহৰ প্ৰতি সজাগতা সৃষ্টি কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে। কেশদা মহন্তৰ শিশু-উপযোগী গল্পবোৰৰ মাজেৰে এনে সজাগতামূলক দৃষ্টিভংগীৰে প্ৰতিফলন ঘটিছে। শিশুৰ মনত শৈশৱৰে পৰাই পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতখনৰ প্ৰতি সচেতন মনোভাৱ গঢ়ি তোলা, বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ অধিকাৰী কৰি তোলাৰ মানসেৰে তেওঁৰ শিশু সাহিত্যত অসমীয়া লোককল্পনাৰ মানসত গঢ় লৈ উঠা নদ-নদী, চৰাই-চিৰিকটি, জীৱ-জন্তু, গছ-গছনিৰ ৰূপকথাবোৰ বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে আজিৰ শিশুৱে চোৱাৰ পোষকতা কৰাৰ চেষ্টা শিশু-গল্পবোৰত প্ৰকাশ পাইছে। প্ৰকৃতি পৰ্যবেক্ষণ কেশদা মহন্তৰ গল্পৰ এক অন্যতম দিশ। প্ৰকৃতিৰ বিনন্দীয় ৰূপৰ বৰ্ণনা আৰু পৰ্যবেক্ষণৰ যোগেদি শিশু-কিশোৰক প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি দায়বদ্ধ হ’বলৈ শিকাইছে। সাম্প্ৰতিক সময়ত ভয়াবহ হৈ উঠা বন্যপ্ৰাণী আৰু মানুহৰ সংঘাত সম্পৰ্কীয় কাৰণবোৰো গল্পৰ বিষয়বস্তু হিচাপে অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। বনাঞ্চল ধ্বংসৰ ফলতেই যে বন্যপ্ৰাণীয়ে জন-অৰণ্যত

প্ৰৱেশ কৰিছে, সেইকথা গল্পৰ চলেৰে শিশু-কিশোৰক প্ৰত্যয়দীপ্তভাৱে বুজাইছে।^৭ পৰিৱেশ সজাগতাৰ দিশটো গল্পকাৰৰ ‘চিৰশ্যামল বন আৰু সুখপুৰ গাঁৱৰ দুখৰ কাহিনী’ গল্পটোত প্ৰকাশ পাইছে। কাঠফলা কল-কাৰাখানাৰ ব্যৱসায়ৰ বাবে পুঁজিপতি শ্ৰেণীটোৱে সুখপুৰ গাঁৱৰ কাষতে থকা চিৰশ্যামল অৰণ্যখনৰ গছ-গছনি কাটি উদং কৰাত অতিবৃষ্টি, অনাবৃষ্টি, বানপানীয়ে গোটেই অঞ্চলটোলৈ দুৰ্ভিক্ষ কঢ়িয়াই অনাৰ কথা ইতিমধ্যে প্ৰথমটো উপাখ্যায়ত আলোচনা কৰি অহা হৈছে। গল্পটোৰ কাহিনীৰ বৰ্ণনাৰ জৰিয়তে গল্পকাৰৰ গছ-গছনিয়ে মানুহক কৰা উপকাৰ সম্পৰ্কে শিশু-কিশোৰসকলক শৈশৱৰে পৰাই শিকাই, সজাগ কৰি, গছ নাথাকিলে পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতত কি কি ক্ষতি হয়, পৰিৱেশ সংৰক্ষণ কিয় কৰিব লাগে এই সম্পৰ্ক জ্ঞান দিয়াৰ মানসিকতাৰ প্ৰতিফলন ঘটাইছে এনেদৰে—

গছৰ শিপাই মাটিবোৰ খামুচি ধৰি থকাৰ কাৰণে বৰষুণৰ পানীয়ে তাক খহাই ক্ষয় নিয়াব নোৱাৰে। গছ নথকা মুকলি ঠাইত বৰষুণৰ পানী জোৰেৰে আহি পোনে পোনে মাটিত পৰে। তেতিয়া মাটিডোখৰ জীপাল সাৰুৱা হয়। গছে মাটিক প্ৰখৰ ৰ’দৰ তাপৰ পৰাও ৰক্ষা কৰে আৰু প্ৰবল বেগেৰে অহা ধুমুহা-বতাহৰ বেগো আগভেটি ধৰি কমাই দিয়ে। গছে বানপানীৰো বেগ কমায়, শব্দ-প্ৰদূষণ আদিৰো মাত্ৰা কমায়। গছে কাৰ্বন-ডাই-অক্সাইড বা এণ্ডাৰ গেছ গ্ৰহণ কৰি সূৰ্যৰ তাপৰ সহায়ত নিজৰ কাৰণে আহাৰ তৈয়াৰ কৰাৰ উপৰিও প্ৰাণীসমূহৰ কাৰণে অক্সিজেন গেছ এৰি দিয়ে। প্ৰাণীসমূহৰ বেছিভাগেই গছৰ পৰাই আহাৰ লাভ কৰে। মুঠতে ভাবি চালে দেখিবা, গছে আমাক কল্লতৰুৰ দৰে কিয়েই বা নিদিয়াকৈ আছে? এই হেন উপকাৰী গছ-গছনি যদি আমি জধে-মধে ধ্বংস কৰোঁ, আমাৰ দুখ-দুৰ্গতি হ’বই। ...দেখিলা নে অকণিহঁত, জধে-মধে গছ-বন ধ্বংস কৰিলে মানুহৰ কেনেকুৱা দুৰ্গতি হয়। গছ-গছনিক মৰম কৰিলে গছেও আমাক পালন-পোষণ কৰি থাকিব। সেয়ে নহ’লে কি হ’ব পাৰে দেখিলা নহয়। (পৃ. ১২৪-১২৫)

গল্পকাৰৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতাৰ প্ৰকাশ তেওঁৰ ‘হে বৰষুণ, অমৃতৰ ধাৰা হৈ নামি আহিবা’ গল্পটোৰ মাজেদিও পৰিদৃশ্য হৈছে। কল-কাৰাখানা, যান-বাহনৰ বৃদ্ধিৰ লগে লগে ইয়াৰ পৰা নিৰ্গত দূষিত ধোঁৱাই বায়ুমণ্ডলক প্ৰদূষণ কৰাৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা এছিড বৰষুণৰ ফলত মানৱ আৰু পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতত হোৱা বিস্তৰ ক্ষতিৰ প্ৰসংগ গল্পটোৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত হৈছে। এছিড বৰষুণৰ ভয়াবহ ক্ষতিৰ

পৰা মানৱ সমাজ, পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতক ৰক্ষা কৰিবলৈ হ’লে কেনেধৰণৰ পদক্ষেপ মানৱ সমাজে গ্ৰহণ কৰিব লাগিব সেই সম্পৰ্কে বিজ্ঞানসন্মত দৃষ্টিৰে শিশু-কিশোৰসকলৰ মাজত সজাগতামূলক চিন্তা গঢ়ি তোলাৰ প্ৰয়াস এই গল্পটোৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। গল্পকাৰে সেয়ে মৃদুল চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে তাৰ ভায়েক-ভনীয়েকহঁতক এছিড বৰষুণ কিয় সৃষ্টি হয়, পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতত ইয়াৰ ক্ষতিকাৰক প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে কোৱাৰ লগতে আৰু এই সমস্যা কেনেদৰে সমাধান কৰিব লাগিব, সেই সম্পৰ্কে সজাগতা সৃষ্টিৰ চেষ্টা প্ৰকাশ কৰিছে। গল্পটোত এইসম্পৰ্কে আছে—

‘আমি যিমান পাৰোঁ খনিজ তেল, গেছ, কয়লা ইত্যাদি জৈৱিক ইন্ধনৰ ব্যৱহাৰ কমাব লাগিব। সেইবিলাক ব্যৱহাৰ কৰিলেও তাৰ ফলত উদ্ভৱ হোৱা গেছবিলাক নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব লাগিব।’ (পৃ. ১২৯)

মানৱ সভ্যতাৰ বিকাশৰ বাবে কল-কাৰাখানা, উদ্যোগ আদিৰ ক্ষেত্ৰটো আগবঢ়াৰ প্ৰয়োজন। কিন্তু ইয়াৰ বাবে পাৰিপাৰ্শ্বিক পৰিৱেশ বিনষ্ট নকৰাকৈ কল-কাৰাখানাসমূহৰ পৰা নিৰ্গত হোৱা দূষিত পেলনীয়া সামগ্ৰীবোৰ শোধন কৰিব পৰা ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিব লাগিব। আজিৰ মানুহে পাৰিপাৰ্শ্বিক পৰিৱেশ প্ৰদূষিত নকৰাকৈ কেনেদৰে কল-কাৰাখান, উদ্যোগসমূহ নিৰ্মাণ তথা পৰিচালনা কৰিব পাৰি সেই সম্পৰ্কে বিজ্ঞানসন্মত দৃষ্টিৰে চিন্তা-চৰ্চা কৰিব লাগিব। কেশদা মহন্তৰ ‘নিৰ্মলা নদীৰ পানী’ নামৰ গল্পটোত এই সম্পৰ্কে সচেতনতাৰ প্ৰতিফলন ঘটাইছে কল-কাৰাখানৰ পেলনীয়া আৰ্জনাৰোৰ নিৰ্মলা নদীত পেলোৱাৰ ফলত নদীকেন্দ্ৰিক সেই অঞ্চলটোলৈ নামি অহা সমস্যা তথা নদীখনৰ পানীবোৰ দূষিত হৈ পৰা বৰ্ণনাৰ মাজেৰে। এই কল-কাৰাখানাসমূহৰ পৰা নিৰ্গত হোৱা দূষিত পদাৰ্থবোৰৰ পৰা কেনেদৰে পাৰিপাৰ্শ্বিক জগত আৰু মানৱ সমাজক ৰক্ষা কৰিব পাৰি সেই সম্পৰ্কে গল্পকাৰে সোধকণৰ ককাক চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে শিশু-কিশোৰসকলৰ মাজত সজাগতা গঢ়ি তোলাৰ বিজ্ঞানসন্মত চিন্তাৰ প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে—

কাগজ কল পাতিবৰ সময়ত তাৰ পৰা হ’ব পৰা অনিষ্টবোৰৰ কথা চিন্তা কৰি চাব লাগিছিল। তদুপৰি আৰ্জনাৰোৰ পোনে পোনে নৈত নেপেলাই অন্য ব্যৱস্থা কৰাৰ কথাও ভাবিব লাগিছিল। তই বোপাই, সৰু ল’ৰা। সেইবোৰ দূষিত নকৰাকৈ কল-কাৰাখানা পতাৰ বহুতো ব্যৱস্থা আছে। কিছুমান পেলনীয়া বস্তু শোধন কৰিব পাৰি,

কিছুমানৰ পৰা অন্য নতুন দৰ্কাৰী বস্তু উলিয়াব পাৰি। পশ্চিমৰ কিছুমান দেশে এনেকুৱা পেলনীয়া আৱৰ্জনা অন্য বেলেগ বেলেগ কামত খটুৱাইছে। কল-কাৰাখানৰ দ্বাৰা বায়ু, পানী, মাটি, দূষিত কৰি পৰিৱেশ নষ্ট কৰিলে মালিক পক্ষক শাস্তি দিব পৰাকৈ দেশত কেইবাখনো আইন আছে। আমি পৰিৱেশ প্ৰদূষিত কৰি প্ৰাণী আৰু উদ্ভিদৰ কোনো প্ৰকাৰৰ অনিষ্ট সাধন নকৰাকৈহে কল-কাৰাখানা, শিল্প-উদ্যোগ বঢ়াব লাগিব। (পৃ. ১৩৯)

৩.০ উপসংহাৰ

পাৰিপাৰ্শ্বিক-সমালোচনাৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্য (শিশু-গল্পৰ বিশেষ উল্লেখসহ) শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ অন্তত প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্তসমূহ হ'ল—

- কেশদা মহন্তৰ শিশু-গল্পসমূহত পাৰিপাৰ্শ্বিক প্ৰসংগই

যথেষ্ট গুৰুত্ব লাভ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

- পাৰিপাৰ্শ্বিক ভাৰসাম্য বিনষ্ট কৰাৰ ফলত মানৱ সমাজৰ লগতে অন্যান্য জীৱ-জন্তু, গছ-গছনি, জলবায়ু আদি পাৰিপাৰ্শ্বিক জগতত দেখা দিয়া সমস্যা, প্ৰত্যাৱৰ্তনক শিশু-গল্পসমূহত উপস্থাপন কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

- গল্পকাৰে সমসাময়িক সময়ৰ অসমৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক সমস্যাসমূহক প্ৰত্যক্ষ কৰি ইয়াৰ অন্তৰালৰ কাৰকসমূহৰ উন্মোচন কৰি পাৰিপাৰ্শ্বিক সজাগতা সৃষ্টিৰ প্ৰয়াস কৰিছে। এই দিশটো আলোচ্য গল্পসমূহৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। পৰিৱেশ আৰু মানুহৰ আন্তঃসম্পৰ্কৰ বিষয়ে শিশু-কিশোৰসকলৰ চিন্তা-চেতনাত শৈশৱৰে পৰা সচেতনতা গঢ় দিয়াত গল্পকাৰৰ এই গল্পসমূহৰ ভূমিকা উল্লেখযোগ্য। □

প্ৰসংগসূত্ৰ :

- ১। Peter Barry, *Beginning Theory : An Introduction to Literary and Cultural Theory*, p. 250
- ২। Cheryll Glotfelty & Harold Fromm, *The Ecocriticism Reader : Landmarks in Literary ecology*, p. xx
- ৩। Peter Barry, op.cit., p. 249
- ৪। Cheryll Glotfelty & Harold Fromm, op.cit., p. xviii
- ৫। ibid, p. xix
- ৬। বিমল মজুমদাৰ, *সাহিত্য : তত্ত্ব আৰু সমীক্ষা*, পৃ. ১১
- ৭। নৰকুমাৰ চমুৱা(সংক / সম্পা.), *শিশুৰ মৌ-কোঁহ : কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ*, পৃ. ০.২১

গ্ৰন্থপঞ্জী

মূলগ্ৰন্থ :

চমুৱা, নৰকুমাৰ (সংক / সম্পা.). *শিশুৰ মৌ-কোঁহ : কেশদা মহন্তৰ শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ*. বাপচন্দ্ৰ মহন্ত-কেশদা মহন্ত ন্যাস, যোৰহাট, জুন ২০২১.

প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ :

অসমীয়া

মজুমদাৰ, বিমল. *সাহিত্য : তত্ত্ব আৰু সমীক্ষা*. জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, আগষ্ট, ২০১৬.

এম.ফিল. গৱেষণা গ্ৰন্থ :

দাস, জ্যোতিপ্ৰিয়। *পাৰিপাৰ্শ্ব-সমালোচনাৰ আধাৰত শুকুলা হাতীৰ খোজ আৰু ইয়াত এখন অৰণ্য আছিল উপন্যাসৰ অধ্যয়ন*. অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১৯.

ইংৰাজী

Barry, Peter. *Beginning Theory : An Introduction to Literary and Cultural Theory*. Viva Books, New Delhi, 1st Indian Ed., 2018.

Glotfelty, Cheryll & Harold Fromm (ed.). *The Ecocriticism Reader : Landmarks in Literary Ecology*. University of Georgia Press, Georgia, 1996.

শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ দৃষ্টিভঙ্গী



আয়েশা বেগম

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী - ৭৮১০০১
☎ ৯১০১১৭৭০৬৭
✉ ayeshab373@gmail.com



ড° নুৰ ইছলাম শইকীয়া

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী - ৭৮১০০১
☎ ৭০৮৬৩১৪৯১২
✉ saikianur@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ :

শংকৰদেৱ অসমৰ ইতিহাসত এক বিপ্লৱী ব্যক্তিত্ব। তেওঁ কেৱল এগৰাকী ধৰ্ম প্ৰচাৰকেই নহয়, এজন কবি, নাট্যকাৰ, সংগীতজ্ঞ, চিত্ৰশিল্পী, সমাজ সংস্কাৰক আৰু সাংস্কৃতিক সংগঠকো আছিল। তেওঁৰ নেতৃত্বত গঢ় লৈ উঠা একশৰণ নামধৰ্মই অসমৰ সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক জীৱনত গভীৰ প্ৰভাৱ পেলায়। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে ভিন্নজন সাহিত্যিক, সমালোচক, ইতিহাসবিদ আৰু গৱেষকে শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে নিজ নিজ দৃষ্টিকোণেৰে আলোচনা আগবঢ়াইছে। এইসকলৰ ভিতৰত জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা প্ৰধান। দুয়োগৰাকী ব্যক্তিয়ে শংকৰদেৱ সম্পৰ্কীয় অধ্যয়ন ধৰ্মীয় আৱেষ্টনীৰ ভিতৰতে সীমাবদ্ধ নাৰাখি প্ৰগতিশীল দিশটোত অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ যোগেদি শংকৰদেৱৰ প্ৰগতিশীল চিন্তা আৰু বৈপ্লৱিক দৃষ্টিভঙ্গী সম্পৰ্কে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ দৃষ্টিৰে বিচাৰ বিশ্লেষণ কৰা হ'ব।

সূচক অভিধা :

সমাজ সংগঠক, বিপ্লৱী, প্ৰগতিশীল, স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য, নৱজাগৰণ।

০.০ অৱতৰণিকা :

সমাজ সংগঠকৰূপে অসমীয়া সমাজ জীৱনত শংকৰদেৱৰ অৱদান আছিল অতুলনীয়। তেওঁ আধুনিক অসমীয়া সমাজখনৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণৰ যোগেদি অসমৰ সমাজনায়কত পৰিণত হৈছিল। বৃহৎ অসমীয়া জাতি গঠনৰ উদ্দেশ্য আগত লৈ শংকৰদেৱে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীক সামৰি সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ চৰ্চাত অৱতীৰ্ণ হোৱা দেখা যায়। এইগৰাকী সমাজনায়ক নৱজাগৰণৰ পথিকৃৎ শংকৰদেৱকেই বুনিয়াদ হিচাপে লৈ পৰৱৰ্তী সময়ত জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাই অসমৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক ভেটি সুদৃঢ় কৰাৰ প্ৰচেষ্টা কৰে। শংকৰদেৱে আগবঢ়াই যোৱা মাৰ্গেৰে যিকোনো লোকেই আত্মপৰীক্ষাৰ যোগেদি নিজৰ বিকাশ সাধিব পাৰে। এখন প্ৰগতিশীল সমাজ গঠনৰ বীজ এই আত্মপৰীক্ষাৰ মাজতেই নিহিত হৈ থাকে। ৰূপান্তৰৰ সাধক শংকৰদেৱৰ চিন্তা-চেতনাত প্ৰগতিশীলতাৰ এক শক্তিশালী ধাৰা পৰিলক্ষিত হয়। প্ৰগতিশীলতাকে আধাৰ হিচাপে লৈ শংকৰদেৱে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য, সমাজ-সংস্কৃতি সকলো দিশতে নৱোন্মেষৰ সূচনা কৰে। প্ৰগতিশীলতাই সংস্কাৰৰ পৰা মুক্তিৰ দাবী কৰে। এই প্ৰগতিশীলতাৰ আদৰ্শৰেই শংকৰদেৱে কু-সংস্কাৰৰ বিপৰীতে গৈ বৈপ্লৱিক চিন্তাৰে সমাজ-সংস্কৃতি গঠনৰ পোষকতা কৰে। সেয়েহে তেওঁৰ দৰ্শন, সৃষ্টি, কাৰ্যাৱলী সকলো ক্ষেত্ৰতে বৈপ্লৱিক দৃষ্টিভঙ্গীৰ পৰিচয় পোৱা যায়। আলোচ্য বিষয়টোৰ সৈতে জড়িত উল্লিখিত দিশসমূহ এই গৱেষণা পত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভঙ্গীৰে আলোচনা কৰা হ'ব।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা দুয়োগৰাকী ব্যক্তিয়ে অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিলৈ শংকৰদেৱৰ অৱদান সম্পৰ্কে প্ৰগতিশীল দৃষ্টিভংগীৰে আলোচনা আগবঢ়াই গৈছে। শংকৰদেৱ সম্পৰ্কত শিল্পী দুজনাৰ যি চিন্তা-চেতনা সেই বিষয়ে আলোচনা কৰাই আমাৰ গৱেষণা পত্ৰৰ মূল উদ্দেশ্য।

০.২ অধ্যয়নৰ উৎস :

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুতকৰণৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰাথমিক উৎস হিচাপে ‘জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী’ আৰু ‘বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা ৰচনাসম্ভাৰ (দ্বিতীয় খণ্ড)’ৰ সহায় লোৱা হৈছে আৰু গৌণ উৎস হিচাপে অধ্যয়নৰ বিষয়ৰ সৈতে সংগতি থকা বিভিন্ন প্ৰবন্ধপাতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আৰু বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ শংকৰদেৱ সম্পৰ্কীয় যি দৃষ্টিভংগী সেই সম্পৰ্কীয় আলোচনা অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

মূল বিষয়ৰ সামগ্ৰিক আলোচনাৰ ক্ষেত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক গৱেষণা পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ মূল আলোচনা :

অসমীয়া মানুহৰ আৱেগজড়িত যিবোৰ বিষয়ে বস্তুনিষ্ঠতাৰে বিচাৰ-বিশ্লেষণত অনীহাৰ সন্মুখীন হৈছিল, তেনেবোৰ বিষয়কে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই সাম্প্ৰতিক কালৰ পটভূমিত আলোকপাত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল। আধুনিক অসমীয়া সমাজত তেনে এটি বহু চৰ্চিত বিষয় হ’ল শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ। অসমীয়া জাতি গঠনত অগ্ৰণী ভূমিকা লোৱা শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে পোনপ্ৰথমে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই আলোচনা আগবঢ়ায়। তেওঁ ‘শংকৰদেৱ’ (১৯০১) আৰু মহাপুৰুষ ‘শ্ৰীশ্ৰী শংকৰদেৱ’ (১৯১৪) নামৰ জীৱনীগ্ৰন্থ দুখনৰ যোগেদি শংকৰদেৱ তথা নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্ম সংস্কৃতিক সত্ৰ নামঘৰৰ থাপনাৰ পৰা উলিয়াই আনি নতুন যুগৰ নতুন পোহৰত নতুনকৈ প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত বেজবৰুৱাৰ আলোচনাকে ভিত্তি কৰি জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই ‘শংকৰদেৱ’ বিষয়টিক আন এক নতুন মাত্ৰা দান কৰি আধুনিক অসমীয়া ৰাইজৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰিছিল। তেওঁ দান কৰা সেই মাত্ৰাটি হ’ল শংকৰদেৱৰ প্ৰগতিশীলতা। অসমত সাংস্কৃতিক ৰাষ্ট্ৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰি যাওঁতা, অসমীয়া সভ্যতা সংস্কৃতিক প্ৰগতিশীলতাৰ দিশে আগবঢ়াই

নিয়া শংকৰদেৱৰ সন্দৰ্ভত আগৰৱালাই এনেদৰে লিখিছেঃ “আমি ইমান দিনে মহাপুৰুষ শ্ৰীশংকৰদেৱৰ প্ৰতিভাৰ মূল্য ভালকৈ উপলব্ধি কৰিব পৰা নাছিলোঁ। শংকৰদেৱক কেৱল এজন ধৰ্ম সংস্কাৰকৰ শাৰীত থৈয়েই আৰু তেওঁ কিছু কবিত্ব-প্ৰতিভাৰ বিষয়ে আধাডুখৰীয়া আলোচনা কৰি তেওঁৰ বিষয়ে সামৰণি মাৰিছিলোঁ। তেওঁৰ মহা প্ৰতিভা বুজিবলৈ ভালকৈ চেষ্টা নকৰাৰ কাৰণ আমাৰ সেই সময়ৰ ৰাজনৈতিক দাসত্বৰ লগে লগে সাংস্কৃতিক দাসত্ব-আজিও যে সেই সাংস্কৃতিক দাসত্বৰ পৰা আমি মুক্ত হ’ব পাৰিছোঁ, তেনে কথা মই নকওঁ।”^১ জ্যোতিপ্ৰসাদে শংকৰদেৱৰ বৈপ্লৱিক দৃষ্টিৰ সংস্কৃতি চৰ্চা আৰু অস্পৃশ্যতাৰ বিৰুদ্ধে যি বৈপ্লৱিক প্ৰচাৰ সেই কথা বিশেষভাৱে উল্লেখ কৰিছিল। শংকৰদেৱ আছিল ৰূপান্তৰ আৰু প্ৰগতিশীলতাৰ সাধক। প্ৰগতিশীলতাই কুসংস্কাৰৰ বিৰুদ্ধে গৈ নতুন আদৰ্শৰে নতুন সংস্কাৰ গঢ়াত বিশ্বাসী। নতুন দৃষ্টিৰে নতুন সমাজ গঠন কৰিবলৈ শংকৰদেৱেই প্ৰথমতে ব্ৰাহ্মণ সমাজখনৰ গঠন বিন্যাসত আঘাত হানিছিল। শংকৰদেৱ ব্ৰাহ্মণবাদী নীতি-আদৰ্শৰ পৰিপন্থী আছিল। “আজি পাঁচশ বছৰৰ আগতেই অস্পৃশ্যতাৰ বিৰুদ্ধে বৈপ্লৱিক প্ৰচাৰ আৰম্ভ কৰে আৰু বিপ্লৱীৰ ৰূপালত যি ভোগ থাকে, তাকো ভোগ কৰি গৈছে। সমাজলৈকো তেওঁ মন দি নতুনকৈ সমাজ সংগঠন কৰে।”^২

জ্যোতিপ্ৰসাদে দেখুৱাইছেঃ শংকৰদেৱে অৱক্ষয়ী আৰু স্ববিৰোধী ব্ৰাহ্মণ সমাজখনৰ সংস্কাৰ সাধনৰ উদ্দেশ্যৰেই তেওঁৰ আন্দোলনৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল। জাতি, বৰ্ণ, ধৰ্ম নিৰ্বিশেষে জনতাৰ অংশগ্ৰহণৰে তেওঁ যি আন্দোলন কৰিছিল, সেই বিষয়ে জ্যোতিপ্ৰসাদে এনেদৰে কৈছিল, “শ্ৰীমন্ত শংকৰে দিয়া সংস্কৃতিৰ নাম হৈছে কৃষ্ণ। কৃষ্ণ শব্দৰ বৈয়াকৰণিক অৰ্থ হৈছে সংস্কৃতি।”^৩ কৃষ্ণৰূপী সংস্কৃতিকেই শংকৰদেৱে এই যুগৰ উপযোগীকৈ অৰ্থাৎ ভাগৱত উপনিষদৰ পৰা উলিয়াই আনি নতুন ৰূপত গঢ় দিছিল।

শংকৰদেৱে সৃষ্টিশীল প্ৰতিভাৰে অসমৰ সংস্কৃতি জগতত নৱজাগৰণৰ সূচনা কৰিলে। তেওঁ আমাক বাদ্য, বাদ্যধ্বনি, গীতমাত, নাচ আৰু নাট দিলে। এইবোৰ সম্পূৰ্ণ নতুন আৰু প্ৰণালীবদ্ধ সংযোজন। এফালে ধৰ্মপ্ৰচাৰৰ বাবে নতুন ধৰণৰ বাদ্য-বাজনা, খোল-ভোৰতাল, দবা, মৃদং, গীত, বৰগীতৰ ৰাগ-ৰাগিনী, অংকীয়া নাটৰ ভাওনা ইত্যাদি দৃশ্য-শ্ৰব্য মাধ্যমৰ প্ৰয়োগ আৰু আনফালে সত্ৰাদি স্থাপন কৰি এখন সাংস্কৃতিক ৰাজ্য গঢ় দিয়াতো অসমীয়া জাতিলৈ তেওঁৰ এক আপুৰুগীয়া অৱদান। এই বাবেৰহণীয়া

সাংস্কৃতিক অৱদানে জাতিটোক ঐক্যবদ্ধ হোৱাত সমল যোগালে। সেয়েহে জ্যোতিপ্ৰসাদে শংকৰদেৱে সৃষ্টি কৰা সংস্কৃতিক উচ্চ সংস্কৃতি আখ্যা দিছে। এই উচ্চ সংস্কৃতিক তেওঁ জনতাৰ মাজলৈ লৈ যাবলৈ যি অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল আৰু তেওঁৰ কৃতকাৰ্যতাৰ বাবেই অসমীয়া জনসাধাৰণে নিজকে উচ্চসংস্কৃতিসম্পন্ন বুলি ক'বলৈ পাৰিছে। এই প্ৰসংগতেই জ্যোতিপ্ৰসাদে মুক্তমনেৰে কৈছিল, “আজিলৈকে অসমীয়াক অসমীয়া কৰি ৰাখি থৈছে কোনে? আমাৰ তাহানিৰ স্বাধীন অসমৰ ৰাষ্ট্ৰক্ষমতা থকা ৰজাসকলে, পাণ্ড-মন্ত্ৰীসকলে নে বৰফুকন, বৰবৰুৱা, বৰুৱা, ফুকন বিষয়াসকলে? আমাক আজি অসমীয়া বুলি আমাৰ জাতীয় সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিশিষ্টভাৱে এটা প্ৰগতিশীল জাতিকৈ ৰাখি থৈছে অসমীয়া সংস্কৃতি সৃষ্টি কৰি দি যাওঁতা, অসমীয়া সুকুমাৰ কলাক এক নিজস্ব বৈশিষ্ট্য দি থৈ যাওঁতা, অসমীয়া সামাজিক জীৱনক এটা বিশিষ্ট গঢ় দি যাওঁতা, অসমত এনে সাংস্কৃতিক ৰাষ্ট্ৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰি থৈ যাওঁতা অসমীয়া জীৱনৰ মহাকলাকাৰ শিল্পীৰো শিল্পী মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ।”^{৪৪}

ইয়াৰ উপৰিও শংকৰদেৱৰ স্থাপত্য প্ৰতিভাৰ বিপ্লৱী আৰু প্ৰগতিশীল দৃষ্টিভংগীৰ বিষয়েও জ্যোতিপ্ৰসাদে আলোকপাত কৰি গৈছে। তেওঁ শংকৰদেৱৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যক আধুনিক বিশ্বৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যৰ সৌন্দৰ্যৰ আদিম প্ৰকাশ বুলি কৈছিল। ভাৰতৰ পৰম্পৰাগত জটিল স্থাপত্য ৰীতিৰ পৰিৱৰ্তে নামঘৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ যোগেদি শংকৰদেৱে যি এক সৰল আৰ্হিৰ উদ্ভাৱন কৰিলে সেই কথাই জ্যোতিপ্ৰসাদক বাৰুকৈয়ে আকৰ্ষণ কৰিছিল। তেওঁ কৈছিল, “অসমত হিন্দু, বৌদ্ধ, গুপ্ত স্থাপত্যই আধিপত্য কৰি থকা কালতে শংকৰদেৱে অসমীয়া নামঘৰত এক অভিনৱ স্থাপত্যক ৰূপ দিয়ে আৰু নামঘৰৰ স্থাপত্য সেই সময়ত ইমান ভাৱিলে আচৰিত হ'বলগীয়া হয়। আজিকালিৰ বিশ্বস্থাপত্য যি অলংকাৰবৰ্জিত সৰলতা আৰু বৈথিক সৌন্দৰ্যৰ আদৰ্শৰ অসমীয়া নামঘৰ তাৰ প্ৰাথমিক সংস্কৰণ বুলিব পাৰি।”^{৪৫} জ্যোতিপ্ৰসাদে শংকৰদেৱক প্ৰগতিশীল দিশত লক্ষ্য ৰাখি দাৰ্শনিক সমাজ-সংগঠক, নতুন সংস্কৃতিৰ স্ৰষ্টা হিচাপে অভিহিত কৰিছে।

শংকৰদেৱে অন্তৰ সংস্কৃতিৰ সমান্তৰালভাৱে বস্তু সংস্কৃতিকো সমানে গুৰুত্ব দিছিল। কেৱল অন্তৰ সংস্কৃতি ধৰি ৰখাতেই সীমাবদ্ধ নাথাকি পৰিপূৰ্ণ জীৱন এটা গঢ় দিবলৈ দৈহিক সৌন্দৰ্যমুক্ত হৈ মানুহৰ শাৰীৰিক সৌন্দৰ্যয়ে

থাকিব লাগে তাৰ প্ৰতিও তেওঁ মনোযোগী আছিল। জ্যোতিপ্ৰসাদৰ দৃষ্টিতঃ “শংকৰদেৱেই মানুহৰ আধ্যাত্মিক, মানসিক আৰু বাস্তৱিক এনে মহাবিকাশ দেখিবলৈ পোৱা গৈছে আৰু এই তিনিওৰে সামঞ্জস্য আৰু সমতা দেখা যায়।”^{৪৬} এনেদৰে শংকৰদেৱৰ প্ৰতিভা পুনৰ মূল্যায়নৰ যোগেদি জ্যোতিপ্ৰসাদেই অসমত শংকৰদেৱ চৰ্চাৰ প্ৰগতিশীল ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিলে। তেওঁ গীত-কবিতাৰ মাজেৰেও শংকৰদেৱৰ জীৱনাদৰ্শৰ স্মৰণ কৰি গৈছে।

আদৰ্শ আৰু দৃষ্টিভংগীৰ ফালৰপৰা বিষ্ণুপ্ৰসাদ জ্যোতিপ্ৰসাদৰ সমগোষ্ঠীয়। জ্যোতিপ্ৰসাদৰ দৰে বিষ্ণু ৰাভাৰ জীৱনতো শংকৰদেৱৰ প্ৰভাৱ আছিল অপৰিসীম। অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ বৰভেটি গঢ়োঁতা শংকৰদেৱৰ প্ৰতি ৰাভাদেৱৰ শ্ৰদ্ধা আছিল অসীম। তেওঁ শংকৰদেৱক সংস্কৃতিৰ গুৰু হিচাপে মানি লৈছিল। আজিৰ যি শংকৰদেৱৰ প্ৰতিমূৰ্তিক আমি জানো, সেই প্ৰতিমূৰ্তিও ৰাভাই অংকণ কৰিছিল। জনজাতিসকলৰ ভিতৰত বিষ্ণুৰাভাই আছিল শংকৰদেৱ চৰ্চাৰ বাটকটীয়াস্বৰূপ। ৰাভাৰ ‘প্ৰসঙ্গ শংকৰদেৱ’ আৰু ‘শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ বৰগায়ন’ প্ৰবন্ধ দুটি এইক্ষেত্ৰত মাইলৰ খুঁটি হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। ৰূপান্তৰৰ চাবিকাঠি বিচাৰিয়েই শংকৰদেৱৰ কাষ চাপিছিল সংগ্ৰামী বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা। সাম্যবাদত বিশ্বাসী বিষ্ণু ৰাভাই অনুভৱ কৰিছিল যে সেইসময়ত অসমত যি জাতিভেদ প্ৰথাই গা কৰি উঠিছিল তাৰ নিৰ্মূলকৰণৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষকৈ জনজাতীয় লোকসকলৰ ঐক্য সূত্ৰডাল গঢ়ি তোলাত শংকৰদেৱে অগ্ৰণী ভূমিকা পালন কৰিছিল। সেয়েহে তেওঁ শংকৰদেৱ সম্পৰ্কীয় আলোচনাত মনোনিৱেশ কৰিবলৈ আগবাঢ়িছিল। শংকৰদেৱ আছিল অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ বিপ্লৱী পুৰুষ। সেই কথা ৰাভাই গভীৰভাৱে উপলব্ধি কৰি শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে এনেদৰে মন্তব্য দিছেঃ “যৱন, হৰি, ভোট, গাৰো, শ্ৰীৰাম কৈৱৰ্ত সকলো আতা তেওঁৰ শিষ্য আছিল।”^{৪৭}

বিষ্ণু ৰাভাৰ দৃষ্টিত শংকৰদেৱেই ক্ষুদ্ৰ ক্ষুদ্ৰ জাতিসমূহক একগোট কৰি এখন বহল সমাজ প্ৰতিষ্ঠা কৰাত গুৰুত্ব দিছিল। উল্লেখনীয় যে শংকৰদেৱে কেৱল এটা জাতি গঠনেই কৰা নাছিল, সেই জাতিৰ প্ৰাণ প্ৰতিষ্ঠা কৰি তাৰ কল্যাণৰ হকে অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল।

ৰাভাৰ দৃষ্টিত শংকৰদেৱ আছিল এটা জাতিৰ প্ৰাণ প্ৰতিষ্ঠাকাৰীৰ উপৰিও এজন কলাকাৰ। সেয়েহে সেই সময়ছোৱাৰ তেওঁৰ ৰচনাকৃতিত শংকৰী ঐতিহ্যকৃতিয়ে ভূমুকি মাৰিছিল :

“শুনা শুনা শুনা

শুনা হেৰা ভাই

মহান কলাকাৰ শংকৰদেৱ আমাৰ

হওঁক আমাৰ আৰ্হি বিপ্লৱৰ।”^৮

শংকৰদেৱে যিদৰে এখন সুস্থ সমাজ গঠন কৰাত অৱদান আগবঢ়াইছিল, একেদৰে অসমীয়া সাহিত্য, কলা-সংস্কৃতিৰ ভেঁটি গঠনতো শংকৰদেৱৰ ভূমিকা আছিল অভূতপূৰ্ব। কীৰ্তন, দশম, নাট-ভটিমা বৰগীত আদিৰ জৰিয়তে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভেঁটি শংকৰদেৱেই সৰল কৰি থৈ গৈছে। ভক্তিৰসেৰে পৰিপূৰ্ণ বৰগীতসমূহ শাস্ত্ৰীয় সংস্কৃতিৰ এক নৱ সংযোজন। সেয়েহে ৰাভাই উল্লেখ কৰিছে: শংকৰদেৱৰ নাট, পদসমূহতকৈও বৰগীতসমূহে বৈষ্ণৱ আন্দোলনৰ বিকাশত অধিক সহায় কৰিছে। একেদৰে ৰাষ্ট্ৰীয় সংস্কৃতিৰ উল্লেখনীয় ৰূপ সত্ৰীয়া নৃত্য হৈছে শংকৰদেৱৰ অন্যতম সৃষ্টি। সত্ৰীয়া নৃত্যই সত্ৰসমূহৰ সংস্কৃতি বিকাশত বিশেষ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছিল। সেই সত্ৰীয়া নৃত্য আজিৰ দশকতো বিশ্বৰ দৰবাৰত অন্যতম শাস্ত্ৰীয় নৃত্যৰূপে জিলিকি আছে। তেওঁ অসমৰ বহু জাতি, জনজাতি আৰু কৃষ্টি-সংস্কৃতি, অসমীয়া কলা সাহিত্য, সত্ৰীয়া সংস্কৃতি আদিৰ সৃষ্টিৰে অসমীয়া সংস্কৃতিক চহকী কৰি থৈ গৈছে। সেয়েহে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ পৰিসৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ দৰে বিশাল আৰু বিৰাট।

শংকৰদেৱৰ আদৰ্শৰে বিপ্লৱী ৰাভাই নিশকটীয়া অসম ৰাজ্যখনৰ নৱজাগৰণক যেন সফল আৰু শক্তিশালী পৰিণতিৰ দিশলৈ লৈ যাব খুজিছিল। তেখেতৰ উদ্দেশ্য এখন উন্নত সমাজ গঢ় দিয়া, ৰাভাই অনুভৱ কৰিছিল জহি-খহি যোৱা সমাজ খনৰ ৰূপান্তৰ সাধনত শংকৰদেৱৰ

বৈষ্ণৱ আন্দোলনে এক ভূমিকা পালন কৰিছিল। শংকৰদেৱৰ যিকোনো সৃষ্টি বা সাহিত্যিক বাদ দিলে অসমীয়া জাতিটোৰ যে মৃত্যু হ’ব এই কথা ৰাভাই বঞ্জে-বঞ্জে অনুভৱ কৰিছিল। ৰাভাক বিভিন্ন সময়ত প্ৰভাৱিত কৰা শংকৰদেৱে অসমীয়া সমাজখনক এক নতুন ৰূপ দান কৰিছিল। বিষুৱ ৰাভাই আপোনভূমিৰ পৰা ৰস গ্ৰহণ কৰি অসমৰ জাতীয় বৈশিষ্ট্যৰ লগত প্ৰগতিশীল দৰ্শনক একলগ কৰি সমাজ গঠনৰ কাৰণে সদায় চিন্তা কৰি আহিছিল। শংকৰদেৱৰ ক্ষেত্ৰটো দেখা যায় শংকৰী ধৰ্মই সদায় জাতি-ধৰ্ম নিৰ্বিশেষে এখন বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ গঠনত মনোনিৱেশ কৰি আহিছে। উল্লেখযোগ্য যে মাৰ্কাৰ আগতে শংকৰে সমাজৰ ৰূপান্তৰ সাধনৰ আৰ্হি দাঙি ধৰিছিল। সেই শংকৰদেৱকেই নতুন সমাজ গঠনৰ ক্ষেত্ৰত আৰ্হিৰূপে জনসমাজত তুলি ধৰিছিল ৰাভাই। সেয়েহে শংকৰদেৱৰ আদৰ্শৰে অনুপ্ৰাণিত হৈ বিষুপ্ৰসাদ ৰাভাই বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ গঠন আৰু তাৰ সৰ্বাংগীন প্ৰগতিৰ বাবে নিৰন্তৰ প্ৰচেষ্টা চলাইছিল।

২.০ উপসংহাৰ :

অসমীয়া জাতিৰ দুই সু-সন্তান জ্যোতিপ্ৰসাদ আৰু বিষুপ্ৰসাদে অসমীয়া সমাজক জীৱন দান কৰা শংকৰদেৱৰ চিন্তাধাৰা সম্পৰ্কে নিজ নিজ দৃষ্টিভংগীৰে ব্যাখ্যা আগবঢ়াই গৈছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ আন আন লেখক সাহিত্যিকসকলে শংকৰদেৱৰ অলৌকিক গুণ, কলা সাহিত্যতেই শংকৰদেৱ বিষয়ৰ চৰ্চা সীমাবদ্ধ কৰি ৰাখিছিল। জ্যোতিপ্ৰসাদ আৰু বিষুপ্ৰসাদে বহুল পৰিসৰত শংকৰদেৱ সম্পৰ্কে আলোচনা নকৰিলেও এখন পূৰ্ণ সমাজ প্ৰতিষ্ঠা কৰাত আৰু সমাজৰ সৰ্বস্তৰৰ ৰূপান্তৰত তেওঁৰ যি অৱদান তাক প্ৰগতিশীল দৃষ্টিৰে বিশ্লেষণ আগবঢ়াবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। □

প্ৰসংগ সূত্ৰঃ

১। চলিহা, সুমন্ত (সম্পা.)। জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। নৱম সংস্কৰণ, ২০১৭। পৃ. ৪৯৫

২। মহন্ত, প্ৰফুল্ল। সমাজ নায়ক শংকৰদেৱ, ঐতিহাসিক প্ৰেক্ষাপট। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২২। পৃ. ১৪৪

৩। চলিহা, সুমন্ত (সম্পা.)। জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। নৱম সংস্কৰণ ২০১৭। পৃ. ৪৫৯

৪। প্ৰাগুক্ত, পৃ. ৪৯৫

৫। মহন্ত, প্ৰফুল্ল। সমাজ নায়ক শংকৰদেৱ, ঐতিহাসিক প্ৰেক্ষাপট। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০২২, পৃ. ১৪৩

৬। প্ৰাগুক্ত, পৃ. ১৪৪

৭। প্ৰাগুক্ত, পৃ. ১৪৭

৮। প্ৰাগুক্ত, পৃ. ১৪৬

গ্ৰন্থপঞ্জীঃ

চলিহা, সুমন্ত (সম্পা.)। জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। নৱম সংস্কৰণ, ২০১৭।

দাস, যোগেশ (সম্পা.)। বিষুপ্ৰসাদ ৰচনা সত্তাৰ। ৰাভা ৰচনাৱলী প্ৰকাশন সংঘ। তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৯।

দাস, পৰশমণি (সম্পা.)। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ। ঐতিহ্য, চেতনা আৰু প্ৰৱাহ। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ জন্মোৎসৱ পালনৰ শতবৰ্ষ সমাৰোহ উদ্‌যাপন সমিতি। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৭।

মজুমদাৰ পৰমানন্দ। বিষুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ জাতীয়তাবোধ আৰু সমাজবীক্ষা। বাহুব। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২২।

মহন্ত, প্ৰফুল্ল। সমাজ নায়ক শংকৰদেৱ ঐতিহাসিক প্ৰেক্ষাপট। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ। প্ৰথম প্ৰকাশ ২০২২।

মিচিং সকলৰ পৰম্পৰাগত লোক-ঔষধ



জীমণি দিহিঞ্জীয়া

সাৰাংশ :

অসম হৈছে ভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমন্বয়ক্ষেত্ৰ। পুৰণিকালৰেপৰা অসমত বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে বসবাস কৰি আহিছে। অসমত বসবাস কৰা এই জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ প্ৰত্যেকৰেই স্বকীয় সাংস্কৃতিক উপাদান তথা বৈশিষ্ট্য আছে। এই সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভিন্ন সাংস্কৃতিক সমল তথা উপাদান একত্ৰিত হৈ গঠন হৈছে বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতি।

অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠী সমূহৰ ভিতৰত অন্যতম তথা অসমৰ দ্বিতীয় সংখ্যাগৰিষ্ঠ জনগোষ্ঠীটো হৈছে মিচিং জনগোষ্ঠী। অসমৰ ঘাইকৈ উজনি অসমৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ দুয়োপাৰে আৰু বিভিন্ন উপনৈ সমূহৰ দাঁতি-কাষৰীয়া অঞ্চলত বসবাস কৰা এই মিচিং লোকসকল সাংস্কৃতিক দিশত অতি চহকী। প্ৰাকৃতিকভাৱে চহকী অসমৰ হাবিত সততে উপলব্ধ বিভিন্ন ঔষধি গুণসম্পন্ন গছ-গছনি আদি বিভিন্ন ৰোগৰ প্ৰতিষেধক হিচাবে অসমৰ আন জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে ব্যৱহাৰ কৰাৰ দৰেই মিচিং জনজাতীয় লোকসকলেও ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। এই আলোচনাটিত অসমৰ মিচিং লোকসকলে ব্যৱহাৰ কৰা প্ৰাকৃতিক ভাৱে উপলব্ধ যি লোক ঔষধ, সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ :

অসম, মিচিং, ৰোগ, লোক-ঔষধ।

অৱতৰণিকা :

অসম হৈছে ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱ প্ৰান্তত অৱস্থিত ভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমন্বয়ক্ষেত্ৰ। পুৰণিকালৰে পৰা বিভিন্ন কাৰণত (যেনে-জীৱিকাৰ সন্ধান, যুদ্ধ-বিগ্ৰহ, প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশ আদিৰ উপৰিও বিভিন্ন ৰাজনৈতিক তথা সামাজিক) অসমলৈ বিভিন্ন লোকৰ প্ৰব্ৰজন ঘটে। কালক্ৰমত এই সকলোবোৰ জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমন্বয়ত গঢ়ি উঠিছে অসমীয়া সংস্কৃতি।

অসমৰ জনগোষ্ঠী বুলি ক'লে ঘাইকৈ মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত চীন তিব্বতীয় শাখাৰ তিব্বতবৰ্মীয়ভাষী হিচাপে বড়ো, কাৰ্বি, ৰাভা, মিচিং, দেউৰী, তিৱা, ডিমাচা, গাৰো, কোঁচ আদি আৰু থাই-চীন শাখাৰ টাই আহোম, টাই ফাকে, টাই আইতন, টাই খামতি, টাই খাময়াং, টাই টুৰুং লোকসকলৰ উপৰিও অষ্ট্ৰিক পৰিয়ালৰ খাচী, কোল, মুণ্ডা লোকৰ কথা ক'ব পাৰি। অসমত বাস কৰা প্ৰত্যেক জনগোষ্ঠীয়েই স্বকীয় সাংস্কৃতিক সমল তথা বৈশিষ্ট্যৰে মহিমামণ্ডিত। এই সকলোবোৰ জনগোষ্ঠীৰে ভিন্ন সাংস্কৃতিক সমল তথা উপাদান একত্ৰিত হৈ গঠন হৈছে বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতি। অৱশ্যে এই জনগোষ্ঠীসমূহৰ উমৈহতীয়া সংস্কৃতিও নথকা নহয়, যাক কৈতৰাজ সংস্কৃতি বোলা হয়।

লোক ঔষধৰ ব্যৱহাৰ হৈছে লোকসংস্কৃতিৰ এক বিশিষ্ট উপাদান। কোনো এক

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১

☎ ৬০০৩৩৯০২৫৩
✉ jimonidihingia91@gmail.com

মানৱগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠে তেওঁলোক বসবাস কৰা ভৌগোলিক তথা প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশৰ ওপৰত। অসম প্ৰাকৃতিকভাৱে পৰিৱেশৰ ফালৰ পৰা যথেষ্ট চহকী। মানৱজাতিয়ে আদিম কালৰে পৰা দৈনন্দিন জীৱনত দেখা দিয়া বিভিন্ন ৰোগ-ব্যাদি আদি সমস্যা প্ৰাকৃতিকভাৱে সমাধান কৰাৰ চেষ্টা কৰি আহিছে। প্ৰাকৃতিকভাৱে পোৱা বিভিন্ন গছ-লতিকা, তাৰ ভিন্ন অংগৰ উপৰিও নানা প্ৰাণীৰ মঙহ আদি বিভিন্ন পদ্ধতিৰে ব্যৱহাৰ কৰি নানা ৰোগ নিৰাময় কৰি আহিছে। অসম প্ৰাকৃতিকভাৱে পৰিৱেশৰ ফালৰ পৰা যিহেতু চহকী; গতিকে অসমৰ হাবিত যথেষ্ট ঔষধিজাতীয় গছ-গছনিও উপলব্ধ। অসমৰ হাবিত পোৱা এনে ঔষধি গছ-গছনি বিভিন্ন ৰোগৰ প্ৰতিষেধক হিচাপে অসমৰ সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীয়েই ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। অসমৰ থলুৱা মিচিং জনজাতীয় লোকসকলেও তেওঁলোকৰ জীৱন প্ৰণালীত প্ৰাকৃতিকভাৱে পোৱা এনে উপাদানেৰে লোকঔষধৰ ব্যৱহাৰ আহিছে। মিচিং জনগোষ্ঠীয় লোকৰ মাজত পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰচলিত হোৱা এনে লোক ঔষধ সম্পৰ্কে প্ৰদত্ত আলোচনাটিত আলোচনা কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা :

অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ প্ৰত্যেকৰে স্বকীয় ৰূপৰ বাবেবৰণীয়া লোকউৎসৱ-পাৰ্বন, লোকসাহিত্য, জন্ম-মৃত্যুৰ কৰ্ম-ভাৱনাসংপৃক্ত লোকাচাৰ, বিবাহ-বৈচিত্ৰ, খদ্‌য়াভ্যাস, সাজ-পোছাক-অলংকাৰৰ ৰূপ বৈচিত্ৰ, লোকবিশ্বাস, লোকচিত্তাৰ মনোমোহকৰ ৰূপ, ধৰ্মীয় ভাৱনা, লোকভাষা আদিয়ে অসমৰ লোকসংস্কৃতিৰ পথাৰখন অকল বৈচিত্ৰময় কৰাই নহয়, অসমৰ সংস্কৃতিৰ ভিন্নৰূপী ধাৰা-ৰূপ-কৰ্ম আদিৰ দিশো প্ৰতিফলিত কৰিছে।

অসমৰ এক বিস্তৃত ঠাই আঙুৰি থকা মিচিং জনগোষ্ঠীয় লোকসকলেও বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ প্ৰচলন কৰি আহিছে। একে ভৌগোলিক পৰিৱেশত থাকিও আন জনগোষ্ঠীৰ পৰা তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক উপাদান বহু ক্ষেত্ৰত পৃথক। লোকঔষধৰ ক্ষেত্ৰতো মিচিংসকলে বিভিন্ন ধৰণেৰে পৰম্পৰাগত চিকিৎসা কাৰ্য কৰি অহা দেখা গৈছে। তেওঁলোকৰ সমাজত বৰ্তমান প্ৰচলিত পৰম্পৰাগত এই লোক ঔষধসমূহলৈ লক্ষ্য কৰি ইয়াৰ গুৰুত্বতা সহজে অনুমেয়। অৱশ্যে এই চিকিৎসা পদ্ধতি আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতিৰ দৰে পৰীক্ষা-নিৰীক্ষাধৰ্মী গৱেষণাগাৰৰ চিকিৎসা নহয়, এই চিকিৎসা পদ্ধতি সম্পূৰ্ণ বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ আধাৰত থলুৱা ঔষধি গুণবিশিষ্ট দ্ৰব্যৰ দ্বাৰা কৰা চিকিৎসা।

গতিকে থলুৱা সাধাৰণতে গঞা লোকৰ মাজত প্ৰচলিত এনে লোক ঔষধসমূহ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে সমূহীয়া কৰাৰ যথেষ্ট প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

প্ৰস্তাৱিত লেখাটি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিও ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। ঠায়ে ঠায়ে উদ্ধৃতিৰো সহায় লোৱা হৈছে। গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুতকৰোঁতে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ সহায় লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

মিচিং জনগোষ্ঠীৰ লোক চিকিৎসা সম্পৰ্কে ক'বলৈ গ'লে ইয়াৰ পৰিসৰ অতি ব্যাপক। তেওঁলোকৰ লোক চিকিৎসা বুলি ক'লে বিষয়টোত লোক চিকিৎসাৰ অন্তৰ্গত প্ৰাকৃতিক লোক ঔষধৰ লগতে যাদুমন্ত্ৰভিত্তিক আদি অন্যান্য কিছুমান দিশ হ'ব, যিবোৰ এটা আলোচনাত সীমাবদ্ধ কৰাটো সম্ভৱ নহয়। গতিকে এই আলোচনাৰ সীমাবদ্ধতালৈ লক্ষ্য কৰি ইয়াত কেৱল প্ৰাকৃতিকভাৱে পোৱা লোকঔষধৰ কথাহে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

মিচিংসকলৰ মাজত প্ৰচলিত লোক ঔষধ :

মিচিং জনগোষ্ঠীৰ চমু পৰিচয় :

নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰপৰা মিচিংসকল মংগোলীয় জাতিগোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত। মংগোলীয় জাতিগোষ্ঠী আদিতে দক্ষিণ চীন, চাইবেৰীয়া আৰু মংগোলীয় ভূ-খণ্ডত বসবাস কৰিছিল বুলি নৃতত্ত্ববিদসকলে ঠাৱৰ কৰিছে যদিও পৰৱৰ্তী সময়ত চীন, জাপান, তিব্বত, ব্ৰহ্মদেশ, থাইলেণ্ড আদি ভূ-খণ্ডলৈয়ো মংগোলীয়সকল সম্প্ৰসাৰিত হয়।

এসময়ত মিচিংসকলে অসমৰ উত্তৰ-পূবে থকা অৰুণাচল প্ৰদেশত বসবাস কৰিছিল। অসমলৈ অহাৰ পূৰ্বে এওঁলোক অৰুণাচল প্ৰদেশৰ আদীসকলৰ লগতপাহাৰত বসবাস কৰিছিল। অৰুণাচলৰ কেইবাটিও জনসমষ্টিৰ লগত মিচিং জনসমষ্টিৰ ভাষা-সাহিত্য, সংস্কৃতি আৰু বাসস্থানৰ সাদৃশ্য বিদ্যমান। তাৰ ভিতৰত পাগৰ, দৌলু, মংয়িং, দামবুগ আদিৰ জনসমষ্টিৰ কথা বিশেষভাৱে উল্লেখ কৰিব পাৰি।

মিচিংসকলে ব্যৱসায়-বাণিজ্য, অধ্যয়ন, ৰাজনীতি, কৰ্মসংস্থাপন আদি বিভিন্ন সূত্ৰে অসমৰ চৌদিশে আছে যদিও গাঁও পাতি বা স্থায়ীভাৱে উজনি অসমৰ জিলাকেইখনতহে বসবাস কৰা দেখা যায়। তাৰ ভিতৰত হ'ল ধেমাজি, উত্তৰ লখিমপুৰ, শোণিতপুৰ, তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, শিৱসাগৰ, যোৰহাট আৰু গোলাঘাট জিলা।

অৱশ্যে অন্যান্য জিলাৰ কিছু ঠাইতো তেওঁলোকে একত্ৰিতভাৱে থাকি গাঁও সদৃশ পৰিৱেশৰ সৃষ্টি কৰা দেখা গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে কাহিলীপাৰাৰ সোণাইগুৰি অঞ্চলৰ নাম ল'ব পাৰি। অৰুণাচলৰ ছিয়াং আৰু লোহিত জিলাতো কিছুসংখ্যক মিচিং লোকৰ বাসস্থান আছে।

লোক ঔষধৰ পৰিচয় :

অতীজৰে পৰা বিবেকবান মানুহে বিভিন্ন সমস্যাৰ সমাধানৰ উপায় নিৰ্ণয় কৰাৰ লগতে নতুন নতুন বস্তুৰ আৱিষ্কাৰ কৰি জীৱশ্ৰেষ্ঠৰ প্ৰমাণ দি আহিছে। মানৱ জাতিৰ তেনেধৰণৰ এটা আৱিষ্কাৰ হৈছে লোক-চিকিৎসা পদ্ধতি আৰু লোকঔষধৰ উদ্ভাৱন। আদিম কালৰ পৰাই মানৱ শৰীৰত বিভিন্ন অসুখ-অশান্তিবোৰে দেখা দি আহিছে আৰু এই অসুখ-অশান্তিৰ নিৰাময়ৰ বাবে বিবেকবান মানুহে সময় সাপেক্ষে নতুন নতুন পদ্ধতিৰ লগতে ভিন্ন ধৰণৰ প্ৰাকৃতিক সামগ্ৰীৰ চিনাক্ত আৰু ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে।

মানুহ যিহেতু প্ৰকৃতিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল, গতিকে আদিম কালৰে পৰা মানৱ জাতিয়ে নিজৰ প্ৰয়োজন সাপেক্ষে প্ৰকৃতিৰ পৰা সমল সংগ্ৰহ কৰি ৰোগ অনুসৰি সেইবোৰৰ উপযুক্ত ব্যৱহাৰৰ শিক্ষা (ভুল আৰু প্ৰচেষ্টা পদ্ধতিৰ জৰিয়তে) গ্ৰহণ কৰি আহিছে আৰু বছৰ বছৰ ধৰি লাভ কৰা সেই জ্ঞান অভিজ্ঞতাৰ ফচল পিছৰ প্ৰজন্মবোৰলৈও মৌখিক ভাবে প্ৰচলন হৈ আহিছে। মানুহে থলুৱা ভাবে নাইবা প্ৰাকৃতিক উপাদানৰ জৰিয়তে ৰোগ নিৰাময় কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা এই পদ্ধতিয়েই হৈছে লোক চিকিৎসা পদ্ধতি আৰু এই পদ্ধতিত ব্যৱহাৰ কৰা বিভিন্ন সমলবোৰেই হৈছে লোক ঔষধ।

মিচিংসকলৰ পৰম্পৰাগত লোক ঔষধ :

অসমৰ অন্যান্য জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ দৰেই মিচিংসকলৰ মাজতো পৰম্পৰাগত চিকিৎসা পদ্ধতি ব্যৱহাৰৰ এক নিজস্ব পৰম্পৰা আছে। মিচিংসকলৰ মাজত এনে চিকিৎসা পদ্ধতি বহু পুৰণি যুগৰ পৰাই চলি আহিছে যদিও কেতিয়াৰ পৰা এই ধাৰণা আহিছে তাক সঠিককৈ কোৱা টান। মিচিংসকলৰ মাজত 'মিবু' আৰু 'মিবু' শব্দৰ সম্পৰ্ক থকা বুলি কোৱা হয়। সেই ফালৰ পৰা মিচিংসকলৰ পৰম্পৰাগত চিকিৎসাৰ ধাৰণা 'মিবু' শব্দৰ সমানেই পুৰণি বুলি ঠাৱৰ কৰিব পাৰি। 'মিবু' শব্দৰ অৰ্থ পুৰোহিত অথবা দেওধাই। পুৰণি সমাজত এই পুৰোহিত শ্ৰেণীৰ পৰামৰ্শতেই বিভিন্ন কাজ-কৰ্ম, চিকিৎসা আদি কৰা হৈছিল। ইয়াৰ বহু পাছতহে বেজ বা বৈদ্য শব্দৰ প্ৰচলন ঘটে। আনহাতে 'মিবু'

শব্দক এইদৰে ভাঙিব পাৰি—'মি' মানে হৈছে মানুহ আৰু 'বু' মানে হৈছে পিতৃ। অৰ্থাৎ মানৱ জাতিৰ পিতৃ। সেয়ে মিবু হ'বলৈ হ'লে বহু গুণৰ অধিকাৰী হ'ব লাগিব। ইয়াৰ ভিতৰত চিকিৎসা গুণো এটা। এই চিকিৎসা তত্ত্ব-মন্ত্ৰও হ'ব পাৰে, বনৌষধিও হ'ব পাৰে। (বড়ি, মিচিং সমাজ আৰু লোকবিশ্বাস, ৩৯)

অসমৰ মিচিং গোষ্ঠীৰ মাজত প্ৰচলিত লোক-ঔষধসমূহ দেহৰ বিভিন্ন ৰোগ অনুযায়ী বিভিন্ন ধৰণে ব্যৱহাৰ হয়। সেইবোৰ এনেধৰণৰ—

ছালৰ ৰোগ :

মানৱ দেহৰ এক অন্যতম অংগ হৈছে ছাল। এই ছালৰ বিভিন্ন ৰোগবোৰ হৈছে—খৰ-খজুৰতি, এলাৰ্জি, শুকান ছাল, ছাল ফটা, ফোঁহা আদি। এনেবোৰ ছাল ৰোগে দেখা দিলে মিচিংসকলেও আন লোকৰ দৰে থলুৱা পদ্ধতিৰে চিকিৎসা কৰে। যেনে—খৰ-খজুতি হ'লে মহানিমৰ পাত খুন্দি সেই স্থানত লগায়। তাৰোপৰি নহৰু (কামপন তালাব/কমপাংক), ফুটছাই (মীতবু/ৰাকুট), নিমখ (আলঃ), কণি বিহ গছৰ পাত আদি মিহলাই খুন্দি তাৰ গুড়িও ব্যৱহাৰ কৰে। এনেধৰণৰ ছালৰ ৰোগৰ ক্ষেত্ৰত পকা অমিতা, তুলসী, কেঁচা হালধিৰ বস, জেতুকা, চাল কুঁৱৰীৰ পাত, মছন্দৰি শিপা, কপাহ গছৰ শিপা (ছপাক) আদিও ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। খৰ-খজুৰতি হ'লে কিছু লোকে চুণ আৰু ধঁপাত মিহলাই নলপুলিৰ সৈতে ঘঁহিও উপশম লাভ কৰা দেখা যায়। খৰ গছৰ পাত (তাৰোগ আন্নৌ) পিহি ঘঁহিলেও খৰৰ পৰা উপশম পায়। (দাস, অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-চিকিৎসা ৪১)

কটা-ছিঙা :

দৈনন্দিন কাম-কাজ কৰোঁতে দা-কটাৰী বা অন্যান্য চোকা অস্ত্ৰৰে কাটিলে নাইবা ক'ৰবাত খুন্দা খাই তেজ ওলালে মিচিং লোকসকলে দুৱৰি বনৰ বস, কেঁচা বাঁহৰ সেউজীয়া অংশ চাঁটিলে ওলোৱা গুৰি, কেঁচা হালধি, ইন্দিৰা লতা, দুৰ্জ বনৰ বস, গোন্ধেৰা বন (নামিং গুয়িং), কেঁহেৰাজ বন, বিষলতি বন আদিৰ পাত আৰু শিপা খুন্দিও ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। ইয়াৰোপৰি কটা ঘাঁত মিচিংসকলে চাফা আলতীয়া মাটিৰে ঘাঁড়োখৰ হেঁচা মাৰি কিছুসময় ধৰি তেজ বন্ধ কৰা দেখা যায়। ঠাই ভেদে কিছু লোকে কটা ঘাঁত মানিমুণিৰ পাত, উলু খেৰৰ (তাচু-চেলগ) শিপা, নিলাজী বনৰ শিপা, নাৰ্জি ফুলৰ পাত আদি খুন্দিও লগোৱা দেখা যায়। দেহৰ বাহিৰৰ ঘাঁৰ উপৰিও শৰীৰৰ ভিতৰৰ ঘাঁ শুকুৱাবলৈও মিচিং লোকসকলে শুকলতি গছৰ (নামিংগু)

জট্ৰিৎ/শুকলতি) পাত সিজাই খায়।

জ্বৰ-পানী লগা :

অসমত জলবায়ু পৰিৱৰ্তনৰ বাবে বছৰি এবাৰ বা দুবাৰ প্ৰায় সকলো মানুহৰে জ্বৰ-পানীলগা বা চৰ্দি, কাহ, জ্বৰ হয়। এনে হ'লে মিচিং লোকসকলে সচৰাচৰ ঘৰতে বিভিন্ন উপায়েৰে চিকিৎসা কৰে। বেছিকৈ পানী লাগি থাকিলে কুহুমীয়া গৰম পানীত নিমখ দি ভৰি দুখন তিয়াই ৰাখে। তাৰ পাছত বিছনালৈ যোৱাৰ আগত নাক আৰু নাভিত মিঠাতেল দি ভৰিৰ তলুৱা মিঠাতেলেৰে মালিচ কৰে। পানীলগা জ্বৰৰ পৰা উপশম পাবলৈ মিচিং লোকসকলে ঘৰতে 'জাল' প্ৰস্তুত কৰি খায়। এই জাল বিশেষকৈ কুকুৰা মাংসৰ লগত বিহলঙনি, দোৰোণ বনৰ পাত, লাইজাবৰী পাত, মাৰচাং আদি ৰান্ধি তাত জলকীয়া, বিশেষকৈ জালুক দি তাৰ জোল খায়।

পেটৰ অসুখ বা ডিচেণ্টি :

ডিচেণ্টি বা পেটৰ অসুখ হ'লে মিচিং সকলে পকা আঠীয়া কল বা ভীম কল (আঠীয়াং কপাগ) পুৱা-গধূলি এটাকৈ খায়। কিছু মিচিং লোকে শুকুৱাই থোৱা কুঁজী-থেকেৰা (টেম্পীদ/তেকেৰাং) গধূলি এগিলাছ পানীত তিয়াই থয় আৰু পুৱা সেই গিলাচ পানী খালী পেটত খায়। ডিচেণ্টি ৰোগৰ আন এবিধ মহৌষধ হ'ল - মধুৰী গছৰ পাত। মিচিং সমাজৰ লোকে এই মধুৰী গছৰ কুকমলীয়া পাত বা আগটো খুন্দি তাৰ ৰস সেৱন কৰি ডিচেণ্টিৰ পৰা উপশম পায়। ডিচেণ্টি হ'লে চোকা টেঙা (জেনেৰুং) মছন্দৰী (তাকে: মাৰি/লপং-গিৰি) আদিও খুন্দি খাবলৈ দিয়া হয়। কেতিয়াবা নিমখ দি গেলাই থোৱা গুলনেমু খালেও এই ৰোগ ভাল হয়। এনেধৰণৰ পেটৰ অসুখ হ'লে মিচিংসকলে পুৰণি বগা আপং এবাটি খালেও ভাল হয় বুলি বিশ্বাস কৰে।

পেটৰ বিষ/গেষ্ট্ৰিক :

পেটৰ বিষ বা গেষ্ট্ৰিক হ'লে মিচিং লোক সকলে সাধাৰণতে কেঁচা হালধি খুন্দি তাৰ ৰস চেনীৰ লগত (কিছু লোকে গাখীৰৰ লগত) খালী পেটত খায়। কেতিয়াবা সৰু নাইবা ডাঙৰ মানিমুণিৰ ৰস খুন্দিও খালী পেটত খায়। আকৌ নৰসিংহৰ পাত খুন্দি তাৰ ৰস খালেও পেট বিষ নাইবা গেষ্ট্ৰিকৰ পৰা উপশম লাভ কৰা দেখা যায়। পেটৰ বিষত কেতিয়াবা মধুৰী গছৰ আগো খুন্দি খাবলৈ দিয়া হয়। অমিতাৰ কুমলীয়া কলি কেঁচাকৈ চোবাই খালেও গেষ্ট্ৰিক ভাল হয়। গেষ্ট্ৰিক হ'লে মিচিং লোক সকলে দুৰুণ

বন, সৰু টেঙেচি, ভেদাই লতাৰ পাত খুন্দি কেঁচাকৈ বা সিজাই খালেও গেছৰ কাৰণে ভাল। বনজালুক সিজাই তাৰ ৰস খাইয়ো গেষ্ট্ৰিকৰ পৰা উপশম পাব পাৰি। মিচিং সমাজৰ বেজে গেষ্ট্ৰিক আলচাৰ অসুখত ভোগা ৰোগীক ৰৌ মাছৰ পিত, কেটেলা পছৰ ভুৰু সিজাই বগা লাটুৰনি গছৰ পাতৰ সৈতে খাবলৈ দিয়ে।

মূৰৰ বিষ বা মূৰ কামোৰণি :

মূৰৰ বিষ হ'লে আন লোকসকলৰ দৰে মিচিং লোকসকলেও প্ৰথমতে এখন গামোচা বা কাপোৰ মূৰত টানকৈ বান্ধি লয়। কেতিয়াবা শুকান বুট জাতীয় টান খাদ্য দাঁতৰে চোবাই চোবাই খালেও মূৰৰ বিষ ভাল হয় বুলি মিচিং লোকসকলে বিশ্বাস কৰে। বনদৰৰ হিচাবে লাইজাবৰি হাতেৰে মোহাৰি নাকেৰে জোৰকৈ শুঙি মূৰৰ বিষৰ পৰা পৰিত্ৰান পায়। অৰ্জুন গছৰ বাকলি সিজাই তাৰ ৰস খালেও মূৰৰ বিষ কমে। মূৰৰ বিষ হ'লে কোনো লোকে বগৰীগছৰ কুমলীয়া পাত খুন্দি লগোৱাও দেখা যায়।

কাহ :

মিচিং লোকসকলে কাহ হ'লে তুলসীৰ পাত, জালুক, পিপলি, আদা আদি খুন্দি মৌৰ লগত খাবলৈ দিয়া হয়। তেজপাতত চাহপাত দি তাক বিড়ি বনাই খালেও কাহ ভাল হয় বুলি মিচিং লোকসকলে বিশ্বাস কৰে। শুকান কাহ হ'লে লেতা গছৰ পাত আৰু আগ আৰু গুটি কেঁচাকৈ খুন্দি খাবলৈ দিয়া হয়। বাহেক বনৰ ঠাৰি সিজাই তাৰ ৰস সেৱন কৰিও কাহৰ পৰা উপশম লাভ কৰে। কাহ, এজমা (হাপানি) আদি ৰোগত বচ (অলকনি) গছৰ শিপা জালুকৰ সৈতে খুন্দি তাৰ ৰস সেৱন কৰি উপশম লাভ কৰিব পাৰি। চজিনা গছৰ ফুল, গুটি আদিও কাহৰ পৰা উপশম পাবৰ বাবে মিচিংসকলে সেৱন কৰে। শুকান কাহ হ'লে ৰাতি শোৱাৰ আগত ডিঙিত চুণ সানি থ'লেও ভাল হয় বুলি এওঁলোকে বিশ্বাস কৰে।

বিষ নাইবা বাত বিষ :

শৰীৰৰ কোনো অংশত বিষ হ'লে মিচিং লোক সকলে ডিমৰু গছৰ বাকলি, বিষলতি পাত, অৰ্জুন গছৰ শিপা আদি বিষ হোৱা অংশত বান্ধি থয়। কেতিয়াবা এৰাপাতত পকা অঙঠা ভৰাই নাইবা এৰাপাতত তেল লগাই তাক জুইত গৰম কৰি বিষ হোৱা অংশত সেক দি বিষৰ পৰা উপশম পায়।

চকুৰ ৰোগ :

চকুত সাধাৰণ যদি ক'ৰবাত দুখ পালে মিচিং সকলে এখন শুকান কাপোৰত মুখেৰে নিশ্বাস এৰিলে সামান্য গৰম

হয়, তাক চকুত লগাই আৰাম পায়। চকুৰ ৰোগত কেতিয়াবা মিচিংসকলে শামুকৰ খোলা ভাঙি তাত থকা পানীখিনিও লগোৱা দেখা যায়। জয়বাংলা বা চকুৰঙা পৰা যি ৰোগ, সেয়া হ'লে মিচিংসকলে ৰাতিপুৱা শুই উঠি দুবৰিবনত লাগি থকা নিয়ৰৰ টোপাল চকুত সানে। এনে ৰোগত কিছুলোকে দুৰুগ গছৰ বগা ফুল আগদিনা সন্ধিয়া চাফা পানীত তিয়াই ৰাখে আৰু পুৱা সেই পানীৰে চকু ধুৱে। একেই ধৰণৰ প্ৰক্ৰিয়া কিছু লোকে বগা কথনা (কটনা) ফুলেৰেও কৰে। সৰু সৰু পুঠি মাছৰ যিকোনো (বিশেষকৈ মূৰৰ অংশ) খালেও চকুৰ কাৰণে ভাল বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে।

কাণৰ ৰোগ :

কাণত ফোঁহা হ'লে পৰিষ্কাৰ কপাহ বা কাপোৰেৰে কাণখন চাফা কৰি তাত তুলসী পাতৰ ৰস লগাই দিয়ে। কাণত ঘাঁ হ'লে কিছুলোকে আকৌ ভাতৰ লাডু বনাই তাক পুৰি চাফা পানী তিয়াই দিয়াৰ ফলত যি ধোঁৱা ওলায়, তাক কাণৰ ভিতৰত সোমাবলৈ দিয়ে। এনে কৰিলে কাণৰ ঘাঁ শুকাই যাব। কাণৰ বিষত কণা শিমলুৰ পাত খুন্দি তাৰ তিনি টোপাল কাণত দিয়া হয় আৰু অলপ পাছত সেই নিৰ্দিষ্ট কাণখন তললৈ দি পুনৰ উলিয়াই দিয়া হয়। এনেদৰে তিনি-চাৰিদিন কৰিলে কাণৰ বিষ ভাল হয়।

দাঁতৰ ৰোগ :

দাঁত ভালে ৰাখিবৰ বাবে মিচিং লোকসকলে বাঁহৰ গছৰ ডালৰ আগৰ কুমলীয়া অংশৰে দাঁত মাজে, তদুপৰি পৰম্পৰাগত নিয়ম অনুসৰি নিমখ আৰু এঙাৰেও দাঁত মাজে। দাঁতৰ বিষ হ'লে পঁকা কঠালৰ শুকুৱাই থোৱা ঠাই খুন্দি গুৰি কৰি বিষ হোৱা অংশত লগাই দিয়ে। কেতিয়াবা বাঁহৰ লেকেচিও জুইত সেকি গৰম কৰি বিষ হোৱা অংশত লগায়।

প্ৰসাৰজনিত সমস্যা নাইবা কিডনিৰ সমস্যা :

প্ৰসাৰ জ্বলা-পোৰা, প্ৰসাৰ হালধীয়া হোৱা আদি ধৰণৰ সমস্যাত মিচিং লোকসকলে সাধাৰণতে কুঁহিয়াৰৰ ৰস খাবলৈ দিয়ে। প্ৰসাৰ গৰম হ'লে কাঠ আলু গছৰ কুমলীয়া পাত আৰু বনজালুকৰ পাত খুন্দি তাৰ ৰস খালে ঠাণ্ডা হয়। একেদৰে দুপৰটেঙাৰ পাত খুন্দি তাৰ ৰস পুৱা খালী পেটত খালে প্ৰসাৰৰ সমস্যা ভাল হয়। মিচিংসকলে প্ৰস্তুত কৰা ছাই আপং প্ৰসাৰজনিত সমস্যাৰ বাবে ভাল বুলি কয়।

বৃক্কৰ সমস্যা :

কিডনীৰ সমস্যাত মিচিং সকলে সৰিয়হৰ পাত খুন্দি তাৰ ৰস খায়। তেনেদৰে কিছু লোকে ভেদাইলতাৰ পাত

খুন্দিও তাৰ ৰস সেৱন কৰা দেখা যায়। বৃক্কত পাথৰ হ'লে দুপৰটেঙা পাত খুন্দি খোৱাৰ উপৰিও তিয়াই খাবলৈ দিয়া হয়।

কেঁচুমূৰীয়া বা পাইলছ :

কেঁচুমূৰীয়া হ'লে মিচিং লোকসকলে লাজুকী বনৰ পাত আৰু শিপা খুন্দি তাৰ ৰস গাখীৰৰ লগত খাবলৈ দিয়ে। কেঁচুমতা গৰম কৰি (পুৰি) তাৰ সেক শৌচদ্বাৰত দিবলৈ দিয়ে।

জুয়ে পোৰা :

জুয়ে পুৰিলে মিচিংসকলে জাতিলাওৰ পাত আৰু শেলাই খুন্দি লেপন দিয়ে। তাৰ উপৰি চালকুঁৱৰীৰ পাত খুন্দিও পোৰা অংশত লগোৱা দেখা যায়।

জণ্ডিছ :

জণ্ডিছ ৰোগ হ'লে মিচিংসকলে শিয়ালকথাহি গছৰ গুটি গুড়ি কৰি পানীৰ সৈতে মিহলি কৰি খাবলৈ দিয়ে। কিছুমানে অৰ্জুন গছৰ ছাল, আমলখি গছৰ ছাল, লাইজাবৰীৰ পাত, সৰু-বৰ মানিমুণি আৰু আকাশীলতা পিহি গুড়ি কৰি গাখীৰৰ লগত দিনে দুবাৰকৈ খাবলৈ দিয়ে। কুঁহিয়াৰ ৰস খালেও জণ্ডিছৰ বাবে ভাল। জমলাখুটি গছৰ শিপা খুন্দি এৰাতি পানীত তিয়াই থৈ সেই পানী পিছদিনা খালেও জণ্ডিছৰ বাবে ভাল।

হাড় ভগা :

হাড় ভাগিলে মিচিং সকলেও 'হাড় যোৰা লতা' নামে এবিধ লতা ভঙা অংশত বান্ধি থয়। এনেদৰে দুই-তিনিদিন বান্ধি থ'লে ভঙা হাড় পুনৰ যোৰা লাগে। হাড় ভাগিলে আকৌ কিছু লোকে কেঁচা হালধিও বান্ধি থয়।

পেলু :

পেলুৰ সমস্যাৰ বাবে মিচিংসকলে সাধাৰণতে শোকোতা তিতা খালী পেটত খায়। ইয়াৰ উপৰিও শেৱালী গছৰ শিপা, বেতগাজ, নেমুৰ গুটি আদিও পেলু নাইকীয়া কৰিবলৈ তেওঁলোকে ব্যৱহাৰ কৰে।

চুলিৰ সমস্যা :

চুলিৰ সমস্যা যেনে - চুলি পকা, চুলি সৰা, অতিমাত্ৰা উফি হোৱা আদি সমস্যাৰ পৰা পৰিত্ৰান পাবৰ বাবে মিচিংসকলে সাধাৰণতে জেতুকা পাত, আমলখি, জবা ফুলৰ পাত আদি খুন্দি লগায়। চুলিৰ সৌন্দৰ্য বাঢ়িবৰ বাবে ও টেঙাৰ বীজেৰে মূৰ ধোৱে।

এৰাঁ ভঙা :

এৰাঁ ভঙা বা নাকেৰে তেজ ওলালে মিচিং সকলে তেতেলি গছৰ পাত খুন্দি বস উলিয়াই নাকত দিয়ে। আমৰলি পৰুৱা কেইটামান লৈ হাতেৰে মোহাৰি তাৰ পৰা ওলোৱা তীব্ৰ গোন্ধ নাকেৰে ল'লেও নাকৰ পৰা তেজ ওলোৱা বন্ধ হয়।

ফোঁহা :

ফোঁহা হ'লে মিচিং লোকসকলে সেই অংশত মৰ ডিমৰু গছৰ ছাল খুন্দি নাইবা পাতৰ পৰা ওলোৱা আঠা সানি দিয়ে। কেতিয়াবা আকৌ ৰঙা জবা ফুলৰ পাত বা ফুল খুন্দিও ফোঁহাত লগোৱা হয়। কিছু মিচিং লোকে ফোঁহা পকিবৰ বাবে গোটেই ৰাতি চাবোন সানি থয় আৰু পুৱা ফোঁহা পকি আৰোগ্য লাভ কৰে।

ধাতু যোৱা :

বিশেষকৈ তিব্বতী সকলৰ যি ধাতু যোৱা ৰোগ হয়, তাৰ পৰা উপশম পাবৰ বাবে মিচিং লোকসকলে অৰ্জুন গছৰ ছাল খুন্দি তাৰ নিৰ্দিষ্ট পৰিমাণৰ পানী দি সিজোৱা হয়। আৰু ঠাণ্ডা হ'লে সেয়া চিচাৰ বটলত ভৰাই ৰাখি পুৱা-গধূলি খাবলৈ দিয়া হয়। কিছু লোকে ধাতুৰ ৰোগৰ বাবে বেলপাত খুন্দি তাৰ বস খোৱাও দেখা যায়।

পাকপুনা :

জিভাত গুটি বা ঘাঁ হ'লে মিচিংসকলে তাক পাকপুনা বুলি কয়। এনে হ'লে সাধাৰণতেই মিচিং সকলে হোহনি বন (মিচিং ভাষাত যুমৰা মাৰচাং)ৰ বস নাইবা সেই বনৰ গুটি লগাই দিয়ে। কিছু মিচিং লোকে কেতিয়াবা মাতোকটোকা বনৰ গুটিও জিভাত ঘাঁহে। পাকপুনাৰ পৰা উপশম পাবৰ বাবে কেতিয়াবা উৰিয়াম গছৰ পাত আৰু বাকলি চোবাই থাকিবলৈয়ো দিয়া দেখা যায়।

পানীয়ে খোৱা :

মিচিং লোকসকল হৈছে কৃষিজীৱি আৰু নৈপৰীয়া লোক। অনবৰত পানীৰ মাজতে কৃষিৰ কাম কৰি থকাৰ বাবে ভৰিৰ আঙুলিৰ ফাঁকে ফাকে ৰঙা পৰি খজুৱাবলৈ ধৰে আৰু তলুৱাৰ ফালেও গাঁত গাত হৈ ছালবোৰ ওখোৰা-মোখোৰা হয়। এনে হ'লে পানীয়ে খোৱা বুলি কোৱা হয়। এনে হ'লে মিচিংসকলে ভেলেউ গছৰ গুটি জুইত পুৰি পানীয়ে খোৱা অংশত লগাই দিয়ে। কেতিয়াবা পানীয়ে খালে মিচিং লোক সকলে কেৰাচিন তেল, মটৰ বাইকত ভৰোৱা ডিজেল, পেট্ৰল আদিও লগোৱা দেখা যায়।

জোকে খোৱা :

কৃষিজীৱি মিচিং লোকসকলে পানীৰ মাজত কৰা কৃষি কামকে আদি কৰি মাছ ধৰা আদি দৈনন্দিন কাম-কাজবোৰ কৰোঁতে জোকে ধৰা দেখা যায়। এই জোকৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাবলৈ জোক থকা ঠাইত তিঁয়হৰ বাকলি পেলাই দিয়া হয়। তেনে কৰিলে জোকবোৰ নাহে বা মৰি যায় বুলি কোৱা হয়। গাত বা হাত-ভৰিত কেৰাচিন তেল সানি পানীত নামিলে জোকে নধৰে বুলি কয়।

কেনেকৈ যদি জোকে ধৰেও, তাক এক্সৰাবলৈ বৰ টান। সেয়েহে হাতত 'থুই'ৰ ব্যৱহাৰ কৰি তাক এক্সায়। জোকটো মৰিবলৈ নিমখ নাইবা চাদা-চূণ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

সাপে খোঁটা :

বিষাক্ত সাপে খুঁটিলে আৰোগ্য কৰিব পৰাটো কঠিন। তথাপি সাপে খোঁটা বিষৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাবলৈ মিচিং লোক সকলে দূৰুণ বনৰ পাত খুন্দি তাৰ বস খাবলৈ দিয়ে। সাপে খুঁটিলে মিচিং লোকসকলে নিশ্চিত হ'বৰ বাবে প্ৰথমে ব্যক্তিজনক নিমখ খাবলৈ দিয়ে। যদি তেওঁ নিমখৰ চোক নাপায়, তেন্তে সাপে খোঁটাটো নিশ্চিত হৈ পৰে। প্ৰথমতে সাপে খোঁটা ব্যক্তিজনক বহুত বেছি পানী খাবলৈ দিয়ে। কিছু লোকে সাপে খোঁটা লোকক তুলসীৰ পাত খুন্দি তাৰ বস খাবলৈও দিয়ে। সৰ্পগন্ধা বনৰ পাত আৰু শিপাও সাপৰ বিষ ভাল কৰিবৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰে।

শ্বাস-প্ৰশ্বাসজনিত সমস্যা :

উশাহ-নিশাহ লোৱাত যদি সমস্যা হয় বা উশাহ লওঁতে ডিঙিত শব্দ কৰিলে মিচিং লোকসকলে গেন্দেলা বন বা গোক্কাৰা বনৰ শিপা, পছতীয়াৰ শিপা বা ছাল, জালুক আৰু আঢ়ৈ চাউল খুন্দি বড়ি বনাই খাবলৈ দিয়ে। এনে ৰোগৰ বাবে কপৌ টেকীয়া সিজাই তাৰ জোল নিয়মীয়াকৈ খাবলৈ দিয়াও দেখা যায়।

এইবোৰৰ উপৰিও অন্যান্য কিছুমান সমস্যা বা ৰোগ আছে যিবোৰ হ'লে মিচিং লোকসকলে ঘৰতে তথা সততে পোৱা প্ৰাকৃতিক উপাদান ঔষধ হিচাবে ব্যৱহাৰ কৰি আৰোগ্য লাভ কৰে। যেনে - কোনো বা বৰলে কামুৰিলে ওলকচুৰ বাকলি বা আঁঠা লগায়; গাত চাঁহীয়ে ধৰিলে তাত কেৰাচিন তেল ঘাঁহে; সৰু ল'ৰা-ছোৱালীয়ে শোৱাপাটিতে প্ৰস্ৰাৱ কৰা ৰোগ হ'লে পানী (পাটী?) মুতুৰা মাছ পুৰি খোৱায়; সৰু ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাত বহুদিনলৈকে নুফুটিলে ছাগলীৰ জিভা সিজাই খোৱায়; মেলৰীয়াৰ পৰা উপশম পাবৰ বাবে নামছিং বা শুকতি মাছ খোৱায়; মগজুৰ বিকাশ আৰু স্মৃতি

শক্তি বৃদ্ধিৰ বাবে খালী পেটত মানিমুণি পাত, ব্ৰাখী শাক, গোমধান, পদিনা আদি খোৱা দেখা যায়।

মানুহৰ ৰোগ-ব্যাদিৰ উপৰিও মিচিংসকলে ঘৰত পোহা বিভিন্ন জীৱ-জন্তু যেনে - গৰু-ম'হ, কুকুৰ-মেকুৰী আদিৰ বিভিন্ন ৰোগৰ ক্ষেত্ৰতো বনৌষধি অৰ্থাৎ লোক ঔষধৰ ব্যৱহাৰ কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে গৰু-ম'হৰ ঘাঁ হ'লে বা কান্ধ ছিগিলে মিচিংসকলে আকণ গছৰ বগা আঠাৰ সৈতে মিঠাতেল অলপ মিহলাই যা গোৱা ঠাইত লগায়। কেতিয়াবা চাদা-চূণৰ সৈতে মিঠাতেল মিহলাইয়ো যা হোৱা ঠাইত লগোৱা দেখা যায়। গৰুৱে কেতিয়াবা নতুন ঘাঁ-বন নাইবা অপৰিষ্কাৰ পানী খোৱাৰ ফলত শৌচ পাতল হয়। এনেকুৱা হ'লে মিচিংসকলে একে উশাহতে তৰাপাত আৰু ভেদাইলতা পাত খুন্দি তাৰ বস গৰুৰ খুৱালে শৌচ টান হয়। এনে ৰোগত মদৰ বাখৰ খোৱালেও ভাল হয়। গৰু-ম'হ, পোহনীয়া কুকুৰ-মেকুৰীৰ গাত চিকৰাই ধৰিলে বা ফাপৰে খালে নতুবা খৰ হ'লে গাত চাউলৰ পেলনীয়া পানী বা মাছ ধোৱা পানীৰে গা ধুৱালে ভাল ফল পোৱা দেখা যায়। (দাস, অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-চিকিৎসা, ৪৪, ৪৫)

উপসংহাৰঃ

যুগ-যুগান্তৰ ধৰি মিচিং লোকসকলৰ মাজত প্ৰাকৃতিকভাৱে পোৱা লোক ঔষধৰ দ্বাৰা কৰা চিকিৎসা

ব্যৱস্থা চলি আহিছে। বেছিভাগ ৰোগৰ চিকিৎসা লোকঔষধৰ দ্বাৰাই কৰা দেখা যায়। আনকি ভিতৰুৱা অঞ্চলবোৰত এতিয়াও মিচিং লোকসকলে ৰোগে চুড়ান্ত অৱস্থা পালেগৈহে চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ সহায় লোৱা দেখা যায়। বহু মিচিং লোক এতিয়াও এনে ভিতৰুৱা নাইবা দুৰ্গম অঞ্চলত বাস কৰে, যাৰ বাবে তেনে ঠাইত এতিয়াও চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ পোহৰ পৰা গৈ নাই। তেনে ঠাইত লোক ঔষধেই ৰোগ নিবাৰণৰ একমাত্ৰ উপায় হৈ আছে। তাৰ পৰিৱৰ্তে এচাম লোক শিক্ষিত হোৱাৰ ফলত লোক-চিকিৎসাৰ পৰিৱৰ্তে চিকিৎসা বিজ্ঞানকহে মূল আশ্ৰয় হিচাবে লোৱা দেখা গৈছে। যাৰ ফলত তেনেবোৰ ঠাইত লোক-চিকিৎসাৰ আদৰ কমিছে। যিসকল লোকে নিস্বার্থভাৱে এনে চিকিৎসা সেৱা আগবঢ়াই আহিছে, তেওঁলোকৰ ধোৰাবাহিকতা ৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত নতুন প্ৰজন্ম আগ্ৰহী নহয়। ফলত এসময়ত এই লোক-ঔষধ বা লোক-চিকিৎসা ব্যৱস্থা সংকটৰ গৰাহত পৰাও দেখা গৈছে, যিটো অসমৰ লোক সংস্কৃতিৰ এটি বিস্তৰ ক্ষতি। ইয়াক অক্ষুণ্ণ ৰাখিবৰ বাবে জাতি-জনজাতি ভেদে আমি প্ৰত্যেকেই এই লোক ঔষধসমূহ প্ৰাকৃতিকভাৱে সংৰক্ষণ কৰি পাছলৈ ব্যৱহাৰৰ উপযোগী কৰি ৰখাৰ যথেষ্ট প্ৰয়োজনীয়তা আছে। □

গ্ৰন্থপঞ্জীঃ

- কুলি, জৱাহৰ জ্যোতি। *মিচিং সংস্কৃতি*। কৌস্তভ প্ৰকাশন, ২০০৯। ডিব্ৰুগড়। ছপা।
গগৈ, লোকেশ্বৰ। *অসমৰ লোকসংস্কৃতি-২*। ক্ৰান্তিকাল প্ৰকাশন, ২০১১। নগাঁও। ছপা।
দলে, বসন্ত কুমাৰ। *মিচিং সমাজ-সংস্কৃতিৰ সমীক্ষা*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০০৮। গুৱাহাটী। ছপা।
দাস, অংশুমান। *অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-চিকিৎসা*। আঁক-বাক, ২০১৮। গুৱাহাটী। ছপা।
পায়েং, সদানন্দ। *মিচিং জনজাতিঃ সমাজ আৰু সংস্কৃতি*। জাগৰণ সাহিত্য প্ৰকাশন, ২০১১। গুৱাহাটী। ছপা।
বড়ি, মনোৰঞ্জন। *চিকিৎসা-বিজ্ঞান, মিচিং সমাজ আৰু লোকবিশ্বাস*। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১৬। গুৱাহাটী। ছপা।
ছহুইন, ইছমাইল। *মিচিং সমাজ-ইতিহাস আৰু সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য*। জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৫। গুৱাহাটী। ছপা।

অসমৰ মিচিং জনজাতিৰ সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক জীৱনৰ এক নৃতাত্ত্বিক পৰিচয়



বাৰ্ণা কাৰ্ডং

গৱেষক, আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা
আৰু সাহিত্য অধ্যয়ন বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০১৪
☎ ৬০০১৯২২০৩৬
✉ jharnakardong@gmail.com



ড° উপেন্দ্ৰজিৎ শৰ্মা

সহযোগী অধ্যাপক আৰু মুৰব্বী,
অসমীয়া বিভাগ, ভোলানাথ
মহাবিদ্যালয়, বিদ্যাপাৰা ৰোড
ধুবুৰী- ৭৮৩০২৪
☎ ৮৬৩৮৮২২৬৬৪
✉ upendrajitsarma796@gmail.com

সাৰাংশ :

এই গৱেষণাৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে অসমত বসবাস কৰা মিচিংসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ এক নৃতাত্ত্বিক পৰিচয় দাঙি ধৰা। অসমত বসবাস কৰা জনজাতিসমূহৰ ভিতৰত জনসংখ্যাৰ দিশত বড়োসকলৰ পিছতেই মিচিংসকলে স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। বৰ্তমান মিচিংসকল প্ৰধানকৈ উজনি আৰু মধ্য অসমত বসবাস কৰি থকাৰ লগতে অৰুণাচল প্ৰদেশৰ কিছু অংশতো মিচিংসকলৰ বসতি পৰিলক্ষিত হয়। মিচিংসকল মংগোলীয় নৃগোষ্ঠীৰ আৰু তিব্বতবৰ্মী ভাষাগোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত। মিচিং সমাজ পুৰুষতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হয়। মিচিংসকল সচৰাচৰ নৈৰ পাৰত চাংঘৰ সাজি বসবাস কৰে। মিচিংসকল প্ৰধানকৈ কৃষিজীৱী। নিজস্ব গীত-মাত, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, সাজ-পাৰ, খাদ্য-সম্ভাৰ, গীত-মাত-নৃত্য, ৰীতি-নীতি আদিৰে মিচিং সংস্কৃতি সমৃদ্ধ।

বীজশব্দ :

মিচিংসকল, সমাজ, সংস্কৃতি, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, সমাজ-ব্যৱস্থা, উৎসৱ, লোকগীত, লোকাচাৰ, প্ৰধান।

০.০ অৱতৰণিকা

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূব প্ৰান্তত অৱস্থিত অসম এখন বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰে ভৰা ৰাজ্য। অসমত বড়ো, কাৰ্বি, মিচিং, ৰাভা, গাৰো, দেউৰী, তিৱা, ডিমাচা ইত্যাদি বহুতো জনজাতিয়ে বহু বছৰ ধৰি বসবাস কৰি আছে। অসমত বসবাস কৰা জনজাতিসমূহৰ ভিতৰত বড়োসকল হৈছে বৃহত্তম জনজাতি আৰু মিচিংসকল হৈছে দ্বিতীয় বৃহত্তম জনজাতি। মিচিংসকল নৃতাত্ত্বিক দিশৰ পৰা মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত। ভাষাতত্ত্বৰ ফালৰ পৰা মিচিংসকল তিব্বতবৰ্মী গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত। মিচিংসকলৰ নিজা লিপি নাই; তেওঁলোকে অসমীয়া লিপি আৰু ৰোমান লিপিতে লিখা-মেলা কৰে। অসমৰ ধেমাজি, তিনিচুকীয়া, লখিমপুৰ, ডিব্ৰুগড়, শিৱসাগৰ, গোলাঘাট, যোৰহাট, মাজুলী, শোণিতপুৰ আদি জিলাত মিচিংসকল প্ৰধানকৈ বসবাস কৰে। তদুপৰি অৰুণাচল প্ৰদেশৰ পূব চিয়াং, দিবাং ভেলী আৰু লোহিত জিলাতো কিছুসংখ্যক মিচিং লোকে বসবাস কৰে। ২০০১ চনৰ লোকপিয়লৰ প্ৰতিবেদন অনুসৰি অসমত বসবাস কৰা জনজাতিসমূহৰ ভিতৰত জনসংখ্যাৰ দিশত মিচিংসকল দ্বিতীয় বৃহত্তম জনজাতি। ২০০১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি মিচিং জনজাতিৰ মুঠ জনসংখ্যা ৫,৮৭,৩১০ জন। তাৰে পুৰুষৰ সংখ্যা হৈছে ২,৯৯,৭৯০ আৰু মহিলাৰ সংখ্যা হৈছে ২,৮৭,৫২০। ২০১১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি অসমত বসবাস কৰা মিচিং জনগোষ্ঠীৰ জনসংখ্যা হৈছে ৬,৮০,৪২৪ জন; তাৰে পুৰুষৰ সংখ্যা হৈছে ৩,৪৫,৭৮৬ আৰু মহিলাৰ

সংখ্যা হৈছে ৩,৩৪,৬৩৮। ২০১১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি মিচিং জনজাতিৰ গ্ৰাম্যাঞ্চলত বসবাস কৰা মুঠ জনসংখ্যা হৈছে ৬,৬,৩৮৪২ আৰু নগৰাঞ্চলত বসবাস কৰা মুঠ জনসংখ্যা ১৬,৫৮২। (উৎস— <http://censusindia.gov.in>) মিচিংসকলৰ প্ৰধান জীৱিকা হৈছে কৃষি আৰু প্ৰধান খেতি হৈছে ধান। ভাত মিচিংসকলৰ প্ৰধান আহাৰ। মিচিংসকল নৈপৰীয়া আৰু চাংঘৰ সাজি বসবাস কৰে। মিচিংসকল পাগৰ, দৌল, দাম্বুগ, ছাংয়াং, ময়িং, চামুঙৰীয়া ইত্যাদি বিভিন্ন খেলত বিভক্ত। মিচিংসকলে একে উপাধিৰ মাজত বৈবাহিক সম্পৰ্ক গঢ়ি নোতোলে। মিচিংসকলে নিজকে চন্দ্ৰ-সূৰ্যৰ বংশৰ বুলি বিশ্বাস কৰে আৰু চন্দ্ৰ-সূৰ্যকে পিতৃ-মাতৃ হিচাপে আৰাধনা কৰে। মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থা পিতৃতান্ত্ৰিক। পিতৃ চন্দ্ৰ আৰু মাতৃ সূৰ্যৰ সন্তান আবু তানিকে প্ৰথম পুৰুষ হিচাপে মিচিংসকলে গণ্য কৰি আহিছে। মিচিংসকল বৰ্তমান হিন্দু ধৰ্মৰ যদিও কিছুলোকে খ্ৰীষ্টিয়ান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। তেওঁলোকৰ সৰহ সংখ্যকেই গ্ৰাম্যাঞ্চলত বসবাস কৰে। শিক্ষা-দীক্ষা আৰু আৰ্থিক দিশত মিচিংসকল এতিয়াও অগ্ৰসৰ হ'ব পৰা নাই যদিও সাংস্কৃতিক দিশত বেচ চহকী।

মিচিং সংস্কৃতিৰ পৰিধি যথেষ্ট ব্যাপক। অসমলৈ প্ৰব্ৰজনৰ আগৰ পৰাই প্ৰচলিত মিচিংসকলৰ আপুৰুগীয়া সংস্কৃতিৰ শোভাই এতিয়াও জাতিটোক এক স্বকীয় মৰ্যাদা প্ৰদান কৰিছে। মিচিং জনগোষ্ঠীৰ লোকসংস্কৃতিৰ এক বৰ্ণাঢ্য যাত্ৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিভিন্ন গীত-মাত, সাধু কথা, প্ৰবাদ-প্ৰৱচন, মন্ত্ৰ, ফকৰা-যোজনা, সাঁথৰ, পৰিৱেশ্য কলা, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, সামাজিক ৰীতি-নীতি, খাদ্য-সম্ভাৰ, শিল্পকলা, স্থপতি বিদ্যা আদিৰে মিচিং লোকসংস্কৃতি সমৃদ্ধ।

০.২ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

সকলো গৱেষণা কৰ্মৰে এটা নিৰ্দিষ্ট পৰিসীমা থাকে। এই অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰতো একোটা পৰিসীমা নিৰ্ধাৰণ কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত অসমত বসবাস কৰা মিচিং জনজাতিৰ সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, সাংস্কৃতিক আদি দিশসমূহৰ নৃতাত্ত্বিক পৰিচয় দিয়া হ'ব।

০.৩ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

আলোচিত বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য এনেধৰণৰ—

ক) মিচিংসকলৰ পৰিচয়, মিচিং সমাজৰ বৈশিষ্ট্য, মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থা আৰু সাংস্কৃতিক দিশ সম্পৰ্কে এক নৃতাত্ত্বিক পৰিচয় দাঙি ধৰা।

খ) মিচিংসকলৰ খেল-বিভাজনৰ চমু পৰিচয় আৰু মিচিংসকলৰ অৰ্থনৈতিক জীৱনৰ এক নৃতাত্ত্বিক পৰিচয় দাঙি ধৰা।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

গৱেষণা পত্ৰখন আলোচনাৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৪ প্ৰমেয় :

এই গৱেষণা কৰ্মৰ প্ৰমেয় এনেধৰণৰ—

ক) মিচিংসকলৰ সমাজৰ বৈশিষ্ট্য সম্পৰ্কে জানিব পৰা যাব।

খ) মিচিংসকলৰ সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, সাংস্কৃতিক দিশ সম্পৰ্কে জানিব পৰা যাব।

১.০ অসমৰ মিচিং সমাজ :

অসমৰ জাতি-গঠন প্ৰক্ৰিয়াত মিচিং জনজাতিৰ অৱদান যথেষ্ট। মিচিং জনগোষ্ঠী সম্পৰ্কে ঐতিহাসিক তথ্য বৰ বেছি পাবলৈ নাই যদিও তেওঁলোকৰ মৌখিক সাহিত্য, কিংবদন্তি আৰু অতীত-তত সিঁচৰতি হৈ থকা দুই এক লিখিত সমলৰ পৰা কিছু আভাস পোৱা যায়। মিচিংসকলৰ প্ৰব্ৰজনৰ কোনো লিখিত ইতিহাস নাই। মুখে মুখে প্ৰচলিত মৌখিক সাহিত্যৰাজিৰ পৰা মিচিংসকলৰ প্ৰব্ৰজনৰ সম্যক আভাস পাব পাৰি। উল্লেখযোগ্য যে, মিৰি জাতিটোৰ নাম প্ৰথমবাৰৰ বাবে শংকৰদেৱৰ দ্বাৰা অনুদিত ভাগৱতৰ দ্বিতীয় স্কন্ধত লিখিত ৰূপত পোৱা যায়। মিচিংসকলক পূৰ্বতে 'মিৰি' বুলি জনা গৈছিল। বিভিন্ন পুৰণি অসমীয়া পুথি, বুৰঞ্জী আদিত 'মিৰি' শব্দটোৱে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। তৰুণচন্দ্ৰ পামেগামৰ মতে— "পাহাৰৰ ফালে দেউধাইসকলক 'মিৰু' বা (মি-ৰ-উ) বুলি কয়। আদিত এই দেউধাইসকলেই মিচিংসকলৰ পুৰোহিতৰ কাম কৰিছিল আৰু সমাজৰ সকলো কাম দেউধাইৰ দিহা পৰামৰ্শমতে হৈছিল। এই 'মিৰু' শব্দৰ পৰাই 'মিৰি' হোৱা বুলি ধৰি ল'ব পাৰি।" (পামেগাম ৩৯-৪০)

১.১ মিচিংসকলৰ খেল বিভাজন :

প্ৰত্যেক জাতিৰে নিজস্ব খেল-বংশ আদি থাকে। এটা জাতি বা বংশ সৃষ্টিৰ মূলতে থাকে একোজন আদিপুৰুষ আৰু এই আদিপুৰুষৰ পৰাই বিভিন্ন খেল বা ফৈদ আদি সৃষ্টি হৈছে। মিচিংসকলেও একোজন আদিপুৰুষৰ পৰাই বিভিন্ন খেল বা ফৈদ আদি সৃষ্টি হোৱা বুলি বিশ্বাস কৰে। একোজন আদিপুৰুষৰ পৰা সৃষ্টি হোৱা মানুহবোৰ একে গোত্ৰ বা একে বংশৰ বুলি বুলি ধৰা হৈছিল আৰু সেই

একে গোত্ৰৰ লোকসকলে সমাজত একেলগে জীৱন-যাপন কৰাকে খেল বা ফৈদ বুলি কোৱা হয়। বিভিন্ন খেল বা ফৈদৰ সংমিশ্ৰণত বৃহত্তৰ মিচিং সমাজ গঠিত হৈছে। মিচিংসকল মূলতঃ প্ৰব্ৰজন, পৰিৱেশ, বাসস্থান আদি কাৰণত বিভিন্ন ফৈদ বা খেলত বিভক্ত হ'ল। মিচিংসকলৰ খেল বিভাজনক পণ্ডিতসকলে বিভিন্ন ধৰণে ভাগ কৰিছে। তৰুণচন্দ্ৰ পামেগামৰ মতে— “বাসস্থান আৰু বিভিন্ন কাৰণবশতঃ মিচিংসকলক প্ৰধানকৈ আঠোটা খেলত ভাগ কৰিব পাৰি। যেনে— চাংয়াং বা চায়েঙীয়া, অয়ান বা অয়েঙ্গীয়া, মংয়িং বা ময়েঙ্গীয়া, দৌলু বা তায়ু-তয়ে, পাগৰ, দাম্বুক, চামুঙৰীয়া আৰু তামাৰ।” (পামেগাম ৭১) মিচিংসকলৰ খেল বিভাজনক তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি—পাগৰ, মংয়িং, দাম্বুক, চাংয়াং বা চায়েঙীয়া, চামুঙৰীয়া, অয়ান, বংকোৱাল, তামাৰ, বিহিয়াং, দৌলু, বেবেজীয়া আদি। ইয়াৰে চামুঙৰীয়া, বংকোৱাল আৰু তামাৰসকলে মিচিং ভাষা ব্যৱহাৰ নকৰে। তেওঁলোকে মিচিং ভাষাৰ কিছুমান নামবাচক বিশেষ্য আৰু সম্বন্ধবাচক শব্দৰ বাদে অন্য মিচিং শব্দ ব্যৱহাৰ নকৰে। তেওঁলোকে অসমীয়া ভাষাকে মাতৃভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে যদিও মিচিং জনগোষ্ঠীৰ ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-অনুষ্ঠান আদি পালন কৰে।

১.২ মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থা :

মিচিংসকলৰ সামাজিক জীৱন সৰল আৰু বিভিন্ন নীতি-নিয়মৰ দ্বাৰা পৰিচালিত। মিচিংসকলৰ সমাজ-জীৱনৰ প্ৰধান বৈশিষ্ট্য হৈছে সামূহিকতা আৰু সহযোগিতা। বিভিন্ন কৰ্মত মিচিং গ্ৰাম্য সমাজৰ লোকসকলৰ সামূহিকতা আৰু সহযোগিতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। তলত মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থাৰ বিভিন্ন দিশসমূহ আলোচনা কৰা হ'ল—

যৌথ পৰিয়াল আৰু পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ-ব্যৱস্থা :

মিচিংসকলৰ সামাজিক গাঁথনিৰ প্ৰাথমিক স্তৰ হৈছে পৰিয়াল। মিচিংসকলে পূৰ্বতে যৌথ পৰিয়ালত বসবাস কৰিছিল যদিও বৰ্তমান সময়ত একক পৰিয়াল দেখিবলৈ পোৱা যায়। পূৰ্বতে মিচিংসকলে একে পূৰ্বপুৰুষৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা একাধিক প্ৰজন্মই একেলগে বসবাস কৰিছিল। মিচিংসকলে কৃষিকৰ্মৰ সুবিধা হোৱাকৈ তেওঁলোকে যৌথ পৰিয়ালত বসবাস কৰিছিল।

মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থা পুৰুষতান্ত্ৰিক। মিচিংসকলৰ পৰিয়ালৰ মুৰব্বী হৈছে জ্যেষ্ঠ পুৰুষজন। পৰিয়ালৰ মুৰব্বীজনৰ নিৰ্দেশমতেই ঘৰ এখন পৰিচালিত

হয়। মিচিং সকলৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ-ব্যৱস্থা অনুসৰি মিচিং নাৰী বিয়া হৈ দৰাৰ ঘৰলৈ যাব লাগে। পৰম্পৰাগত মিচিং নাৰীয়ে ৰাতিপুৱা শুই উঠি ঘৰ-চোতাল সাৰি সকলোৰে খাদ্যৰ যোগান ধৰাৰ উপৰি পথাৰলৈ ওলাই যায়। কৃষিকৰ্মত সহায়-সহযোগিতা কৰাৰ উপৰি পশুপালন, বোৱা-কটা কৰিও মিচিং নাৰীয়ে আৰ্থিক দিশত পৰিয়ালক সহায়-সহযোগিতা কৰে। বৰ্তমান সময়ত শিক্ষা-দীক্ষাতো মিচিং নাৰী অগ্ৰসৰ হৈছে আৰু বহুতো চাকৰিজীৱী মিচিং নাৰীয়ে পৰিয়াল পোহ-পাল দি আছে।

সামাজিক পৰিষদ আৰু অনুষ্ঠান :

মিচিংসকলৰ সমাজ এখন সূচাৰুৰূপে পৰিচালনা কৰিবলৈ নিজস্ব সামাজিক পৰিষদ আৰু অনুষ্ঠান থকা পৰিলক্ষিত হয়। মিচিংসকলৰ সামাজিক পৰিষদে সমাজৰ নীতি-নিয়ম আৰু আইন-শৃংখলা আদি বজাই ৰখাত সহায় কৰে। সামাজিক অনুষ্ঠানসমূহে বিভিন্ন গঠনমূলক কৰ্ম কৰে।

কীবাং হৈছে মিচিংসকলৰ গাঁৱৰ লোকসকলৰ দ্বাৰা গঠিত পৰিষদ। গাঁৱৰ বিভিন্ন বিবাদ, কাজিয়া-পেচাল, চুৰি-ডকাইতি, সমাজৰ নিয়ম উলংঘনকাৰী কৰ্ম আদি কীবাঙে নিয়ন্ত্ৰণ কৰে। তেওঁলোকে অপৰাধীক শাস্তি প্ৰদান কৰে আৰু অপৰাধীৰ পৰা জৰিমনা আদি লয়। কেতিয়াবা গুৰুতৰ অপৰাধীক এঘৰীয়া কৰি সমাজচ্যুত কৰে। কীবাঙৰ মুৰব্বী হৈছে গাম বা গাঁওবুঢ়া। গাঁওবুঢ়াৰ নিৰ্দেশ আৰু পৰামৰ্শমতে কীবাং এখন পৰিচালিত হয়।

মিচিংসকলৰ যুৱক-যুৱতীসকলৰ দ্বাৰা গঠিত পৰিষদটিৰ নাম হৈছে মুম্বুৰ-য়াংমে। এই পৰিষদ বা অনুষ্ঠানটোৱে মিচিং সমাজৰ বিভিন্ন কাম-কাজ সম্পন্ন কৰাত সহায় কৰে। প্ৰত্যেক ঘৰৰে একোগৰাকী যুৱক বা যুৱতী এই পৰিষদৰ সদস্য হয়। সমাজৰ উৎসৱ-অনুষ্ঠান, কৃষিকৰ্ম আদিত এই পৰিষদটোৱে বিশেষ ভূমিকা পালন কৰে।

মিচিংসকলৰ এক ৰাজহুৱা অনুষ্ঠান হৈছে মুৰংঘৰ। মুৰংঘৰ হৈছে মিচিংসকলৰ ডেকাচাং। প্ৰাচীন পৰম্পৰা অনুসৰি প্ৰতিখন মিচিং গাঁৱত মুৰং ঘৰ থকাটো অনিবাৰ্য আছিল। পূৰ্বতে ডেকাসকলে গাঁওবাসীক শত্ৰু আৰু বন্যপ্ৰাণীৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ ৰাতি মুৰং ঘৰতে কটাবলগীয়া হৈছিল। মুৰং ঘৰত মিচিংসকলে বিভিন্ন সামাজিককাৰ্যকলাপ কৰে। মিচিংসকলৰ এক প্ৰধান উৎসৱ পংৰাগ পাতিবলৈ মুৰংঘৰৰ প্ৰয়োজন। বৰ্তমান সময়ত

স্থায়ী মূৰং ঘৰ সকলোতে নাথাকে বাবে অস্থায়ী মূৰং ঘৰ সাজি পৰাগ উৎসৱ আৰু অন্যান্য সামাজিক অনুষ্ঠান আদি পতা হয়।

মিচিং সমাজ-ব্যৱস্থাৰ এক পুৰণি প্ৰথা হৈছে বিয়াৰ বাবে দৰাঘৰে কইনাৰ ঘৰত গা-ধন দিয়া প্ৰথা। মিচিং সমাজত যৌতুক প্ৰথা নাই আৰু মিচিং পৰম্পৰা অনুসৰি বিয়াত দৰাঘৰে কইনাৰ মাকক গা-ধন দিব লাগে। তদুপৰি, পুৰণি মিচিং সমাজত বিয়াৰ পূৰ্বে দৰাই কইনাৰ ঘৰত জোঁৱাই খাটিব লাগিছিল।

১.৩ ভাষা :

মিচিং ভাষা তিব্বতবৰ্মী ভাষাগোষ্ঠীৰ অন্তৰ্ভুক্ত। পূৰ্বতে মিচিংসকলৰ ভাষা লিখিত ৰূপত আছিল। তেওঁলোকৰ নিজা লিপি নাই বাবে ৰোমান লিপি আৰু অসমীয়া লিপিত মিচিং ভাষা লিখা হয়। পূৰ্বতে মিচিং ভাষাটো লিখিত ৰূপত নাছিল যদিও মৌখিক সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত মিচিংসকল যথেষ্ট চহকী। মিচিংসকলৰ চামুঙৰীয়া, বংকোৱাল, তামাৰ আদিকে ধৰি কিছুমান ফৈদে মিচিং ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক আৰু নামবাচক শব্দৰ বাহিৰে মিচিং ভাষাৰ ব্যৱহাৰ নকৰে। তেওঁলোকে অসমীয়া ভাষাকে মাতৃভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে।

১.৪ ধৰ্ম :

পূৰ্বতে মিচিংসকলৰ কোনো ধৰ্ম নাছিল। তেওঁলোকে চন্দ্ৰ-সূৰ্য্যক আৰাধ্য দেৱতা হিচাপে মানি উপাসনা কৰি আহিছে। বৰ্তমান মিচিংসকল প্ৰধানকৈ হিন্দু ধৰ্মৰ আৰু কিছু সংখ্যকে খ্ৰীষ্টিয়ান ধৰ্ম, কিছুসংখ্যকে শংকৰী, কৃষ্ণগুৰু আদি ধৰ্মত দক্ষিত হোৱাও পৰিলক্ষিত হয়।

২.০ মিচিংসকলৰ অৰ্থনৈতিক জীৱন :

মিচিং সমাজৰ অৰ্থনৈতিক জীৱনৰ প্ৰধান সম্বল হৈছে কৃষি আৰু পশুপালন। তেওঁলোকৰ প্ৰধান খেতি হৈছে ধান। কৃষিকাৰ্য, পশুপালন আদিৰ যোগেদি গ্ৰাম্য মিচিং সমাজৰ সৰহসংখ্যকেই পৰিয়াল পোহ-পাল দি আছে। তেওঁলোকৰ ভূমি ব্যৱস্থা আৰু প্ৰাচীন কৃষি পদ্ধতি সম্পৰ্কে কোনো লিখিত তথ্য পাবলৈ নাই। তেওঁলোক ভৈয়ামলৈ অহাৰ পূৰ্বে ৰুম পদ্ধতিৰে খেতি কৰিছিল। সেই পৰ্যায়ত কোৰ, দা, কুঠাৰ আৰু খন্তি আদিয়েই আছিল তেওঁলোকৰ কৃষিৰ প্ৰয়োজনীয় সঁজুলি। তেওঁলোকে পাহাৰৰ পৰা প্ৰব্ৰজন কৰি আহোম আৰু চুতীয়া ৰাজ্যত প্ৰৱেশ কৰাৰ সময়ত জনজাতীয় স্তৰৰ উৎপাদন ব্যৱস্থাৰ মাজত দাসত্ব প্ৰথাৰ প্ৰাক-সামন্তীয় স্তৰে বিকাশ লাভ কৰিছিল। চিংফৌ

গাঁওবোৰত দাস হিচাপে ৰখা পাঁচ হেজাৰতকৈ অধিক অসমীয়া প্ৰজাক কেপ্তেইন নিউফ্ৰাইলে মুক্তি কৰি অনাৰ কথা এডৱাৰ্ড টুইট ডেল্টনে তেওঁৰ গ্ৰন্থ *Descriptive Ethnology of Bengal (retitled and reprinted in 1978 as Tribal History of Eastern India)* ত উল্লেখ কৰে। নিচি, চিংফৌ, খামতি আদি জনজাতিৰ মুখিয়ালসকলে বৃহৎ পৰিমাণৰ অসমীয়া মানুহ দাস হিচাপে ৰখাৰ কথা ৰবিনচনে তেওঁৰ *A Descriptive account of Assam* (1841) নামৰ গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। ভৈয়ামৰ মিৰি বা মিচিংসকল আবৰ বা আদিসকলৰ পৰা পলাই যোৱা দাস বুলি বহুকেইগৰাকী লেখকে উল্লেখ কৰিছে। লৰ্ড মেকেঞ্জিয়ে কৈছে— “The Miris of the plains are hereby claimed by the Abors as their dependents and runaway slaves.....” (Mackenzie 34) একেধৰণৰ মন্তব্য ৰবিনচন, থ্ৰিয়ার্টন আদিয়েও কৰিছে। *অৰুনোদই* কাকতত প্ৰকাশিত এক বিৱৰণত এনেদৰে পোৱা যায়— “আবৰহঁতে মিৰিবিলাকক সিহঁতৰ তলতিয়া বুলি জানি সিহঁতৰ ভালেমান কৰ লই দেখি, সিহঁতে অনেক ভাগি আহি অসম দেশৰ ভয়মত বহিছেহি। আবৰ বিলাকে সিহঁতক ধৰি নিবলৈ এৰি নিদিয়াত ইংৰাজি সকলত সিহঁতৰ বৰ বিশ্বাস হৈছে।” (ব্ৰাউন ২৮০-২৮১) এই তথ্যসমূহৰ দ্বাৰা প্ৰমাণ হয় যে এসময়ত আদি আৰু মিচিঙৰ মাজত দাসত্ব প্ৰথাৰ প্ৰচলন আছিল।

মিচিংসকলৰ সমাজ গাঁথনিত সামন্ততন্ত্ৰ বিকশিত হোৱা নাছিল। তেওঁলোকে গাম বা মুখিয়ালৰ নেতৃত্বত ৰুম প্ৰথাৰে অস্থায়ীভাৱে কৃষিকাৰ্য কৰি সমতলৰ লোকসকলৰ লগত পণ্য সামগ্ৰী বিনিময় কৰি ফুৰিছিল আৰু তেনেকৈয়ে এদিন তেওঁলোকে আৰ্থ-সামাজিক কাৰণত সমতলত থাকিবলৈ লৈছিল। গামৰ নেতৃত্বত পৰিচালিত কৃষি পদ্ধতি আছিল ক্ষেত্ৰান্তৰী আৰু ভূমিৰ মালিকানাও সমষ্টিগত আছিল। সেয়েহে স্থায়ী কৃষিপদ্ধতি সম্পৰ্কে তেওঁলোক সম্পূৰ্ণ অজ্ঞাত আছিল। তেওঁলোকে এডৱা মাটিত দুই তিনিবাৰ খেতি কৰাৰ পিছত অন্য এক ঠাইলৈ গৈছিল আৰু নতুনকৈ হাবি-জংঘল মুকলি কৰি কৃষিকাৰ্য কৰিছিল। তেওঁলোকে গৰু বা হাল ব্যৱহাৰ কৰা নাছিল। হাবি-বন মুকলি কৰাৰ পিছত কোৰেৰে চহাই শস্যৰ বীজ সিঁচিছিল। এই পদ্ধতিত তেওঁলোকে আছধান, গোমধান, সৰিয়হ, কপাহ, আফিং আদি শস্যৰ খেতি কৰিছিল। এনেদৰেই ক্ষেত্ৰান্তৰী কৃষি পদ্ধতি তেওঁলোকে শ শ বছৰ ধৰি কৰি আছিল। মিচিংসকলে ব্ৰখপুত্ৰ উপত্যকাত প্ৰৱেশ কৰাৰ পাছতহে স্থায়ী কৃষিপদ্ধতিৰ লগত

পৰিচয় হৈছিল। চুতীয়া আৰু আহোম ৰাজ্যত প্ৰৱেশ কৰি মিচিংসকলে ভূমি ৰাজহ দিছিল নে নাই, পাইক প্ৰথাত তেওঁলোক অন্তৰ্ভুক্ত আছিল নে নাই তাৰ কোনো তথ্য পোৱা নাযায়। তেওঁলোকৰ বসতি অস্থায়ী বাবে ব্ৰিটিছসকলেও তেওঁলোকৰ পৰা ভূমি ৰাজহ সংগ্ৰহ কৰোঁতে অসুবিধাৰ সন্মুখীন হৈছিল। নিজকে সামন্তীয় উৎপাদন ব্যৱস্থাৰ লগত খাপ খুৱাই ল'বলৈ মিচিংসকলক বহু বছৰ লাগিছিল। মিচিংসকলে সামন্তীয় উৎপাদন ব্যৱস্থাৰ লগত নিজকে খাপ খুৱাব লওঁতেই পুঁজিবাদী ব্যৱস্থাৰ সূত্ৰপাত হৈছিল। সেয়েহে তেওঁলোকে কোনোটো পদ্ধতিৰ লগতেই নিজকে খাপ খুৱাব নোৱাৰিলে। তেওঁলোকে স্থায়ী কৃষি পদ্ধতি অসমৰ অন্যান্য জনগোষ্ঠীসকলৰ পৰা গ্ৰহণ কৰিছিল। ঊনৈশ শতিকাৰ প্ৰথমৰ্ধলৈকে তেওঁলোকে স্থায়ী কৃষি পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰিব পৰা নাছিল।

মিচিংসকলৰ অস্থায়ী বসবাস আৰু প্ৰব্ৰজন পদ্ধতিয়েই তেওঁলোকৰ ভূমিহীনতাৰ প্ৰধান কাৰণ। মিচিংসকল প্ৰধানকৈ নৈৰ পাৰত বসবাস কৰে বাবে বছৰি হোৱা বানপানীৰ ফলত তেওঁলোকৰ কৃষিকাৰ্যৰ বিস্তৰ ক্ষতি হয়। কেতিয়াবা গৰাখহনীয়াই তেওঁলোকৰ খেতি-মাটি আদি উটুৱাই নিয়ে। তদুপৰি তেওঁলোকে বসবাস কৰা অঞ্চলবোৰ সাধাৰণতে জৰীপ নকৰা মাটি। অতি কম মিচিং লোকৰহে জৰীপ বা বন্দৰস্তি এলেকাৰ ভূমি থকা পৰিলক্ষিত হয়। ফলত বহুতো উচ্ছেদ অভিযানত তেওঁলোক বেদখলকাৰী হিচাপে চিনাক্ত হয় আৰু কৃষি ভূমি, ঘৰ-ভেটি আদি হেৰুৱাই পেলায়।

২.১ কৃষিকৰ্ম :

মিচিংসকলে বছৰটোত আত্থান, শালিধান আদি বহুতো ধানৰ খেতি কৰে। তদুপৰি বিভিন্ন শস্য; যেনে— গোমধান, তিল, কুঁহিয়াৰ, মৰাপাট, সৰিয়হ আদিৰ খেতি কৰে। তেওঁলোকৰ সবহসংখ্যকেই পুৰণি পদ্ধতিৰেই কৃষি কাৰ্য কৰে। তেওঁলোকৰ অধিকাংশই ব্যৱসায়ৰ উদ্দেশ্যে কৃষিকাৰ্য নকৰে, কেৱল নিজৰ আহাৰৰ বাবেহে কৰে। কৃষিকাৰ্যত পুৰুষ আৰু নাৰী উভয়েই সমানেই ভূমিকা পালন কৰে। ধলপুৰাতে শোৱাপাটী এৰি পুৰুষ-নাৰী উভয়েই পথাৰলৈ যায়। পুৰুষে হালবোৱা, মৈ টনা, পথাৰৰ আলি বন্ধা আদি কামবোৰ কৰে আৰু মহিলাই ভুঁই ৰোৱা, কঠীয়া তোলা আদি কামবোৰ কৰে। তেওঁলোকে যথেষ্ট কষ্ট কৰি কৃষিকাৰ্য কৰে। ভুঁই ৰোৱা বা ধান কটা, মৰণা মৰা, পথাৰৰ ধান ঘৰলৈ কঢ়িয়াই নিয়া আদি কামবোৰ পুৰুষ-মহিলা উভয়েই

কৰে। একেদৰে অন্যান্য শস্যৰ উৎপাদন কাৰ্যতো পুৰুষ-মহিলা উভয়েই সমানেই কৰ্ম কৰে।

২.২ পশুপালন :

মিচিংসকলৰ অৰ্থনৈতিক দিশত পশুপালনে যথেষ্ট ভূমিকা পালন কৰে। পশুপালন মিচিংসকলৰ বহু পুৰণি পৰম্পৰা। তেওঁলোকৰ পূজা-পাৰ্বণ, মাংগলিক কাম-কাজ আদি মাছ-মাংস অবিহনে নহয়। বিশেষকৈ পূজা-পাৰ্বণবোৰত গাহৰি আৰু কুকুৰাৰ ব্যৱহাৰ হয়। সেয়েহে তেওঁলোকে পশু-পক্ষী পালন কৰে। তদুপৰি দুগ্ধ উৎপাদনৰ বাবে আৰু কৃষিকৰ্মৰ বাবে গৰু, ম'হ আদিও পালন কৰে। গাহৰি, ছাগলী আদি পশু আৰু হাঁহ, কুকুৰা, পাৰ আদি পক্ষী তেওঁলোকে পালন কৰি আৰ্থিক দিশত কিছু সকাহ পায়।

পশু-পক্ষী পালনত মিচিং নাৰীৰ ভূমিকা উল্লেখযোগ্য। মিচিং নাৰীয়ে পশু-পক্ষী আদি পালন কৰি আৰ্থিকভাৱে স্বাৱলম্বী হোৱাৰ উপৰি পৰিয়ালৰ আৰ্থিক দিশত কিছু সহায় সহযোগিতা কৰে। মিচিংসকলে মীন পালনৰ যোগেদিও আৰ্থিক দিশত কিছু পৰিমাণে সহায় পায়। পূৰ্বতে মিচিংসকলে হাতীও পুহিছিল। হাতী থকা পৰিয়ালক বিভ্ৰালী বুলি গণ্য কৰা হৈছিল। অৱশ্যে একবিংশ শতিকাত এই ধাৰণাৰ অৱসান ঘটিছে।

২.৩ বয়ন শিল্প :

বয়ন শিল্পত মিচিং নাৰী যথেষ্ট দক্ষ। তেওঁলোকে তাঁতশালত নানা ধৰণৰ সাজ-পাৰ বই তৈয়াৰ কৰে। মিচিংসকলৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক এগে-গাচৰ, মিবু গালোক, গনৰ উগন, গাদু আদি তাঁতশালত শিপিনীয়ে বই উলিয়ায়। গাদু হৈছে জাৰকালি ল'ব পৰা কপাহেৰে তৈয়াৰী গৰম কাপোৰ। বহুতো মিচিং নাৰীয়ে বয়ন শিল্পক জীৱিকাৰ পথ হিচাপে বাছি লৈছে। মিচিং মহিলাক অৰ্থনৈতিক দিশত বয়ন শিল্পই যথেষ্ট সহায় কৰিছে। তেওঁলোকে ভিন্নৰঙী আটক ধুনীয়া সাজ-পাৰ তৈয়াৰ কৰি বজাৰত বিক্ৰী কৰি আৰ্থিক দিশত যথেষ্ট স্বাৱলম্বী হৈছে। মিচিং মহিলাক বয়ন শিল্পত আত্মসহায়ক গোট, বিভিন্ন চৰকাৰী সাহায্য আৰু আঁচনি আদিয়েও যথেষ্ট সকাহ দিছে।

কৃষিকৰ্ম, পশুপালন, বয়ন শিল্প আদিৰ উপৰি মিচিংসকলে বিভিন্ন বাঁহ-বেতৰ শিল্প আদি তৈয়াৰ কৰে। তেওঁলোকে বাঁহ-বেতেৰে ডলা-চালনী, জাকৈ, খালৈ ইত্যাদি বিভিন্ন সঁজুলি তৈয়াৰ কৰি বজাৰত বিক্ৰী কৰিও আৰ্থিক দিশত যথেষ্ট স্বাৱলম্বী হৈছে। বৰ্তমান অসমৰ

বাণিজ্যিক দিশত যথেষ্ট চাহিদা লাভ কৰিছে চাহ খেতিয়ে। মিচিংসকলেও ব্যক্তিগতভাৱে চাহ বাগিচা খুলি অসমৰ অৰ্থনৈতিক উৎপাদনত কিছু পৰিমাণে সহায় কৰিছে। তদুপৰি, বেপাৰ-বাণিজ্য কৰিও তেওঁলোকে অৰ্থনৈতিক দিশত কিছু আগবাঢ়ি লৈছে। তদুপৰি চাকৰিজীৱী এচাম মিচিং সমাজো আছে। বৰ্তমান সময়ত লাহে লাহে চাকৰিজীৱী মিচিং লোকৰ সংখ্যা বৃদ্ধি পাবলৈ লৈছে যদিও কৃষিজীৱীৰ তুলনাত সেয়া লক্ষণীয়ভাৱে তাকৰ। গৰাখহনীয়াত পৰি মিচিংসকলে কেতিয়াবা ভূমিহীন হৈ অন্য ঠাইলৈ প্ৰব্ৰজন কৰিবলগা হয়।

৩.০ মিচিং সংস্কৃতি :

সংস্কৃতি হৈছে মানৱ সভ্যতাৰ আচৰণৰ ফল। সংস্কৃতি মানৱৰ চিন্তা, মনন, কৰ্ম, সৌন্দৰ্য্যবোধ ইত্যাদিৰ ফল। মানৱৰ এই চিৰন্তন প্ৰক্ৰিয়া গতিশীল আৰু পৰিৱৰ্তনশীল হৈ থাকে। সেয়েহে সংস্কৃতি প্ৰাচীন হৈয়ো অবাচীন আৰু অবাচীন হৈও প্ৰাচীন বুলি কোৱা হয়। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাদেৱে *অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস* গ্ৰন্থখনত সংস্কৃতি সম্পৰ্কে এইদৰে উল্লেখ কৰিছে— “সংস্কৃতি পদটো সংস্কাৰৰ লগত বিশেষভাৱে জড়িত। যাৰ সংস্কাৰ হৈছেসিয়ে সংস্কৃতি।” (শৰ্মা ১) ইংৰাজী ‘Culture’ শব্দটোৰ সমাৰ্থক হিচাপে অসমীয়া সংস্কৃতি শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বিভিন্ন পণ্ডিতে বিভিন্ন ধৰণে সংস্কৃতিৰ সংজ্ঞা আগবঢ়োৱা পৰিলক্ষিত হয়। তাৰে ভিতৰত এডৱাৰ্ড বাৰ্ণেট টাইলৰে দিয়া সংজ্ঞাটোকে আটাইতকৈ গ্ৰহণযোগ্য বুলি ধৰা হয়। এডৱাৰ্ড বাৰ্ণেট টাইলৰ মতে— “সমাজৰ অংগীভূত সদস্য হিচাপে মানৱে আহৰণ কৰা জ্ঞান, বিশ্বাস, কলা, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, আইন-কানুন, নৈতিকতা, অভ্যাস আৰু অন্যান্য সামাজিক সামৰ্থ্যৰ সামগ্ৰিক যৌগিক ৰূপেই সংস্কৃতি।”^১

বৃহৎ মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ অংশবিশেষ হৈছে মিচিং সংস্কৃতি। মংগোলীয় জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত কিছু উমৈহতীয়া সংস্কৃতি দেখিবলৈ পোৱা যায়। মিচিংসকল বহু বছৰ ধৰি অসমত বসবাস কৰাৰ বাবে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ প্ৰবাহত মিচিং সংস্কৃতিৰ কিছু পৰিৱৰ্তন পৰিলক্ষিত হয়। অৱশ্যে অসমত বহু বছৰ বসবাস কৰিলেও শাৰীৰিক অবয়ৱ, সাংস্কৃতিক দিশ আদিত মংগোলীয়সকলৰ পৰা বিশেষ পৃথক হোৱা নাই। বাঁহ-বেত আদিৰে গৃহ সজা, ডেকা চাং, গাভৰু চাং, পূজা-পাতলত মদ-মাংসৰ ব্যৱহাৰ আদি বহুতো দিশত মংগোলীয় জনগোষ্ঠীসমূহৰ সংস্কৃতিৰ মিল থকা পৰিলক্ষিত হয়।

৩.১ মৌখিক সাহিত্য বা লোকসাহিত্য :

লোকসাহিত্য বা মৌখিক সাহিত্যৰ দিশত মিচিংসকলৰ প্ৰাচুৰ্য্যতা থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়। লোকসাহিত্যবোৰ মুখে মুখে প্ৰচলিত আৰু ইয়াৰ কোনো লেখক নাই। মিচিং লোকসাহিত্যত মিচিংসকলৰ সমাজৰ ছবি, কৃষক সমাজখন আৰু নৈ পৰীয়া জীৱন আদি সুন্দৰ ভাৱে ফুটি উঠা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

লোকগীত :

মিচিং লোকসাহিত্যক সমৃদ্ধ কৰিছে লোকগীত-মাতসমূহে। লোকগীতসমূহ জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে প্ৰচলিত। মিচিং লোকগীতসমূহক অনুষ্ঠানমূলক, কথোপকথনমূলক, বিনিমূলক, কৰ্মবিষয়ক, বিবিধ বিষয়ক আদি বিভিন্ন ভাগত বিভক্ত কৰিব পাৰি।

অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতত মিবু আবাং, মিডাং নিংতম(বিয়া গীত), ল’লে নিংতম আদি অন্তৰ্ভুক্ত।

কথোপকথন আধাৰিত লোকগীতক লুপং নিংতম বুলি কোৱা হয়। চীল্‌লই নিংতম, তীৰ-তীকাং আদি মিচিংসকলৰ কথোপকথনমূলক লোকগীত।

বিনি-আধাৰিত লোকগীতসমূহক কাবান বুলি কোৱা হয়। মিচিং কাবান নিংতম হ’ল— দংৰ কাবান, মাঁৰ কাবান, যাবান আদি।

কৰ্মবিষয়ক লোকগীতত বৃনিং নিংতম(ল’ৰা ওমলা গীত), লাততা চংমান(চোতাল বিহু)ত গোৱা গীত আদি অন্তৰ্ভুক্ত।

বিবিধ বিষয় আধাৰিত লোকগীতত অই নিংতম, লাৰীলি, চংমান-মমান নিংতমসমূহ অন্তৰ্ভুক্ত। অই নিংতম সমূহ প্ৰণয়মূলক, প্ৰকৃতিমূলক আৰু চহা জীৱনক লৈ ৰচিত।

লোককথা, লোকোক্তি :

লোকমনৰ চিন্তা, কল্পনা আদৰ্শ আদি লোককথাত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। লোককথাসমূহত এটা জাতিৰ প্ৰব্ৰজনৰ ইতিহাসৰ ইংগিতো পোৱা যায়। মিচিংসকলৰ লোককথাক পুৰাণ কথা, জনশ্ৰুতিমূলক কথা আৰু সাধুকথা আদি ভাগত বিভক্ত কৰিব পাৰি। মিচিংসকলৰ পুৰাণ কথাৰ ভিতৰত পৰে মিবু আবাং। মিবু আবাং মিচিংসকলৰ ধৰ্মীয় দৰ্শনৰ প্ৰধান আধাৰ। এই পুৰাণ কথাসমূহত পোৱা যায় এই জগতৰ সৃষ্টিৰ কাহিনী, মিচিংসকল সোণ-ৰূপৰ লতাৰে নামি অহাৰ কথা আদি।

মিচিংসকলৰ মাজত বহুতো জনশ্ৰুতিমূলক কথাত

পোৱা যায় ‘য়াকা মিৰীম’ নামৰ এগৰাকী সাহসী মিচিং নাৰীৰ কথা। ‘য়াকা মিৰীম’ মানসকলৰ লগত যুদ্ধত বন্দীত্বৰ পৰা বুদ্ধিৰে পলাই আহিবলৈ সক্ষম হয়।

মিচিংসকলৰ লোককথাবোৰৰ ভিতৰত সাধুকথাবোৰ অন্যতম। মিচিংসকল সাধুকথাত অত্যন্ত চহকী। মিচিংসকলৰ সাধুবোৰত বিভিন্ন ভূত-প্ৰেতৰ কথা, জীৱ-জন্তুৰ কাহিনী, যাদুকৰী কথা, কোনোবা পৰী বা কোনো ৰাজকুমাৰী আদিৰ কাহিনীবোৰ পৰে। মিচিংসকলৰ কেইটামান সাধুকথা হ’ল— ‘আবুতুনতুৰুং’, ‘পৌতুকাৰি’, ‘ইকিঃ কীলাং’ ইত্যাদি।

লোকোক্তিৰ ভিতৰত পৰে প্ৰবাদ প্ৰৱচন, পটন্তৰ, যোজনা আদি। মিচিংসকলৰ লোকোক্তিৰ সংগ্ৰহৰ সবিশেষ পোৱা নাযায়।

লোকভাষা :

তিব্বতবৰ্মী ভাষাগোষ্ঠীৰ উত্তৰ অসম শাখাৰ অন্তৰ্গত এক ভাষা হৈছে মিচিং ভাষা। মিচিংসকলে ৰোমান আৰু অসমীয়া লিপি ব্যৱহাৰ কৰি মিচিং ভাষাত লিখা-মেলা কৰে। মিচিংসকলৰ বহুতো উপভাষা আছে আৰু কিছুমান খেলে মিচিং ভাষা ব্যৱহাৰ নকৰে। মিচিং ভাষা ব্যৱহাৰ নকৰা খেলবোৰে অসমীয়া ভাষাক মাতৃভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে যদিও সম্বন্ধ বাচক শব্দ, উৎসৱ-পাৰ্বণ, গীত-মাত, দেৱতা আদিৰ নামত মিচিং ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কৰে।

মন্ত্ৰ সাহিত্য :

মিচিংসকলৰ লোকধৰ্ম আৰু বিশ্বাসৰ পৰম্পৰাতেই মন্ত্ৰৰ জন্ম। মিচিংসকলৰ মন্ত্ৰবোৰ বিভিন্ন ৰোগ-ব্যাদি আদিৰ পৰা নিৰাময় পাবলৈ খেতি আদিৰ বাবে গৃহস্থৰ মংগলৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানত যিবোৰ মন্ত্ৰত এটা শক্তি থাকে বুলি মিচিংসকলে বিশ্বাস কৰে।

৩.২ সামাজিক লোকাচাৰ :

মিচিংসকলৰ সামাজিক লোকাচাৰসমূহ তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি—

- ১। উৎসৱ-অনুষ্ঠান
- ২। অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি
- ৩। লোকঔষধ
- ৪। লোকধৰ্ম/লোকবিশ্বাস

উৎসৱ-অনুষ্ঠান :

মিচিংসকল কৃষিজীৱী আৰু তেওঁলোকে কৃষিৰ লগত জড়িত বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰে। মিচিংসকলৰ প্ৰধান উৎসৱ হ’ল— আলি আয়ে লুগাং আৰু পংৰাগ।

তদুপৰি মিচিংসকলে অসমীয়া তিনিটা বিহু অতি ধুমধামেৰে পালন কৰে। লগতে দুৰ্গা পূজা, দীৱালী, শিৱৰাত্ৰি আদি ধৰ্মীয় উৎসৱবোৰ সমান্তৰালভাৱে পালন কৰে।

আলি আয়ে লুগাং ফাগুন মাহৰ প্ৰথমটো বুধবাৰত পালন কৰা হয়। শস্য সিঁচাৰ প্ৰথম দিনটোক আলি আয়ে লুগাং বুলি কোৱা হয়।

মিচিংসকলৰ অন্যতম কৃষি উৎসৱ হ’ল পংৰাগ। পংৰাগ খেতি চপোৱাৰ পিছত পালন কৰা হয়।

মিচিংসকলৰ সামাজিক ৰীতি-নীতি আৰু আচাৰ ব্যৱহাৰৰ বোৰৰ ভিতৰত জন্ম, মৃত্যু আৰু বিবাহ সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰবোৰ অন্তৰ্ভুক্ত। মিচিংসকলে জন্ম, মৃত্যু আৰু বিবাহসম্পৰ্কীয় লোকাচাৰসমূহ বিভিন্ন নীতি নিয়মৰ মাজেৰে পালন কৰে।

লোকঔষধ :

মিচিং সমাজত বিভিন্ন লোকঔষধৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। ৰোগ ব্যাধিৰ নিৰাময়ৰ বাবে বিভিন্ন গাঁৱলীয়া ঔষধ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। জ্বৰ, মূৰৰ বিষ, পেটৰ বিষ, জীৱ-জন্তুৱে দংশন কৰিলে, ডায়েৰীয়া, ডিসেণ্ট্ৰি আৰু কটা-ছিঙা ইত্যাদি হ’লে মিচিং সমাজত বিভিন্ন গছৰ ছাল, পাত, শিপা, বন আদিৰে বনৌষধ তৈয়াৰ কৰে।

লোক খেল-ধেমালি :

মিচিংসকলে বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠান উপলক্ষে লোক খেল-ধেমালি অনুষ্ঠিত কৰে। এই খেলবোৰ প্ৰধানকৈ বিনোদনৰ বাবে অনুষ্ঠিত কৰা হয় যদিও সাম্প্ৰতিক সময়ত ই প্ৰতিযোগিতামূলক হৈ পৰিছে।

লোকধৰ্ম/লোকবিশ্বাস :

মিচিংসকলৰ ধৰ্ম শব্দটোৰ প্ৰতিশব্দ পোৱা নাযায়। মিচিংসকলৰ কোনো ধৰ্মীয় গ্ৰন্থ নাই। মুখে মুখে চলি অহা কিছুমান ধৰ্মীয় নীতি-নিয়ম আৰু বিশ্বাসকেই মিচিংসকলে পালন কৰি আহিছে। মিচিংসকলে চন্দ্ৰ-সূৰ্যক উপাস্য দেৱতা হিচাপে লৈ বিভিন্ন পূজা-পাতল কৰে। মিচিংসকলে কৰা পূজা পাতলৰ ভিতৰত দবুৰ উয়ু, তালং উয়ু, য়ুমৰাং উয়ু, অকুম উয়ু, উৰম আপিন ইত্যাদি অন্যতম। এই পূজাসমূহ গৃহস্থ বা ৰাইজৰ অপায় অমংগল দূৰ কৰিবলৈ কৰা হয়।

৩.৩ ভৌতিক সংস্কৃতি :

জৈৱ বৈচিত্ৰ্যই প্ৰদান কৰা সমলেই হৈছে মিচিংসকলৰ ভৌতিক সংস্কৃতিৰ প্ৰধান আধাৰ। মিচিংসকলৰ ভৌতিক সংস্কৃতিক তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি :

- ১। লোককলা/লোকশিল্প

- ২। লোকস্থাপত্য
- ৩। লোক-আভৰণ
- ৪। লোকৰন্ধন প্ৰণালী

লোককলা/লোকশিল্প :

মিচিং নাৰীয়ে বোৱা ফুলাম ৰিবি গাছেং, মিবু গালুক, মেখেলা-চাদৰ, গেৰং আদি মনোমোহা আৰু আকৰ্ষণীয়। এই কাপোৰবোৰত বচা চিত্ৰবোৰ বিভিন্ন গছ, ফুল, পাত, জীৱ-জন্তু, মাছ ইত্যাদিৰ চানেকী উপস্থাপন কৰা হয়।

মিচিংসকলৰ লোকশিল্পৰ পৰিচয় পোৱা যায় বয়ন শিল্প, বাঁহ-বেতৰ শিল্প আদিত। মিচিংসকল শিল্পকলাত চহকী। তেওঁলোকে বিভিন্ন সামগ্ৰী হাতেৰে সাজি উলিয়াব পাৰে; যেনে— জাকৈ, খালৈ, ডলা-চালনী আদি। ইয়াৰ উপৰি কৃষি কাৰ্যত প্ৰয়োজনীয় সামগ্ৰী যেনে মৈ, নাঙল, ওখন আদি মিচিংসকল নিজেই তৈয়াৰ কৰি ল'ব পাৰে। তদুপৰি, মিচিংসকলৰ বিভিন্ন বাদ্য-যন্ত্ৰসমূহেও মিচিং লোকশিল্পক চহকী কৰিছে।

লোকস্থাপত্য :

মিচিংসকলৰ স্থাপত্য কৰ্মৰ পৰিচয় পোৱা যায় অসমৰ ভৌগোলিক পৰিৱেশৰ পৰা আহৰণ কৰা বাঁহ, বেত, কাঠ, ইকৰা, খেৰ আদিৰে নিৰ্মাণ কৰা চাংঘৰ, মুৰংঘৰ, উৰালঘৰ ইত্যাদিত। মিচিংসকলে নিজস্ব শৈলীৰে গৃহ নিৰ্মাণ কৰে। মিচিং চাংঘৰ, মুৰং ঘৰ আদি নিৰ্মাণৰ নিজস্ব পদ্ধতি আৰু শৈলী থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

লোক-আভৰণ :

লোক-আভৰণৰ ক্ষেত্ৰত মিচিং সমাজত পুৰুষ মহিলা উভয়ৰে পৰম্পৰাগত সাজ-পাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। মিচিংসকলে পৰিৱেশ আৰু অনুষ্ঠান অনুযায়ী বিভিন্ন সাজ-পাৰ পৰিধান কৰে। বিবাহিত নাৰীয়ে বুকুত চেগচেগ পিন্ধে কিন্তু অবিবাহিত নাৰীয়ে নিপিন্ধে। মিচিং নাৰীয়ে পৰিধান কৰা সাজ-পাৰ হ'ল— এগে-গছৰ, ৰিবি-গাচেং, গেৰ : চেক্ৰ'গ আদি। পুৰুষে পৰিধান কৰা সাজপাৰ হ'ল— মিবু গালুক, গনৰ উগন, এৰকক আদি। আকৌ উভয়ে পৰিধান কৰা সাজ-পাৰৰ ভিতৰত হ'ল— মিৰি জিম, গাদু আদি। মিচিংসকলে আ-অলংকাৰ আদিও নিজেই তৈয়াৰ কৰি লয় আৰু পৰিধান কৰে।

লোকৰন্ধন প্ৰণালী :

ৰন্ধন প্ৰণালীৰ ক্ষেত্ৰত তেল-মচলাৰ ব্যৱহাৰ কমকৈ কৰে। তেওঁলোকৰ খাদ্য-সম্ভাৰৰ ভিতৰত নামচিং, পুৰাং আপিন আদি প্ৰিয় খাদ্য। মিচিংসকলে প্ৰকৃতিৰ পৰা আহৰণ

কৰা বিভিন্ন শাক-পাচলি আদিৰে সু-স্বাদু ব্যঞ্জন ৰান্ধিব পাৰে। তেওঁলোকৰ পানীয় হৈছে পৰ আপাং আৰু নগজিন আপং। মাছ, গাহৰিৰ মাংস, কুকুৰা-হাঁহৰ মাংস তেওঁলোকে খৰিকাত দি বা সিজাই ভাত বা পুৰাং আপিন, আপং আদি লগত পৰিৱেশন কৰে।

৩.৪ লোকপৰিৱেশ্য কলা :

মিচিংসকলৰ পৰিৱেশ্যকলাৰ ভিতৰত লোকসংগীত, লোক নৃত্য আৰু লোকনাট অন্তৰ্ভুক্ত। লোকসংগীত যদিও বাচিক কলাৰ এটা প্ৰধান ভাগ ই লোকপৰিৱেশ্য কলাৰো অন্তৰ্ভুক্ত। লোক সাহিত্যত লোক সংগীতক সাংগীতিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা বিচাৰ কৰা হয় আনহাতে লোক পৰিৱেশ্য কলাত ইয়াক পৰিৱেশন প্ৰক্ৰিয়াৰে বিচাৰ কৰা হয়। মিচিং লোকসংগীতৰ ভিতৰত মিবুগীত, লুগাং নিংতম, চাল লয়া নিংতম, লুপং নিংতম আদি উল্লেখযোগ্য।

মিচিংসকলৰ লোকনৃত্যক কৰ্মমূলক, কৃষিমূলক আৰু অন্যান্য এই কেইটা ভাগত বিভক্ত কৰিব পাৰি। কৰ্মমূলক নৃত্যৰ ভিতৰত মিবু দাগ্‌নাম উল্লেখযোগ্য। কৃষিমূলক নৃত্য ভিতৰত লুগাং নৃত্য অন্যতম। এই নৃত্য আলি আয়ে লুগাঙত পৰিৱেশন কৰা হয়। অন্যান্য বিষয়ক নৃত্যত পৰে লৌৰীলি চঃমান, টাললীয়া চঃমান আদি। মিচিং বুঢ়া-বুঢ়িসকলে বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠানত ভৰিৰে চাংকোবাই এই নৃত্য কৰে।

মিচিং লোকনাট্যত মিবু দাগ্‌নাম অনুষ্ঠানক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। মিবু দাগ্‌নামৰ বাহিৰে মিচিং লোকনাট্য পাবলৈ নাই, অৱশ্যে পুৰাণ মহাভাৰতৰ আধাৰত মিচিং ভাষাত ভাওনা আদি অনুষ্ঠিত হয় যদিও তাত তেওঁলোকৰ কোনো নিজস্বতা পোৱা নাযায়।

৪.০ উপসংহাৰ :

কোনো এটা জনগোষ্ঠীৰ সমাজ-সংস্কৃতিক সামৰি সংক্ষেপত অধ্যয়ন কৰাটো সম্ভৱ নহয়। অসমত বসবাস কৰা দ্বিতীয় বৃহত্তম জনজাতি হিচাপে মিচিংসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ পৰিসৰ যথেষ্ট ব্যাপক। সেয়েহে, এই আলোচনাত মিচিং সমাজ-সংস্কৃতিৰ পৰিচয়ে দাঙি ধৰা হৈছে। মিচিং জনজাতিৰ বিষয়ে কৰা অধ্যয়নৰ ফলত মিচিংসকলৰ অসমলৈ আগমন, বসবাস, সমাজ-ব্যৱস্থা, খেল বিভাজন, ধৰ্মীয় পৰম্পৰা, সংস্কৃতি, ভাষা ইত্যাদি বিভিন্ন দিশৰ বিষয়ে জনাত সহায় কৰিছে।

প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্ত :

১। মিচিংসকলে নৈৰ পাৰত আৰু চাংঘৰ সাজি বসবাস কৰে। মিচিংসকলৰ প্ৰধান জীৱিকা হৈছে কৃষি আৰু

পশুপালন; তদুপৰি, মিচিং নাৰীয়ে বোৱা-কটাৰ কৰ্ম কৰিও জীৱিকা নিৰ্বাহ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

২। মিচিংসকলৰ খেল বিভাজনক তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি—পাগুৰ, মংইং, দাম্বুগ, চাংয়াং বা চায়েঙীয়া, চামুঙৰীয়া, অয়ান, বংকোৱাল, তামাৰ, বিহিয়াং, দীলু, বেবেজীয়া আদি। ইয়াৰে চামুঙৰীয়া, বংকোৱাল আৰু তামাৰসকলে মিচিং ভাষা ব্যৱহাৰ নকৰে।

৩। মিচিংসকলৰ সমাজ-ব্যৱস্থা পিতৃতান্ত্ৰিক। বিভিন্ন নীতি-নিয়মৰ মাজেৰে মিচিংসকলৰ সমাজ পৰিচালিত হয়। মিচিং গাঁও সমূহত কীবাং নামৰ এক পৰিষদ থাকে আৰু গাঁওবুঢ়া কীবাঙৰ মুৰব্বী।

৪। মিচিংসকল সাংস্কৃতিক দিশত যথেষ্ট চহকী।

বিভিন্ন গীত-মাত, লোককথা, লোকোক্তি, লোকভাষা, মন্ত্ৰ সাহিত্য আদিৰে মিচিং লোকসাহিত্য পৰিপূৰ্ণ। বিভিন্ন লোক-উৎসৱ, পূজা-পাতলৰ উপৰি জন্ম, মৃত্যু, বিবাহৰ লগত জড়িত বিভিন্ন লোকাচাৰ মিচিংসকলে পালন কৰে। লোককলা, লোকশিল্প, লোকস্থাপত্য, লোক-আভৰণ, লোকবন্ধন প্ৰণালী আদি ভৌতিক সংস্কৃতিৰ দিশত মিচিংসকলৰ নিজস্বতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। লোকপৰিৱেশ্য কলাৰ ক্ষেত্ৰত, মিচিংসকলৰ পৰম্পৰাগত লোকনৃত্যৰ প্ৰচলন দেখিবলৈ পোৱা যায় যদিও মিবু দাগনাম অনুষ্ঠানৰ বাদে মিচিং লোকনাট্য নাই বুলি ক'ব পাৰি। □

অন্ত্যটীকা :

১। Taylor, edward Burnet. *Primitive Culture*. "..... that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society." Cambridge University Press. 1871. p. 1.

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

কাগয়ং, ভুগুমনি (সম্পা.)। তৰুণ চন্দ্ৰ পামেগাম ৰচনাৱলী (দ্বিতীয় খণ্ড)। অসম সাহিত্য সভা, ২০০৫।

পামেগাম, তৰুণচন্দ্ৰ। 'মিৰি বা মিচিং'। ভুগুমনি কাগয়ং (সম্পা.)। *মিচিং সংস্কৃতিৰ আলোচনা*। উৰুখা পঁজা, বিৰুবাৰী, ১৯৮৯।

ব্ৰাউন, নাথান। 'আবৰ বৰআবৰ, মিৰি আৰু ডফলাৰ বিৱৰণ'। মহেশ্বৰ নেওগ (পুনঃ সম্পা.)। *অৰুণোদই*। তৃতীয় বছৰ, একাদশ সংখ্যা।

Mackenzie A. *The North-east Frontier of India*, Delhi, Mittal Publications, 1917

গ্ৰন্থপঞ্জী

অসমীয়া গ্ৰন্থ

কাগয়ং, ভুগুমনি। সংক, সম্পা। *মিচিং সংস্কৃতিৰ আলোচনা*। গুৱাহাটী, উৰুখা পঁজা, বিৰুবাৰী, সংশোধিত আৰু পৰিৱৰ্তিত সংস্কৰণ : ১৯৮৯।

—। তৰুণ চন্দ্ৰ পামেগাম ৰচনাৱলী। (দ্বিতীয় খণ্ড)। যোৰহাট, অসম সাহিত্য সভা, ১ম প্ৰকাশ : ২০০৫

কাগয়ং, মৃণালী। *ক্ৰমবিৱৰ্তনত মিচিং লোকউৎসৱ*। গুৱাহাটী, অলিম্পিয়া প্ৰকাশন, ১ম প্ৰকাশ : ২০১৮

কাগয়ং, ৰঘুনাথ। *ঐতিহ্যৰ পোহৰত মিচিং লোক-সাহিত্য*। যোৰহাট, অসম সাহিত্য সভা। ১ম প্ৰকাশ : ২০২১

কাগয়ং, পুতলী। সম্পা। *অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ বিবাহ পদ্ধতি*। গুৱাহাটী, শতদল, ১ম প্ৰকাশ : ২০০৯

কুলি, জৱাহৰ জ্যোতি। *মিচিং সংস্কৃতি*। ১ম খণ্ড। ডিব্ৰুগড়, কৌস্তভ প্ৰকাশন, জানুৱাৰী, প্ৰথম প্ৰকাশ : ২০০৩

পাঞি কটকী, সোণাৰাম। *মিৰি জাতিৰ বুৰঞ্জী*। ডিব্ৰুগড় : বাগ্‌চি এণ্ড ক, ১ম প্ৰকাশ : ১৯৩৫

পাটৰ, পদ্ম। সম্পা। *জনজাতি সমাজ সংস্কৃতি*। গুৱাহাটী, বিংচাং প্ৰকাশন হাউছিং কলনি, হেঙেৰাবাৰী। ১ম প্ৰকাশ : ২০০৮

পাদু, নাহেদ। *অসমীয়া সংস্কৃতিৰে জনজাতীয় বৰঙনি*। শিৱসাগৰ, লেখক, ১ম প্ৰকাশ : ১৯৮৮

পামেগাম, তৰুণচন্দ্ৰ। *মিৰি বা মিচিং*। ভট্টাচাৰ্য, প্ৰমোদচন্দ্ৰ। সম্পা। *অসমৰ জনজাতি*। ধেমাজি, কিৰণ প্ৰকাশন, ১ম প্ৰকাশ : ২০০৮

ব্ৰাউন, নাথান। 'আবৰ বৰআবৰ, মিৰি আৰু ডফলাৰ বিৱৰণ'। মহেশ্বৰ নেওগ (পুনঃ সম্পা.)। *অৰুণোদই*। তৃতীয় বছৰ, একাদশ সংখ্যা।

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। *অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস*। গুৱাহাটী, বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ : ১৯৮৯

....। সংক. সম্পা। *সম্পূৰ্ণ অসমীয়া শ্ৰীমদ্ভাগৱত*। গুৱাহাটী, জ্যোতি প্ৰকাশন, নৱম প্ৰকাশ : ২০২৫

মিচিং গ্ৰন্থ :

Doley, Ghono Kt. *Gomlab Akun*. Dhemaaji, M.A.K., 1st edition : 2021.

Doley, Sitaram. *Mising Rengam*. Assam Lutad Publication, 1st edition : 2017.

Taid, Tabu. *Mising Gomà:ir Kumsung*. Guwahati, ABILAC, 1st edition : 2010.

ইংৰাজী গ্ৰন্থ

Daltom, edward Tuite. *Tribal History of eastern India*. New Delhi, Cosmo Publications, Reprinted : 1973.

Mackenzie A. *The North-east Frontier of India*. Delhi, Mittal Publications, Reprinted : 1979.

Mamoria, C.B. *Tribal Demography in India*. Delhi, Kitap Mahal, 1st edition : 1957.

Mipun, Jatin. *The Mishings of Assam*. New Delhi, Gyan Publishing House, 1st edition : 1993.

Richard M. Dorson. (ed). *Folklore and Folklife An Introduction*. Chicago, The University of Chicago press, 1st edition:1982.

Tylore, edward Burnet. *Primitive Culture* Vol.1. London, John Murray, 1st edition : 1874.

অসমৰ পাহাৰ আৰু ভৈয়ামৰ বিভিন্ন ভাষাৰ গ্ৰন্থ মুদ্ৰণত শিলঙৰ ভূমিকা : এক ঐতিহাসিক বিশ্লেষণ

সংক্ষিপ্তসৰ :



অভিজিৎ বৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১
☎ ৯৪৩৫৮৯০৫০৬
✉ abhijitborami@gmail.com

১৮৭৪ চনত অবিভক্ত অসমৰ প্ৰশাসনিক ৰাজধানী শিলঙলৈ স্থানান্তৰিত হোৱাৰ পিছৰে পৰা এই পাহাৰীয়া অঞ্চলটো উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ শৈক্ষিক, প্ৰশাসনিক আৰু মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ এক প্ৰধান কেন্দ্ৰবিন্দু হৈ পৰে। সেই সময়ৰ শিলঙত গঢ়ি উঠা মুদ্ৰণ সংস্কৃতি আৰু ইয়াৰ জৰিয়তে অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভাষা, ব্যাকৰণ, অভিধান তথা চৰকাৰী নথি-পত্ৰ প্ৰকাশৰ ঐতিহাসিক গুৰুত্ব বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। বিশেষকৈ ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ আৰু ইয়াৰ বিত্তীয় কাৰিকৰী আন্তঃগাঁথনি, ১৮৯৭ চনৰ বৰভূঁইকঁপৰ ফলত হোৱা ধ্বংসলীলা আৰু তাৰ পৰৱৰ্তী সময়ত হোৱা পুনৰুত্থানৰ খতিয়ান এই আলোচনাত তুলি ধৰা হৈছে। তদুপৰি খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ উদ্যোগত শিলং আৰু চেৰাপুঞ্জীত স্থাপিত ছপাশালসমূহ, খাচী পাহাৰৰ থলুৱা লোকৰ ‘ৰি খাচী প্ৰেছ’, ‘নেপালী প্ৰেছ’ আৰু কিতাপৰ দোকান তথা প্ৰকাশন ‘চপলা বুক ষ্টল’ আদিৰ অসমীয়া গ্ৰন্থ প্ৰকাশ আৰু সংৰক্ষণত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা সম্পৰ্কে আলোকপাত কৰা হৈছে। সামগ্ৰিকভাৱে শিলঙৰ মুদ্ৰণ সংস্কৃতি কেনেকৈ আধুনিক অসমীয়া জাতীয় পৰিচয় আৰু বৌদ্ধিক গৱেষণাৰ প্ৰাথমিক উৎস হৈ পৰিল, সেই সম্পৰ্কে এই গৱেষণা-পত্ৰত সবিস্তাৰে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দৰাজি :

অসম সচিবালয় ছপাশাল, শিলং, মুদ্ৰণ সংস্কৃতি, জনজাতীয় ভাষা, ১৮৯৭ চনৰ বৰভূঁইকঁপ, চপলা বুক ষ্টল, খাচী পাহাৰ, ঐতিহাসিক নথি।

ভূমিকা :

যিকোনো এটা অঞ্চলৰ সমাজ গঠন, জ্ঞানৰ প্ৰসাৰ আৰু ভাষিক সুস্থিৰতাৰ ক্ষেত্ৰত মুদ্ৰণৰ ভূমিকা অপৰিসীম। শিলঙত ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনিক ছপাশাল স্থাপন হোৱাৰ বহু পূৰ্বেই ঊনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথমৰ্ধত অসমত মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ বীজ অংকুৰিত হয়। এই ক্ষেত্ৰত ১৮৩৬ চনত অসমলৈ অহা আমেৰিকান বেপ্টিষ্ট মিছনেৰীসকলৰ ভূমিকা আটাইতকৈ উল্লেখনীয়। তেওঁলোকে শিৱসাগৰত স্থাপন কৰা ‘বেপ্টিষ্ট মিছন প্ৰেছ’ৰ পৰাই প্ৰথমখন অসমীয়া সংবাদ পত্ৰ *অৰুণোদয়* (১৮৪৬) প্ৰকাশ পোৱাৰ লগতে আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ভেটি প্ৰতিষ্ঠা হয়। ১৮৭১ চনত মাজুলীৰ আউনীআটী সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ দত্তদেৱ গোস্বামীয়ে ‘ধৰ্ম প্ৰকাশ যন্ত্ৰ’ স্থাপন কৰে। এইটো অসমীয়া মানুহে অসমভূমিত প্ৰতিষ্ঠা কৰা প্ৰথমটো ছপাশাল। ইয়াৰ পৰাই *আসাম বিলাসিনী* (১৮৭১) নামৰ দ্বিতীয়খন অসমীয়া সংবাদ পত্ৰ প্ৰকাশ হয়।

উজনি অসমত ধৰ্ম প্ৰচাৰ আৰু ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশৰ উদ্দেশ্যে গঢ়ি উঠা প্ৰাৰম্ভিক মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ পিছত ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষভাগত অৰ্থাৎ ১৮৭৪ চনত



ড° লুট্‌ফা হানুম ছেলিমা বেগম

প্ৰাক্তন সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া
বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১
☎ ৮৮৭৬৫২১৬১৭
✉ lutfahbegum@gmail.com

অসমক এখন সুকীয়া চীফ-কমিছনাৰ প্ৰদেশ হিচাপে গঠন কৰি ইয়াৰ প্ৰশাসনিক কেন্দ্ৰ গুৱাহাটীৰ পৰা শ্বিলঙলৈ স্থানান্তৰ কৰা হয়। ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনে অসমৰ শাসনভাৰ সুচাৰুৰূপে পৰিচালনা কৰাৰ স্বার্থত এটা ছপাশালৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰে। মিছনেৰীসকলে স্থাপন কৰা বা সত্ৰত স্থাপন কৰা ছপাশালৰ উদ্দেশ্য মূলতঃ ধৰ্মীয় আৰু ভাষা-সাহিত্যৰ সমৃদ্ধিৰ বিপৰীতে শ্বিলঙৰ ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ৰ উদ্দেশ্য সম্পূৰ্ণৰূপে প্ৰশাসনিক আৰু তথ্যভিত্তিক আছিল। চৰকাৰী কাৰ্যকলাপ পৰিচালনা, জিলা গেজেটিয়াৰ, লোকপিয়ল প্ৰতিবেদন আৰু অসমৰ পাহাৰ-ভৈয়ামৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ নৃতাত্ত্বিক অধ্যয়ন তথা ব্যাকৰণ-শব্দকোষ আদি মুদ্ৰণৰ বাবে শ্বিলঙত চৰকাৰী আৰু বেচৰকাৰী পৰ্যায়ত কেইবাটাও গুৰুত্বপূৰ্ণ ছপাশাল গঢ়ি উঠিল। এই ছপাশালসমূহে কেৱল ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনকে সহায় কৰা নাছিল, তাৰ লগতে অলিখিত অৱস্থাত থকা পাহাৰ-ভৈয়ামৰ ভাষাসমূহক সংহিতাবদ্ধ কৰি গ্ৰন্থৰূপ দিয়াত এক ঐতিহাসিক ভূমিকা পালন কৰিছিল।

শ্বিলঙৰ ‘আসাম ছেক্ৰেটাৰিয়েট প্ৰেছ’ আৰু বিভিন্ন ভাষাৰ গ্ৰন্থ মুদ্ৰণত ইয়াৰ ভূমিকা :

‘আসাম ছেক্ৰেটাৰিয়েট প্ৰেছ’ বা ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনৰ নিজা ছপাশাল। ১৮৭৪ চনত অসমক এখন সুকীয়া চীফ-কমিছনাৰ প্ৰদেশ হিচাপে গঠন কৰি ইয়াৰ প্ৰশাসনিক ৰাজধানী গুৱাহাটীৰ পৰা শ্বিলঙলৈ স্থানান্তৰিত কৰাৰ লগে লগে শ্বিলঙৰ ‘বেটেন হিল’ত অসম সচিবালয় ছপাশাল স্থাপন কৰা হয়। ইয়াৰ পূৰ্বে অসমৰ চৰকাৰী গেজেটসমূহ চেৰাপুঞ্জীৰ ‘মিছনেৰী প্ৰেছ’ত ছপা কৰা হৈছিল। ১৮৭৪ চনৰ ২৩ মে’ তাৰিখে প্ৰকাশ পোৱা দশম সংখ্যাৰ পৰা *দ্য আসাম গেজেট* শ্বিলঙৰ সচিবালয় ছপাশালৰ পৰাই নিয়মিতভাৱে প্ৰকাশ হ’বলৈ ধৰে। প্ৰথম অৱস্থাত এই ছপাশালটো ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ নামেৰে জনাজাত আছিল যদিও পৰৱৰ্তী সময়ত ইয়াৰ নাম সলনি কৰি ১৮৯২ চনত ‘অসম সচিবালয় মুদ্ৰণ বিভাগ’ আৰু ১৯২১ চনত ‘অসম চৰকাৰী ছপাশাল’ হিচাপে নামকৰণ কৰা হয়। বংগ বিভাজনৰ পাছত এই ছপাশালটো ‘পূব-বংগ আৰু অসম সচিবালয় ছপাশাল’ হিচাপেও নামকৰণ কৰা হৈছিল।

‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ত মুদ্ৰিত গ্ৰন্থ, প্ৰতিবেদন, নথিৰ অধিকাংশই প্ৰশাসনিক আৰু পাণ্ডিত্যপূৰ্ণ আছিল। এই ছপাশালত লোকপিয়ল প্ৰতিবেদন, ৰাজহ নিৰ্দেশিকা,

চৰকাৰী সমীক্ষা আদি ছপা হৈছিল। তদুপৰি আটাইতকৈ উল্লেখযোগ্য হৈছে অবিভক্ত অসম প্ৰদেশৰ বহু জনগোষ্ঠীৰ ব্যাকৰণ, শব্দভাণ্ডাৰ আৰু নৃতাত্ত্বিক ‘মনোগ্ৰাফ’ৰ এক দীঘলীয়া শৃংখলা ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ৰ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰকাশন। সেইসমূহ এনেদৰে ভাগ কৰি দেখুওৱাব পাৰি :

(ক) *দ্য আসাম গেজেট* আৰু *ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ* : *দ্য আসাম গেজেট* (অসম ৰাজপত্ৰ) ১৮৭৪ চনৰ ২৩ মে’ৰ দশম সংখ্যাৰ পৰা শ্বিলঙৰ সচিবালয় ছপাশালৰ পৰাই নিয়মিতভাৱে প্ৰকাশ হ’বলৈ ধৰে। সমগ্ৰ অসম প্ৰদেশৰ ভূমি নীতি আৰু ব্যৱস্থাপনা নিয়ন্ত্ৰণৰ বাবে অসমৰ ‘ভূমি আৰু ৰাজহৰ হাতপুথি’ শ্বিলঙৰ সচিবালয় ছপাশালৰ পৰা কেইবাবাৰো ছপা কৰা হৈছিল। প্ৰশাসনিক বিষয়া আৰু আমোলাসকলৰ কাৰ্যপদ্ধতি নিৰ্ধাৰণৰ চৰকাৰী ‘গাইডবুক’, অসম কাৰ্যবাহী হাতপুথি (আসাম একজিকিউটিভ মেনুৱেল) আদি এই ছপাশালত ছপা হৈছিল। তদুপৰি ব্ৰিটিছ বিষয়াসকলে যুগুত কৰা জিলা গেজেটিয়াৰসমূহ এই প্ৰেছতে ছপা হৈছিল। উদাহৰণস্বৰূপে : *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, চিলেট, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম টু* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৪); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, গোৱালপাৰা, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম থৰী* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৪); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, কামৰূপ, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম ফ’ৰ* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৪); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, দৰং, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম ফাইভ* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৫); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, নগাঁও, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম ছিক্স* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৫); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, শিৱসাগৰ, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম ছেভেন* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৫); *আসাম ডিস্ট্ৰিক্ট গেজেটিয়াৰ্ছ, লখিমপুৰ, ছাল্লিমেন্ট টু ভলিউম এইট* (এইচ. এইচ. কিঙৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯১৬)।

(খ) **লোকপিয়ল আৰু প্ৰশাসনিক প্ৰতিবেদন :** ১৮৮১ চনৰ পৰা পৰৱৰ্তী সময়ৰ অসমৰ জনসংখ্যা, জাতি আৰু ভাষাভিত্তিক চৰকাৰী প্ৰতিবেদনসমূহ সচিবালয় ছপাশালত ছপা হৈছিল। লগতে প্ৰশাসনিক বিভিন্ন প্ৰতিবেদন, অসমৰ লোকপিয়ল প্ৰতিবেদন, অসম বিধান সভা আৰু বিভিন্ন চৰকাৰী বিভাগৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ কাৰ্যবিৱৰণী,

পুৰণি চৰকাৰী নথি-পত্ৰসমূহৰ সংৰক্ষণ আৰু শ্ৰেণীবিভাজনৰ ঐতিহাসিক খতিয়ান এই ছপাশালতে মুদ্ৰিত হৈছিল। উদাহৰণস্বৰূপে: *চেষ্টাছ অৱ ইণ্ডিয়া ১৮৯১*, *ভলিউম ১* (লেখক : এডৱাৰ্ড গেইট। প্ৰকাশকাল : ১৮৯২); *চেষ্টাছ অৱ ইণ্ডিয়া ১৮৯১*, *ভলিউম ২* (লেখক : এডৱাৰ্ড গেইট। প্ৰকাশকাল : ১৮৯২); *এডমিনিষ্ট্ৰেচন ৰিপোৰ্ট অৱ দ্য পলিটিকেল এজেন্সি, মণিপুৰ ফৰ দ্য ইয়েৰ ১৯০৪-১৯০৫* (লেখক : মেজৰ জে. শ্বেক্সপীয়েৰ। প্ৰকাশকাল : ১৯০৫); *এ ৰিপোৰ্ট অৱ এন ইন্ভেষ্টিগেশ্যন ইনটু দ্য কেছেছ অৱ দ্য ডিজিজেছ নন ইন আছাম এজ কালা-আজাৰ এণ্ড বেৰি-বেৰি* (লেখক : জৰ্জ মাইকেল গাইলছ। প্ৰকাশকাল : ১৮৯০); *কেটেলগ অৱ দ্য প্ৰভিন্সিয়েল কেবিনেট কইনছ, ইষ্টাৰ্ন বেংগল এণ্ড আসাম* (প্ৰকাশকাল : ১৯১১); *লিষ্ট অৱ ইনষ্টিপেন্শনছ অন টম্বছ অৱ মনুমেন্টছ ইন আসাম* (প্ৰকাশকাল : ১৯০২); *গ্লছাৰী অৱ ভাৰ্ণাকুলাৰ টাৰ্মছ অৰ্ডিণাৰিলী ইউজড ইন অফিচিয়েল কৰেচপণ্ডেন্স ইন দ্য প্ৰভিন্স অৱ আছাম* (প্ৰকাশকাল : ১৮৭৯)।

(গ) বুৰঞ্জীমূলক আৰু জনজাতীয় ভাষা সংক্ৰান্তীয় গ্ৰন্থ : অসমৰ পাহাৰ আৰু ভৈয়ামৰ জনজাতিসমূহৰ সামাজিক গাঁথনি বুজিবলৈ ব্ৰিটিছ বিষয়াসকলে প্ৰস্তুত কৰা মন'গ্ৰাফ বা নৃতাত্ত্বিক অধ্যয়নসমূহ সচিবালয় ছপাশালত প্ৰথমবাৰৰ বাবে চৰকাৰীভাৱে ছপা হয়। বড়ো, কছাৰী, খাচী, নগা, গাৰো, মিকিৰ, মিৰি আৰু আন আন সম্প্ৰদায়ৰ ব্যাকৰণ, অভিধান, শব্দকোষ আদি প্ৰকাশ কৰি সচিবালয় ছপাশালটো সম্পূৰ্ণ অৰ্থত জ্ঞানৰ প্ৰসাৰ আৰু প্ৰচাৰৰ এক শক্তিশালী উপকৰণ হিচাপে গঢ়ি উঠিল। এই ছপাশালে অসম প্ৰদেশৰ বিভিন্ন ভাষাক সংহিতাবদ্ধ, শ্ৰেণীবদ্ধ আৰু ছপা মাধ্যমেৰে সুস্থিৰ কৰি তুলিলে। এই ছপাশালত ছপা হোৱা বুৰঞ্জীমূলক আৰু জনজাতীয় ভাষা সংক্ৰান্তীয় কেইখনমান গ্ৰন্থ এনেধৰণৰ : *ছাম আছামিজ প্ৰভাৰ্ভছ* (লেখক : কেপ্টেইন পি. আৰ. টি. গাৰ্ডন। প্ৰকাশকাল : ১৮৯৬); *আউটলাইন গ্ৰামাৰ অৱ দ্য কছাৰী (বড়ো) লেংগুৱেজ* (প্ৰকাশকাল : ১৮৮৪); *আউটলাইন গ্ৰামাৰ অৱ দ্য ছিংফো লেংগুৱেজ* (লেখক জে.এফ. নীডহাম। প্ৰকাশকাল ১৮৮৯); *শ্বৰ্ট একাউণ্ট অৱ দ্য কুকি-লুচাই ট্ৰাইবছ অন দ্য নৰ্থ-ইষ্ট ফ্ৰণ্টিয়াৰ উইথ এন আউটলাইন গ্ৰামাৰ অৱ দ্য ৰাংখল-লুচাই লেংগুৱেজ* (লেখক : চি.এ. ছ'পিট। প্ৰকাশকাল : ১৮৮৭); *এ শ্বৰ্ট একাউণ্ট অৱ দ্য কাচা নাগা (এম্পেঙ)*

ট্ৰাইব ইন দ্য নৰ্থকাছাৰ হিলছ, উইথ এন আউটলাইন গ্ৰামাৰ ভক্ৰেবুলাৰী এণ্ড ইলাষ্ট্ৰেটিভ ছেণ্টেন্সেছ (লেখক : চি.এ. ছ'পিট। প্ৰকাশকাল : ১৮৮৫); *এ মণিপুৰী গ্ৰামাৰ, ভক্ৰেবুলাৰী, এণ্ড ফ্ৰেইজ বুক : টু হুইচ আৰ এডেড ছম মণিপুৰী প্ৰ'ভাৰ্ভছ এণ্ড স্পেচিমেণ্স অৱ মণিপুৰী কৰেছপণ্ডেন্স* (লেখক : আৰ্থাৰ জন প্ৰিমৰোজ। প্ৰকাশকাল : ১৮৮৮); *এ শ্বৰ্ট লিষ্ট অৱ ৱৰ্ডছ অৱ দ্য হিল টিপ্পেৰা লেংগুৱেজ, উইথ দেয়াৰ ইংলিছ ইকুইভেলেন্টছ। অলছ' অৱ ৱৰ্ডছ অৱ দ্য লেংগুৱেজ স্প'কেন বাই লুচাইছ অৱ দ্য ছিলেট ফ্ৰণ্টিয়াৰ* (লেখক : জে.ডি. এণ্ডাৰছন। প্ৰকাশকাল : ১৮৮৫); *আউটলাইন গ্ৰামাৰ অৱ দ্য শ্বাইয়াং মিৰি লেংগুৱেজ : এজ স্প'কেন বাই দ্য মিৰিছ অৱ দেট ক্লেন ৰেছাইডিং ইন দ্য নেইবাৰহুড অৱ শদিয়া; উইথ ইলাষ্ট্ৰেটিভ ছেণ্টেন্সেছ, ফ্ৰেইজ-বুক এণ্ড ভক্ৰেবুলাৰী* (লেখক : জে.এফ. নীডহাম। প্ৰকাশকাল : ১৮৮৬); *ফ্ৰেইজেছ ইন ইংলিছ এণ্ড আংগামী নাগা* (লেখক : ৰেভাৰেণ্ড এছ. ডব্লিউ. ৰিভেনবাৰ্গ। প্ৰকাশকাল : ১৯০৫); *দ্য লুচাইছ, ১৮৭৩ টু ১৮৮৯* (প্ৰকাশকাল : ১৮৮৯); *খাচী-ইংলিছ ডিক্সনেৰী* (সম্পাদক : পি.আৰ.টি. গাৰ্ডন, ইউ. ডহৰী ব'পমে' আৰু ইউ. হাজম কিশোৰ সিং। প্ৰকাশকাল : ১৯০৬); *এ কালেকচন অৱ মংচাং নাগা ৱৰ্ডছ* (লেখক : জে.এফ. নীডহাম। প্ৰকাশকাল : ১৮৭৯)।

শ্বিলঙৰ নগৰীকৰণ আৰু স্থাপত্যশৈলীৰ ক্ৰমবিকাশক দুটা অভূতপূৰ্ব ঘটনাই গভীৰভাৱে প্ৰভাৱিত কৰে। প্ৰথমটো হৈছে, ১৮৭৪ চনত ব্ৰিটিছ চৰকাৰে 'চীফ কমিছনাৰশ্বিপ অৱ আসাম' নামৰ নতুন প্ৰদেশখন গঠন কৰাৰ পিছত ৰাজধানী চেৰাপুঞ্জী (চোহৰা) আৰু গুৱাহাটীৰ পৰা শ্বিলঙলৈ স্থানান্তৰ কৰা হয়। এই সিদ্ধান্তৰ লগে লগে শ্বিলং এখন সৰু পাহাৰীয়া স্বাস্থ্যনিবাসৰ পৰা এক প্ৰধান ঔপনিৱেশিক কেন্দ্ৰলৈ ৰূপান্তৰিত হ'ল। ইয়াৰ ফলতেই শ্বিলঙত বিশাল পকী চৰকাৰী ভৱন, বাট-পথ, গীৰ্জা আৰু স্কুল আদিৰ দ্ৰুত নিৰ্মাণ কাৰ্য আৰম্ভ হ'ল। দ্বিতীয়টো হৈছে, ১৮৯৭ চনৰ ১২ জুনত অসমত হোৱা “৮.১৫-৮.৩৫ প্ৰাৱল্য” (England and Bilham, 2015)ৰ ঐতিহাসিক বৰভূঁইকঁপ। সমগ্ৰ উত্তৰ-পূব ভাৰত জোকাৰি যোৱা এই প্ৰলয়ংকৰী বৰভূঁইকঁপে শ্বিলঙৰ আটাইতকৈ বৃহৎ অট্টালিকা চৰকাৰী ভৱনৰ গাঁথনি চূৰ্ণ-বিচূৰ্ণ কৰে আৰু মাত্ৰ পাঁচ ছেকেণ্ডৰ ভিতৰতে সচিবালয় ছপাশালকো প্ৰায় ধ্বংসস্তুপত পৰিণত কৰে। তদানীন্তন মুখ্য আয়ুক্ত ছাৰ হেনৰী কটন (১৮৪৫-

১৯১৫) আৰু তেওঁৰ পত্নী নিয়মীয়া সাক্ষ্যভাৰণৰ বাবে বাসগৃহৰ পৰা কিছু সময়ৰ পূৰ্বে ওলাই যোৱাৰ বাবেই কথমপিহে তেওঁলোকৰ প্ৰাণৰক্ষা হ'ল (Syiemlieh British Administration 203)। হেনৰী কটনে চিমলাত থকা ভাইচৰয়লৈ পঠিওৱা চৰকাৰী টেলিগ্ৰামখনত আটাইতকৈ প্ৰামাণিক তথ্যটো পোৱা যায়। টেলিগ্ৰামখনত লিপিবদ্ধ কৰা হৈছে যে “মেনী এম্প্লয়ীজ ইন দ্য ছেক্ৰেটাৰিয়েট প্ৰেছ ওৱেৰ কিল্ড বাই দ্য বিল্ডিং ফেলিং অন দেম” (চৰকাৰী ভৱনটো খহি পৰাৰ ফলত সচিবালয় ছপাশালৰ বহু কৰ্মচাৰী আৱদ্ধ হৈ মৃত্যুমুখত পৰে) আৰু অসম প্ৰদেশৰ প্ৰশাসনিক তথা নথিভিত্তিক ইতিহাসৰ বাবে তাৎপৰ্যপূৰ্ণ বিষয় যে, “দ্য অফিচিয়েল ৰেকৰ্ডছ এণ্ড প্ৰেছ লাই আণ্ডাৰ দ্য ৰুইনছ” (চৰকাৰী নথিপত্ৰ আৰু ছপায়ন্ত্ৰসমূহ ধ্বংসজুপৰ তলত পোত খাই আছিল) (Earthquake in Bengal and Assam 254)। আন এক তথ্য অনুসৰি, বৰভূঁইকঁপত শ্বিলঙৰ চৰকাৰী ছপাশালটো খহি পৰাৰ সময়ত তাত এশৰো অধিক লোক কামত ব্যস্ত আছিল আৰু তাৰ পৰা অতি কম সংখ্যক লোকেহে প্ৰাণ ৰক্ষা কৰি ওলাই আহিব পাৰিছিল। গোৰ্খা ৰেজিমেণ্টে তৎক্ষণাত উদ্ধাৰ কাৰ্য আৰম্ভ কৰাৰ পাছত মাত্ৰ কেইজনমান জীৱিত লোককহে উদ্ধাৰ কৰিব পাৰিলে। গোৰ্খা ৰেজিমেণ্টে উদ্ধাৰ কৰা লোকসকলৰ বহুতো আহত আছিল (Earthquake in Bengal and Assam 124)। ‘হেমকোষ’খন প্ৰকাশ নহওঁতেই ১৮৯৬ চনত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ মৃত্যু হয়। তেওঁৰ এই বৃহৎ কলেবৰৰ অসমীয়া অভিধানখনৰ প্ৰয়াত দুলালচন্দ্ৰ চৌধুৰীয়ে লেফটেনেণ্ট কৰ্ণেল পি.আৰ.টি. গাৰ্ডনৰ হাতত অৰ্পণ কৰিছিল। মিষ্টাৰ গেইটে এই কৰ্মৰ গুৰুত্ব অনুধাৱন কৰি চৰকাৰী খৰচত ইয়াৰ প্ৰকাশৰ বাবে চৰকাৰক অনুৰোধ জনায়। অসমৰ তৎকালীন মুখ্য কমিছনাৰ ছাৰ হেনৰী কটনে গ্ৰন্থখন প্ৰকাশৰ উদ্দেশ্যে নিৰ্দিষ্ট ধনৰাশি মঞ্জুৰ কৰে। বৰভূঁইকঁপৰ ফলত শ্বিলঙৰ সচিবালয় ছপাশালৰ ভৱনটো সম্পূৰ্ণৰূপে ধ্বংস হোৱাৰ পাছত মিষ্টাৰ গেইটে ধ্বংসজুপৰ তলৰ পৰা ‘হেমকোষ’ৰ পাণ্ডুলিপিটো উদ্ধাৰ কৰিবলগীয়া হৈছিল। কৰ্ণেল গাৰ্ডন আৰু হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে যুটীয়াভাৱে ‘হেমকোষ’ৰ সম্পাদনাৰ দায়িত্ব লৈছিল (Bhuyan 113)।

প্ৰশাসনিক প্ৰতিবেদন অনুসৰি, বৰভূঁইকঁপৰ এই মোক্ষম আঘাতৰ পিছতো ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনে অতি কম সময়ৰ ভিতৰতে চৰকাৰী ভৱনৰ পুনৰ্নিৰ্মাণ কাৰ্য আৰম্ভ

কৰে। বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিতে ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনৰ বৰ্ধিত প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণ কৰাৰ বাবে শ্বিলংস্থিত অসম সচিবালয় ছপাশালৰ আন্তঃগাঁথনিৰ বুজন পৰিমাণে সম্প্ৰসাৰণ কৰা হয়। দুটা শতিকাৰ সন্ধিক্ষণত, অৰ্থাৎ ১৮৯৯ চনৰ পৰা ১৯০০ চনৰ ভিতৰত ছপাশালটোৰ নিৰ্মাণকাৰ্য উল্লেখনীয়ভাৱে বৃদ্ধি পালে। অসামৰিক সচিবালয় ছপাশালৰ বাবে পাঁচটা বৃহৎ ব্লকৰ নিৰ্মাণৰ কাম চলি আছিল। ১৯০০ চনৰ মাৰ্চ মাহৰ শেষলৈকে এই ভৱনসমূহৰ বাবে আৱণ্টিত মুঠ ১,৩৩,৩৪৮ টকাৰ সংশোধিত বাজেটৰ ভিতৰত ঔপনিৱেশিক চৰকাৰে ৭২,৪৭৭ টকা ব্যয় কৰিছিল। ইয়াৰ উপৰিও শ্বিলঙৰ অসামৰিক সচিবালয়ৰ ‘ৰেকৰ্ড ৰুম’ বা মহাফেজখানাত লোহাৰ ‘ৰেক’ সংযোগ কৰাৰ বাবে ১৭,১১৩ টকা খৰচ কৰা হৈছিল (Rejort 1899-1900, 97)। নিৰ্মাণকাৰ্য সম্পূৰ্ণ হোৱাৰ পিছত এই ভৱনসমূহৰ সৰ্বমুঠ ব্যয় ১,১৬,৯২৪ টকালৈ বৃদ্ধি পায়। এই ছপাশালটো ২৭,৯০৪ বৰ্গফুট মাটিকালিয়ে আৱৰি থকা পাঁচটা ডাঙৰ ব্লকত বিভক্ত আছিল। ছপাশালটোৰ কাম-কাজৰ বাবে প্ৰয়োজন হোৱা ঠাইতকৈ এই নিৰ্মিত এলেকা অধিক আছিল। সেই বাবে পাঁচটা ব্লকৰ ভিতৰত মাত্ৰ চাৰিটা ব্লকে ছপাশালৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল (Rejort 1899-1900, 128)। এই অতিৰিক্ত ঠাইখিনি ঔপনিৱেশিক চৰকাৰে অন্যান্য প্ৰশাসনিক আৰু অসামৰিক কামত ব্যৱহাৰ কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে, ১৯০৩-১৯০৪ বিত্তীয় বৰ্ষত ছপাশাল ভৱনৰ “এক নম্বৰ ব্লকৰ এটা অংশ ৰাজহুৱা পুথিভঁৰাললৈ ৰূপান্তৰিত কৰা হ'ল” আৰু “বন সংৰক্ষক আৰু অসমৰ প্ৰধান চিকিৎসা বিষয়া তথা স্বাস্থ্য আয়ুজ্ঞৰ কাৰ্যালয়” স্থাপন কৰিবলৈ বাকী অংশত আন কিছুমান সালসলনি কৰা হয় (Rejort 1903-1904, 27)। একে সময়তে, ছপাশালটোৰ আধুনিকীকৰণৰ বাবে এক বিশেষ কাৰিকৰী সংযোজন হিচাপে ৩,২০০ টকা ব্যয় কৰি “এটা ঢালাইশাল বা ফাউণ্ড্ৰী (ধাতু গলাই সাঁচত ঢালাই কৰা কাৰখানা) আৰু কমাৰশাল বা স্মিথছ শ্ব'প” স্থাপন কৰা হয় (Rejort 1903-1904, 27)।

ঔপনিৱেশিক শাসনৰ বাবে সচিবালয় ছপাশালৰ চৰকাৰী নথি-পত্ৰৰ মুদ্ৰণ এটা অবিচ্ছেদ্য অংগ হৈ উঠিছিল। ঊনবিংশ শতিকাৰ সমাপ্তি আৰু বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিতে এই ছপাশালে বৃহৎ পৰিমাণৰ হৰফ-বিন্যাস বা ‘টাইপছেটিং’, গ্ৰন্থ-বন্ধনি আৰু বিতৰণৰ কাম পৰিচালনা কৰিছিল। ১৮৯৯-১৯০০ বৰ্ষত মুঠ মুদ্ৰিত সামগ্ৰীৰ পৰিমাণ ৪৭,১৪৩

পৃষ্ঠা (৮.৫ X ১৩.৫ ইঞ্চি অৰ্থাৎ ফুলক্ষেপ পিকা আকাৰত) আছিল (Report 1899-1900, 178)। ব্ৰিটিছ প্ৰশাসনে মৌলিক মুদ্ৰণ আৰু পূৰ্বৰে পৰা থকা সাঁচ বা ‘প্লেটছ’ৰ পুনৰ্যোগ্যতাৰ মাজত স্পষ্ট পাৰ্থক্য দেখুওৱাই প্ৰশাসনিক প্ৰতিবেদনত উল্লেখ কৰিছিল যে ইয়াৰ ভিতৰত ৩৮,৩২৬ পৃষ্ঠা আছিল প্ৰথম উৎপাদন আৰু ৮,৮১৭ পৃষ্ঠা পূৰ্বৰ স্থায়ী সাঁচৰ পৰা কৰা পুনৰুৎপাদন (Report 1899-1900, 178)। এই উৎপাদনৰ পৰিসৰ ইমানেই বিশাল আছিল যে সেই বৰ্ষত মুঠ ১৭,৮৭,৫০০টা চাপ অৰ্থাৎ ‘ইম্প্ৰেচন’ লোৱা হৈছিল। তদুপৰি, মুদ্ৰণোত্তৰ বিভাগত ৫৪০,৬৬৩টা প্ৰতিলিপিত কাগজ কটা, ভাঁজ কৰা, হেঁচা মৰা বা চেপি থোৱা, একত্ৰিত কৰা, ক্ৰমানুসৰি সজোৱা, চিলাই কৰা আদি কাম কৰা হৈছিল আৰু আন ২৮,৯০০টা প্ৰতিলিপি সম্পূৰ্ণকৈ চিলাই আৰু বন্ধনি কৰা হৈছিল (Report 1899-1900, 178)। এই উৎপাদনৰ পৰিসংখ্যা বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে ছপাশালটোৰ কাম-কাজ লোকনিৰ্মাণ বিভাগতকৈ সাধাৰণ অসামৰিক প্ৰশাসনৰ কামতহে অধিক ব্যৱহৃত হৈছিল। মুঠ উৎপাদনৰ ভিতৰত অসামৰিক সচিবালয়ৰ মুদ্ৰণকাৰ্য আছিল ৩৮,৮৬৪ পৃষ্ঠা। আনহাতে লোকনিৰ্মাণ সচিবালয়ৰ কাম আছিল মাত্ৰ ৩,০৯৫ পৃষ্ঠা (Report 1899-1900, 178)।

বিত্তীয় দিশলৈ দৃষ্টি দিলে দেখা যায় যে অসম সচিবালয় ছপাশালে বাহ্যিক গ্ৰাহক বা ‘আউটছাইড কন্জুমাৰ’ৰ পৰা প্ৰত্যক্ষ নগদ ধন উপাৰ্জনৰ ওপৰত বিশেষ গুৰুত্ব আৰোপ কৰা নাছিল। তাৰ বিপৰীতে, চৰকাৰৰ বিভিন্ন বিভাগক যোগান ধৰা বিনামূলীয়া আভ্যন্তৰীণ সেৱাৰ জৰিয়তে অৰ্থনৈতিক প্ৰাসংগিকতা নিৰূপণ কৰিছিল। ফলস্বৰূপে, চৰকাৰী খতিয়ানত নগদ ধন সংগ্ৰহৰ পৰিমাণ তুলনামূলকভাৱে কম আছিল। উদাহৰণস্বৰূপে, ১৮৯৯-১৯০০ বৰ্ষত ৭৪৮ টকা (Report 1899-1900, 177); ১৯০১-১৯০২ বৰ্ষত ৫৪২ টকা (Report 1901-1902, 158) আৰু ১৯০৩-১৯০৪ বৰ্ষত অলপ বৃদ্ধি পাই ১,২৪৪ টকা (Report 1903-1904, 48)। যদিও এই নগদ উপাৰ্জন ছপাশালটোৰ ব্যয়ৰ তুলনাত তেনেই নগণ্য আছিল, তথাপিও ইয়াৰ সম্পাদিত কাৰ্যৰ মুঠ মূল্যই সদায় ব্যয়তকৈ বহু বেছি লাভ দেখুৱাইছিল। উদাহৰণস্বৰূপে, ১৮৯৯-১৯০০ বৰ্ষত ৮৩,১৯৯ টকা ব্যয়ৰ বিপৰীতে সম্পাদিত কাৰ্যৰ সৰ্বমুঠ মূল্য নিৰূপণ কৰা হৈছিল ১,৫৮,৩৩৭ টকা, যাৰ ফলত ছপাশালটোৱে ৬১,১৪৭ টকাৰ প্ৰকৃত লাভ অৰ্জন কৰিছিল

(Report 1899-1900, 177)। একেদৰে, ১৯০১-১৯০২ বৰ্ষত ৮০,০৯৪ টকা ব্যয়ৰ বিপৰীতে কাৰ্যৰ মূল্য আছিল ১,৪১,০২৫ টকা আৰু প্ৰকৃত লাভ আছিল ৪৬,৪৩৬ টকা (Report 1901-1902, 158)। বিত্তীয় সফলতাৰ এই ধাৰা ১৯০৩-১৯০৪ বৰ্ষতো অব্যাহত থাকে। ১৯০৩-১৯০৪ বৰ্ষত যন্ত্ৰপাতিৰ ক্ষয়-ক্ষতি, ভঙা হৰফ আৰু পৰিত্যক্ত হৰফ আৰু কাগজ তথা গ্ৰন্থ-বন্ধোৱা সামগ্ৰীৰ ব্যয় আদি সকলো বাদ দিয়াৰ পিছতো ছপাশালটোৱে ৩৩,১২৮ টকাৰ সৰ্বমুঠ লাভ দেখুৱাবলৈ সক্ষম হৈছিল (Report 1903-1904, 48)। এই বিত্তীয় খতিয়ানে প্ৰমাণ কৰে যে সচিবালয় ছপাশালয়ে এক আত্মনিৰ্ভৰশীল চৰকাৰী সম্পদ হিচাপে কাম কৰিছিল। ছপাশালটোৱে অসমৰ প্ৰাদেশিক চৰকাৰক ব্যক্তিগত ব্যৱসায়িক ছপাশালৰ উচ্চ ব্যয়ৰ পৰা সুৰক্ষিত কৰি ৰাখিছিল।

খাচী পাহাৰৰ আনকেইটামান ছপাশাল আৰু মুদ্ৰণ :

অবিভক্ত অসমৰ পাহাৰীয়া জিলাসমূহৰ মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ ইতিহাস খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ধৰ্মপ্ৰচাৰ আৰু শিক্ষা-বিস্তাৰৰ প্ৰচেষ্টাৰ সৈতে অংগাংগীভাৱে সাঙোৰ খাই আছে। ঊনবিংশ শতিকাৰ ঔপনিৱেশিক অসমৰ প্ৰশাসনিক আৰু ভৌগোলিক পৰিসীমাৰ অন্তৰ্গত খাচী পাহাৰ আছিল এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ অংশ। এই দুৰ্গম পাৰ্বত্য অঞ্চলবোৰত ব্ৰিটিছ সাম্ৰাজ্যবাদৰ প্ৰসাৰৰ সমান্তৰালকৈ খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ আগমনে এক অভূতপূৰ্ব সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা কৰে। এই পৰিৱৰ্তনৰ আটাইতকৈ শক্তিশালী মাধ্যম আছিল শিক্ষাৰ সম্প্ৰসাৰণ আৰু মুদ্ৰণযন্ত্ৰৰ প্ৰৱৰ্তন। মূলতঃ অলিখিত ৰূপত থকা পাৰ্বত্য ভাষা-উপভাষাসমূহক ৰোমান লিপিকৰণৰ জৰিয়তে এটা নিৰ্দিষ্ট লিখিত ৰূপ প্ৰদান কৰি মিছনেৰীসকলে এই অঞ্চলসমূহত প্ৰাৰম্ভিক আধুনিক সাহিত্যৰ ভেটি স্থাপন কৰিলে।

খাচী পাহাৰত আধুনিক শিক্ষা আৰু লিপিৰ ভেটি স্থাপন কৰিলে ৰেলছ প্ৰেচবিটেৰিয়ান মিছনে। ১৮৪১ চনত ‘খাচী বৰ্ণমালাৰ পিতৃ’ হিচাপে খ্যাত থমাছ জোনেছ (১৮১০-১৮৪৯)ৰ নেতৃত্বত চেৰাপুঞ্জীত ৰেলছ মিছনে নিজৰ কাৰ্যসূচী আৰম্ভ কৰে। প্ৰথমাৱস্থাত তেওঁলোকৰ মুদ্ৰণকাৰ্য কলিকতা বা অন্যান্য ঠাইৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল আছিল যদিও বৃহৎ অঞ্চলটোত ছপাগ্ৰন্থৰ প্ৰয়োজন বৃদ্ধি পোৱাত ১৮৬৯ চনত চেৰাপুঞ্জীত ৰেলছ মিছনেৰীয়ে প্ৰথমটো মিছন প্ৰেছ বা ‘প্ৰেচবিটেৰিয়ান প্ৰেছ’ স্থাপন কৰে (Syiemlieh *Early Khasi Response to Christian*

Missions 40)। চৰকাৰী *আসাম গেজেট*ৰ প্ৰথম সংখ্যা ১৮৭৪ চনত প্ৰকাশিত হয়। গেজেটখনৰ প্ৰথমৰ পৰা নৱম সংখ্যালৈকে চেৰাপঞ্জীৰ 'খ্ৰীষ্টান মিছনেৰী প্ৰেছ'ত মুদ্ৰণ কৰা হৈছিল। থমাছ জোনেছে খাচী ভাষাৰ বাবে ৰোমান লিপিৰ ব্যৱহাৰ আৰম্ভ কৰাৰ পূৰ্বে কলিকতাৰ বেপ্টিষ্ট মিছনেৰীসকলৰ উদ্যোগত (বিশেষকৈ উইলিয়াম কেৰীৰ তত্ত্বাৱধানত) বঙলা হৰফেৰে খাচী ভাষাত ছপা কৰাৰ এটা প্ৰাথমিক চেষ্টা কৰা হৈছিল। কিন্তু ১৮৪১ চনৰ পিছত ৰোমান লিপিৰ জনপ্ৰিয়তা বৃদ্ধি পায় আৰু ১৮৬৯ চনত চেৰাপঞ্জীত ছপাশাল স্থাপন হোৱাৰ পিছত খাচী ভাষাৰ ব্যাকৰণ, ধৰ্মপুথি আৰু স্কুলীয়া পাঠ্যপুথিৰ মুদ্ৰণে এক স্বকীয় গতি লাভ কৰে। 'প্ৰেচবিটেৰিয়ান প্ৰেছ' খাচী পাহাৰ (বৰ্তমানৰ মেঘালয়) ৰ প্ৰথম ছপাশাল।

১৮৯৭ চনত চেৰাপঞ্জীৰ সমীপৱৰ্তী লাইটকাইনছিউ নামৰ এখন গাঁৱত জাৰ্মান ছেলভেট'ৰিয়ান মিছনেৰীসকলে এটা সৰু ছপাশাল স্থাপন কৰে। দুৰ্ভাগ্যবশতঃ ১৮৯৭ চনৰ ১২ জুনত অসমত হোৱা ঐতিহাসিক বৰভূঁইকঁপৰ ফলত মিছনেৰীসকলৰ বহুতো সম্পত্তি ধ্বংস হয়। বৰভূঁইকঁপে সদ্য-প্ৰতিষ্ঠিত ছপাশালটোকো ক্ষতিগ্ৰস্ত কৰে আৰু সেই সময়ৰ শ্বিলং আৰু চেৰাপঞ্জী অঞ্চলত ব্ৰিটিছ প্ৰশাসনে নিৰ্মাণ কৰা প্ৰায়বোৰ শিল আৰু কাঠৰ অট্টালিকা ধ্বংসস্তুপত পৰিণত হয় (Syiemlieh British Administration 189)। এই দুৰ্যোগৰ পিছত কেথলিক মিছন সাময়িকভাৱে স্তব্ধ হৈ পৰিল। ১৯০৭ চনত ছপাশালটো লাইটকাইনছিউৰ পৰা খাচী পাহাৰৰ প্ৰশাসনিক আৰু শৈক্ষিক কেন্দ্ৰ শ্বিলংলৈ স্থানান্তৰ কৰা হয়। পৰৱৰ্তী সময়ত এই ছপাশালটো 'ডন বস্কো ইণ্ডাষ্ট্ৰিয়েল স্কুল প্ৰেছ' হিচাপে নামকৰণ কৰা হয়। 'দ্য ডন বস্কো প্ৰেছ' বা 'ডন বস্কো ইণ্ডাষ্ট্ৰিয়েল স্কুল প্ৰেছ' নামেৰে খ্যাত এই ছপাশালটো কেৱল গ্ৰন্থ ছপোৱা প্ৰতিষ্ঠানেই নাছিল। এই প্ৰতিষ্ঠান আছিল উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ থলুৱা যুৱক-যুৱতীসকলক মুদ্ৰণ শিল্প, গ্ৰন্থ-বন্ধনি আৰু টাইপচেটিঙৰ দৰে কাৰিকৰী শিক্ষা প্ৰদান কৰা অসমৰ তথা সমগ্ৰ উত্তৰ-পূবৰ অন্যতম প্ৰথম বৃত্তিমুখী প্ৰতিষ্ঠান। এই ছপাশালতে ৰায়বাহাদুৰ কনকলাল বৰুৱা (১৮৭২-১৯৪০)ৰ *আলী হিষ্টৰী অৱ কামৰূপ* নামৰ গ্ৰন্থখন ছপা হৈছিল (ফাদাৰ ফোগলিয়াৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত। প্ৰকাশকাল : ১৯৩৩)।

১৮৯৬ চনত শ্বিলঙৰ উম্‌ছ'হ্‌ছুন অঞ্চলত বাবু জীৱন ৰয় (১৮৩৮-১৯০৩)এ 'ৰি খাচী প্ৰেছ' নামেৰে এটা

ছপাশাল স্থাপন কৰে। এই ছপাশালটো আছিল খাচী পাহাৰৰ থলুৱা লোকে পতা প্ৰথমটো ছপাশাল। খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ধৰ্মীয় প্ৰচাৰমূলক প্ৰকাশনবোৰৰ বিপৰীতে জীৱন ৰয়ে এই ছপাশালৰ জৰিয়তে ধৰ্মনিৰপেক্ষ শিক্ষা, জাতীয় সংস্কৃতি আৰু ভাৰতীয় ধ্ৰুপদী সাহিত্যৰ প্ৰসাৰ কৰিব বিচাৰিছিল। ভাৰতীয় সভ্যতাৰ সৈতে খাচী পাহাৰৰ সংযোগ ঘটাবলৈ এই ছপাশালৰ পৰাই জীৱন ৰয়ে *হিতোপদেশ* (১৮৯৮-১৮৯৯), *ৰামায়ণ* (১৯০০), *বুদ্ধদেৱ চৰিত্ৰ* (১৯০১) আদি খাচী ভাষালৈ অনুবাদ কৰি ছপা কৰিছিল।

১৯৩০-ৰ দশকত খাচী পাহাৰৰ দুৰ্গম অঞ্চল আপাৰ মণ্ডপ্ৰেমৰ পৰা পৰিচালিত 'নেপালী প্ৰেছ' নামৰ ছপাশালটোৱে বিভিন্ন গ্ৰন্থ, পত্ৰিকা, কাকত আদি ছপা কৰিছিল। সেই সময়ত স্থানীয়ভাৱে ছপাশালৰ পৰ্যাপ্ত সুবিধা নথকাৰ বাবে নতুনকৈ প্ৰকাশ পোৱা বাতৰি কাকত *দ্য শ্বিলং মেইল*ৰ সম্পাদনাকক্ষ সম্পূৰ্ণৰূপে এই ক্ষুদ্ৰ ছপাশালটোতে নিৰ্ভৰশীল আছিল। ১৯৩৪ চনৰ ছেপ্টেম্বৰ মাহত *দ্য শ্বিলং মেইল* নামৰ সাপ্তাহিক কাকতখনৰ প্ৰথম সংখ্যা প্ৰকাশৰ ব্যস্ততাৰ কথা সুঁৱৰি *দ্য শ্বিলং টাইমছ*ৰ প্ৰতিষ্ঠাপক সম্পাদক (১৯৪৫-১৯৬১) সুধীন্দ্ৰ ভূষণ চৌধুৰীয়ে লিখিছে যে, কেনেকৈ *দ্য শ্বিলং মেইল* কাকতখনৰ সম্পাদক লোলা বিজয় কুমাৰ দে-ৰ আত্মীয়-স্বজনে আপাৰ মণ্ডপ্ৰেমত অৱস্থিত 'নেপালী প্ৰেছ'ত সহায় কৰিবলৈ ভিৰ কৰিছিল। কোনো আধুনিক ছপায়ন্ত্ৰ নথকাৰ বাবেই অসম সচিবালয় ছপাশালৰ এটা অব্যৱহৃত তথা পেলনীয়া 'হেণ্ড প্ৰেছ'ৰ সহায়ত অতি কষ্টকৰভাৱে তাত কাম কৰা হৈছিল (*The Shillong Times*, 10 Aug. 2019)। কামৰূপ অনুসন্ধান সমিতিৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত আৰু ৰায়বাহাদুৰ কনকলাল বৰুৱাৰ দ্বাৰা সম্পাদিত *দ্য জাৰ্ণেল অৱ দ্য আসাম বিছাৰ্ছ ছ'চাইটি* নামৰ পত্ৰিকাখনৰ প্ৰথমটো সংখ্যা শ্বিলঙৰ 'নেপালী প্ৰেছ'ত ছপা হৈছিল (ডি. হাৰাৰ্ডৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত আৰু ১৯৩৩ চনৰ এপ্ৰিল মাহত প্ৰকাশিত)। পৰৱৰ্তী সময়তো কামৰূপ অনুসন্ধান সমিতিৰ এই পত্ৰিকাখনৰ বহুকেইটা সংখ্যা 'নেপালী প্ৰেছ'তে দিলু ৰায়ৰ দ্বাৰা মুদ্ৰিত হৈছিল।

অসমীয়া গ্ৰন্থ আৰু প্ৰকাশন জগতৰ ইতিহাসত শ্বিলঙৰ 'চপলা বুক ষ্টল'ৰ ভূমিকাও অতিকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ। ১৯৩৬ চনত শ্বিলঙৰ জে'ল ৰোডত এজন উচ্চশিক্ষিত বঙালী যুৱক বিভুভূষণ চৌধুৰী (১৯১২-১৯৯৯)এ তেওঁৰ অকালতে মৃত্যু হোৱা ভগ্নী 'চপলা'ৰ সোঁৱৰণত 'চপলা

বুক ষ্টল’ স্থাপন কৰে। চৌধুৰীয়ে লিখিছে : “১৯৩৪ শে বি.এ পাশ কৰাৰ পৰা অল্প কিছুদিন বীমা কোম্পানীৰ এজেণ্টেৰ কাজ কৰিয়াছিল। ১৯৩৬ সালৰ ২০ শে জানুৱাৰী নামমাত্ৰ মূলধনে (৪০০/-) ‘চপলা বুক ষ্টল’ স্থাপন কৰি” (চৌধুৰী ৬৪)। পৰৱৰ্তী সময়ত ১৯৪০ চনত এই প্ৰকাশন বা কিতাপৰ দোকানখন শ্বিলঙৰ পুলিচ বজাৰলৈ স্থানান্তৰিত কৰা হয়। বিভূভূষণ চৌধুৰীয়ে কিতাপ বিক্ৰী কৰাৰ লগতে প্ৰকাশনৰ বাবে কেইবাটাও সহযোগী প্ৰতিষ্ঠানৰ জন্ম দিছিল। সেইবোৰৰ ভিতৰত ‘অসমীয়া সাহিত্য মন্দিৰ’ অন্যতম। ইয়াৰ জৰিয়তে শ্বিলঙত থকা অসমীয়া চৰকাৰী কৰ্মচাৰী আৰু সাহিত্যানুৰাগীসকলৰ বাবে অসমীয়া কিতাপ প্ৰকাশ আৰু যোগান ধৰা হৈছিল। ‘চপলা বুক ষ্টল’ কেৱল এখন কিতাপৰ দোকানেই নাছিল— ই আছিল শ্বিলঙৰ ইতিহাসবিদ, সাহিত্যিক, অধ্যাপক আৰু চিন্তাবিদসকলৰ আড্ডাৰ কেন্দ্ৰস্থল। এই প্ৰতিষ্ঠানটোৱে ‘সোণালী পাঠ’ নামৰ শিশু-সাহিত্যৰ এলানি গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰিছিল আৰু সমগ্ৰ অসমৰে প্ৰাথমিক বিদ্যালয়বোৰত পাঠ্যপুথিৰূপে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলে এই গ্ৰন্থ পঢ়িছিল। প্ৰাৰম্ভতে প্ৰতিষ্ঠানটোৱে বিশেষকৈ অসমীয়া গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰিছিল যদিও শৰৎচন্দ্ৰ চট্টোপাধ্যায়, বঙ্কিম চন্দ্ৰ চট্টোপাধ্যায় আৰু ৰবীন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰৰ গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰিছিল। তদুপৰি অসম সাহিত্য সভাৰ দুগৰাকী সভাপতি গিৰিধৰ শৰ্মা আৰু অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ কেইবাখনো গ্ৰন্থ ‘চপলা বুক ষ্টলে’ নিয়মীয়াকৈ প্ৰকাশ কৰিছিল। এই প্ৰতিষ্ঠানে প্ৰকাশ কৰা আন আন কিছু গ্ৰন্থ এনেধৰণৰ : *মাটি আৰু মানুহ*, *বেউলা*, *পিয়লি ফুকন*, *পুৰাণ সাহিত্যৰ পাৰিজাত*, *প্ৰতিমাৰ পালা*, *জানো প্ৰাণ*, *ৰূপজ্যোতি*, *লাভিতা*, *শোণিত কুঁৱৰী*, *শকুন্তলা*, *সাবিত্ৰী*, *কাৰেঙৰ লিগিৰী*, *সপোনৰ সুৰ*, *সেউজী পাতৰ কাহিনী*, *ধুমুহাৰ পাছত*, *মাণিকী মধুৰী* ইত্যাদি। ‘চপলা বুক ষ্টলে’ প্ৰকাশ কৰা কেইখনমান অসমীয়া শিশু-গ্ৰন্থ হৈছে : *গ্ৰীচ দেশৰ সাধু*, *অকণিৰ মহাভাৰত*, *অকণিৰ ৰামায়ণ*, *অপেশ্বৰীৰ দেশ* ইত্যাদি।

উপসংহাৰ :

১৮৭৪ চনৰ পৰা ১৯৭২ চনলৈকে অসমৰ ৰাজধানী হিচাপে শ্বিলঙে যি মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ সূচনা কৰিলে, সেয়া অসমৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক আৰু ভাষিক বুৰঞ্জীত এক যুগান্তকাৰী অধ্যায়। ‘অসম সচিবালয় ছপাশাল’ৰ চৰকাৰী নথি-পত্ৰ, লোকপিয়লৰ তথ্য আৰু জনজাতীয় ভাষাৰ গ্ৰন্থ-শৃংখলাই ব্ৰিটিছ আমোলাসকলৰ প্ৰশাসনিক প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণ কৰাৰ উপৰিও আধুনিক অসমীয়া জাতীয় পৰিচয় নিৰ্মাণৰ বাবে অপৰিসীম সমল যোগান ধৰিলে। আনহাতে, চেৰাপঞ্জীৰ ‘মিছন প্ৰেছ’, ‘ডন বস্কো ইণ্ডাষ্ট্ৰিয়েল স্কুল প্ৰেছ’, বাবু জীৱন ৰয়ৰ ‘ৰি খাচী প্ৰেছ’, ‘নেপালী প্ৰেছ’ আৰু পৰৱৰ্তী সময়ৰ ‘চপলা বুক ষ্টল’ আদি বেচৰকাৰী প্ৰতিষ্ঠানৰ প্ৰচেষ্টাই শিক্ষা, সৃষ্টিশীল সাহিত্য আৰু শিশু-সাহিত্যৰ বিকাশৰ ধাৰাটো পাহৰীয়া ভূখণ্ডৰ পৰাই সজীৱ কৰি ৰাখিছিল। ১৮৯৭ চনৰ ভয়াৱহ বৰভূঁইকঁপৰ দৰে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগকো নেওচি শ্বিলঙৰ মুদ্ৰণ সংস্কৃতিয়ে এটা দীঘলীয়া যাত্ৰাপথ গঢ়ি তুলিলে। লগতে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ বাবে পথপ্ৰদৰ্শকস্বৰূপ ‘হেমকোষ’ৰ অমূল্য পাণ্ডুলিপিও নিঃশেষ হোৱাৰ পৰা ৰক্ষা পৰিল।

১৯৭২ চনত অসমৰ পৰা মেঘালয় ৰাজ্য হিচাপে পৃথক হয় আৰু অসমৰ ৰাজধানী শ্বিলঙৰ পৰা দিছপুৰলৈ স্থানান্তৰিত কৰা হয়। তাৰ লগে লগে শ্বিলঙৰ পৰা সচিবালয় ছপাশালটো গুৱাহাটীলৈ তুলি অনা হয়। শ্বিলঙৰ চৰকাৰী ছপাশালে অসমীয়া সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ বিকাশত গ্ৰহণ কৰা ভূমিকাকৈ ব্ৰিটিছ শাসিত অসম প্ৰদেশৰ লোকপিয়ল, জাতি-জনজাতীয় ভাষাৰ ব্যাকৰণ, অভিধান আৰু সমীক্ষা সংকলিত কৰা, সম্পাদনা কৰা আৰু সংৰক্ষণ কৰাত ছপাশালটোৰ ভূমিকা অতি তাৎপৰ্যপূৰ্ণ। এই ছপাশালৰ ছপা-সম্ভাৰে আধুনিক অসমীয়া বুদ্ধিজীৱী আৰু সমালোচক, উভয়কে জাতীয় পৰিচয় নিৰ্মাণ আৰু গৱেষণাৰ বাবে কেঁচা সামগ্ৰী অৰ্থাৎ প্ৰাথমিক উৎস প্ৰদান কৰি আহিছে। অসমীয়া বৌদ্ধিক সমাজ আৰু গৱেষকসকলৰ বাবে প্ৰাথমিক ঐতিহাসিক উৎস নিৰ্মাণৰ ক্ষেত্ৰত শ্বিলঙৰ মুদ্ৰণ সংস্কৃতিৰ ভূমিকা চিৰকালৰ বাবে অনন্য আৰু অতুলনীয় হৈ ৰ’ব। □

তথ্যসূত্ৰ :

চৌধুৰী, বিভূভূষণ। “আমাৰ কথা।” *বনলতা সাহিত্য*, ক্ষীৰোদ কুমাৰ গোস্বামীৰ দ্বাৰা সম্পাদিত, তৃতীয় সংখ্যা, ২০১০।

Bhuyan, Suryya Kumar. *Studies in the Literature of Assam*. Foreword by Sri Prakasa, Lawyer’s Book Stall, 1962. Chaudhuri, Sudhindra Bhushan. “Circa 1945: The Beginning.” *The Shillong Times*, 10 Aug. 2019. theshillongtimes.com/2019/08/10/circa-1945-the-beginning/.

England, Philip, and Roger Bilham. “The Shillong Plateau and the Great 1897 Assam Earthquake.” *Tectonics*, vol. 34, no. 9, 2015, <https://doi.org/10.1002/2015TC003902>.

Report on the Administration of the Province of Assam, for the Years 1899-1900. Assam Secretariat Press, 1901.

Report on the Administration of the Province of Assam, for the Year 1901-1902. Assam Secretariat Press, 1903.
Report on the Administration of the Province of Assam, for the Year 1903-1904. Assam Secretariat Press, 1905.
Syiemlieh, David Reid. *British Administration in Meghalaya: Policy and Pattern.* 1985. North-Eastern Hill University, PhD dissertation.
Syiemlieh, Magdalyne. "Early Khasi Response to Christian Missions: Challenges, Acceptance and Assertion." *IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)*, vol. 14, no. 2, July–Aug. 2013.
The Earthquake in Bengal and Assam. Reprinted from the "Englishman," S. N. Banerji, Englishman Press, 1897.

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अतः भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फॉन्ट, 12 प्वाइंट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमशः शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

नाम :
पदनाम :
पूरा पता :
ई-मेल : मोबाइल :
RTGS का विवरण :

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		संस्थागत	
प्रति अंक	: ₹. 100/-	प्रति अंक	: ₹. 150/-
वार्षिक	: ₹. 1000/-	वार्षिक	: ₹. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: ₹. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑर्डर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 551802010004619
Name of Bank & Branch : Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Dispur-781038
IFS Code : UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप
महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

समिति के कुछ अनमोल प्रकाशन

- ❖ नामघोषा
- ❖ लौहित्य और नीलाचल
- ❖ डाक के वचन
- ❖ दादी की कहानियाँ
- ❖ राह और रोड़े
- ❖ कवच
- ❖ निर्भीक मुक्तियोद्धा
- ❖ प्रागज्योति (हिंदी/असमीया)
- ❖ असमीया साहित्य की रूपरेखा
- ❖ साहित्य समीक्षा
- ❖ आधुनिक असमीया कविता
- ❖ कार्यालयीन हिंदी
- ❖ साहित्य और प्रेम
- ❖ व्यावहारिक आलेखन और टिप्पण
- ❖ राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा
- ❖ ध्रुवस्वामिनी
- ❖ लाचित बरफुकन (काव्य)
- ❖ लाचित बरफुकन (नाटक)
- ❖ पूर्वोत्तर भारत के क्रांतिकारी
- ❖ माँ कामाख्या
- ❖ कुतु और सुमन (बाल उपन्यास)
- ❖ महापुरुष शंकरदेव
(सचित्र पुस्तिका)
- ❖ भूपेन दा का सुरीला सफर
- ❖ हिंदी-असमीया शब्दकोश
- ❖ शिवसागर (पर्यटकों के लिए)

■ प्राप्ति स्थान : पुस्तक बिक्री विभाग

■ संपर्क : 9435146092



संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

🌐 arpsguwahati.com ✉️ rastrasewak51@gmail.com 📞 9101541395/9101541380